UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186739

UNIVERSAL
LIBRARY

प्रमुख देशों की शासन प्रणालियां

प्रमुख देशों की शासन प्रणालियां

डा० ब्रजमोहन शर्मा,
एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०, डी० लिट्
रीडर, राजनीति विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

—❀❀❀—

प्राक्कथन लेखक—
माननीय श्री चन्द्रभानु गुप्त,
एम० ए०, एल-एल० बी०, एम० एल० ए०
मंत्री, उत्तर प्रदेशीय सरकार।

—❀❀❀—

प्रकाशक—
जी० आर० भार्गव एण्ड सन्स
पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता
चन्दौसी

१९५०

मूल्य १२)

मुद्रकः—पं० बन्नूलाल भार्गव,
भार्गव [इलेक्ट्रिक] प्रिंटिंग वर्क्स, चन्दौसी



श्री चन्द्रभानु गुप्त

प्राक्कथन

राष्ट्र-भाषा के पद पर आसीन होने के उपरान्त हिन्दी साहित्य में एक नवीन युग का आविर्भाव हो रहा है। हिन्दी का महत्व प्रत्येक क्षेत्र में उत्तरोत्तर बढ़ने के साथ ही हिन्दी भाषा-भाषियों और हिन्दी के हित-चिन्तकों पर नित नई जिम्मेदारियां आती जा रही हैं। वास्तव में हिन्दी का भविष्य और उसकी मान-मर्यादा का मूल्यांकन इन जिम्मेदारियों के भली-भांति पूरे होने पर ही निर्भर है। विभिन्न विषयों पर हिन्दी साहित्य में आधुनिक दृष्टिकोण का समावेश करने का भार बहुत कुछ हमारे विश्व-विद्यालयों पर है। विश्व-विद्यालय बौद्धिक विकास के केन्द्र माने गये हैं और वहीं से समाज को कला और विज्ञान के क्षेत्र में प्रेरणा प्राप्त होती है। अब तक हमारे विश्व-विद्यालयों में अपने हृदय के भाव अपनी भाषा में प्रकट करने की शिक्षा नहीं दी जाती रही है। हमारे मानसिक विकास पर इसका अत्यन्त घातक प्रभाव पड़ा है। विद्यार्थियों और अध्यापकों का अधिकांश समय तो अपने विचारों को अंग्रेजी में सुन्दरतापूर्वक व्यक्त करने की कला को सीखने में ही खप जाता है और उन्हें स्वतंत्र और स्वाभाविक रूप से विचार करने का अवकाश ही नहीं मिल पाता। इस तथ्य को विश्व-विद्यालय कमीशन ने भी अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया है। इस प्रकार की शिक्षा से जो कुछ ज्ञान-वृद्धि हुई भी है, उसका शतांश लाभ भी सर्व साधारण को नहीं मिल सका है। खेती सरीखे विषयों पर वृहत् ग्रन्थ अंग्रेजी में प्रकाशित किये जा रहे हैं, परन्तु उनका उपयोग जनता के लिये कुछ भी नहीं है। किन्तु अब इस मूल को सुधारने के लिये व्यापक प्रयत्न किये जा रहे हैं। कई विश्व-विद्यालयों ने मातृ-भाषा द्वारा ही ज्ञान-दान का संकल्प करके इस सुधार-मार्ग को और भी प्रशस्त बना दिया है।

विश्व-विद्यालयों द्वारा हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार कर लेने से एक नितान्त नई दिशा में कार्य करने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है। अभी तक हमारा हिन्दी जगत समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि विविध विषयों के सम्बन्ध में अत्यन्त अविकसित है। हिन्दी में इन विषयों पर जो पुस्तकें हैं भी, वे मुख्यतः अन्य भाषाओं की प्रति-छायामात्र ही हैं। इन पर हिन्दी में आधुनिक विचार धाराओं को लेकर

मौलिक पुस्तकें तो नहीं के बराबर ही लिखी गई हैं। निस्संदेह हिन्दी में अनुवादों का अपना एक स्थान है और उनकी उपादेयता भी संशय से परे है। उदाहरणार्थ बंगला, मराठी, गुजराती, अङ्गरेजी और फ्रेंच से अनुवादित कविताओं, कहानियों और उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य में नवीन लेखन-शैलियों तथा विचार-धाराओं को जन्म दिया है। किन्तु अनुवादित साहित्य एक प्रकार से मांगी हुई वस्तु होती है, उसमें जाति की प्रकृति दृष्टिगोचर नहीं होती। वह तो पर-जाति की भावनाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का साधन-मात्र होता है। कोई भी भाषा इस प्रकार के मांगे हुये साहित्य से परितुष्ट और गौरवमयी नहीं हो सकती। यह तो तभी सम्भव है, जब कि लेखकगण मौलिक रूप से हिन्दी में मनन करें और हिन्दी में ही लिखें, विचारों तथा लेखनी में ओज और स्वाभाविकता भी तभी आ सकती है।

इस समय विश्व-विद्यालयों में अङ्गरेजी में पाठ्य पुस्तकों का स्थान लेने के लिये उच्च कोटि की हिन्दी की पुस्तकों की अत्याधिक आवश्यकता है। मौलिक पुस्तकों का अभाव होने के कारण, आरम्भ में हमें अनुवादों का ही सहारा लेना होगा। स्वतंत्र साहित्य की रचना का युग सम्भवतः अनुवाद-युग के बाद ही आयगा। इस सम्बन्ध में बहुत से अंग्रेजीदां महानुभाव मातृभाषा द्वारा राष्ट्र-सेवा करने के लिये इस क्षेत्र में उतर पड़े हैं। यह हिन्दी का सौभाग्य ही है। इनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। परन्तु उन्हें विद्यार्थी जीवन में हिन्दी की अच्छी शिक्षा न मिलने के कारण, वे अपनी भाषा में अपने विचार और भाव प्रकट करने की शक्ति भली-भांति विकसित नहीं कर सके हैं। वे मूल के शब्दों और शब्दार्थों पर ही सब से अधिक ध्यान रखते हैं, भावार्थ उनकी दृष्टि के सामने प्रायः आने ही नहीं पाते। उनकी कृतियों में शब्द तो हिन्दी—वे भी कभी कभी अशुद्ध और अ—हिन्दी होते हैं; किन्तु वाक्य-विन्यास, लेखन-शैली और मुहावरे प्रायः अंग्रेजी से उधार लिये होते हैं। डा० ब्रजमोहन शर्मा की प्रस्तुत पुस्तक भी इसी प्रकार का एक प्रयास है। उन्होंने इस समय प्रमुख देशों की शासन प्रणालियों पर योग्यतापूर्ण पुस्तक लिखकर हिन्दी और विशेषकर विश्व-विद्यालयों के छात्रों की बड़ी सेवा की है। इस समय हमारा देश एक लोकतन्त्रात्मक युग में पदार्पण कर रहा है। हमें अपने नवनिर्मित विधान को सफल बनाने के लिये

समस्त देशवासियों में लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणाली के प्रति आस्था और श्रद्धा का भाव जाग्रत करना होगा। देश में इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करने के लिये काफी समय तक धैर्यपूर्वक कठिन परिश्रम करने की आवश्यकता है। मेरा विचार है, संसार के अन्य प्रमुख देशों की शासन प्रणालियों का इतिहास और कार्य-कलाप का अध्ययन, इस सम्बन्ध में अत्यन्त फलदायक होगा। इसके द्वारा हमें यह भी ज्ञात हो जायगा कि जिन परम्पराओं को हम भारत में स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हें अन्य देशवासी अपने देशों में किस प्रकार स्थापित कर सके हैं। डा० शर्मा की यह पुस्तक सर्वसाधारण और विशेषकर विद्यार्थियों तथा उन लोगों के लिये, जिन्हें अन्य भाषाओं का ज्ञान नहीं है अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। इस सम्बन्ध में उनका प्रयास प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। पुस्तक के प्रारम्भ में प्रथम तीन अध्यायों में 'वैधानिक सरकार', 'संघ शासन का सिद्धान्त' तथा 'सरकार के स्वरूप और कर्तव्य' का निरूपण कर देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। यदि डाक्टर साहब ने स्थान-स्थान पर अन्य देशों के विधानों का भारत के नवीन विधान के साथ तुलनात्मक विश्लेषण कर दिया होता, तो निस्संदेह सोने में सुगंध आ जाती।

पुस्तक की भाषा पर अंग्रेजी की छाया स्पष्ट है। भाषा कहीं कहीं गुट्ठल हो गई है और उसमें प्रवाह की भी कमी है। अङ्गरेजी के पारिभाषिक शब्दों में बहुत से पर्याय भारतीय विधान परिषद् द्वारा स्वीकृत पर्यायों से भिन्न हैं और कुछ स्थलों पर अंग्रेजी के एक ही शब्द के लिये कई पर्याय अनिश्चित रूप से प्रयोग किये गये हैं। पाठकों और विशेषकर विद्यार्थियों को इससे किंचित असुविधा होना स्वाभाविक ही है, परन्तु हिन्दी के पर्याय के साथ कोष्टक में अंग्रेजी का पारभाषिक शब्द दे देने के कारण, आशा है, यह कठिनाई काफी कम हो जायगी।

हिन्दी जगत में इस समय ऐसी पुस्तकों की अत्यधिक कमी है। मुझे विश्वास है, डा० शर्मा की यह पुस्तक इस कमी को पूरा करने में सहायक होगी और साथ ही अन्य लेखकों तथा अध्यापकों को इस प्रकार की पुस्तकें लिखने की सद् प्रेरणा प्रदान करेगी।

लखनऊ,
२६ अप्रैल, १९५० ई०

चन्द्रभानु गुप्त

दो शब्द

—:※०※:—

गत तीन वर्षों में भारत में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, विशेषतया राजनीतिक क्षेत्र में इनका प्रभाव भारतीयों के जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ा है। साहित्यिक क्षेत्र में भी जो जाग्रति और उन्नति हो रही है उससे आशा की जा सकती है कि भारतीय भाषाओं में और विशेषतया हिन्दी भाषा में, जो राष्ट्रीय भाषा मान ली गई है, साहित्य के प्रत्येक अङ्ग पर नित नई पुस्तकें प्रकाशित होंगी। जैसा कि माननीय चन्द्रभानु गुप्त ने प्राक्कथन में कहा है, विश्वविद्यालय के अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है (और मैं तो इसे उनका धर्म ही कहूँगा) कि वे हिन्दी में उन विषयों पर पुस्तकें लिखें जो विश्वविद्यालय में पाठविधि के ही लिये उपयोगी सिद्ध न हों, वरन् जनसाधारण में भी ज्ञानवृद्धि करने में सहायक हों।

हिन्दी भाषा में राजनीति विषय पर अभी तक अधिक नहीं लिखा गया है। विश्वविद्यालय में राजशास्त्र का अध्यापक होने की हैसियत से मैंने अपना यह कर्त्तव्य समझा कि मैं अपनी शक्ति का कुछ भाग हिन्दी साहित्य की सेवा में लगा दूँ। इसी कारण मैंने संसार के 'प्रमुख देशों की शासन प्रणालियां' लिखने का उद्योग किया। इसमें संदेह नहीं कि आरम्भ में ऐसी पुस्तकें लिखने में अनेक कठिनाइयाँ होंगी और इसी कारण पुस्तकों में त्रुटियां रह जाना भी आश्चर्य की बात नहीं। हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों का उस समय तक अभाव ही था जिस समय यह पुस्तक लिखी गई है। भारतीय भाषाओं के विशेषज्ञों ने हिन्दी पर्यायों को जिस समय निश्चित् रूप से स्वीकार किया था उसके पूर्व ही यह पुस्तक तीन-चौथाई से अधिक मुद्रित हो चुकी थी। उन पर्यायों के स्थान पर मैंने उन्हीं पारिभाषिक

शब्दों का प्रयोग किया जो साधारणतया प्रचलित थे अथवा पाठकों की समझ में आ सकते थे, अगले संस्करणों में संर्वमान्य पर्यायों का ही प्रयोग होगा। पुस्तक की अन्य त्रुटियों को भी दूर करने का मैं प्रयत्न करूंगा। जो सज्जन इस कार्य में मुझे त्रुटियां बताकर अथवा अपनी बहुमूल्य सम्मति देकर सहायता देंगे उनका मैं आभारी हूँगा।

मैं माननीय चन्द्रभानु जी गुप्त को विशेषतया धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने अपने बहुमूल्य समय को देकर पुस्तक को पढ़ा और प्राक्कथन लिखा। मैं उन्हें आश्वासन देता हूँ कि अगले संस्करण में मैं पुस्तक की त्रुटियों को दूर करने का प्रयास करूंगा।

राजशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
१ मई १९५०

ब्रजमोहन शर्मा

*

समर्पण

हिन्दी के परम-प्रेमी तथा उच्च-शिक्षा के समर्थक
राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान्

माननीय श्री चन्द्रभानु गुप्त

मंत्री
उत्तर प्रदेश सरकार
को
सादर समर्पित !

—ब्रजमोहन शर्मा

विषय-सूची

अध्याय विषय पृष्ठ

१. वैधानिक सरकार। १

राज्य समाज का सब से उन्नत रूप है—विधान ही सामाजिक संगठन की रूप-रेखा का द्योतक है—विधान की परिभाषा—विधान की आवश्यकता—विधान का इतिहास—इंगलैंड में विधान का विकास—अमरीका में—योरुप में—विधानों का वर्गीकरण—लिखित विधान केवल एक ढांचा है—परम क्लिष्टता अवांछनीय है—विधान पर लोक-नियन्त्रण—वैधानिक सरकार की परिभाषा—विधान निर्माण के विविध-प्रकार—वैधानिक और स्वेच्छाचारी शैली में भेद—

२. संघ शासन का सिद्धान्त। १६

राजनैतिक संघ के प्रकार (१) व्यक्तिगत संघ—(२) पूर्ण सम्मिलन—(३) समूह शासन का अस्थायी संघ—(४) संघ शासन—संघ शासन की परिभाषा—संघ शासन किस प्रकार बनते हैं—संघ शासन की विशेषतायें—दो सरकारों का साथ साथ रहना—अधिकारों का विभाजन-अवशिष्ट, समवर्ती और निहित शक्तियां—अवशिष्ट शक्तियां (Residuary powers)—समवर्ती शक्तियां (Concurrent powers)—निहित शक्तियां का सिद्धान्त, (Implied powers)—संघ शासन विधान की विशेषतायें—(क) संघ शासन में दो सरकारों की नागरिकता—(ख) लिखित और विशेषतया क्लिष्ट विधान—(ग) विशेष प्रकार का न्याय मण्डल—(घ) सम्बन्धोच्छेद का सिद्धान्त—संघ शासन के अनुकूल हेतु (i) भौगोलिक निकटता—ii) आर्थिक लाभ—(iii) राजनैतिक हेतु—(iv) जाति सम्बन्धी और सांस्कृतिक हेतु—संघ शासन के गुण व दोष—आचार्य डायसी की आलोचना—ब्रांड की आलोचना—आचार्य लास्की की प्रशंसा—संघ शासन का अनुभव क्या बतलाता है—

३. सरकार के स्वरूप और कर्त्तव्य। ४८

सरकार प्रत्येक राज्य का अनिवार्य अङ्ग है—आधुनिक राज्यों में सरकार के विभिन्न रूप हैं—प्राचीनकाल में सरकारों का वर्गीकरण—वर्गीकरण के दो मुख्य आधार—सरकार का संख्यात्मक वर्गीकरण—सरकार का

गुणात्मक वर्गीकरण – सरकारों का आधुनिक वर्गीकरण – प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र––प्रजातन्त्र के सम्बन्ध में कतिपय मत––प्रजातन्त्र के सिद्धान्त – प्रजातन्त्र की सफलता के लिये आवश्यक परिस्थिति— निरंकुशता से युद्ध करने से प्रजातन्त्र की प्राप्ति—प्रजातन्त्र और अधिकारों की घोषणा प्रजातन्त्र और प्रथम महायुद्ध—स्वतन्त्र तथा परतन्त्र सरकारें—आधीन प्रदेशों के रखने का अभिप्राय—उत्तरदायी व अनुत्तरदायी सरकारें - व्यवस्थापक मण्डल के भिन्न भिन्न रूप — द्विआगारिक पद्धति के गुण—द्विआगारिक पद्धति के दोष – संघ शासन और ऊपरली सभा—दोनों आगारों की रचना और उनके अधिकार— धारा सभाओं की निर्वाचन प्रणाली—समानुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली — मतधारकों और उनके प्रतिनिधिओं का सम्बन्ध - कार्यकारिणी—सरकारों का उनकी कार्यकारिणी की बनावट के आधार पर वर्गीकरण; स्वेच्छाचारी, अध्यक्षात्मक, संसदात्मक—मंत्रिपरिषद् प्रणाली के सिद्धान्त – संसदात्मक या पार्लियामेन्टरी राजतन्त्र प्रणाली के गुण—राजनीतिक दल प्रणाली और प्रजातन्त्र राज्य—राज्य में सिविल सर्विस – राज्य का तीसरा अङ्ग न्यायाधीश वर्ग है—न्यायकारी सत्ता के कार्यसिद्धान्त—राज्य के कर्त्तव्य—राज्य के कर्त्तव्यों का वर्गीकरण—राज्य के कर्त्तव्यों की प्राचीन कल्पना—सरकार के कर्त्तव्यों की आधुनिक कल्पना –

४. इङ्गलैंड की सरकार। ८३

इंगलैंड में ऐंग्लो—सेक्शन जाति—ब्रिटेन में ईसाई धर्म—एलफ्रेड और इंगलैंड का एक रूप होना––विटैनगैमौट –नौर्मनकाल—इंगलैंड की जनता के अधिकारों का मैग्ना कार्टा (Magna Carta) सन् १२१५ ई०––एञ्जीविन वंश के राज्यकाल में इंगलैंड का शासन-विधान––ऑक्सफोर्ड के प्रावधान – साइमन डी मान्टफोर्ड द्वारा बैरनों का नेतृत्व––साइमन की १२६४ और १२६५ की पार्लियामेंट––एडवर्ड प्रथम के शासन सुधार––सन् १२९५ की ग्रेट पार्लियामेंट शतवर्षीय युद्ध और पार्लियामेंट––नौर्मन एञ्जीविन राजवंशों के समय में न्याय-मण्डल का विकास––गुलाब युद्ध (Wars of Roses) और शासन विधान सम्बन्धी परिवर्तन––ट्यूडरवंशीय निरंकुशता की स्थापना–– स्टुआर्टकाल में शासन-परिवर्तन––चार्ल्स प्रथम और पार्लियामेंट––राजसत्ता की पुनर्स्थापना १६०० ई०)––बिल आफ राइट्स––दो राजनीतिक दलों का प्रारंभ––ह्विगों और टोरियों की नीति––हैनोवर राज्य परिवार के शासनकाल में राजनीतिक दलों की सरकारें—कैबिनेट प्रणाली

(Cabinet System) का जन्म--उन्नीसवीं शताब्दी के वैधानिक सुधार--सन् १८३२ के सुधार--सामाजिक सुधारों की मांग--चार्टिस्ट आन्दोलन (The Chartist Movement)--सन् १८६७ का द्वितीय सुधारक एक्ट--सन् १८८४ का सुधार-एक्ट--रीडिस्ट्रीब्यूशन आफ सीट्स एक्ट (Redistribution of seats Act 1885)--स्थानीय शासन में सुधार - बीसवीं शताब्दी के सुधार--न्याय पद्धति का सुधार--

५. अंगरेजी शासन-विधान के विशेष लक्षण। ११२

अङ्गरेजी शासन-विधान का मुख्य लक्षण उसका क्रमिक विकास ही है--अङ्गरेजी शासनविधान किसी एक पत्र में लिखा हुआ नहीं है--मैग्ना कार्टा (Magna Carta : 1215)--पिटीशन आफ राइट्स (Petition of Rights : 1628) हैबियस कौर्पस एक्ट (Habeas Corpus Act : 1679)--बिल आफ राइट्स (Bill of Rights : 1689)--दी एक्ट आफ सैटिलमेंट (The (Act of settlement : 1701)--दी एक्ट आफ यूनियन (The Act of Union : 1707)--दी एक्ट आफ यूनियन विद आयरलैंड (The Act of Union with Ireland : 1800)--दी रिफार्मस एक्ट्स (The Reforms Acts of 1832, 1867, 1884 and 1885)--रिप्रैजेंटेशन आफ दी पीपिल एक्ट्स (Representation of the People Acts of 1918 and 1928)--लोकल गवर्नमेंट एक्ट्स (Local Government Acts of 1888; 1894 and 1929)--दी जुडीकेचर एक्ट्स (The gudicature Acts of 1873, 1875, 1876 and 1894)--दी पार्लियमेंट एक्ट (The Parliament Act of 1911)--अलिखित विधान--विधान का लचीलापन--शासनविधान से पार्लियामेंटरी प्रजातन्त्र स्थापित किया हुआ है--राजनीतिक दल प्रणाली अङ्गरेजी शासनविधान की विशेषता है--कन्जरवेटिव दल (Conservative party)--कन्जरवेटिव दल और ईसाई धर्म-संघ--कन्जरवेटिव दल और समाज--लिबरल दल (Liberal party)--लेबरदल (Labour party)--इंगलैंड में राजनीतिक दल प्रणाली--निर्बन्ध शासन Rule of Law)--

६. पार्लियामेंट और विधिनिर्माण। १२६

हाउस आफ कामन्स--आगार की सदस्य संख्या--कामन्स में प्रति-

निधित्व--निर्वाचन क्षेत्र व निर्वाचक दल--पार्लियामेंट की अवधि--हाउस आफ कामन्स के सदस्यों का निर्वाचन--निर्वाचन--निर्वाचन के फल की घोषणा--बहुसंख्यक मतदाताओं का मताधिकार से वञ्चित होना—निर्वाचन प्रणाली के दोष-निवारक सुझाव--एकलसंक्राम्य मत प्रणाली (Single transferable vote)--अवरोधक और एकत्रीभूत मत (Restrictive and Cumulative Vote)—क्या हाऊस आफ कामन्स वास्तव में सब वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है ?--आगार का संगठन--स्पीकर (Speaker) के कर्त्तव्य--आगार की समितियां--समितियां कैसे नियुक्त की जाती हैं--आगार की गणपूरक संख्या (Quorum)--आगार में कार्यक्रम के नियम--सदस्यों के कर्त्तव्य (Obligations) और विशेषाधिकार (Privileges)—आगार के संस्था रूपी अधिकार—हाउस आफ लार्डस—हाउस आफ लार्डस नाम क्यों ?—पीयर बनाने का राजकीय विशेषाधिकार--हाउस आफ लार्डस में कौन कौन लोग होते हैं--लार्डों के कर्तव्य और विशेषाधिकार--हाउस आफ लार्डस में के विशेषाधिकार--लार्डस किसका प्रतिनिधित्व करते हैं--हाउस आफ लार्डस के सुधार--ब्राइस समिति--सन् १९२९ की योजनायें—ऐलिजवरी की सुधार योजना--हाउस आफ लार्डस का संगठन--हाउस आफ लार्डस के कर्त्तव्य—न्यायकारी कर्त्तव्य—पार्लियामेंट के अधिकार—पार्लियामेंट की सर्वोच्चसत्ता—सन् १९११ का पार्लियामेंट एक्ट—विधायिनी कार्य पद्धति—विधेयक और ऐक्ट में क्या अन्तर है—विधेयकों के प्रकार - पार्लियामेंट के एक साधारण सदस्य का कार्यविधेयक का नोटिस—विधेयक का प्रथम वाचन (First Reading)—द्वितीय वाचन (Second Reading)—तृतीय वाचन (Third Reading)—मुद्रा विधेयक के लिये कार्यक्रम—दोनों आगारों का मतभेद किस प्रकार समाप्त किया जाता है—

७. कार्यकारिणीः राजा और मंत्रिपरिषद् । १७२

राजा—राजा नाम के लिये कार्यकारिणी सत्ता है - दूसरे राष्ट्र-पतियों की अपेक्षा राजा की आय—अंगरेजी राजतंत्र कानून की दृष्टि में और वास्तव में वास्तव में राजा के अधिकार अनियंत्रित हैं—राजा और न्याय मण्डल--राजा और विधायी अधिकार—राजा और कार्यकारी अधिकार—क्राउन और किंग का भेद--मंत्रिपरिषद्—क्राउन की तीन कौंसिलें--क्यूरिया का प्रारम्भिक इतिहास—मंत्रिपरिषद् (Cabinet)—हैनोवर

राजवंश के समय की कैबिनैट अर्थात् मंत्रिपरिषद्—कैबिनैट अर्थात् मंत्रि-परिषद् की रचना—प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद् का भीतरी संगठन—परिषद् की में बैठकों में उपस्थिति—परिषद् में किन विषयों पर विचार होता है—परिषद् सचिवालय का काम—मन्त्रिपरिषद् की समितियां—अन्तरीय परिषद् (Inner Cabinet)—युद्ध परिषद्—(१९१६–१९)—सन् १९३९ की युद्ध परिषद्—मन्त्रिपरिषद् और मन्त्रिमण्डल में भेद—मंत्रिपरिषद् का शासन प्रणाली में स्थान—

८. दी ह्वाइटहाल। १९३

ह्वाइट हाल क्या है—प्रशासन विभागों के अध्यक्ष—अर्थ विभाग—गृह विभाग—वैदेशिक विभाग—श्रम विभाग—स्वास्थ्य विभाग—इण्डिया आफिस—सिविल सर्विस—

९. अङ्गरेजी न्यायालय। २०७

निर्बन्ध शासन (Rule of Law)—निर्बन्ध शासन के अपवाद—निर्बन्ध-शासन से अनुमानित नागरिक अधिकार—अंगरेजी न्यायमण्डल के दूसरे सिद्धान्त—इंगलैंड में जूरी (पञ्च) प्रणाली—न्यायमंडल का संक्षिप्त इतिहास—

१०. अङ्गरेजी स्थानीय शासन। २१८

स्थानीय शासन का प्रयोजन—अङ्गरेजी स्थानीय शासन का इतिहास—१९ वीं शताब्दी में स्थानीय शासन का सुधार—स्थानीय शासन के वर्तमान क्षेत्र—रूरल पैरिश Rural Parish)—रूरल डिस्ट्रिक्ट (Rural District)—अरबन डिस्ट्रिक्ट (Urban District)—काउन्टी (County)—नगर बौरो (Urban Borough)—बौरो का शासन—कौंसिल के अधिकार - प्रशासन काउन्टी—इंगलैंड में स्थानीय शासन संस्थाओं पर केन्द्रीय नियन्त्रण—पार्लियामेंट का नियंत्रण—लन्दन का शासन प्रबन्ध—सिटी आफ लन्दन—काउन्टी आफ लन्दन—लन्दन काउन्टी कौंसिल के कर्त्तव्य—लन्दन मैट्रोपोलि-टन बौरो—

११. डोमिनियन स्टेटस। २३५

ब्रिटिश साम्राज्य—साम्राज्य की स्थापना के आधारभूत अभिप्राय—समुद्रपार स्थित साम्राज्य से इंगलैंड को लाभ—डरहम की रिपोर्ट और औपनिवेशिक नीति में परिवर्तन—१९ वीं शताब्दी के दूसरे भाग में औपनिवेशिक नीति—सन् १९१७ का साम्राज्य सम्मेलन—१९३१ की

वेस्ट मिनिस्टर व्यवस्था(Statute of Westminster of 1931)—डोमिनियनों में राजा का स्थान डोमिनियनों की बाह्य संज्ञा—डोमिनियन गवर्नर जनरल—

१२. कनाडा का शासन विधान। २५०

शासन विधान का इतिहास - लार्ड डरहम की रिपोर्ट - क्विबैक का प्रस्ताव और उसके पश्चात् सन् १८६७ का शासन विधान—शासन-विधान के सिद्धान्त - संघ सरकार प्रान्तों पर संघ सरकार का नियंत्रण—संघ व्यवस्थापक मंडल—निचले आगार में प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त—सीनेट का संगठन—सीनेट के सदस्यों की योग्यतायें—गवर्नर जनरल के मनोनीत सदस्य - सीनेट का संगठन और उसकी कार्य पद्धति—संघ कार्यकारिणी—कार्यकारिणी और राजा--कनाडा की प्रिवी कौंसिल - मंत्रिमण्डल ही वास्तविक कार्यकारिणी है—मंत्रि-परिषद् की बनावट - सिविल सर्विस—कनाडा का न्यायमण्डल—प्रान्तीय सरकारें—उनकी शक्तियां - प्रान्तीय धारा सभायें—प्रान्तीय अध्यक्ष—शासन विधान का संशोधन—राजनीतिक दल—कृषक दल—श्रमिक दल—उदार दल व अनुदार दल—

१३. आस्ट्रेलिया का संघ-शासन। २७२

शासन विधान का इतिहास—फैलाव व जनसंख्या--महाद्वीप की खोज और उसमें बाहर के लोगों का बसना--आस्ट्रेलिया की संस्थायें इंगलैंड से लाई गईं—संघ-शासन के विचार का आरंभ—संघ समिति के कर्त्तव्य व शक्तियां—सन् १९०० का शासन विधान - संघ-सरकार—संघ-सरकार से शासित प्रदेश - संघ-सरकार की आर्थिक शक्तियां - संघ धारा सभा—क्या सीनेट उपराज्य सत्ता को जताती है—सीनेट में आकस्मिक रिक्त स्थानों का भरना गणपूरक और मतदान—प्रतिनिधि-आगार—व्यवस्थापक मण्डल की शक्तियां—दोनों आगारों के मतभेद सुलझाने का उपाय - संघ कार्यकारिणी--परिषद् की रचना--संघ न्याय मंडल--हाईकोर्ट की शक्तियां--विधान का संशोधन—विधान संशोधन के सम्बन्ध में पार्लियामेंट पर प्रतिबन्ध—उपराज्य और स्थानीय शासन—संघ स्थापित होने के पूर्व उपराज्य स्वतंत्र थे—गवर्नर - उपराज्यों की धारा सभायें—उपराज्यों के निर्बन्धकारी अधिकार—राजनीतिक दल—दलबन्दी के आधारभूत आर्थिक प्रश्न—

१४. दक्षिण अफ्रीका का संघ-शासन। २९८

शासन विधान का इतिहास—चार स्वावलम्बी उपनिवेश—यूनियन

बनाने के प्रयत्न का आरंभ - सन् १९०२ की उपनिवेशों की कान्फ्रेंस — सन् १९०८ की कान्फ्रेंस — सन् १९०९ का शासन विधान — शासन-विधान की विशेषतायें — एकात्मक विशेषतायें - संघात्मक विशेषतायें — मिलाजुला शासन विधान — संघ सरकार — संघ धारा सभा — सीनेट — सीनेट के सदस्यों का निर्वाचन — सीनेट के सदस्यों की योग्यता — सीनेट की कार्यपद्धति — हाउस आफ असैम्बली मताधिकार और सदस्यों की योग्यतायें — असैम्बली का संगठन — पार्लियामेंट स्वयं अपने उपनियम बनाती है — दोनों आगारों का पारस्परिक सम्बन्ध — संघ कार्यकारिणी — संघ न्यायमण्डल प्रान्तीय व स्थानीय सरकारें — शासन विधान का संशोधन — राजनीतिक दल —

१५. आयरलैण्ड। ३२२

वैधानिक इतिहास—आयरलैंड के वैधानिक इतिहास के चार युग — आयरलैंड पर अंगरेजों की विजय — ट्यूडर काल — कैथोलिक व प्रोटैस्टैन्ट समुदाय के अनुयाइयों में झगड़ा — १८ वीं शताब्दी में होम रूल के लिये संघर्ष — सन् १९२२ का शासन विधान — कार्य-कारिणी — नागरिकों के अधिकार — आयर राज्य की अधिकार सीमा — कार्यकारिणी — राज्याध्यक्ष — मनोनीत कैसे होता है — उस पर अभियोग कैसे चलाया जाता है — प्रेसीडेंट की शक्तियां — शक्तियों पर प्रतिबन्ध — राज्य परिषद् (Council of State) कार्यकारिणी - प्रधान मन्त्री (The Taoiseach — व्यवस्थापक मण्डल — राष्ट्रीय संसद (National Parliament) - निचला आगार — ऊपरली सभा — निर्बन्ध कैसे बनता है — मुद्राविधेयक — दोनों आगारों के मतविरोध को दूर करना — प्रेसीडेंट के हस्ताक्षर — विधान का संशोधन —

१६. संयुक्तराज्य अमरीका का संघ शासन। ३४९

शासन विधान का इतिहास — पूर्वकालीन उपनिवेश — उपनिवेश में समानतायें — उपनिवेश निवासी अंगरेजी संस्थायें चाहते थे — मातृभूमि के विरुद्ध युद्ध घोषणा — यह वास्तविक स्थायी संघ न था — फिलेडेल-फिया सम्मेलन — १७८७ का शासन विधान — विधान सर्वोच्च निर्बन्ध है — शासनविधान की अन्य विशेषतायें — संघ सरकार की शक्तियां — शक्तियों की सीमा स्थिर करना — संघ व्यवस्थापक मण्डल — मता-धिकार — स्थानीय प्रतिनिधित्व — प्रतिनिधियों का पारिश्रमिक — आगार अपनी कार्यपद्धति स्वयं निर्धारित करता है — आगार के

अफसर—आगार को समितियां—व्यवस्थापन कार्यप्रणाली—दोनों आगारों का पारस्परिक विरोध—ऊपरली सभा—सीनेट के सदस्यों की योग्यतायें—सीनेट के सदस्यों को प्राप्त सुविधायें—सभापति—सीनेट की शक्तियां—सीनेट सब से शक्तिशाली ऊपरी आगार है—सीनेट अपनी कार्यप्रणाली स्वयं निर्धारित करती है—कांग्रेस का प्रभाव—संघ कार्यकारिणी—प्रैसीडेन्ट पद के लिये योग्यतायें—प्रैसीडेंट पद की अवधि—निर्वाचन कैसे होता है—प्रैसीडेंट निर्वाचकों का चुनाव—प्रैसीडेंट और उपप्रैसीडेंट का निर्वाचन शपथ प्रैसीडेंट का वेतन—प्रैसीडेंट अत्यन्त लोकप्रिय व्यक्ति होता है सब से शक्तिशाली शासनाध्यक्ष—विधायिनी शक्तियां—प्रैसीडेंट का प्रतिषेधात्मक अधिकार (Veto Power)—प्रतिषेधात्मक अधिकार का महत्व—कार्यकारिणी शक्तियां—स्वविवेकी शक्तियां (Discretionary Powers)—प्रैसीडेंट पर अभियोग प्रैसीडेंट की मंत्रिपरिषद्—सचिव प्रैसीडेन्ट के मातहत है—संघ न्यायमण्डल—न्यायाधीशों की नियुक्ति—सर्वोच्च न्यायालय की बनावट—भ्रमणशील न्यायालय—जिला न्यायालय—अन्य न्यायालय—शासन विधान का संशोधन संयुक्तराज्य में राजनीतिक दल—

७ संयुक्त राज्य अमरीका में उपराज्यों की सरकारें। ३६७

उपराज्यों की उत्पत्ति व विकास उपराज्यों के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख बातें—उपराज्य शासन-विधान—४८ उपराज्य शासन-विधान—उपराज्यों के शासन-विधानों की सामान्य विशेषतायें—उपराज्य शासक मण्डल—धारासभा का निर्वाचन—व्यवस्थापक मण्डल की अवधि—व्यवस्थापक मण्डल का कार्यविधान संशोधन—उपराज्यों के व्यवस्थापक मण्डल की शक्तियां—उपराज्यों की कार्यकारिणी—गवर्नर—गवर्नर की शक्तियां—दूसरे पदाधिकारी—उपराज्य न्यायमण्डल—स्थानीयशासन—प्रत्यक्ष लोकतन्त्र निर्बन्ध उपाक्रम (Initiative)—लोक निर्णय (Referendum)—इस प्रणाली के दोष—प्रत्याहरण Recall)—

८ स्विट्ज़रलैंड की सरकार। ४०६

शासन-विधान का इतिहास—परिचय—निवासी—वैधानिक इतिहास के पांच युग—(१) प्राचीन संघ—(२) हैल्वैटिक प्रजातन्त्र—(३) नैपोलियन काल—(४) सन् १८१५–१८४८ का संघ-शासन (५) आधुनिक काल—सन् १८७४ का शासन-विधान—सन् १८७४ के

शासन-विधान का रूप विधान की प्रमुख विशेषतायें शक्ति विभाजन—केन्द्रीय सरकार की शक्तियां—संघ सरकार की आय—संघ व्यवस्थापक मण्डल—द्विआगारिक व्यवस्थापक मण्डल निचला आगार - सदस्यों की योग्यता—आगार का सभापति—ऊपरला आगार सदस्यों की अवधि - सदस्यों का वेतन—सभापति—संघ व्यवस्थापक-मण्डल की शक्तियां सम्मिलित बैठकें—व्यवस्थापक-मण्डल के उल्लेख पत्र सदस्यों की योग्यता - संघ कार्यकारिणी - फैडरल कौंसिल की बनावट बिना शक्ति का अध्यक्ष - फैडरल कौंसिल की कार्यवाही—प्रशासन विभाग—फैडरल कौंसिल का कार्य संचालन—धारा सभा को अनुत्तर-दायी—कौंसिल के प्रभाव के बारे में ब्राइस का मत—फैडरल कौंसिल की सफलता—चांसलर—संघ न्यायमण्डल, इसकी बनावट, इसका अधिकार क्षेत्र, न्यायालय की कार्यप्रणाली - राजनीतिक दल दलबन्दी की भावना का अभाव—पुराने दल—वर्तमान राजनीतिक दल—शासन विधान का संशोधन—दो प्रकार का परिवर्तन - विधान संशोधन के लिये लोकनिर्णय अनिवार्य—कैंटनों की सरकारें—कैंटनों में प्रत्यक्ष जनतंत्र—कैन्टनों की धारा सभायें—शासन-विधान का संशोधन—कैन्टन की कार्यकारिणी—कैन्टन का न्याय मण्डल - कैन्टनों में स्थानीय शासन—कैंटनों में शिक्षा—प्रत्यक्ष जनतन्त्र (Direct Democracy)—स्विट्जरलैण्ड प्रत्यक्ष जनतन्त्र का घर है—संघ में लोक निर्णय—कैंटनों में लोक निर्णय - लोक निर्णय की गुण-दोष परीक्षा - मतदाताओं की अयोग्यता - लोक निर्णय से लाभ - संघ में निर्बन्ध उपक्रम—कैन्टनों में निर्बन्ध उपक्रम—जनतंत्र के सम्बन्ध में स्विस दृष्टिकोण—निर्बन्ध उपक्रम के दोष—निर्बन्ध उपक्रम के समर्थकों की विचारधारा

१६. सोवियट रूस की सरकार। ४४८

शासन-विधान का इतिहास—ड्यूमा को बुलाने का प्रथम प्रयत्न—जार की सत्ता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ—सन् १९१७ की क्रांतिश्रमिकों का शासन—स्थानीय व प्रान्तीय सरकार—निर्वाचन और प्रतिनिधित्व का आधार - ग्राम्य और फैक्टरी सोवियट - डिस्ट्रिक्ट सोवियट प्रादेशिक सोवियट (Regional Soviet)—स्थानीय उपराज्य—रूस की केन्द्रीय सरकार—सोवियट न्यायमण्डल—छोटे न्यायालय—प्रादेशिक न्यायालय—सर्वोच्च न्यायालय—सोवियट शासन-विधान का पुनर्निर्माण—एक नये शासन-विधान का प्रयत्न—सन् १९३६ का नया शासन-विधान—कुछ वैयक्तिक सम्पत्ति मान्य की गई—नागरिकों के

मौलिक अधिकार – संघ का संगठन – केन्द्रीय सरकार की शक्तियां – संघ सरकार की बनावट – सुप्रीम कौंसिल – व्यवस्थापक-मण्डल – निचला आगार या लोकसभा – ऊपरी आगार – व्यवस्थापक-मण्डल की कार्यवाही – दोनों आगारों के मतभेद को सुलझाना – कार्यकारिणी – प्रैसीडियम – कौंसिल आफ कमीसार्स अर्थात् लोक प्रबन्धक परिषद् - इसकी बनावट - परिषद् कैसे कार्य करती है – सोवियट रूस में न्याय-मण्डल सुप्रीम कोर्ट – इकाई राज्यों की सरकारें – इकाई राज्यों या उपराज्यों के व्यवस्थापक-मण्डल – उपराज्यों की कार्यकारिणी सरकारें – कम्यूनिस्ट पार्टी - पार्टी का अनुशासन कम्यूनिज्म के उद्देश्य - पार्टी का संगठन –

२०. फ्रांस की सरकार । ४६८

शासन विधान का इतिहास द्वितीय प्रजातन्त्र की स्थापना – तृतीय प्रजातन्त्र – व्यवस्थापक मण्डल – प्रतिनिधि आगार (Chamber of Deputies) – कार्यकारिणी - मन्त्रिपरिषद् संसदात्मक शासन प्रणाली की असफलता फ्रांस के चतुर्थ प्रजातन्त्र का शासन-विधान – शासन-विधान के सिद्धान्त - व्यवस्थापक मण्डल – सदस्यों के अधिकार और उनको प्राप्त विशेष सुविधायें - आगारों या व्यावहारिक रूप – आर्थिक परिषद् – चतुर्थ प्रजातन्त्र की कार्यकारिणी प्रैसीडेंट नियुक्ति करने की शक्ति - प्रैसीडेंट और धारा सभा – प्रैसीडेंट वैधानिक अध्यक्ष है – मंत्रिपरिषद् – प्रधान मंत्री की शक्तियां – मंत्रिपरिषद् और धारा सभा – शासन-विधान का संशोधन – न्यायमण्डल – फ्रांस के न्याय-मण्डल के सिद्धान्त – प्रशासन निर्बन्ध का क्या अर्थ है - फ्रांस में प्रशासन निर्बन्ध का इतिहास – प्रशासन निर्बन्ध और निर्बन्ध शासन में भेद – फ्रांस के न्यायालय – एरोन्डाइज़मेंट के न्यायालय – पुनर्विचारक न्यायालय – एसाइज न्यायालय (Assize Courts) – सर्वोच्च पुनर्विचारक न्यायालय, स्थानीय शासन – क्रांति के पूर्व – कम्यून; उसकी कौंसिल की बनावट – कम्यून कौंसिल की कार्यवाही – केन्टन – एरोन्डाइजमेंट – डिपार्टमेंट – पेरिस – कौंसिल की बनावट फ्रांस में स्थानीय संस्थाओं के वित्त – साधन - सहायक अनुदान – केन्द्रीय नियंत्रण – प्रैसीडेंन्ट और गृहमंत्री का नियंत्रण - प्रिफैक्ट का नियंत्रण –

२१. जापान की सरकार । ५०२

देश का परिचय – शासन विधान का इतिहास – प्राचीन काल – टोकू

गावा – शोगून काल – मीजी युग (The Meiji Era) – जापान में पश्चिमी विचारों का प्रवेश—पश्चिमी विचारों का प्रभाव – सम्राट की शपथ का महत्व—जापानी संस्थाओं पर जर्मनी का प्रभाव—पीयरों का बनना – मंत्रिपरिषद् का संगठन – सन् १८८९ के शासन विधान की विशेषतायें – लिखित प्रकार कठोरता – (Rigidity) – प्रचलित प्रथा का प्रभाव सबल राजतंत्र—केन्द्रित पद्धति—पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं का अपनाना – जेनरो—सन् १८९९ के शासन-विधान की उपक्रमा—शासन-विधान सम्राट का उपहार – सरकार की अध्यादेश निकालने की शक्ति—राजा की कार्यकारी शक्तियां—प्रजा के अधिकार और कर्त्तव्य—मन्त्रिपरिषद्—डाइट—प्रिवी कौंसिल—लार्ड प्रवी-सील—व्यवस्थापक मण्डल—द्विआगारिक प्रणाली—व्यवस्थापक मंडल की शक्ति—आय व्यय पर नियंत्रण – राजनीतिक दल – न्यायमण्डल—न्यायालय के प्रकार – पञ्चप्रणाली—सैनिक न्यायालय—स्थानीय शासन – प्रिफैक्चर – बड़े नगर—ग्राम और छोटे नगर—केन्द्रीय नियंत्रण सन् १९४६ का शासन-विधान—नया विधान कैसे बना—विधान में जनता के अधिकार—व्यवस्थापक मंडल—द्विआगारिक मण्डल—डाइट का अधिवेशन—प्रतिनिधि आगार का विलयन—कार्यपद्धति—निर्बन्ध कैसे बनते हैं—विधान संशोधन—कार्यकारिणी—सम्राट—मंत्रिपरिषद्—निर्बन्ध को कार्यान्वित करना—न्याय मण्डल—सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति – स्थानीय शासन – आर्थिक प्रावधान—

———

प्रमुख देशों की शासन प्रणालियां

अध्याय १

वैधानिक सरकार

(CONSTITUTIONAL GOVERNMENT)

'यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आदर्श शासनपद्धति वह नहीं जो सब सभ्य राष्ट्रों में वाञ्छनीय और साध्य हो पर वह है जो जिन परिस्थितियों में वाञ्छनीय और साध्य समझी जाती है उनमें उससे अधिक से अधिक निकटवर्ती व दूरवर्ती लाभ होता हो। एक पूर्ण प्रजातन्त्र सरकार ही ऐसी सत्ता है जो आदर्श सत्ता कहलाने की अधिकारी है'—(जे० एस० मिल)

राज्य समाज का सबसे उन्नत रूप है—मनुष्य ने अपने जीवन के विभिन्न स्वरूपों को तरह तरह के समुदाय बनाकर व्यक्त किया है, पर समाज का राजनैतिक संगठन करने में उसने मानव चतुरता की पराकाष्ठा कर दी है। इस प्रक्रिया में बहुत से प्रयोग किये गये। आरम्भ में पर्यटनशील टोलियों से लेकर पशु चराने वाली जातियाँ, कुटुम्ब समुदाय और अन्त में आधुनिक राजनैतिक समाज का विकास हुआ। ऐसे सामाजिक जीवन में ही मनुष्य ने अपना पूर्ण विकास पाया है। और साथ साथ उन लोगों का हित साधन किया है जिनसे उसका कौटुम्बिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सम्बन्ध है।

ऐसे ही समाज में, जिसको हम राज्य कह कर पुकारते हैं, सभ्यता का विकास, विज्ञान की वृद्धि, कला की प्रगति, सिद्धान्तों का प्रतिपादन व व्याख्या और प्रगतिशील मानव का निर्माण सम्भव है।

मानव जाति अपने इतिहास के बहुत से उतार-चढ़ावों के पश्चात् अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुँची है। मानवजाति को कई घातों और प्रतिघातों के बीच से होकर निकलना पड़ा है। सभ्यता प्राकृतिक-मनुष्य का वह भार है जो उसने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये थोड़ा थोड़ा करके लाद लिया है। इसीलिये संस्कृति मानव-इतिहास का विस्तृत लेख है।

राज्य का ऐतिहासिक आधार:—मानव समुदायों का अध्ययन करने में इसलिये, यह आवश्यक है कि उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर बराबर दृष्टि रखी जाय। पर ऐतिहासिक घटनाओं की जटिलता ऐसी है कि किसी मानव समाज या जाति की संस्कृति को समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि वह समाज किस किस विशिष्ट अवस्थाओं व परिस्थितियों में रहा है। इसलिये किसी समाज के आचरण को केवल मनोवैज्ञानिक आधार पर समझ कर उसकी वर्तमान संस्कृति के रूप को प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता।

व्यक्ति में अपनी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की क्या मानसिक प्रतिक्रिया होती है, इसका चाहे हमको कितना ही अधिक ज्ञान क्यों न हो जाये पर केवल मनोविज्ञान की सहायता से हम किसी समाज की संस्कृति का सच्चा रुप स्थिर करने में सफल नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त विश्व में जो वातावरण आदि की विविधता है, बहुत कुछ उसके ही कारण मानव संस्थाओं, उनके मूलतत्वों, प्रकारों और सिद्धान्तों में भेद है।

विधान ही सामाजिक संगठन की रूप-रेखा का द्योतक है—मानव सस्थाओं का जो सब से अधिक व्यापक गुण है वह यह है कि व्यक्तियों और इन संस्थाओं के बीच शक्ति-मूलक सम्बन्ध रहता है। इस सम्बन्ध को विधान द्वारा स्पष्ट किया जाता है। विधान में सस्था के आधार भूत सिद्धान्तों का ही समावेश नहीं होता पर उसमें राजनैतिक संगठन का रूपरेखा भी निश्चित कर दी जाती है अर्थात उसमें यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि सरकार किस प्रकार बनाई जायगी और उसका कार्य-क्रम किस प्रकार का होगा। मानव इतिहास के भिन्न-भिन्न विकास युगों में विभिन्न शासन पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं पुरानी और आजकल की शासन पद्धति का सब से प्रमुख भेद यह है कि जहाँ प्राचीन काल में लोगों की कुल सख्या का एक बहुत थोड़ा अंश राज्य-कार्य में सम्मिलित होता था वहाँ अब प्रवृत्ति यह है कि राज्य कार्य में सम्मिलित होने का अधिकार प्रत्येक ऐसे पुरुष या स्त्री को हो, जो परिपक्व बुद्धि रखता हो और प्रत्येक समूह या जाति का हो, अर्थात् जो राज्य-निष्ठ हो।

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक राज्य अपने लिये ऐसे विधान की रचना करता है जो उसकी भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक

परिस्थितियों के अनुकूल हो। ये परिस्थितियाँ सब जगह एक सी नहीं हैं इसलिये सब राष्ट्रों के विधान भी एक से नहीं है। इसी विभिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न शासन प्रणालियाँ संसार में प्रचलित हैं। किसी भी मानव समूह की समृद्धि अधिकतर उसके राजनैतिक संघठन और शासन पद्धति पर निर्भर है। आचार्य बर्क ने कहा था कि "सरकार मानव बुद्धि का वह आविष्कार है जिसको उसने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बनाया है, मनुष्यों का यह नैसर्गिकि अधिकार है कि यह बुद्धि या अनुभव-जन्य ज्ञान उसकी इच्छाओं की पूर्ति होने की उचित व्यवस्था करे।" इस कथन में बुद्ध या अनुभव-जन्य ज्ञान ये शब्द महत्व से भरे हुए हैं। यदि कोई सरकार बुद्धिमानों के अनुभवजन्य ज्ञान पर आधारित नहीं है और व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है तो वह सरकार एक कौड़ी की भी नहीं। कजिन (Cousin) का यह कथन सत्य है कि व्यक्तिओं पर शासन उनकी सेवा करके ही किया जा सकता हैं, इस नियम में कोई अपवाद नहीं मिलता। शासन करना और सेवा करना ये दोनों विरोधी बातें मालूम होती हैं पर निस्सन्देह ये शासन की आधुनिक कल्पना की द्योतक हैं, इस कल्पना को तब तक कार्यरूप में परिणत करना कठिन है जब तक राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध को, उनकी निर्विरोध एकता की नींव पर, दृढ़ता से व स्थायी रूप में नहीं स्थिर किया जाता। मानव सुख के लिये केवल यह पर्याप्त नहीं कि किसी विशेष समय पर ऐसी सरकार है जो सब प्रकार से अच्छी है। उसके लिये इस बात की आवश्यकता है कि सरकार का संघठन किस प्रकार होता है और शासन पद्धति कैसी है। हम आचार्य पोप के इस कथन का आजकल बिल्कुल आदर नहीं कर सकते कि मूर्ख ही शासन पद्धति के बारे में लड़ते भिड़ते हैं, जो सरकार अच्छा शासन करती है वही अच्छी है। सरकार में कौन कौन व्यक्ति शासन सूत्र को हाथ में लिये हुये हैं और शासन प्रणाली कैसी है? इन दोनों का उतना ही महत्व है जितना कि उनके शासन प्रबन्ध की अच्छाई या बुराई। इससे स्पष्ट है कि राज्य में ऐसा संगठन होना चाहिये, जिसमें शासितों के ही हाथ में राज्यशक्ति हो और वे अपनी बुद्धि के अनुसार उस शक्ति का संचालन करने में स्वतंत्र हों। आत्म अनुशासन से ही जीवन सुधरता है और राज्य का उद्देश्य जीवन को सुधार कर उन्नत करना है। आत्म-अनुशासन राज्य संगठन में तभी होगा जब सरकार लोक प्रतिनिधियों की होगी और वह लोकसम्मति से ही शासन करेगी अर्थात् जब प्रजा का सरकार पर पूर्ण नियंत्रण होगा। लोकोन्मुखी शासन में यह आवश्यक है

कि राज्य शक्ति को लोकहित की दृष्टि से मर्यादित कर दिया जाय और इस पर नियंत्रण रखा जाय। इसी उद्देश्य से आधुनिक सरकार किसी विधान से मर्यादित रहती है।

विधान की परिभाषा—प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ब्राइस ने कहा है कि किसी राज्य या राष्ट्र का विधान वे नियम या निर्बन्ध हैं जो उसकी सरकार का रूप निश्चित करते हैं और इस सरकार के नागरिकों के प्रति क्या कर्तव्य हैं और क्या अधिकार हैं इनका निर्णय करते हैं। पैले (Paley) के अनुसार किसी देश के विधान से उन निर्बन्धों का निर्देश है जिनका सम्बन्ध, देश के व्यवस्थापक मण्डल के नाम-रूप, व्यवस्थापक-मण्डल के भिन्न-भिन्न अवयवों के पारस्परिक संबन्ध और न्यायालायों के बनने व उनके अधिकार क्षेत्र से है। विधान राज्य निर्बन्धों का ही एक प्रमुख विभाग है जिसको दूसरे निर्बन्धों से इसी आधार पर प्रथक किया जा सकता है कि वह राज्य संगठन के एक प्रमुख व महत्वशाली विषय से सम्बन्धित है। यह परिभाषा केवल उन वैधानिक निर्बन्धों की विस्तृत व्याख्या करती है जिनमें राजनीतिज्ञ डायसी के अनुसार उन सब नियमों का समावेश होता है जिनसे राज्यशक्ति के सूत्रधारों का परिचय और उनके पारस्परिक सम्बन्धों का नियमन होता है, या जो उस रीति का निर्णय करते हैं जिससे राज्यसत्ता या सत्ताधारी अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं। गिलक्रिस्ट (Gilchrist) ने उन लिखित या अलिखित नियमों को विधान कहा है जिनसे राज्यसत्ता के संगठन की रूप-रेखा निश्चित होती है या जो सरकार के विभिन्न अङ्गों में राज्यशक्ति-वितरण को तथा उन सिद्धान्तों को निश्चित करते हैं जिनके अनुसार इस राज्यशक्ति का संचालन हो। यह स्पष्ट है कि विधान में हमें किसी समाज की उन राजनैतिक संस्थाओं का चित्र देखने को मिलता है जिनमें रह कर उस समाज के व्यक्ति अपना जीवन बिताते हैं। इस चित्र में केवल मोटा आकार ही दिखाई देता है, उसके भीतर भरे हुए विविध रंग दिखाई नहीं पड़ते। इन रंगों को समझने के लिये हमें कुछ और काम करना पड़ेगा। हमें उस राष्ट्र की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन करना पड़ेगा, उसकी संस्कृति की परम्परा जाननी होगी और उसके प्राचीन इतिहास की पृष्ठ भूमि पर अपनी दृष्टि दौड़ानी पड़ेगी।

विधान की आवश्यकता—मानव इतिहास के लम्बे समय में कई युग हुये हैं जिनकी अपनी अपनी प्रथक विशेषतायें रही हैं। सुदूर अतीत

काल में जिसका धुंधला ज्ञान अब हमें पुरातत्वज्ञों या पुरावशेषज्ञों के आविष्कारों से होता जारहा है, हमें कठिनता से कोई ऐसे नियम मिलते हैं जो मनुष्य की प्रतिभा या कर्तृत्व शक्ति के परिचायक हों। कदाचित् वह समय ऐसा था जब डंडे का ज़ोर था और मात्स्यन्याय की प्रबलता थी। अर्थात् जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है उसी प्रकार एक व्यक्ति दूसरे को कुचल कर अपना हित साधन करता होगा। ऐसी अवस्था में जो दूसरे से अधिक शक्तिशाली होगा वही अपनी जीवन-रक्षा कर सकता होगा। जीव विज्ञान का वह सिद्धान्त, जिसके अनुसार योग्यतम जीव ही की जीवन संघर्ष में जीत होती है, उस समय निस्सन्देह व्यावहारिक रूप में दिखाई पड़ता होगा। उस समय में सिद्धान्तों व नियमों का शासन न होता था, पुरुष विशेष ही शासन करता था। उसकी आज्ञा का पालन इसलिये किया जाता था क्योंकि वह अपने बल प्रयोग द्वारा दूसरों को अपने वश में कर अपनी इच्छा के अनुसार उनसे काम करा सकता था और अपने नियन्त्रण में विभिन्न वर्गों या व्यक्ति-समूहों को रखने में समर्थ था। पर जैसे जैसे मानव बुद्धि का विकास हुआ और बर्बर मनुष्य सभ्य हुआ, शताब्दियों के पश्चात् जब देह-बल के स्थान पर बुद्धि-बल व विवेक की प्रधानता हुई, तब एक नये युग का श्री गणेश हुआ और मानव ने उस युग में पदार्पण किया। इस नये युग में प्राचीन क्रम बिलकुल उल्टा हो गया और पुरुष विशेष के स्थान पर नियमों का शासन होने लगा। राजा के साथ साथ समाज के दूसरे व्यक्ति भी शासन में भाग लेने लगे। तभी वैधानिक सरकार की भी उत्पत्ति हुई और शासन कार्य व उसकी पद्धति बुद्धि गम्य होने लगी।

विधान का इतिहास—सबसे प्रथम यूनानी दार्शनिकों ने इस ओर ध्यान दिया कि राज्य का रूप क्या होना चाहिये। उन्होंने राज्यतन्त्र के मूलतत्त्वों पर विचार किया और उन तत्त्वों के अनुसार राज्य का संगठन कैसा होना चाहिये, किन व्यक्तियों के हाथ में राज्य शक्ति रहनी चाहिये और उनको उस शक्ति का किस उद्देश्य से प्रयोग करना चाहिये, इन सब बातों की विस्तृत विवेचना की। प्लैटो और विशेषकर अरस्तू ने विभिन्न राज्य संस्थाओं का वर्गीकरण किया और उस वर्गीकरण के आधार भूत सिद्धान्तों को बतला कर उन राज्य संगठनों की आलोचना की। उन्होंने यह स्थिर कियाकि राज्य में किन नियमों की आवश्यकता होती है। उनके पश्चात् पन्द्रह शताब्दियों तक बराबर यह प्रयत्न होता रहा कि राज्य को एक सुसंगठित संस्था किस प्रकार बनाया जाय जिसमें रहने वाले मनुष्यों में सामाजिक और सांस्कृतिक

विरोधाभाव हो और जो सद्भाव और प्रेम पूर्वक मिल कर रह सके। ऐसे राज्य संगठन का विकास धीरे धीरे हुआ। जागीरदारी प्रथा के समाप्त होने पर एक नई विचार-धारा का आविर्भाव हुआ, जिसने निरंकुश शासन की जड़ हिला दी और राज्य के प्रति जो प्राचीन मनोवृत्ति चली आ रही थी उसमें क्रान्तिकारी हलचल और परिवर्तन कर दिया। उस हलचल के फल-स्वरूप राजनैतिक जीवन को नये ज्ञात व ज्ञातव्य सिद्धान्तों के आधार पर सुदृढ़ बनाने में बड़ा प्रोत्साहन मिला।

यूरोप में इंगलैंड ऐसा देश था जहां सब से प्रथम प्रजा के अधिकारों की प्रधानता को मान्य कराने का प्रयास किया गया और इस विचार को दृढ़ बनाया गया कि राज्य में प्रजा का ही अधिक महत्व है और राज्य-कार्य लोक सम्मति से ही चल सकता है और चलना चाहिये। इसलिये वैधानिक शासन पद्धति का जन्म पहिले पहिल इँगलैंड में हुआ। उसके पश्चात् इसका प्रचार यूरोप के दूसरे देशों में, अमरीका में और विश्व के दूसरे राष्ट्रों में हुआ और यह पद्धति सर्वत्र अपना ली गयी।

वैधानिक सरकार इसलिये ऐसी शासन पद्धति है जिसमें नियमों के अनुसार शासन कार्य होता है। शासकों की सनक, व उनकी स्वेच्छाचारिता की प्रभुता नहीं होती वरन प्रजा के योग क्षेम का विचार ही राजनीति की रूप रेखा निश्चित करता है। इतना ही नहीं, प्रजा थोड़ा या बहुत राजकाज में सम्मिलित होती है और राजनीति, शासन नीति तथा शासकों पर अपना नियंत्रण रखती है।

इँगलैंड में विधान का विकास—इँगलैंड में 'कन्स्टीट्यूशन' या विधान शब्द का प्रयोग सबसे प्रथम उन प्राचीन प्रचलित रीति-रिवाजों के लिये किया गया था जिनकी वहाँ के तत्कालीन राजा ने अपनी परिषद की सम्मति से घोषणा की थी। हैनरी द्वितीय ने सन् ११६४ ई० में ऐसे नियमों का प्रचार किया जिनसे उस समय की लौकिक और धार्मिक न्याय संस्थाओं का पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित हुआ। ये नियम क्लेरन्डन के कन्स्टीट्यूशन्स (Constitutions of Clarendon) के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये कोई नये नियम न थे जिनका नये सिरे से निर्माण किया गया था। वे तो केवल पुरानी प्रचलित प्रथायें थीं जिनको लिखित रूप में ले आया गया और यथाविधि घोषित कर दिया गया था। यही बात उन प्रविधानों के सम्बन्ध में भी लागू होती है जिनकी घोषणा १२१५ ई० में जोन नामक राजा से उसके जागीरदारों

ने करवाली थी। मैग्ना कार्टा (Magna Carta) में ऐसी ही मौलिक या प्राथमिक रीति रिवाजों का विस्तृत वर्णन था। इस प्रलेख में केवल उन रीति-रिवाजों की परिभाषा कर दी गई थी। कोई नये नियम या निर्बन्ध प्रतिपादित नहीं किये थे। इनको भी क्लेरेन्डन के कन्स्टीट्यूशन्स (Constitutions of Clarendon) के समान रनीमीड (Runnymede) के कन्स्टीट्यूशन्स (Constitutions of Runnymede) कह सकते हैं। दोनों में कोई विशेष भेद नहीं है। पर इनका महत्व इस लिये माना जाता है कि उनके द्वारा राजा ने जो रीति-रिवाजों के सामने आत्म समर्पण किया उससे वैधानिक सरकार का यूरोप में बीजारोपण हुआ। यह सिद्धान्त मान लिया गया कि राज्यतंत्र का आधार लोकसम्मति है। परन्तु आने वाली शताब्दियों में जो शासन नीति इँगलैंड में मान्य हुई उसके आधार भूत सब सिद्धान्त इन विधानों और अधिकार पत्रों में वर्णित नहीं हैं। समय समय पर इन प्रलेखों में परिभाषित रीति-रिवाजों को दूसरे विधानों द्वारा स्वीकृत किया गया और उनमें नये सिद्धान्तों को जोड़ दिया गया। ये दूसरे विधान, आक्सफॉर्ड के प्रविधान (Provisions of Oxford) सन् १२५८ ई०, मार्टमेन का विधान (Statute of Mortmain) सन् १२७८ ई०, विन्चेस्टर का विधान (Statute of Winchester) सन् १२८५ ई० आदि के नाम से प्रसिद्ध है। इनके पश्चात् सन् १६४७ ई० में क्रामवेल के सिपाहियों ने एक लोक-संविदा (Agreement of the People) बनाया और १६५३ ई० में क्रौमवैल ने एक शासन विलेख (Instrument of Government) घोषित किया। यह अन्तिम विलेख एक विधिवत् लिखा हुआ सम्पूर्ण विधान था। इसमें विधान के अन्तर्गत जो प्रमुख बातें आती हैं उनका विस्तृत वर्णन था और व्यवस्थापक मण्डल तथा कार्यकारिणी के अधिकारों का उल्लेख कर दिया गया था। इस विधान के द्वारा एक अगरेज़ी प्रजातंत्र राज्य की स्थापना करने का विचार था, जिसके व्यवस्थापक अधिकार एक व्यवस्थापिका सभा को और एक आजीवन राष्ट्रपति को सुपुर्द थे। पर यह विधान पार्लियामेंट ने कभी स्वीकार नहीं किया और क्रौमवैल की मृत्यु के पश्चात् जब फिर राजतंत्र की स्थापना हुई तब सम्राट ने केवल यही घोषणा की कि इंगलैंड का शासन फिर से उन्हीं मौलिक रीति-रिवाजों के आधार पर होगा जो प्राचीन काल में राज्य में प्रचलित थीं। इस प्रकार लिखित और निर्मित शासन विधान के अनुभव का अन्त हुआ जिसका इंगलैंड के इतिहास में दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। यह सन् १६५३ ई० का विधान यूरोप के लिखित विधानों में

सबसे प्राचीन माना जाता है। इसके पूर्व इंगलैंड की प्रजा को लिखित शासन विधान का अनुभव न था। इसीलिये तत्कालीन परिस्थितियों में उसका अन्त भी तुरन्त ही होगया और उसकी जड़ जमने न पायी।

अमरीका में—स्वतन्त्रता की घोषणा के बाद जब अमरीकी प्रदेश यह निश्चय करने बैठे कि उनके राष्ट्र का विधान कैसा हो और यह निर्णय किया कि विधान लिखित हो, उस समय उनके मन में उसी १६५३ के शासन विलेख का चित्र खिंचा हुआ था जो क्रामवेल ने घोषित किया था। उनकी लिखित विधान की कल्पना इसी पर आधारित थी। विधान या "कन्स्टीट्यूशन" शब्द का प्रयोग वे सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही अपने मौलिक निर्बन्धों के लिये करते चले आरहे थे, विशेष कर उन निर्बन्धों के लिये जिनसे उन का शासन संगठन प्रतिबन्धित था। इसी नाम का प्रयोग उन्होंने स्वतन्त्रता की घोषणा के पश्चात उस नये शासन विधान के लिये किया जो उन्होंने नये राष्ट्र के लिये अपनाया। इस प्रकार लिखित विधान का जन्म सब से प्रथम अमरीका में हुआ। पर विधान या 'कन्स्टीट्यूशन' शब्द का जन्म-स्थान इंगलैंड में ही है। अमरीका के १३ प्रदेशों ने उसे वहीं से लिया और उसको अधिक निश्चित रूप देकर अपनाया। अमरीका की देखा देखी और राष्ट्रों ने भी उस शब्द का ज्यों का त्यों प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। दक्षिणी कैरोलीना प्रदेश का शासन-विधान लॉक (Locke) नामक राजनीतिज्ञ ने लिखा था और रोजर विलियम (Roger William) ने रोड आइलैंड (Rhode Island) नामक उपराष्ट्र का विधान बनाया था।

योरुप में—अमरीका के पश्चात् लिखित विधान बनाने का दूसरा प्रयत्न फ्राँस में किया गया। फ्राँस राज्य क्रान्ति के समय १७९१ ई० में एक लिखित शासन विधान तैयार किया गया जो एक वर्ष से कम ही चालू रह सका। उसके समाप्त होने के बाद सन १७९२ से सन् १८१५ ई० तक कई लिखित विधान तैयार हुए और सब समाप्त हो गये। जर्मनी में भी लिखित विधान तैयार हुए और सब समाप्त हो गये। जर्मनी में भी लिखित विधान का प्रचार हुआ और शायद इस प्रणाली को वहाँ फ्राँस की राज्यक्रान्ति से प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। सन् १८१५ से लेकर सन् १८३० ई० तक जर्मनी के छोटे छोटे कुछ उपराष्ट्रों ने लिखित विधान पद्धति अपनाई थी। पर उसका प्रचार वहाँ आगे नहीं बढ़ा। सन् १८३० ई० में जब बेलजियम का नया राष्ट्र स्थापित हुआ तो वहाँ लिखित विधान का

निर्माण हुआ। स्पेन के आधीन दक्षिणी अमरीका में जो उपनिवेश थे उन्होंने भी स्वतन्त्र होने पर वैधानिक शासन पद्धति अपनाई और लिखित विधान तैयार किये। यूरोप में और भी कई राज्यों में लिखित-विधान की प्रणाली को सन् १८४८ ई० की क्रान्ति से अधिक प्रोत्साहन मिला। प्रशिया और इटैली में तभी से लिखित विधान की प्रथा आरम्भ हुई। सन् १८७० ई० के लगभग जो राष्ट्रीय एकता की भावना जाग्रत हुई और जिसके फलस्वरूप जर्मनी के छोटे छोटे राज्यों का एक राष्ट्र में एकीकरण हुआ, उससे भी कई लिखित विधानों का जन्म हुआ। इनमें आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मन साम्राज्य के लिखित विधान उल्लेखनीय हैं।

सन् १८८९ में जापान में एक लिखित शासन विधान की घोषणा हुई और जापान राज्य भी वैधानिक राज्यों में गिना जाने लगा। पिछले कुछ ही वर्षों में टर्की, ईरान, चीन, मिस्र और ईराक ने लिखित विधान बनाये हैं। सन् १९३२ ई० में स्याम में भी लिखित विधान बना।

इस प्रकार लिखित विधान बनाने की जिस प्रथा का अमरीका में सन् १७७६ में सूत्रपात हुआ वह बढ़ते बढ़ते सारे संसार में फैल गई। संयुक्त राष्ट्र अमरीका का शासन विधान वहाँ के कुछ उपराष्ट्रों के विधानों को छोड़कर संसार में सबसे पुराना लिखित विधान है और यद्यपि सन् १७८९ से लेकर जब उसको पहिले पहिल कार्यान्वित किया गया अब तक १६० वर्ष का समय बीत चुका है पर अब भी वह वैसा ही कार्यान्वित हो रहा है। इस लम्बे समय में उसमें केवल थोड़े से संशोधन ही आवश्यक समझे गये हैं।

विधानों का वर्गीकरण—अलिखित विधान से साधारणतया यह भान होता है कि वह विधान अस्पष्ट और अनिश्चित है। पर अस्पष्ट या अनिश्चित होना अलिखित विधानों का कोई आवश्यक गुण नहीं है। उदाहरण के लिये इंगलैण्ड का विधान यद्यपि लिखित विधानों की श्रेणी में नहीं आता पर उसके प्रतिबन्ध किन्हीं बातों में लिखित विधानों से अधिक निश्चित हैं। भाषा में चाहे वह अनिश्चित हो जायें पर नागरिकों के मन में वह स्पष्टतया लिखित है। इसलिये लिखित और अलिखित विधानों का विभेद अधिक महत्त्व का नहीं है। यदि उस विभेद को विकसित या बनावटी विधान

कर प्रकट किया जाय तो अधिक उपयुक्त रहेगा। इंगलैण्ड के जैसे विकसित विधान की जड़ प्राचीन प्रचलित रीति रिवाजों में होती है और धीरे धीरे उसका विकास होता रहता है। इसके विपरीत बनावटी विधान किसी एक समय सम्पूर्ण अङ्गों सहित किसी शासक या वैधानिक सभा के द्वारा बन कर निकलता है। इंगलैण्ड और हँगरी का शासन-विधान विकसित विधानों की श्रेणी में है। पर यह भेद भी प्रायः स्पष्ट नहीं होता। विकसित विधान में भी कुछ अङ्ग बनावटी विधान के समान होते हैं। इंगलैण्ड में मैग्नाकार्टा (१२१५) और हँगरी में गोल्डेन बुल (Golden Bull) (१२२२) बनावटी व्यवस्थायें थी जो इन दोनों देशों के अपने अपने विधान की अङ्ग समझी जाती हैं। इसी प्रकार बनावटी विधान भी कोई बिलकुल नई वस्तु नहीं होती है। कोई भी बनावटी विधान ऐसा नहीं है जिसके नियमों को एक निर्दिष्ट समय में किसी व्यक्तिसमूह या सभा ने केवल तात्विक और वैज्ञानिक दृष्टि से बिलकुल नये ढंग से उत्पन्न किया हो। सयुंक्त-राष्ट्र अमरीका का लिखित विधान भी बनना सम्भव न होता यदि पहिले ही से शासन सम्बन्धी कुछ प्रथायें प्रचलित और मान्य न होतीं। इसके अतिरिक्त बनावटी विधान जिस दिन बन कर तैयार होता है उसी दिन से उसमें विकास भी होने लगता है। कुछ समय के पश्चात् विधान के मूल तत्वों के अनुकूल ही कुछ रूढ़ियाँ और परम्पराएं उत्पन्न हो जाती हैं जो उसके विकास मे योग देती हैं। इसलिये कोई भी विधान न पूर्ण रूप से विकसित होता है न बनावटी। उसमें दोनों प्रकार के विधानों के गुण पाये जाते हैं।

विधानों का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया जाता है कि विधान में परिवर्तन सुगमता से हो सकता है या कठिनता से। जिस विधान में संशोधन सीधे सादे ढंग से सुगमता से थोड़े समय के भीतर हो सकता है उसे लचीला (Flexible) विधान कहते हैं। इसके विपरीत जिस विधान में परिवर्तन करने के लिये ऐसा पेचीदा ढंग अपनाना पड़ता है कि परिवर्तन करना कठिन हो और उसमें अधिक समय और कष्ट उठाना पड़े उसे क्लिष्ट (Rigid) विधान कहते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका का विधान क्लिष्ट विधान है, उसमें परिवर्तन करने का क्रम बड़ा पेचीदा और लम्बा है और संशोधन करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इंगलैण्ड का विधान और इटैली व हंगरी के विधानों में उसी रीति से परिवर्तन हो जाता है जिस रीति से साधारण

कानून बनते हैं। इन देशों में विधान को बदलना उतना ही सहज है जितना कोई नया कानून बनाना या पुराने कानून में संशोधन करना सहज है। इन दोनों प्रकार के विधानों के बीच में एक ऐसे प्रकार के विधान भी हैं जिनमें राष्ट्र की व्यवस्थापिका सभा को संशोधन करने का अधिकार है पर ऐसा करने के लिये एक विशेष शैली अपनाई जाती है जो साधारण कानून बनाने वाली शैली से अधिक दुष्कर होती है। इस श्रेणी में फ्रांस, जर्मनी और आस्ट्रिया के विधान आते हैं।

यद्यपि लचीले और क्लिष्ट विधानों का भेद महत्वशाली है पर आवश्यकता से अधिक महत्व उसको नहीं दिया जा सकता। कोई भी विधान चाहे कितना ही क्लिष्ट क्यों न हो पर फिर भी परिवर्तन हो सकता है और लचीले से लचीले विधान को परिवर्तित करने में भी कुछ न कुछ रुकावटें होती हैं, संयुक्त-राष्ट्र अमरीका के विधान में भी परिवर्तन हो चुके हैं। यह कहा जाता है कि अमरीका के एक राष्ट्रपति ने एक समय यह कहा था कि अमरीका का शासन-विधान किसी पुरुष के छोटे कोट के समान है, जिसको आगे से कस कर बटन लगाया जाय तो पीठ पर से फट जायगा। अमरीका के विधान का ऐसा चित्रण उचित प्रतीत नहीं होता। केवल विधिवत् संशोधन ही विधान के परिवर्तन करने का अकेला ढंग नहीं है। उसको समयानुकूल और स्थिति के उपयुक्त बनाने के लिये बहुत सी शैलियाँ हैं। विधिवत् संशोधन तो उनमें से केवल एक ही है। विधान की धाराओं की, उस विधान के मूल तत्वों और मूल भावनाओं के अनुकूल ही न्याय संस्था भी ऐसी व्याख्या किया करती है, जो यदि न की जाय तो राज्य की स्थिति के बदलने पर विधान को भी विधिवत् बदलने की आवश्यकता पड़ जाय। विधान राज्य संगठन के चित्र की मोटी मोटी रेखाओं को निश्चित कर देता है। दिन प्रतिदिन की समस्याओं का सामना करने के लिये वैधानिक ढाँचे के अन्तर्गत बहुत-सी व्यावहारिक बातें करनी पड़ती हैं। इनका आधार परम्परा और रूढ़ियाँ रहती हैं। यह रूढ़ियाँ और परम्पराएँ कभी-कभी विधिवत् विधान-संशोधन के स्थान की पूर्ति कर देती हैं। अर्थात् परम्परा के आधार पर बहुत सी बातें कर दी जाती हैं। यद्यपि विधान में उनके सम्बन्ध में कोई प्रावधान उल्लिखित नहीं होता। सन् १७८९ से लेकर संयुक्त राष्ट्र अमरीका के विधान में केवल २१ विधिवत् संशोधन हुए हैं, पर अनेकों बार न्यायालय की व्याख्या द्वारा उसके प्रावधानों के अभिप्राय में परिवर्तन कर दिया गया है। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह इंगलैंड के विधान से अधिक क्लिष्ट नहीं है। किसी भी

शक्तिशाली और प्रगतिशील राष्ट्र को क्लिष्ट विधान वाञ्छनीय नहीं होता। यदि विधान का विधिवत् परिवर्तन दुसाध्य होता है तो वह राष्ट्र अपने विधान को दूसरे तरीकों से बदलने का कोई न कोई मार्ग ढूँढ लेता है। ऐसी ही स्थिति अमरीका में थी। जब विधान को बदलना सुकर न समझा गया तो वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय ने सहायता की और समय-समय पर जब विधान सम्बन्धी प्रश्न उसके सामने प्रस्तुत किये गये तो उसने विधान की धाराओं का ऐसा व्यापक अर्थ निकाला कि विधान में परिवर्तन करने की आवश्यकता ही न रही। मूल प्रावधानों के अन्तर्गत ही उन प्रश्नों का लोक-हित के अनुकूल निबटारा कर दिया गया। सरकार को विधान में संशोधन करने के लिये क़दम न उठाना पड़ता। विधान का क्लिष्ट अथवा लचीला होना, जिस लोक समाज का वह विधान है, उसकी प्रकृति पर निर्भर रहता है। जिस समाज में पुरानी परिपाटी पर चलने की और परिवर्तन विरोधी प्रवृत्ति होती है, वह अपने विधान में बड़े सोच विचार के पश्चात् धीमी गति से परिवर्तन करता है चाहे वह विधान कितना ही लचीला हो और उसका परिवर्तन कितना ही सुगम हो।

लिखित विधान केवल एक ढाँचा है—हम यह पहिले ही कह आये हैं कि शासन-विधान सरकार के संघटन व उसके कर्तव्यों आदि की रूप रेखा भर खींच देता है। इसमें हमें एक स्थान पर वे सब नियम मिल सकते हैं जिनके अन्तर्गत राज्यतन्त्र का कार्यरूप होता है। लिखित विधान वाले राष्ट्र के नागरिक यदि इन नियमों के अनुसार अपना राजकीय जीवन ज्यों का त्यों नियमित करें तब तो हमें उस राष्ट्र के विधान के देखने से ही वहाँ के नागरिकों के राजकीय जीवन की वास्तविकता का ज्ञान हो सकता है। पर प्रायः बहुत दिनों तक कोई भी समाज अपने शासन विधान के नियमों से परिमित नहीं रह पाता और वैधानिक नियमों का व्यवहार में पालन नहीं होता। ऐसी स्थिति में राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी को केवल विधान के अध्ययन से ही उस राष्ट्र के राजकीय जीवन का वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता और उसके लिये यह आवश्यक हो जायगा कि विधान के अध्ययन के अतिरिक्त वह शासन-कार्य के व्यावहारिक रूप का निरीक्षण करे। उदाहरण के लिये दलबन्दी को लीजिये, न अमरीका के शासन विधान में दलबन्दी का कोई वर्णन है न इंगलैंड में ही दलबन्दी कोई मान्य संस्था है। पर यह सभी जानते हैं कि इन दोनों राष्ट्रों के राजकीय जीवन व शासन में दलबन्दी कितने महत्व की चीज़ है। इसलिये शासन पद्धतियों का अध्ययन करते समय केवल

विधान की धाराओं का ज्ञान ही आवश्यक नहीं परन्तु उससे अधिक आवश्यक यह है कि वास्तविक राजकीय जीवन के विकास का अध्ययन किया जावे। इसके लिये यह जानना पड़ेगा कि विविध लोक समाजों की राजनैतिक प्रवृत्ति कैसी है और उनके व्यवहार में उसका क्या प्रभाव पड़ता है। केवल इससे काम न चलेगा कि यह जानलें कि उनका राजकीय संघठन किन नियमों के आधार पर खड़ा हुआ है।

परम क्लिष्टता अवांच्छनीय है—लिखित विधान केवल ढांचा होते हुये भी उसको बहुत क्लिष्ट बनाना उचित नहीं होता। किसी भी शासन विधान को सर्वांग रूप में आदर्श नहीं बनाया जा सकता कि उसमें कभी संशोधन की आवश्यकता ही न हो। मानव जाति अपनी प्रकृति से ही अस्थिर है और गतिशील है। समय की चाल से परिस्थितियों में परिवर्तन होता रहता है और समाज की आवश्यकतायें बदलती रहती हैं। यदि विधान को इन आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बनाना है तो यह आवश्यक है कि उसमें समय समय पर स्थिति के अनुसार संशोधन हों। यदि ऐसे संशोधन का पर्याप्त आयोजन न किया तो दो बात हो सकती हैं। या तो विधान समाज की तत्कालीन राजकीय परिस्थितियों से असंगत हो जायगा अथवा इसके नियमों की खींचातानी कर ऐसा अर्थ लगाया जायगा कि व्यवहारिक राजकीय संघठन का चित्र वैधानिक चित्र से भिन्न दिखाई पड़ने लगेगा। अमरीकन राष्ट्रपति के वक्तव्य का जो उल्लेख हमने ऊपर किया है उसका अभिप्राय यही था। उन्होंने अमरीकन शासन-विधान की जो कसे हुये कोट से उपमा दी उसका खुलासा ऊपर की व्याख्या से स्पष्ट हो जायगा।

यदि लिखित विधान के पक्ष में और विपक्ष में कही हुई बातों पर ध्यान देकर यह निर्णय करना हो कि क्या लिखित और क्लिष्ट कहलाने वाला शासन-विधान वांच्छनीय है तो हम यह कह सकते हैं कि यूरोप में जो ऐसे विधान का अनुभव अब तक प्राप्त हुआ है उससे वहाँ के लोग उसको वांच्छनीय समझते हैं। ऐसे विधान के विरोध में क्लिष्टता या लचीला न होने की जो दलील दी जाती है वह उसी अंश तक सत्य है जहाँ तक उस विधान में संशोधन करना दुष्कर है।

विधान पर लोक-नियन्त्रण—लोक सत्ता के सिद्धान्त के अनुसार शासन विधान पर जनता का नियन्त्रण रहना चाहिये। यह नियन्त्रण दो प्रकार से रह सकता है। प्रथम तो इस प्रकार कि मूल विधान के बनने के

पश्चात् यदि इसमें परिवर्तन करना हो तो यह संशोधन भी जनता से स्वीकृत कराया जाय। अमरीका के उपराष्ट्रों के जब शासन विधान बने उस समय वहाँ तत्कालीन प्रचलित लोकसत्ता की भावना का ऐसा प्रभाव था कि उपराष्ट्रों के मूल विधानों और उसके संशोधनों पर भी जनमत लिया जाता है। अमरीका के संघ-शासन-विधान में उपराष्ट्रों के विधानों का उल्लेख नहीं है। उपराष्ट्रों के विधान प्रथक प्रथक हैं। अमरीका के संघ-शासन-विधान में यह आयोजन नहीं है कि वैधानिक संशोधन पर जनमत लिया जाय। यही बात संसार के दूसरे लिखित शासन विधानों के लिये भी लागू होती है। व्यवस्थापक सभायें जैसे साधारण कानून बनाती हैं वैसे ही वे विधान-संशोधन भी करती हैं। केवल एक विशेष शैली के द्वारा यह काम करना पड़ता है और साधारण मताधिक्य के द्वारा न हो कर इस संशोधन की स्वीकृति विशेष मताधिक्य से होती है। फ्रांस के सन् १८७५ ई० के विधान में संशोधन किस प्रकार होता था उससे यह बात स्पष्ट हो जायगी। व्यवस्थापक मण्डल के दोनों आगार प्रथक प्रथक अपने सदस्यों की संख्या के बहुमत से यह निर्णय करते थे कि संशोधन आवश्यक है। उसके पश्चात् वे एक संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित होते थे और इन एकत्रित सदस्यों के बहुमत से यदि यह निर्णय होता था कि संशोधन कर दिया जाय तो विधान संशोधित समझा जाता था।

यदि यूरोपीय राष्ट्रों के अनुभव को हम निर्णायक मानें तब तो हमें यही कहना पड़ेगा कि प्रत्येक देश में जहाँ वैज्ञानिक शासन पद्धति है वहाँ शासन विधान लिखित होना चाहिये और उस लिखित विधान का संशोधन करने की प्रणाली वैसी ही हो जैसी कि फ्रांस के सन् १८७५ ई० के विधान के लिए प्रचलित थी।

वैधानिक सरकार की परिभाषा—आजकल प्रायः सब प्रमुख राज्यों का शासन वैधानिक रीति पर होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि वैधानिक शासन किसे कहते हैं और इसकी विभिन्न शासन-पद्धतियों में क्या भेद है। वैधानिक शासन में कौनसी ऐसी विशेषता है जिससे उसकी पहिचान हो सकती है? वैधानिक शासन पद्धति में इसके विपरीत स्वभाव वाली व्यक्तिगत शासन पद्धति के समान किसी एक ऐसे व्यक्ति की स्वेच्छा या सनक से शासन नीति निर्धारित नहीं होती, जिसके हाथ में राजशक्ति हो। परन्तु उस राज्यतंत्र की जड़ में ऐसे नियम होते हैं जो सर्वसाधारण द्वारा इतने मान्य हुए होते हैं

कि सत्ताधारी कोई अधिकारी उनकी अवहेलना करने का साहस नहीं करता और अपना आचरण उन नियमों से परमित रखता है। वैधानिक-शासन इसलिये कानून का शासन है व्यक्तियों का शासन नहीं है। और जब यह सही है कि वह नियमों का शासन है तो यह आवश्यक ही है कि ऐसे शासन के लिये वे कानून या नियम बनाये जायें जो सरकारी अधिकारियों के कार्यों की मर्यादा स्थिर कर दें। ये नियम या कानून पुञ्ज ही विधान के नाम से पुकारे जाते हैं।

विधान निर्माण के विविध प्रकार—यद्यपि विधान-निर्माण की आधार भूत प्रेरणा सब देशों में यही रहती है कि निरंकुश राज्यशक्ति को नियमों से परमित और नियंत्रित रखा जाय पर फिर भी राजसत्ता पर अंकुश लगाने की शैली और विकास-क्रम विभिन्न प्रकार का होता है। ब्रिटिश शासन-विधान धीरे धीरे बढ़ कर अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुंचा है, उसके सब नियम किसी एक प्रलेख में एकत्रित नहीं मिलते। उसका कारण ही यह है कि ये नियम किसी एक शासक या विधान सभा ने तत्व विचार और वैज्ञानिक ढंग से नहीं बनाये है। ये नियम लम्बे समय में प्रयुक्त होते होते इतने मान्य हो गए हैं कि उनका उल्लेख किसी प्रलेख में न रहते हुए भी सब उनको समझते और इनसे नियंत्रित रहते हैं। ये नियम प्राचीन परम्परायें हैं, रुढ़ियाँ हैं, और रीति रिवाज हैं जिनका व्यवहार बहुत समय से होता चला आ रहा है। ऐसे रीति रिवाज और परम्पराये उसी देश या समाज में बहुत समय तक सुरक्षित रह सकती हैं जहाँ समाज का इतिहास लम्बा हो और उसमें अधिक उथल पुथल और विशेषकर जहां हिंसात्मक क्रांति न हुई हो। पर ब्रिटेन को छोड़कर ऐसे देश और समाज कम हैं जिनकी ऐतिहासिक स्थिति इतनी सुदृढ़ और सामाजिक परिवर्तन इतने शान्त व अहिंसात्मक रहे हों। इसलिए उनमें विधान निर्माण का कार्य ब्रिटेन जैसा क्रमबद्ध न रह कर प्रायः उसकी रचना किसी हिंसात्मक क्रांति के फलस्वरुप ही हुई है। या तो राजविद्रोह के डर ने या विद्रोह के फलस्वरुप सम्राट को बाध्य होकर अपने आपको किसी सब अंगों से पूर्ण विधान के आधीन करना पड़ा, या सम्राट को अपनी इच्छा के विरुद्ध विधान समिति बुलानी पड़ी जिसने शासन-विधान बनाया। कहीं कहीं पर प्रजा ने स्वतः ही विधान समिति बनाई और अपने लिये एक शासन-विधान रच लिया। अमरीका में व जर्मनी में उपराष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें शासन विधान की रचना हुई। अमरीका में इस रचना के पश्चात् उपराष्ट्रों में प्रथक प्रथक प्रजा द्वारा निर्वाचित

प्रतिनिधियों की सभा में यह विधान रखा गया और स्वीकृत किया गया। प्रायः थोड़े हेर फेर के साथ इसी पद्धति से संसार के सब लिखित शासन-विधानों का जन्म हुआ है। एक वैधानिक समिति निर्वाचित होती है और विधान का मसविदा तैयार करती है। उसके पश्चात् या तो वही समिति उसको स्वीकार कर लागू कर देती है या उपोद्बलन ratification) की पद्धति से इसका संस्कार होता है। इस उपोद्बलन में कहीं प्रत्यक्ष व कहीं अप्रत्यक्ष रूप से जनता भाग लेती है।

विधान में किन बातों का समावेश होता है यदि इसकी जानकारी हो जाय तो वैधानिक शासन-पद्धति को भली भांति समझने में सुगमता रहेगी। इसलिये नीचे वे बातें दी जाती हैं जिनका नियमन विधान द्वारा होता है:—

(१) प्रत्येक विधान, चाहे वह किसी सम्राट के आत्मसमर्पण और आत्म-त्याग के फलस्वरूप बना हो या किसी प्रतिनिधि विधान समिति ने उसकी रचना की हो, राजशक्ति को मर्यादित करता है। सरकार क्या कर सकती है और क्या नहीं कर सकती उसको स्पष्ट रूप से निश्चित कर दिया जाता है। इस प्रकार विधान राजशक्ति का श्रोत है। सरकार के अधिकार विधान से प्राप्त होते हैं।

(२) नागरिकों के पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य क्या हैं और प्रजा व राज्य में किस प्रकार का सम्बन्ध है इसकी निश्चित व्याख्या विधान में कर दी जाती है।

(३) विधान यह भी निश्चित कर देता है कि राज्य के शासन कार्य में कौन कौन व्यक्ति या व्यक्ति समूह भाग ले सकते हैं और किस सीमा तक वे राज्य शक्ति का उपभोग कर सकते हैं। ऐसा करना आवश्यक है क्योंकि लोकतंत्र राज्यों में भी शासन करने का अधिकार सब को नहीं होता, न ऐसा सम्भव है कि प्रत्येक नागरिक शासन सूत्र संभाल सके। जो राज्य पूर्ण रूप से जनतंत्रात्मक नहीं हैं उनमें तो जनता का बहुत बड़ा अँश राज्य कार्य में सम्मिलित होने से वञ्चित रखा जाता है।

(४) विधान में उन मौलिक नियमों और सिद्धान्तों का उल्लेख भी कर दिया जाता है जिनके अनुसार राज्य के शासनाधिकारी चुने जाँय।

(५) मोटे रूप में विधानमें इस बात का निर्देश भी कर दिया जाता है कि सरकार का संघठन किस प्रकार से होगा, सरकार के कौन कौन से

अधिकार और शक्तियाँ होंगी और सरकार के विविध अङ्गों का एकीकरण किस प्रकार किया जायगा। किसी किसी विधान में इन बातों का विस्तृत वर्णन भी कर दिया जाता है।

(६) विधान राज्य का सर्वोच्च और प्रमुख कानून है। इस कानून के विरुद्ध जो कुछ भी राज्य कार्य किया जाता है वह अवैध और अनधिकार चेष्टा समझी जाती है।

वैधानिक और स्वेच्छाचारी शासन शैली में भेदः—उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जायगा कि वैधानिक और स्वेच्छाचारी शासन-शैली में क्या भेद है। वैधानिक सरकार का जनतंत्र होना अनिवार्य नहीं है, परन्तु कोई भी सरकार जन तंत्रात्मक नहीं हो सकती यदि उसका संगठन ऐसे विधान के अनुसार न हो जिसको हमारी जनता ने या उसके बड़े अंश ने अपनी सहमति से तैयार किया हो।

उदाहरणार्थ जापान का शासन वैधानिक शासन है पर वह जनतंत्रात्मक नहीं है। यही बात रूस की सोवियट सरकार को लागू होती है। सन् १९१८ ई० से पूर्व आस्ट्रिया, जर्मनी और टर्की में भी वैधानिक सरकारें थीं पर वे जनतंत्रात्मक नहीं थीं। इन राज्यों के शासन-विधान में शासन प्रणाली को बड़े यत्न से विस्तार पूर्वक निश्चित कर दिया गया था पर वह शासन प्रणाली किसी भी प्रकार से प्रजातंत्रात्मक नहीं कही जा सकती थी। इसका कारण यह है कि इन राज्यों में शासन-विधान ने शासन-शक्ति को इस प्रकार वितरित किया था और राज्यतंत्र के संगठन व उसकी कार्य प्रणाली ऐसी बनाई थी कि कुछ व्यक्तियों को या समूहों को राज्य में विशेषाधिकार प्राप्त थे। जनतंत्रात्मक राज्य में इसके विपरीत शासन के हेतु सरकार का ऐसा संगठन होता है और शासनाधिकार इस प्रकार बाँटे जाते हैं जिससे राज्य में रहने वाले सब वर्ग समूह और व्यक्ति खुले तौर पर उनसे लाभ उठा सकते हैं। जनतंत्र में सब नागरिक समान समझे जाते हैं, सिद्धान्ततः उनके अधिकार व कर्तव्य समान समझे जाते हैं। राज्य से लाभ उठाने का सबको समान अधिकारी समझा जाता है, न किसी को विशेषाधिकार होता है और न विशेष सुविधायें दी जाती हैं।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि जनतंत्र-राज्य में दिन प्रति दिन के व्यवहार में राज्य से सबको समान सुविधायें मिलती रहती हैं। सिद्धान्ततः यह बात मान ली गई है कि ऐसा होना चाहिये। आदर्श यही है पर आदर्श पर कौन पहुँच पाता है। जनतंत्र राज्य में भी भिन्न भिन्न वर्गों व समूहों में संघर्ष उसी प्रकार चलता रहता है जैसे दूसरे प्रकार के राज्यों में। प्रत्येक वर्ग अपने

अधिकारों को बढ़ाना चाहता है। इस संघर्ष में अधिकारों की तराजू या पलड़ा कभी एक की ओर और कभी दूसरे की ओर झुकता रहता है जिसके फलस्वरूप व्यवहार में वह समानता नहीं रहती जो विधान ने सिद्धान्ततः स्वीकार कर ली होती है। पर जनतंत्र में विभिन्न समुदायों और व्यक्तियों में मनचाहा, अन्याय पूर्ण पक्षपात नहीं होता, या यो कहें कि न होना चाहिये, और प्रत्येक व्यक्ति व समुदाय को अपनी प्रतिभा दिखाने का खुला अवसर मिलता है। वैसा अवसर और किसी शासन प्रणाली में नहीं मिलता।

———

अध्याय २

संघ शासन का सिद्धान्त

"यदि आधुनिक वैधानिक-विचार-शैली से एक ही राज्य में कई सत्ताधारी मान्य हैं तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में हम यही कल्पना कर सकते हैं कि वहाँ कर्तव्यों व अधिकारों का एक पुञ्ज ऐसा है जो सर्वोच्च और अविभाज्य है पर कुछ व्यक्ति सम्मिलित रूप से उसे धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त संघ राज्य में राज्य शक्ति का वही रूप होता है, जैसा ऐकिक राज्य में। भेद केवल इसी बात का रहता है कि संघ राज्य में राज्य-शक्ति के धारण करने वाली सस्थायें (व्यक्ति) विशेष प्रकार की होती हैं। इनका रूप एक व्यक्ति का सा नही होता पर ये अनेक व्यक्तियों के विशेष प्रकार के संगठन से बनती हैं।" (ह्यूगो ग्रूएज़)

हमने शासन विधानों का कई प्रकार से वर्गीकरण किया है। इनमें से एक वह है जिसमें शासन विधान के दो भेद होते हैं, ऐकिक और संघात्मक। कुछ समय से राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध में जो परिवर्तन हो गये हैं और विज्ञान की जो उन्नति हुई है उससे राष्ट्रों के दृष्टिकोण में बड़ा भारी अन्तर हो गया है। राष्ट्र के सम्बन्ध में पुरानी भावना अब बदलती जा रही है। अब कोई राष्ट्र यह दावा नहीं करता कि वह बिल्कुल स्वावलम्बी, स्वेच्छाचारी और निरपेक्ष रह सकता है। यह धारणा अब पक्की तरह से सब राष्ट्रों में जम गई है कि पुरानी राष्ट्र-भावना के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय भावना को बैठाने से ही कल्याण हो सकता है।

राजनैतिक सँघ के प्रकार (Types of Political Unions)—राजनैतिक संघों का अधिकाधिक प्रचार बढ़ रहा है और प्रोफेसर सिजविक की यह भविष्य वाणी सच्ची सिद्ध होती जारही है कि "जब हम अतीत से अनागत की ओर दृष्टि डालते हैं तो राज्यतंत्र के संगठन के सम्बन्ध में संघ-प्रणाली की उत्तरोत्तर अपनाये जाने की सम्भावना प्रतीत होती है।" भविष्य में ही नहीं पर अतीत काल में भी प्राचीनयुगीय तथा मध्ययुगीय राजनैतिक संघों के उदाहरण मिलते हैं।

पर इन संघों का बाह्यरूप एक सा नहीं था। इनका यदि अध्ययन किया जाय तो उनके कई भेद मिलेंगे। इन भेदों के आधार पर इनको निम्न लिखित चार श्रेणियों में रखा जा सकता है।

१—व्यक्तिगत संघ (Personal Unions)—ऐसे एक संघ का उदाहरण इंगलैंड और हैनोवर का संघ है जो सन् १७१४ से १८३७ ई० तक रहा। जब जार्ज प्रथम इंगलैंड के राजसिंहासन पर बैठा तो उसने अपनी पैतृक हैनोवर की जागीर अपने आधीन रखी। सन् १७१४ से १८३७ ई० तक हैनोवर और इंगलैंड का राज्य एक ही व्यक्ति के हाथ में था। पर दोनों राज्य एक दूसरे से स्वतन्त्र थे, कोई एक दूसरे के आधीनस्थ न था। दोनों की आन्तरिक और विदेशीय राज्यनीति व शासन स्वतन्त्र रूप से सचालित होता था।

२—पूर्ण सम्मिलन (Real Unions)—सन् १६०३ से १७०७ तक इंगलैंड और स्काटलैंड अपने घरेलू मामलों में स्वतन्त्र राज्य थे। विदेशी मामलों में वे दूसरे राष्ट्रों के सामने एक इकाई के रूप में उपस्थित होते थे। पर १७०७ ई० के अधिनियम (Act) से घरेलू शासन में भी ये दोनों एक दूसरे से मिल गये। इस अधिनियम की तीसरी धारा इस प्रकार थी। ग्रेट ब्रिटेन के संयुक्त राज्यमें एक ही ससद (Parliament) होगी, जिसका नाम "ग्रेट ब्रिटेन की पार्लियामेंट होगा।" इस अधिनियम की दूसरी कई धाराओं ने मुद्रा, माप और भार की दोनों राज्यों में एकता स्थापित की। दो राजमुद्राओं के स्थान पर एक राजमुद्रा बना दी गई। सब से महत्वशाली तो २४वीं धारा थी जिसने संघ को एक इकाई बना दिया। उस धारा के अनुसार "दोनों राज्यों में इस अधिनियम की धाराओं के असगत यदि कोई नियम या अधिनियम हो तो वे संघ स्थापना के पश्चात् प्रभाव शून्य और अवैध माने जायेंगे और दोनों राज्यों की पार्लियामेंट इसकी पृथक पृथक घोषणा करेगी।" यह सम्मिलन पूर्ण सम्मिलन के रूप में था जिससे ऐकिक राज्य की स्थापना हुई।' *

३—समूह-शासन या अस्थायी सघ (Confederations)—इस प्रकार के संघ का जन्म दो या अधिक राज्यों की मित्रता से उत्पन्न होता है। उसका अभिप्राय किसी विशेष आर्थिक या राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि होती है। प्रायः यह मित्रता अस्थाई रहती है। जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये समूह शासन स्थापित किया जाता है उसके लिये संयुक्त

---

* शर्मा, फेडरल पालिटी, पृष्ठ ४।

संस्थायें बना ली जाती हैं। इस सहयोग से सम्मिलित राष्ट्रों की व्यक्तिगत शक्ति का तो ह्रास नहीं होता किन्तु केन्द्रित शक्ति एक प्रकार से स्थायी और बलवान रहती है। विदेशीय व अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में ऐसा सामूहिक शासन (confederacy) एक राष्ट्र के समान दिखाई देता है और घरेलू या अन्य असामूहिक मामलों में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र (member-state) स्वतंत्र होता है। फिर भी सामूहिक शासन को सदस्य राष्ट्रों के ऊपर दण्ड लगाने का अधिकार नहीं होता। यही कारण है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने अपने लाभ के सामने समूह की उपेक्षा कर सकता है और फलतः वह समूह राष्ट्र (confederacy) स्थायी नहीं रहता। उदाहरणार्थ, महासमर के पहिले आस्ट्रिया-हंगरी एक समूह राष्ट्र था जो केवल ४७ वर्ष तक ही चल सका और उक्त समर की परीक्षा की कठिनाइयों को पार न कर सकने से छिन्न भिन्न हो गया। ऐसे समूह-राष्ट्रों के उदाहरण और भी हैं, जैसे अमरीकन समूह-राष्ट्र (१७७७-१७८९), स्विटज़रलैण्ड का समूह-राष्ट्र (१८७४ तक) और जर्मन समूह-राष्ट्र (१८७४ तक)।

४–**संघ शासन** (Federations)—चौथा और अन्तिम सहयोग संघ शासन है जिसमें सम्मिलित राष्ट्र या उपराष्ट्र अपनी पूर्वकालीन स्वतन्त्रता त्याग देते हैं यद्यपि व्यक्तिगत रूप में उनको कुछ राज्याधिकार अवश्य रहते हैं। बचे हुये अधिकार एक केन्द्रीय सत्ता को सुपुर्द कर दिये जाते हैं जो सामूहिक मामलों में सर्वाधिकारी बन जाती है। ऐसे संघ शासन के उदाहरण संयुक्त–राष्ट्र अमरीका (१७८९ से), स्विट्ज़रलैण्ड (१८७४ से), कनाडा (१८६७), आस्ट्रेलिया (१९०० से), प्रजातंत्र जर्मनी (१९१९-१९३३), भारत और सोवियट रूस में मिलते हैं।

संघ-शासन की परिभाषा—संघ-शासन एक वह प्रणाली है जिससे राज्यशक्ति "ऐसी अनेक समानाधिकारी संस्थाओं में वितरित होती है जिनकी स्थापना व नियमन एक विधान द्वारा होता है"। * यह विभाजन क्यों आवश्यक है ? यह सब जानते हैं कि नागरिक जितना अपने समीपवर्ती और दिन प्रतिदिन सम्पर्क में आने वाली संस्थाओं से मनलगाव रखता है उतना दूसरी संस्थाओं से नहीं। नागरिक राष्ट्र और देश की कार्यवाही की अपेक्षा अपने नगर, जिला और प्रान्त की बातों से अधिक निकट सम्बन्ध रखता है। उसके सुख दुख में, प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में नगर, जिला या प्रान्तीय

---

* फेडरल पौलिटी, पृष्ठ १

शासन का अधिक हाथ रहता है, केन्द्रीय शासन का कम। नागरिक को शिक्षा सफाई, सड़कें, प्रकाश, विनोद और दूसरी जीवन सुविधाओं की आवश्यकता रहती है, इन्हीं से उसका जीवन सुख-पूर्ण बनता है। जहाँ पर ये सब प्राप्त हैं स्वभावतः उस स्थान से और वहाँ की संस्थाओं से उसे प्रेम और निष्ठा हो जाती है। वह अपनी दृष्टि इन्हीं की ओर लगाये रहता है। दूरवर्ती केन्द्रीय शासन का उसके लिये अधिक महत्व नहीं रहता। केवल अप्रत्यक्ष रूप से, और वह भी कभी कभी, वह अपने नगर या प्रान्त से परे केन्द्रीय शासन की ओर अपनी दृष्टि फेरता है। यही कारण है कि प्राचीन युग में जब आने जाने के मार्ग दुर्गम थे, शासन का विस्तार छोटा होता था और छोटे राज्य ही बना करते थे। आधुनिक विज्ञान की उन्नति ने जल, स्थल और वायु यात्रा को सुगम और शीघ्र बना दिया है, दूरियां अब कम हो गई हैं और पृथ्वी सिकुड़ कर छोटी हुई सी प्रतीत होती है। इसलिये राष्ट्र का विस्तार भी पहिले से अधिक बढ़ गया है। अब एक राष्ट्र की सीमा दूसरे राष्ट्र की सीमा से टकराती है, उनके बीच में अब कोई अपरिचित भूमि नहीं है, अब वे एक दूसरे से पृथक रह कर एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। अब सब राज्य परस्परावलम्बी होगये हैं और उन्होंने पृथकत्व का बाना उतार फेंका है। एक ओर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की वृद्धि से राष्ट्रीय स्वतन्त्रता में नियमन आता जा रहा है, दूसरी ओर उस सहयोग के फलस्वरूप आत्म-प्रकाश और आत्माभिव्यक्ति को अवसर प्राप्त होता जा रहा है। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक है कि नागरिक स्थानीय संस्थाओं से निकट सम्बन्ध रखते हुये भी यह जानने को उत्सुक रहता है कि दूसरे नगर, जिले, प्रान्त या देश में क्या हो रहा है। यह जो बाहर से विरोधी दिखाई देने वाली स्थानीय और राष्ट्रीय भावनायें हैं उनका मेल कराने के लिये ही संघ शासन की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ है।

संघशासन की पद्धति बड़े विचार-विमर्श के पश्चात् राजनीतिज्ञों द्वारा निकाली गई है, इस लिये यह पद्धति उस पद्धति की अपेक्षा नई है जिसको ऐकिक-शासन-पद्धति (Unitary System of Government) के नाम से पुकारा जाता है और जिसका अनजाने तथा धीरे धीरे विकास हुआ है। वास्तव में संघशासन बड़े परिपक्व राजनैतिक अनुभव का परिचायक है और उसका सञ्चालन करने के लिये मंजे हुये राजनैतिक अनुभव की आवश्यकता भी है। इसी लिये १७८७ ई० से पूर्व संघशासन प्रणाली प्रचलित न थी। सन् १७८७ ई० में बनी संयुक्त राष्ट्र अमरीका की संघशासन प्रणाली एक नई योजना थी। यह ठीक है कि प्राचीन इतिहास में भी हमें संघशासन के उदाहरण मिलते हैं

परन्तु वे उन छोटे प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रों के सामूहिक शासन थे जो उन्होंने युद्ध में गौरव प्राप्त करने के लिये स्थापित किये थे। प्राचीन काल में बड़े बड़े साम्राज्य भी थे जिनमें एक सम्राट के आधीन अनेक छोटे छोटे राजा राज्य करते थे परन्तु उन साम्राज्यों में संघशासन के गुण न मिलते थे। क्योंकि फ्रीमैन के कथनानुसार "संघ-शासन नाम उन्हीं सदस्य राष्ट्रों के संघ को दिया जा सकता है जिनका सम्मिलन कोरी मित्रता से अधिक घनिष्ठ हो और जिसकी व्यक्ति गत स्वतन्त्रता की मात्रा इतनी हो कि हम उसे केवल स्थानिक स्वायत्त शासन (Municipal Government) की स्वतन्त्रता या नगर स्वतन्त्रता (Municipal Freedom) न कह सकें। *

संघ-शासन में दो शासन-शक्तियाँ होती हैं। पहिली शासन शक्ति वह सरकार है जो सम्पूर्ण राष्ट्र के ऊपर शासन करती है, उसको केन्द्रीय सरकार या संघ सरकार (Federal Government) के नाम से पुकारते हैं, दूसरी वे अनेक सरकारें हैं जो संघ के सदस्य-प्रान्तों या उपराज्यों (States) के ऊपर शासन करती हैं। संघ-शासन शक्ति इन दो प्रकार की सरकारों में बँटी हुई होती है। संघ सरकार बनाने के लिए दो बातें आवश्यक हैं। एक ओर संघ के सदस्य-राज्य उन विषयों के शासन में पूर्णतया स्वतंत्र रहने चाहिये जिनका सम्बन्ध एक उपराज्य से ही है। दूसरी ओर सब सदस्य-उपराष्ट्र अपनी सामूहिक संस्था के आधीन रहने चाहिये[१]। लार्ड चार्नवुड ने संघ-शासन के विधान की परिभाषा करते हुए कहा है कि "इस विधान में शासनकार्य का एक भाग राष्ट्र की अनेक प्रान्तीय वा जिले की सरकारों द्वारा सम्पादित होता है और दूसरा भाग इन सरकारों में से भिन्न२ सारे राष्ट्र की एक सरकार द्वारा सम्पादित होता है।"[२]

शासन किस प्रकार बनते हैं—संघ दो प्रकार से बनते हैं, एकीकरण द्वारा और खण्डन द्वारा। जहाँ केन्द्राभिसारी शक्तियाँ प्रबल होती है वहाँ एकीकरण द्वारा संघ स्थापित होता है।

केन्द्रापसारी प्रवृत्ति जहाँ अधिक बलशाली होती हैं वहाँ खण्डन द्वारा संघ-शासन स्थापित होता है। पहिले अर्थात एकीकरण में अनेक

---

* फ्रीमैन, हिस्ट्री आफ फैडरल गवर्नमेन्ट भाग १ पृष्ठ ३

(१) फ्रीमैन, हिस्ट्री आफ फैडरल गवर्नमैंट, पृष्ठ २-३

(२) दी फेडरल सोल्यूशन, पृष्ठ ५५

छोटे छोटे राज्य जो संघ स्थापित होने से पूर्व घरेलू व विदेशी मामलों में पूर्ण या अर्ध-स्वतंत्र हों, अपनी इच्छा से सहयोग करते हुए एक केन्द्रीय नई सरकार की स्थापना करते हैं और उसके हाथों में अपनी शासन शक्ति का कुछ भाग सौंप देते हैं। यह नई सरकार सारे राष्ट्र के लिये महत्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में शासन शक्ति का उपभोग करती है। उसको छोड़कर बची हुई शासन शक्ति सदस्य-उपराज्य अपने पास रखते हैं और अपने घरेलू व्यक्तिगत मामलों में वे स्वयं शासन करते हैं। इससे यह प्रकट है कि जब कुछ राज्य मिलना चाहते है पर मिलकर एक एकाई बनना नहीं चाहते तब संघ-शासन की स्थापना करते हैं। इस प्रकार जो संघ शासन बनते हैं उसका उदाहरण अमरीका का संघ शासन है। स्विट्जरलैंड और आस्ट्रेलिया के संघ-शासन भी इसी रीति से स्थापित हुए थे। दूसरे, अर्थात् खण्डन, में एक बड़े राज्य को तोड़कर उसको छोटे-छोटे उपराज्यों में विभाजन कर दिया जाता है, इन उपराज्यों को अपने अपने आन्तरिक या स्थानीय मामलों के शासन का भार सौंप दिया जाता है और इन उपराज्यों का जन्म दाता राष्ट्र बचे हुये सारे राष्ट्र के हित से सम्बन्ध रखने वाले विषय में सब उपराज्यों पर शासन करता है। सन् १८६७ में कनाडा में यही हुआ। वहाँ पहिले ऐकिक शासन था। फिर उसको दो भागों में बाँट दिया गया, क्यूबक और औन्टेरियो के दो प्रान्तों में प्रान्तीय शासन और सारे कनाडा का संघ-शासन। दक्षिणी अफरीका का संघ स्थापित होने से पूर्व वहाँ भी ऐकिक शासन (Unitary Government) था और इसी क्रम से वहाँ संघात्मक शासन स्थापित किया गया। यह क्रम ६ जून सन् १८७१ के उस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है जिसको केप (Cape) ऐसेम्बली ने इस विषय में छानबीन करने वाले एक कमीशन की स्थापना के हेतु पास किया था। यह प्रस्ताव इन शब्दों में था "और क्योंकि यह सुविधाजनक हो कि उपनिवेश को तीन या अधिक प्रान्तीय सरकारों में बाँट दिया जाये जो अपने घरेलू मामलों का प्रबन्ध करें और एक ऐसे संघ-शासन में संगठित हो जायें जिसमें एक सम्मिलित संघ सरकार हो जिस पर उन मामलों के प्रबन्ध करने का भार हो जो संयुक्त उपनिवेश के सम्मिलित हितों से सम्बन्ध रखते हों...।"*

सन् १९३७ के भारतीय संघ शासन विधान से जो भारतीय संघ स्थापित होने जा रहा था उसमें एकीकरण और खण्डन दोनों क्रमों को अपनाने की

* न्यूटन—दी यूनीफिकेशन आफ साउथ अफ्रीका, भाग १ पृष्ठ १२।

योजना थी। तत्कालीन ब्रिटिश इन्डिया और देशी राज्यों में एकीकरण के क्रम से और ब्रिटिश इन्डिया के प्रान्तों को कुछ अधिक छोटे प्रान्तों में बाँटने से संघ शासन बनाने का प्रस्ताव उस समय विचाराधीन था।

संघ शासन की विशेषतायें:—संघ शासन (Federal Constitution) अन्य शासनों की अपेक्षा कुछ विशेषतायें रखता है। हरमन फाइनर (Herman Finer) के कथनानुसार ये विशेषतायें इस प्रकार हैं:— विधायिनी शक्ति (Legislative power) और शासन-अधिकारों का विभाजन, उपराष्ट्रों का संघ संसद में प्रतिनिधित्व, आयसम्बन्धी विशेष प्रबन्ध, दो शासन शक्तियों का साथ साथ एक ही क्षेत्र में अधिकार होना, संघ-शासन विधान की क्लिष्टता, न्यायमण्डल का विशेष महत्व और राज्य निष्ठा तथा सम्बन्धोच्छेद (Secession) का विशेष सिद्धान्त।

दो सरकारों का साथ साथ रहना:—संघ शासन में सारे राष्ट्र की सम्मिलित सरकार जिसको केन्द्रीय सरकार भी कहते हैं सदस्य उपराज्यों या प्रान्तों की सरकार के सान्निध्य में रहती है। शासन की ये दो शक्तियाँ शासन विधान से अपने अधिकार प्राप्त करती हैं इसलिये वे एक दूसरे के आधीन न रह कर अपने अपने शासन क्षेत्र में, जो विधान द्वारा निश्चित हो जाता है, स्वतंत्र रहती हैं। "संघ-शासन-विधान (federal constitution) और एकिक-शासन-विधान (unitary constitution) में यही भेद है कि दूसरे विधान के अन्तर्गत जहां एक ही शासन-शक्ति मान्य होती है जो सब राजकीय मामलों में बिना अपवाद के सर्वशक्ति शाली और सर्वाधिकारी होती है, वहाँ पहिला अर्थात् संघ-शासन विधान शासन-सम्बन्धी अधिकारों और शक्तियों को उपराज्यों की सरकारों व संघ सरकार के बीच बाँट देता है।" *यहाँ यह तर्क उठ सकता है कि एकिक-राज्य (unitary state) में भी अब शक्ति का विकेन्द्रीय करण (Decentralization) बढ़ता जा रहा है और स्थानीय शासन के हेतु स्थानिक संस्थायें बनाई जा रही हैं इसलिये संघ में और एकिक राज्य में अन्तर क्या रहा। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यद्यपि एकिक राज्य में शासन के दो स्तर हैं, एक केन्द्रीय और दूसरा स्थानीय पर फिर भी केन्द्रीय शासन का स्थानीय शासन पर आधिपत्य अक्षुण्ण रहता है। स्थानिक या नगर शासन (Municipal Government) की सृष्टि केन्द्रीय शासन शक्ति ही करती है और उस शक्ति को वैधानिक अधिकार प्राप्त रहता है कि इन स्थानिक शासनों के अधिकारों में वृद्धि कर दें या घटती

* फेडरल पोलिटी, पृ० ७

कर दे। यही नहीं, बल्कि उसको यह भी अधिकार रहता है कि वह इन शासन संस्थाओं को बिलकुल तोड़ दे और किसी भी वैधानिक अनौचित्य की दोषी न हो। यदि कोई केन्द्रीय शासन शक्ति ऐसा करने का निश्चय करे तो इस निश्चय के विरुद्ध किसी न्यायालय में पुकार नहीं की जा सकती और न ऐसा निश्चय अवैध घोषित हो सकता है क्योंकि केन्द्रीय शासन शक्ति स्वेच्छा से इन संस्थाओं की सृष्टि करती है जिससे उसके शासन कार्य में सुविधा रहे। इन स्थानिक शासन संस्थाओं के नियम केवल उपविधि (bye-law) ही रहते हैं और वे तभी तक लागू रहते हैं जब तक वे केन्द्रीय शासन शक्ति द्वारा मान्य समझे जाते हैं। संघ शासन में इसके विपरीत शासन के तीन स्तर होते हैं, केन्द्रीय, उपराज्यीय या प्रान्तीय, और स्थानिक (एकिक शासन के समान), इससे स्पष्ट है कि उपराज्यीय शासन होने से ही संघ शासन और एकिक शासन में भेद हो जाता है। उपराज्यों के अधिकार केन्द्रीय सरकार से प्राप्त नहीं होते पर वे सीधे विधान से प्राप्त होते हैं। इससे यह निश्चित है कि उपराज्यों की सरकारें केन्द्रीय सरकार की अपेक्षा नहीं करती, उनका स्वतंत्र अस्तित्व विधान द्वारा सुरक्षित रहता है। उपराज्यों की सरकारों के कानून उसी प्रकार वैध (Legal) समझे जाते हैं जैसे केन्द्रीय सरकार के कानून। उनकी मान्यता केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति या इच्छा पर निर्भर नहीं होती।

अधिकारों का विभाजन—संघ-शासन-विधान केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के अधिकार स्पष्टतया निश्चित कर देता है। शासनाधिकारों का यह विभाजन शासनक्षेत्र के सब विभागों में कर दिया जाता है। व्यवहार में यह पृथकीकरण बिलकुल पूरा रहता है, उसमें सन्देह के लिये स्थान नहीं रहता, चाहे कानून बनाने का अधिकार हो या उसको कार्यान्वित करने का, न्यायाकारी अधिकार हो या प्रबन्धकारी, सब के सम्बन्ध में दोनों सरकारों की शक्ति स्पष्टतया मर्यादित कर दी जाती है। आय के स्रोत आदि भी दोनों सरकारों में पृथक बाँट दिये जाते हैं। इस अधिकार-विभाजन में साधारणतया यह सिद्धान्त लागू किया जाता है कि वे अधिकार जो राष्ट्रीय महत्व के हितों की रक्षा के लिये आवश्यक हैं संघ सरकार को दिये जाते हैं जैसे आक्रमण से रक्षा, विदेशी सम्बन्ध, बाहरी व्यापार पर कर, रेलवे, डाकघर, तार आदि। उधर भिन्न भिन्न प्रान्तों के आधीन शासन के वे विभाग तथा विषय होते हैं जिनकी देख रेख प्रान्त की सरकार आसानी और अधिक लाभ से कर सकती है तथा जिन विषयों में सभी प्रान्तों में प्रबन्ध की समानता अनिवार्य नहीं है। उदाहरणार्थ शिक्षा, न्याय, कलाकौशल, छोटी सड़कें इत्यादि। संघ तथा

प्रान्त दोनों ही की सरकारें अपने अपने कार्य सँचालन के लिये निजी टेक्स लगाती हैं और दोनों के लिये पृथक पृथक कर के साधन निश्चित कर दिये जाते हैं। प्रायः केन्द्रीय या संघ सरकार को अप्रत्यक्ष कर के साधन ही सुपुर्द होते हैं जैसे विदेशी व्यापार पर कर आदि, पर अर्वाचीन प्रवृत्ति यह होती जा रही है कि संघ सरकार को कर के प्रत्यक्ष साधन भी दिये जाते है। इस शक्ति-विभाजन से संघ और प्रान्तों, दोनों ही की सरकारों की स्थिति एक दूसरे से निरपेक्षित रहती है। एक सरकार दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

अवशिष्ट, समवर्ती और निहत शक्तियां—संघ शासन के निर्माता चाहे इस अधिकार-विभाजन के कार्य में कितने ही दक्ष हों और कितनी ही चतुराई से वे इस काम को करें पर फिर भी राज्य के कर्तव्य इतने अधिक हैं और उनकी सख्या में व विस्तार में समय के बीतने से इतने परिवर्तन होते रहते हैं कि सब कर्तव्यों के सम्बन्ध में दोनों प्रकार की सरकारों के अधिकारों का सर्वदा के लिये और सब तरह पूर्ण वर्गीकरण और वितरण होना किसी भी विधान निर्माता समिति या व्यक्ति के लिये असम्भव है। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमरीका का विधान १७८७ ई० में बनाया गया था जब न वैज्ञानिक आविष्कार हुये थे, न आने जाने के साधन उपलब्ध थे। विधान के निर्माता उस समय यह कल्पना न कर सकते थे कि १९ वीं व २० वीं शताब्दी में वैज्ञानिक आविष्कारों से ऐसे साधन प्राप्त होजायेंगे कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के बहुत निकट आजायगा और आपस में घनिष्ठता तथा सहकारिता की मात्रना इतनी बढ़ जायगी जैसी आजकल वर्तमान है। इस लिये अब राष्ट्र के कामों में जो नवीनता तथा वृद्धि हो गई है उसका उनको अनुमान न हो सकता था और न उसके लिये उन्होंने विधान में कोई आयोजन किया था।

अवशिष्ट शक्तियां (Residuary powers)—उपर्युक्त कठिनाई को दूर करने के लिये, सब संघ शासन विधान, जिनमें संयुक्त राज्य अमरीका का शासन विधान भी शामिल है, अवशिष्ट वा अवर्णित शक्तियों के सम्बन्ध में विधान में कुछ धारायें बना देते हैं और इन धाराओं के द्वारा उन्हें या तो केन्द्रीय सरकार को या प्रान्तीय सरकारों को सुपुर्द कर देते हैं। यदि केन्द्रापसारी (centrifugal) खिंचाव अधिक जोरदार होता है तो ये शक्तियाँ उपराज्यों के सुपुर्द रहती हैं यदि केन्द्राभिसारी (centrifugal) खिंचाव अधिक बलशाली होता है तो केन्द्र को। संयुक्तराज्य अमरीका में विधान वर्णित शक्तियों से

बची हुई शक्तियाँ उपराज्यों को सुपुर्द हैं, वहाँ खिंचाव केन्द्र से बाहर की ओर को है कनाडा में ये शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार को है क्योंकि वहाँ केन्द्र को शक्तिशाली बनाने की प्रवृत्ति है ।

समवर्ती शक्तियाँ (Concurrent powers)—संघ विधान में प्रायः समवर्ती शक्तियों के सम्बन्ध में भी कुछ न कुछ आयोजन रहता है। कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनको संघ और प्रान्तीय दोनों सरकारों में से किसी एक को नहीं सौंपा जाता या जो प्रांतीय और राष्ट्रीय दोनों की दृष्टि से महत्वशाली है। इन विषयों में, संघ और प्रान्तीय, दोनों सरकारों को व्यवस्था करने और प्रबन्ध करने का अधिकार रहता है। पर आपस में टक्कर न हो जाये इस अभिप्राय से यह निश्चित कर दिया जाता है कि यदि किसी समवर्ती विषय के सम्बंध में दोनों सरकारों में मत भेद हो अथवा दोनों किसी एक ही समवर्ती विषय के सम्बन्ध में व्यवस्था और प्रबन्ध करें तो राष्ट्रीय व्यवस्था और प्रम्बन्ध अधिक मान्य होगा और प्रान्तीय व्यवस्था अमान्य रहेगी। ऐसा करने से यह लाभ होता है कि जो विषय महत्व के हैं सब उपराज्यों में उनकी व्यवस्था की समानता रहती है और राष्ट्रीय सरकार के काम में दृढ़ता और बल रहता है। उदाहरण के लिये जर्मनी के सन् १९१९ के विधान की १३वीं धारा में यह दिया हुआ था कि जिन विषयों में केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों को समवर्ती शक्तियाँ प्राप्त हैं उनमें यदि दोनों सरकारें असमान कानून बनावें तों केन्द्रीय कानून ही लागू होगा, प्रान्तीय कानून रद्द समझा जायेगा।

निहित शक्तियों का सिद्धान्त (Implied powers)—इस सिद्धान्त का बड़ा महत्व है। सँयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सब से प्रथम किया था। अमरीका के सन् १७८७ के विधान में केन्द्रीय या राष्ट्रीय और उपराज्यों की शक्तियों का निश्चित रूप से वर्णन है और अवर्णित शक्तियाँ उपराज्यों की सरकारों के लिये सौंपदी गई हैं। केन्द्र की उल्लिखित शक्तियाँ बड़ी सीमित है।

विधान के पहिले अनुच्छेद (Article) की आठवीं धारा में काँग्रेस की शक्तियाँ इस प्रकार वर्णित हैं :—

"काँग्रेस को टैक्स, ड्यूटी, इम्पोस्ट और एक्साइज़ लगाने का अधिकार होगा व ऋण चुकाने और सारे राष्ट्र की सुरक्षा और योगक्षेम के हेतु आयोजन करने का अधिकार होगा। परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि सब ड्यूटियाँ, इम्पोस्ट और एक्साइज़ सारे संयुक्त राज्य में एक समान होंगे।"

"संयुक्त राज्य की सम्पत्ति और मान के आधार पर ऋण लेने का अधिकार होगा।"

"उपराज्यों विदेशों व इण्डियन जातियों से व्यापार को नियमन करने का अधिकार होगा .....।" इत्यादि, इत्यादि।

आठवीं धारा के अन्तिम शब्द ये हैं "काँग्रेस को इन सब कानूनों के बनाने का अधिकार होगा जो उपर्युक्त शक्तियों को और दूसरी शक्तियों को, जो विधान ने संयुक्त राज्य की सरकार को सुपुर्द की हैं या इसके किसी विभाग या अफसर को सौंपी हैं, कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हों और उचित हों।" इन शब्दों का इतना विस्तृत अर्थ लगाया जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने उनकी काँग्रेस के पक्ष में ही व्याख्या की है और जो मुकद्दमे उस न्यायालय के सामने प्रस्तुत हुए उनमें निर्णय देते समय उस व्याख्या का उपयोग करते हुए निहित शक्तियों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के द्वारा यह प्रतिपादन किया जाता है कि चाहे यह उल्लेख न हो कि अमुक शक्ति किस सरकार को प्राप्त है पर वह शक्ति दूसरी उल्लिखित शक्तियों में निहित है या दूसरी उल्लिखित शक्तियों को देते समय अमुक शक्ति का देने का तात्पर्य था। इस सिद्धान्त के व्याख्याता सुप्रसिद्ध प्रमुख न्यायाधीश मार्शल (Justice Marshall) थे। उन्होंने इस सिद्धान्त के द्वारा संयुक्त राष्ट्र अमरीका की संघ-सरकार अर्थात् केन्द्रीय सरकार की शक्ति बढ़ाई। दूसरे संघ-शासनों में भी सर्वोच्च न्यायालयों के निर्णयों पर इस सिद्धान्त का प्रभाव पड़े बिना न रह सका है, और इस प्रकार शक्तियों को वर्णन करने में जो कमियाँ रह जाती हैं इससे उनकी पूर्ति होती रही है।

संघ-शासन विधान की विशेषताएँ

संघ-शासन में दो सरकारों की नागरिकता—संघ-शासन में प्रत्येक नागरिक को दो सरकारों के प्रति निष्ठा रखनी पड़ती है। उन मामलों में जो प्रान्तीय सरकार के अधिकार-क्षेत्र में है वह व्यक्ति अपनी प्रान्तीय सरकार का नागरिक रहता है और उसके बनाए हुए कानूनों का पालन करता व उसकी नागरिकता के स्वत्वों से लाभ उठाता है। इसके साथ ही साथ वह संघ सरकार का भी नागरिक बना रहता है और संघ सरकार के बनाए हुए कानूनों का पालन करता और उसकी नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकारों को प्राप्त करता है। एकिक शासन में व्यक्ति एक ही सरकार का नागरिक होता है। यदि वह एक सरकार के कानूनों को मानता है तो एक ही सरकार की

नागरिकता के स्वत्वों का उपभोग भी करता है । सामूहिक संघ (Confederation) मे भी संघ के निवासी केन्द्रीय सरकार की प्रजा नहीं होते। वे अपने अपने राज्य के नागरिक रहते हैं और संघ के कानून या आज्ञाएँ अपने अपने राज्य में की मध्यस्थता से उन पर लागू होते हैं। संघ की आज्ञायें बिना राज्य की अनुमति से प्रजा को मान्य नहीं समझी जातीं। राजनीतिज्ञ ब्राइस संघ को द्विनागरिकता की इस प्रकार परिभाषा करते हैं:—

"प्रमुख बात तो यह है कि प्रत्येक नागरिक के ऊपर दो सरकारों का आधिपत्य रहता है। एक तो उस उपराज्य या प्रान्त (कनाडा जैसी) या कैन्टन (स्विट्ज़रलैंड जैसी) की सरकार का आधिपत्य जिसका वह निवासी है और दूसरा राष्ट्र या संघ की सरकार का जिस संघ में वे सब उपराज्य या प्रान्त शामिल है जिनकी प्रजा पर संघ सरकार समानरूप से शासन करती है। इस प्रकार व्यक्ति की दो निठाएँ रहती हैं, एक अपने प्रान्त के लिए और दूसरी सारे राष्ट्र के लिये। वह दो कानूनों को मानता है, अपनी प्रान्तीय सरकार के कानून और संघ सरकार के कानून। वह संघ सरकार और प्रान्तीय सरकार के दो भिन्न भिन्न अफसरों की आज्ञा पालन करता है और उन करों को छोड़ कर जो उसकी नगर या ग्राम संस्था उस पर लगाती है, दो सरकारों को कर देता है" ।* ब्राइस के मतानुसार संघ शासन उसी को कहा जा सकता है जहाँ केन्द्रीय या संघ सरकार सदस्य-उपराज्यों की प्रजा पर सीधा, बिना उपराज्य की सरकार की मध्यस्थता के आधिपत्य रखती है । न्यूटन का मत भी इस विषय में स्पष्ट है । उनका कहना है कि "संघ सरकार केवल सम्मिलित राज्यों पर शासन नहीं करती पर उनकी प्रजा पर भी स्वयं शासन करती है। एक दूसरे लेखक ने एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका में संघ शासन के नागरिक का दो सरकारों से कैसा सम्बन्ध रहता है, समझाते हुए लिखा है कि संघ सरकार अपनी उल्लिखित शक्तियों का उपभोग करने में अपने सदस्य उपराज्यों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है और उन पर शासन करती है। पर उसके साथ साथ संघ के प्रत्येक व्यक्ति से उसका सीधा सम्बन्ध रहता है। .....और फलतः संघ के निवासी दो सरकारों के, संघ सरकार के और प्रान्तीय सरकार के नागरिक रहते हैं।"[1] द्विनागरिकता का यह सिद्धान्त सब संघ शासनों में बरता जाता है। केवल एक उदाहरण

---

* कन्स्टीट्यूशस; पृष्ठ २८८ ।

१. भाग १० पृष्ठ २३३। ब्राइस; स्टडीज इन हिस्टरी एण्ड ज़्यूरिसप्रूडेन्स, भाग २, पृष्ठ ४३० भी देखिये।

ही यहाँ दिया जाना पर्याप्त होगा। संयुक्त-राज्य अमरीका के संघ विधान के १४वें अनुच्छेद में कहा गया है कि "सब व्यक्ति जो संयुक्त राष्ट्र में उत्पन्न हुए हों या जानपद (Naturalized) बन गए हैं और उसके अधिकारक्षेत्र के अन्तर्गत हों, संयुक्त राज्य के व जिस उपराज्य के निवासी हैं उसके नागरिक हैं ·····।"

ख—**लिखित और विशेषतया क्लिष्ट विधान**—संघ शासन-विधान की दूसरी विशेषता होती है कि वह विधान अनिवार्य रूप से लिखित तथा परिवर्तन करने के लिये विशेषतया क्लिष्ट होता है। यह सच है कि आजकल लिखित विधान रखने की प्रवृत्ति है चाहे राज्य का रूप एकिक (unitary) हो या संघ-शासनीय (federal) पर संघ शासन की उस विशेषता से यह अभिप्राय है कि यद्यपि एकिक शासन प्रणाली में लिखित विधान से भी काम चल सकता है, पर संघ शासन में लिखित विधान अनिवार्य है। एकिक शासन प्रणाली में शासन की सारी शक्ति केवल एक सरकार को सुपुर्द रहती है और वही सरकार सर्वाधिकारी होती है। संघ-शासन में शासन-शक्ति दो भिन्न भिन्न, एक दूसरे से निरपेक्ष, सरकारों में बंटी रहती है। कुछ विषयों में केन्द्रीय सरकार का शासन रहता है और दूसरों में प्रान्तीय सरकार का। ये विषय या विभाग दोनों सरकारों में पृथक पृथक बंटे रहते हैं। इंगलैंड का अब भी ऐसा उदाहरण है जहाँ एकिक शासन का लिखित विधान नहीं है। दूसरे एकिक शासनों में सब जगह लिखित विधान ही है। परन्तु संघ-शासन का एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है जहाँ अलिखित विधान हो, यह स्वाभाविक ही है। संघ-शासन एक प्रकार का ठेका है। प्रान्तीय सरकारें आपस में एक मत होकर इस ठेके पर पहुंचती हैं और अपने ऊपर संघ सरकार की स्थापना कर उसे निश्चित अधिकार देती हैं। यह ठेका बड़ा नाजुक होता है और उसमें शक्ति का व अधिकारों का बड़ा सूक्ष्म संतुलन रहता है। दो व्यक्तियों में भी यदि कोई ठेका हो तो वह भी संदेह रहित और सब तरह से स्पष्ट नहीं रहता यदि वह लिखा न जाय और भविष्य में उनकी शर्तों के सम्बन्ध में उन दोनों व्यक्तियों को भ्रान्ति हो सकती है व झगड़ा हो सकता है। यही बात अधिक मात्रा में उस पेचीदा ठेके के बारे में सत्य है जो दो राज्यशक्तियों के बीच में हो। संघ शासन विधान संघ सरकार की और प्रान्तीय सरकार की शक्तियों की मर्यादा स्थिर करता है इसलिये दोनों सरकारों से ऊपर उसका महत्वशाली स्थान है। संघ सरकार का या प्रान्तीय सरकार का कानून

तभी वैध समझा जाता है जब वह विधान के अनुकूल हो। एकिक शासन में सरकार की शक्तियों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं होता क्योंकि वह स्वयं ही सर्वाधिकारी रहती है। यह डी लोम (De Lolme) के उस कथन से स्पष्ट है जिसमें उसने कुछ भद्दे ढंग से ब्रिटिश पार्लिमेन्ट की शक्ति का संक्षिप्त निरूपण किया है। उसका कहना था कि अंग्रेज वकील इस सिद्धान्त पर चलते हैं कि पर्लियामेंन्ट सब कुछ कर सकती है, केवल पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष नहीं बना सकती। संघ शासन में पार्लियामेंट को ऐसा अधिकार कभी भी नहीं दिया जा सकता।

संघ-शासन-विधान परिवर्तन करने के लिये विशेषतया क्लिष्ट होता है। जब संघ की स्थापना की जाती है तो विभिन्न सरकारों के प्रतिनिधि अपने अपने राज्य के अधिकारों का दावा करते हैं। इन अभ्यर्थनाओं या दावों पर बड़ी सूक्ष्मता और चतुरता से विचार किया जाता है और समझौते पर पहुँचने से पूर्व अनेकों रुकावटों का सामना करना पड़ता है। सब अभ्यर्थनाओं का ऐसा संतुलन और सम्मिश्रण करना पड़ता है जिससे सब सदस्य राज्य संतुष्ट रहें और संघ में आने को तैयार हों। जितने संघ शासन संसार में स्थापित हुये हैं उनका इतिहास इन सब बातों का साक्षी है। जब कई प्रान्त या उपराज्य मिलकर संघ (federation) स्थापित करते हैं तो इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि संघ सरकार को केवल वे अधिकार दिये जायें जो सम्मिलित शासन के हित में अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं और वे प्रान्त शेष अधिकार व शासन शक्ति अपने पास सुरक्षित रखने का पूरा पूरा उपाय कर लेते हैं। प्रान्त स्पष्ट शर्तों पर ही अपनी स्वतन्त्रता का कुछ अंश संघ-शासन को सुपुर्द करते और शेष स्वतन्त्रता को अपने पास रखते हैं, इन शर्तों का लिखित और स्पष्ट होना आवश्यक है जिससे सबको अपने अपने अधिकारों का स्पष्ट ध्यान रहे और समय के बीतने से उनके सम्बन्ध में भ्रान्ति न हो जाये, क्योंकि सदैव के लिये या उस समय तक के लिये जब तक विधान में परिवर्तन न हो, इन्हीं शर्तों से ही सब के अधिकारों की रक्षा होती है। विधान बनाने में विरोधी अधिकारों का जब इस प्रकार सन्तुलन हो और बड़े प्रयत्न के पश्चात् समझौते पर पहुंचा जाय तो यह आवश्यक है कि विधान का परिवर्तन सुलभ न होना चाहिये। यदि यह परिवर्तन करना साधारण कानून की तरह सुलभ कर दिया जाय तो विधान निर्माताओं का महत्वपूर्ण कार्य शीघ्र नष्ट हो जाय और संघ अधिक समय तक जीवित न रह सके। इसी कारण इस बात को निश्चित रखने के लिये जिन शर्तों पर प्रान्तगण संघ में सम्मिलित हुये हैं उनको

बहुत काल तक सुरक्षित रखा जाये और शासन विधान में परिवर्तन कठिनता से हो सके, उसी विधान में उसके परिवर्तन के ढंग का निर्देश कर दिया जाता है और वह ढंग क्लिष्ट होता है। इसका आशय यह नहीं है कि विधान में परिवर्तन अथवा संशोधन (amendment) हो ही न सके। विधान के निर्माता कितने ही योग्य और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हों, वे विधान बनाते समय सब अनागत घटनाओं के लिये उचित आयोजन करने में समर्थ नहीं हो सकते, मानव जाति अपनी प्रकृति से ही अस्थिर है। कोई विधान ऐसा नहीं बनाया जा सकता जो सब समय के लिये और सब अवस्थाओं के लिये एक समान उपयुक्त हो। मनुष्य जाति की आवश्यकताओं में परिवर्तन होता रहता है। उन्नति के मार्ग में नई कठिनाइयों और नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनसे नया अनुभव प्राप्त होता रहता है। विधान को व्यवहार में कार्यरूप करने से उसकी कमियां मालूम होती रहती है। वर्त्तमान युग में तो विज्ञान के नये नये आविष्कारों से मानव जाति की आर्थिक, सामाजिक, अन्तर्राष्ट्रीय व राजनैतिक स्थिति में दिन प्रतिदिन परिवर्तन होता रहता है। इसलिये यह आवश्यक है कि शासन को स्थिति के अनुकूल बदलने के लिये संघ-विधान में परिवर्तन हो सकना सम्भव होना चाहिये। ऐसा भी प्रायः होता है कि संघ विधान के निर्माता कुछ गुत्थीदार समस्याओं को विधान बनाते समय हल नहीं कर पाते और उन्हें भविष्य में सुलझाने के लिये इसलिये छोड़ देते हैं कि विधान को कार्यान्वित करने में जो अनुभव प्राप्त होगा उसकी सहायता से उनको सुलझाना सुकर होगा। इसलिये सघ-शासन विधान में ही उसके संशोधन की विधि का उल्लेख कर दिया जाता है, पर संशोधन करने की प्रणाली सब सघ-विधानों में एक सी ही नहीं होती, पर साधारण कानून बनाने की प्रणाली की अपेक्षा उसमें विशेषताऐं सब जगह रहती हैं। प्रायः इस प्रणाली में ऐसा आयोजन रहता है कि संघ के सब सदस्यों, दलों और हितों का संघ विधान के परिवर्तन में मत प्रकाशन हो सके। इसलिये यह प्रणाली अधिक पेचीदा और दुष्कर होती है। एकिक शासन को जब चाहें सुविधा के लिये बदला जा सकता है। परन्तु संघ शासन को ऐसा बनाया जाता है कि उसमें अनिवार्य परिवर्तन तो किये जा सकें किन्तु समय के क्षणिक आवेग में आकर लोग शासन के ढांचे को बदलकर संघ के वास्तविक रूप तथा उसकी प्रकृति में क्रान्तिकारी परिवर्तन न कर सके। सारांश यह है कि संघ-शासन-विधान में परिवर्तन तथा संशोधन केवल उसी दशा में किया जा सकता है जब कि संघ के हित के लिये यह संशोधन अत्यन्त आवश्यक हो

और फिर इस संशोधन के करने का ढंग भी मामूली कानूनों के बनाने के ढंग से अधिक क्लिष्ठ तथा विशेष प्रकार का होता है।

ग—विशेष प्रकार का न्यायमण्डल—संघ शासन की तीसरी विशेषता यह है कि उसके अन्तर्गत एक ऐसा न्यायालय (Supreme Court) स्थापित किया जाता है जो प्रान्तों तथा केन्द्र दोनों की ही सरकारों की आधीनता से बाहर हो। यह पहिले ही कहा जा चुका है संघ का शासन विधान एक प्रकार के ठेके की शर्तों का लिखित वर्णन है। यह वह लिखा हुआ समझौता है जिसमें प्रान्तीय सरकारों और संघ सरकार के बीच अधिकार और शक्तियों का विभाजन किया हुआ होता है और उनके आपस के सम्बन्धों की व्यख्या भी दी हुई होती हैं। यदि संघ को रक्षा करनी है और उसे चिरजीवी बनाना है तो इस ठेके की शर्तों का उचित पालन होना चाहिये, जैसे मनुष्यों या जनसमूहों के बीच ठेके की शर्तों को सुरक्षित रखने तथा तोड़ने वाले को दण्ड देने के लिये शासन के न्यायालय की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार केन्द्र की सरकार और प्रान्तों की सरकार के बीच में हुये ठेके के अनुसार, अर्थात शासन विधान की शर्तों के अनुसार बाध्य करने तथा किसी भी सरकार को उसके अधिकारों का अतिक्रमण करने से रोकने के लिये न्यायालय की आवश्यकता होती है। परन्तु कौनसा न्यायालय यह निर्णय करे कि विधान के अनुकूल सब सरकारें व्यावहार कर रही हैं और उनके कानून वैध (legal) हैं या नहीं ? कौन न्यायालय विधान की सर्वप्रभुता की रक्षा करेगा, कौन उसकी व्याख्या करेगा और कौन सा न्यायालय इसे इनके मौलिक तत्वों के आधार पर व्यापक रूप देगा ? यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रान्तीय या संघ सरकार के आधीन रहने वाला न्यायालय इस काम को सुचारु रूप से नहीं कर सकता, न उसके निर्णयों का कोई मान होगा। इसलिये विधान में ही एक स्वतंत्र न्यायालय के बनने का आयोजन कर दिया जाता है। इसको सर्वोच्च नयायालय (Supreme Court) कह कर पुकारा जाता है जो सरकारों के आपस के झगड़े निबटाता है और उपर्युक्त दूसरी बातें भी करता है। इस न्यायालय के अधिकार शासन विधान में ही स्पष्ट तथा वर्णित रहते हैं। उन अधिकारो को विधान का संशोधन करके भले ही बदल दिया जा सकता है परन्तु किसी प्रान्त अथवा केन्द्र की सरकार उन्हें नहीं बदल सकती। जिस विधान से प्रान्तों अथवा केन्द्र की सरकारों को अपने अपने अधिकार और शक्तियां प्राप्त हैं उसी विधान से सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार और शक्ति प्राप्त होती है। किसी भी एकिक शासन में

न्यायालय की इस प्रकार की स्वतंत्रता हम नहीं पाते। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय ही एक ऐसी संस्था है जिसके रहने से संघ शासन चल सकता है। सब संघशाननों में सर्वोच्च न्यायालयों ने बड़े महत्व पूर्ण कार्य किये हैं। उदाहरणार्थ निहित शक्तियों का सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादन किया था।

घ-सम्बन्धोच्छेद का सिद्धान्त—संघ शासन में राज्यों का सम्मिलन होता है। वे राज्य सम्मिलन से पूर्व या तो पूर्ण स्वतंत्र होते हैं या अर्धस्वतंत्र। यह सम्मिलन कई प्रकार का हो सकता है। इस सम्मिलन में मिलने वाली इकाइयाँ समान पदस्थ रह सकती हैं, बिलकुल एक दूसरे के आधीन रह सकती हैं या कुछ बातों में आधीन और कुछ में स्वतंत्र या समान पदस्थ हो सकती हैं। यह सम्मिलन चिरकालीन या अल्पकालीन हो, इस सम्मिलन में से निकलना सुकर या दुष्कर हो या पृथक होना सम्भव ही न हो। यह सम्मिलन पृथक पृथक इकाइयों ने अपने अपने स्वार्थसाधन के लिये किया हो या यह सम्मिलित आवश्यकताओं के कारण अनिवार्य वा सामूहिक निष्ठा से प्रेरित हुआ हो। राजनैतिक सम्मिलनों या संघों के विविध प्रकारों का वर्णन ऊपर ही हो चुका है। अब हमें इस बात पर विचार करना है कि संघ शासन में संघ कहां तक अभंगनाय है, अर्थात् संघ बनाने वाली इकाइयों को संघ से सम्बन्धोच्छेद कर पृथक होने का अधिकार कहाँ तक है।

इस सम्बन्ध में दो विरोधी मत हैं। एक ओर तो उन लोगों का मत है जो यह कहते हैं कि उपराष्ट्र या प्रान्त संघ की स्थापना के पूर्व पूर्ण-सत्तात्मक स्वतंत्र और एक दूसरे से पृथक इकाई थे। वे अपनी इच्छा से संघ में शामिल हुये और शामिल होने का अभिप्राय यह था कि संघ में रह कर वे कुछ सुविधायें प्राप्त करेंगे। उनका कहना है कि ज्योंही ये उपराष्ट्र यह अनुभव करें कि संघ में रहने से उनको कोई लाभ नहीं है उनको संघ से पृथक होने का अधिकार है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका में इस मत के प्रतिपादक वे लोग थे जो उपराष्ट्रों के अधिकारों की श्रेष्ठता के समर्थक थे। उनकी दृष्टि में संघ के अधिकार उपराष्ट्रों के अधिकारों से गौण हैं। इस मत के प्रतिपादकों में प्रमुख जोन कलहाउन थे। ये लोग कैन्चुकी और विर्जिनया में संघ स्थापित होते समय जो प्रस्ताव पास हुये थे उनकी भाषा का सहारा लेकर यह कहते थे कि उपराष्ट्र संघ स्थापना के पूर्व जिस इकाई अवस्था में थे उसी रूप से वे संघ में आये और इसलिये संघ में सम्मिलित होने के पश्चात् भी

उनकी सत्ता में कोई अन्तर नहीं हुआ और संघ में वे ज्यों के त्यों अलग अलग इकाई के रूप में सुरक्षित हैं। अमरीका में जब पहिली बार सम्बन्धोच्छेद का यह प्रश्न उठा तो उसको तत्कालीन विदेशियों व राजविद्रोह से सम्बन्धित अधिनियमों को रद्द करके टाल दिया। पर जब सन् १८१७ का युद्ध हुआ और फिर सन् १८२८ में जब काँग्रेस ने विदेशी व्यापार पर कर लगाने का निश्चय किया जिससे दक्षिणी कैरोलिना को हानि होती थी तो यह प्रश्न फिर उपस्थित हुआ। दोनो बार समझौता होगया और यह विषय टाल दिया गया। कोई निश्चित निबटारा नहीं हो सका।

दूसरे मत के प्रतिपादकों में मुख्य स्थान डेनियल वैब्स्टर (Daniel Webster) का है। इन लोगों का यह कहना था कि सारे देश के निवासियों ने मिल कर संघ की स्थापना की थी न कि पृथक पृथक राज्यों ने। इस आधार पर वे कहते थे कि उपराष्ट्रों को संघ शासन के कानूनों को शून्य करने का या संघ से सम्बन्ध तोड़ने का कोई अधिकार नहीं है। ये अपने उस मत के समर्थन में, जिससे वे संघ सरकार के अधिकारों को श्रेष्ठ और सर्वोपरि मानते थे, १७८७ के संघ विधान की प्रस्तावना को सामने उपस्थित करते थे। इस प्रस्तावना में लिखा था "हम संयुक्त राज्य अमरीका के निवासी एक सुदृढ़ व अधिक पूर्ण संघ की स्थापना के लिये, न्याय प्रतिष्ठा के लिये, घरेलू शान्ति के लिये, सार्वजनिक सुरक्षा के लिये और अपने आपको व अपनी सन्तान को स्वतंत्रता का सुख प्राप्त कराने के लिये इस संघ विधान को दृढ़ संकल्प होकर संयुक्त राज्य अमरीका के लिये अँगीकार करते हैं।" सन् १८६१ में जो गृह युद्ध (Civil War) हुआ उसमें यही प्रश्न उपस्थित था। दक्षिणी उपराष्ट्र दास प्रथा के सम्बन्ध में राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन, के दृष्टिकोण से सहमत न थे। लिंकन दास प्रथा को तोड़ना चाहते थे पर दक्षिणी उपराज्यों को इस दासप्रथा से बड़ा लाभ था। उनकी आर्थिक सम्पन्नता इसी दास प्रथा पर निर्भर थी। उत्तरी उपराष्ट्र इस प्रथा के विरुद्ध थे और राष्ट्रपति से सहमत थे। अन्त में झगड़ा यहाँ तक बढ़ा कि युद्ध हुआ, दक्षिणी उपराज्यों को हार माननी पड़ी और उनको संघ में उनकी इच्छा के विरुद्ध रहना पड़ा। इस प्रकार इस प्रश्न का निबटारा बल प्रयोग से होगया पर तर्क से न हो पाया। स्विट्जरलैंड में भी सन् १८४७ में कैथोलिक धर्मावलम्बी कैन्टनों ने जब संघ शासन की आधीनता को मानने से इन्कार किया और संघ से अलग होना चाहा तो सौन्दरबन्द (Sonderbund) के युद्ध से इस समस्या का समाधान हुआ। पृथक होने वाले प्रान्तों की सेना को संघ सेना के सेनाध्यक्ष जनरल

ब्यूफर ने कड़ी हार दी और इस प्रकार उन्हें संघ से अलग होने से रोका। उस समय वहाँ भी बलप्रयोग से ही समस्या सुलझाई गई। पर उसके पश्चात् सन् १८४७ और सन् १८७४ में संघ शासन विधान में संशोधन करके इन पृथक होने की इच्छा करने वाले प्रान्तों की बहुत सी शिकायतें दूर कर दी गईं।

सम्बन्धोच्छेद के सिद्धान्त की बड़े बड़े राजनीतज्ञों ने कड़ी आलोचना की हैं। अमरीका के न्यायाधीश स्टोरी के अनुसार उपराज्यों या प्रान्तों को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं है और इस प्रकार वे संघ को समाप्त नहीं कर सकते। इसका कारण वे यह बतलाते हैं कि संघ शासन के शान्ति पूर्वक स्थापित रहने से सब अधिकारी साझीदारों के प्रमुख हितों की रक्षा व पोषण होता है। उनके मत से संघ के साझीदार राज्य नहीं पर प्रजा है और प्रजा का हित शान्ति और सुव्यवस्था में ही है उनका कहना था कि "यदि व्यक्तियों व उपराज्यों के निजी अधिकारों में हस्तक्षेप किया जाता है तो व्यक्तिगत अधिकारों व सम्पत्ति की रक्षा इसी से हो सकती है कि उपयुक्त न्यायालय में पुकार की जाय। यदि शासन के द्वारा बनाये हुये इन न्यायलयों में पुकार की जाय और सुनवाई न हो तो जनता के बहुसंख्यकों की नैतिक भावना और सच्चाई का सहारा लिया जाय।" मैकलोच (McCulloch) और (Maryland) के बीच मुकदमे में प्रसिद्ध न्यायाधीश मार्शल ने भी ऐसे ही विचार प्रकट किये थे। सरकार जनता से निस्सारित होती है, जनता के नाम से ही उसका निरुपण और स्थापना होती है, जब उपराज्यों ने जनता के प्रतिनिधियों को सम्मेलन में बुलाया और उनके सामने विधान रखा उससे ही यह स्पष्ट था कि उपराज्यों ने तो अपने पूर्णसताधारी संगठित रूप से विधान को पहिले ही स्वीकार कर लिया था। सम्मेलन बुलाकर उनके सामने विधान को स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करने के कार्य में ही राज्यों की स्वीकृति निहित थी। परन्तु उसके पश्चात जनता को अधिकार था कि वह विधान को स्वीकार करती या रद्द कर देती। जनता का निर्णय अन्तिम निर्णय होता। इस निर्णय का सरकारों द्वारा अंगीकार करना आवश्यक नहीं था, न प्रान्तीय सरकारें उसे अस्वीकृत कर सकती थीं। जब विधान इस प्रकार अभिस्वीकृत हो गया तो वह पूर्ण आबद्धकारी हो गया और उपराज्यों को सत्तायें उससे पूर्णतया बाध्य हो गईं.....इसलिये संघ सरकार निश्चय ही जनता की सरकार हैं और वह वास्तव में, रूप और तत्व दोनों के देखते हुये जनता से ही निस्सरित

हुई है। जनता ने ही इस सरकार को इसके अधिकार सौंपे हैं और यह सरकार बिना किसी की मध्यस्थता के अपनी जनता पर इन अधिकारों का उनके ही कल्याण के लिये प्रयोग करेगी।*

स्विट्ज़रलैंड में विधान (१९७४) का पहिला अनुच्छेद इस प्रकार है "स्विट्ज़लैंड के पूर्ण सत्ताधारी केन्टनों की जनता इस संघ में सम्मिलित होकर स्विस संघ का निर्माण करती है।" इसी प्रकार जर्मनी के सन् १९१९ के विधान में यह कहा गया है कि सारे शासनाधिकार जनता से उद्भूत हैं। संघ की लोकसत्ता के सम्बन्ध में इन स्पष्ट उल्लेखों के अतिरिक्त, हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि किसी भी शासन विधान में स्वसृजित् राज्य का विलयन करने वाली धारा नहीं रक्खी जा सकती न विधान इस विलयन की आज्ञा ही दे सकता है।

"जब कभी कोई एक या एक से अधिक उपराज्यीय सरकारें संघ में अपने आप को अल्पसंख्यक दल में पावें और उनको यह प्रतीत हो कि उनके हितों की किसी केन्द्रीय सरकार के कानून से भारी हानि हो रही है, तो इस अल्पसंख्यक दल को प्रार्थना करनी चाहिये और बातचीत के द्वारा अपना मत प्रकाशित कर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह कानून उसके अनुकूल बना दिया जावे। पर जब एक बार संघ की सारी जनता ने उस केन्द्रिय संस्था की स्थापना कर दी तब उस सरकार को संघ से पृथक होने का कोई भी अधिकार नहीं है क्योंकि यदि दुर्दान्त उपराज्यों को पृथक होने का अधिकार दे दिया जाय तो सारे राज्य संगठन की स्थिरता ही जाती रहती है और निश्चय पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि इस विच्छेद का क्या अन्त हो। जिस संघ में सब मेल कराने वाले हितों को व मार्गों को दूर कर व उनके विच्छेद कराने वाले कारणों से अधिक शक्तिशाली और पुष्ट बनाकर संघ शासन की स्थापना की हो वहाँ प्रायः ऐसे झगड़े नहीं उठ सकते जिनके कारण कोई उपराज्य संघ से अपना सम्बन्ध तोड़ने पर बाध्य हो जावे। असल में यदि कोई संघ किसी उपराज्य के प्रथक होने से भंग हो जाय तो यह समझ लेना चाहिये कि संघ वास्तव में संघ न था। केवल एक मित्र संगठन था।"[१] संघ शासन की अभंगता अब सभी स्वीकार करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त होने से भारत में संघ साशन की स्थापना के सम्बन्ध में जब बातचीत चली थी तो उस समय बर्मा को भारतीय संघ में शामिल करने के प्रश्न पर भी विचार

---

* थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ़ माडर्न गवर्नमेंट, पृष्ठ ८२८, फुट नोट १

[१] फेडरल पौलिटी, पृ० २४–२५

हुआ। उस समय यह स्पष्ट कर दिया गया था कि एक बार संघ में आने के पश्चात् बर्मा संघ से अलग न हो सकेगा।

संघ शासन के अनुकूल हेतु—जिन परिस्थितियों व इच्छाओं के वश में होकर कई छोटे राज्य संघ में संगठित होने को तैयार होते हैं, या कोई एक बड़ा राज्य अपने को छोटे छोटे भागों में विभाजित कर संघ शासन प्रणाली को अपनाने पर उतारू होता है, उनका अध्ययन बड़ा महत्वशाली है। संघ शासन के इतिहास में यह देखने को मिलेगा कि भिन्न भिन्न कारणों से संघ शासन स्थापित हुये। इन कारणों की विभिन्नता विशेष परिस्थितियों और हेतुओं पर निर्भर रहती है। हम यहाँ कतिपय ऐसे मुख्य मुख्य साधनों पर विचार करेंगे जिन्होंने संघ शासन की स्थापना में योग दिया है।

भौगोलिक निकटता—यदि सम्मिलित उपराज्य एक दूसरे से जुड़े हुये न हों तो संघ स्थायी रूप से सुदृढ़ नहीं रह सकता। राज्यों में सहकारिता का भाव तभी पैदा होता है जब वे एक दूसरे के सान्निध्य में रहते है क्योंकि तब उन्हें बहुत सी बातों में एक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। "पास पास रहने से ऐसा अप्रत्यक्ष पर महत्वशाली सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो साधारणतया उन दो राज्यों में नहीं होता जो एक दूसरे से दूरी पर स्थित हो।"* हैन्सियाटिक लीग (Hanseatic League) इसीलिये बहुत समय तक जीवित न रह सकी क्योंकि इसमें सम्मिलित नगर इधर उधर एक दूसरे से दूर दूर बिखरे हुये थे। न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया के संघ में इसीलिये शामिल न किया जा सका क्योंकि विधान निर्माताओं की बलवती इच्छा के होते हुये भी एकीकरण की प्रवृत्तियाँ समुद्र की दूरी से ढीली पड़ गईं और वह टापू संघ में शामिल न हुआ। इन्हीं कारणों से न्यूफाउन्डलैंड ने कनाडा के संघ में शामिल होने का निश्चय न किया। हैमिल्टन ने प्रसन्न होकर कहा था कि "अमरीका एक दूसरे से बिलकुल भिन्न व पृथक स्थल समूहों से मिलकर नहीं बना है पर स्वतंत्रता की इस पश्चिमी सन्तान का देश एक विस्तृत, जुड़ा हुआ और उपजाऊ भूमि प्रदेश है।"[1] दक्षिणी अफ्रीका के संघ बनने में आर० एच० ब्रान्ड ने भी इन्हीं कारणों को हेतु बतलाया था: "देश यद्यपि विस्तृत है पर प्रकृति से ही इसको इकाई बने रहने का सौभाग्य प्राप्त है। उसकी बनावट एकसी है और इसके एक भाग व दूसरे भाग में कोई प्राकृतिक रुकावटें

---

* फेडरल पोलिटी, पृ० १०२।

[1] फेडरलिस्ट नं० २।

नही हैं। यहाँ के निवासी एक राजनैतिक संगठन में रहते हैं और युद्ध से पहिले भी रहते थे।" *

(ii) **आर्थिक लाभ**—संघ शासन बनाने में आर्थिक लाभ ने बड़ा योग दिया है। बहुत से संघो के निर्माण का आधार ही यही था कि उसकी स्थापना से व्यापार, मुद्रा, कर, आने जाने के मार्ग आदि के सम्बन्ध में कानूनों की समानता होगी और निरर्थक रुकावटों के हट जाने से इनके द्वारा आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी। अमरीकन राज्यों का संघ बनने से जो आर्थिक लाभ होंगे उन पर विचार करते हुये हैमिल्टन ने लिखा था कि "व्यापार की शिरायें प्रत्येक भाग में भरी पूरी रहेंगी और प्रत्येक भाग की वस्तुओं के विविध बहाव से इनमें शक्ति और पुष्टता आवेगी। विविध राज्यों के उत्पादन की विभिन्नता से व्यापारिक उद्योग के लिये विस्तृत क्षेत्र खुल जायगा। कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, हैन्सियाटिक लीग और जर्मन संघ के निर्माता संघ से प्राप्त आर्थिक लाभों से अच्छी प्रकार विज्ञ थे। इन सब संघ शासन विधानों में ऐसी धारायें है जो इस बात की पर्याप्त समर्थक हैं। इस बात के समझने में कल्पना शक्ति को अधिक उड़ान नही करनी पड़ती कि संघ शासन से एक विस्तृत क्षेत्र खुल जाता है, क्रय विक्रय की सुविधायें बढ़ जाती हैं और सब सदस्य राज्यों को एक दूसरे से व्यापार में अधिक आसानी होती है। इस सुविधा का क्या महत्व है, यह बात उन कठिनाइयों से प्रकट होजायगी जिनका सामना व्यापारी लोग करते हैं जब उन्हें एक ही देश में स्थित एक राज्य की सीमा में पैर रखते ही भिन्न मुद्रा, तौल आदि के माप और भिन्न व्यापार सम्बन्धी नियमों को बरतना पड़ता है। इसलिये यह स्पष्ट है कि आर्थिक सुविधाओं का लाभ संघ शासन बनने में बहुत कुछ कारणी भूत सिद्ध हुआ है।

(iii) **राजनैतिक हेतु**—संघ शासन स्थापित करने से जो राजनैतिक लाभ होते हैं उन्हें सभी जानते हैं। इन राजनैतिक लाभों में विशेषतया बाहरी आक्रमणों से रक्षा, वैदेशिक सम्बन्धों में सुभीता और शासन व्यय में बचत यही उल्लेखनीय है। इनके कारण बहुत से संघ शासनों की रचना हुई। प्राचीन काल में यूनान के नगर राज्यों ने पहिले मैसीडोनिया और उसके पश्चात् रोम की बढ़ती हुई शक्ति से अपनी रक्षा करने के लिये और समय पड़ने पर उसका सामना करने के हेतु अपना एक संगठन बनाया। इटली में लम्बार्ड लीग और स्विट्जरलैंड में संघ की स्थापना आस्ट्रियन सम्राट का

* यूनियन आफ साउथ अफ्रीका, पृ० ८६

सामना करने के लिये हुई थी। स्पेन के आक्रमण को रोकने के लिये फ्राँस के उत्तर में नैदरलैण्डस संघ (Netherlands Confederacy) बनाया गया था। अमरीका में हैमिल्टन ने ठीक ही कहा था कि "संघ से प्राप्त सुखों की अनुभूति की सुदृढ़ कल्पना ने लोगों को बहुत प्राचीन समय में ही संघ शासन स्थापित करने के लिये और उसकी रक्षा कर उसे चिरस्थायी बनाने के लिये प्रेरित किया था"।* आस्ट्रेलिया में राजनैतिक भावना से प्रेरित होकर स्वतंत्र उपनिवेशों ने संघ की स्थापना की। "फेडरलिस्ट" में जे (Jay) ने अमरीकन जनता से अपील करते समय उनका ध्यान यूरोपियन राज्यों की साम्राज्य लोलुपता की ओर आकर्षित किया और उससे सामना करने के लिये अपने आपको संघशासन में संगठित कर शक्तिशाली बनाने पर ज़ोर दिया। उन्होंने घोषित किया "कि यदि वे (यूरोपियन राज्य) देखेंगे कि हमारी राष्ट्रीय या संघ सरकार योग्य सामर्थ्यवान है और उसका शासन सुव्यवस्थित है, हमारे व्यापार का बुद्धिमानी से नियमन होता है, हमारी सेना सुशिक्षित और सुसंगठित है, हमारी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है और हमारे आय के साधनों की भली भाँति व्यवस्था होती है, हममें दूसरों का विश्वास जमा हुआ है, हमारी प्रजा स्वतंत्र सुखी और एकमत है, तो वे हमें अप्रसन्न करने के बजाय हमसे मित्रता करने के लिये अधिक उत्सुक होंगे। इसके विपरीत यदि वे दूसरी ओर यह देखेंगे कि हमारा शासन ढीला है और हम अयोग्य सरकारों की अनाथ प्रजा हैं (जहाँ प्रत्येक राज्य ग़लत और ठीक अपनी सुविधा के लिये जो चाहे सो करता हो) या हम तीन या चार स्वतंत्र और शायद आपस में लड़ने वाले राज्य समूहों में अपने आपको बाँटे हुये हैं जिसमे से कोई ब्रिटेन की ओर झुका हुआ है, दूसरा फ्राँस की ओर और तीसरा स्पेन की ओर, जिससे ये तीनों मिलकर हमको आपस में लड़ाते रहें तो इन लोगों की दृष्टि में अमरीका का कैसा दयनीय रूप जचेगा। कितनी सुगमता से वह उन लोगों की घृणा का ही विषय न बनेगा परन्तु उनके अपमान का शिकार भी बन जायगा और कितने थोड़े समय के पश्चात हमारा मंहगा अनुभव पुकार पुकार कर कहेगा कि जब कोई कुटुम्ब या जन समूह फूट का शिकार बनते हैं तो वे किस प्रकार अपना नाश अपने ही हाथ कर बैठते हैं।"[१] अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बड़े राज्य की जो सुनवाई होती है वह छोटे राज्य की नहीं होती। इस कारण भी छोटे छोटे राज्य मिलकर बड़ा राज्य बनाने के लिये

---

* फेडरलिस्ट नं० २

[१] फेडरलिस्ट नं० ४, नं० ३ भी देखिये।

तैयार रहा करते हैं। इसके अतिरिक्त संघ शासन में खर्चे की बचत भी रहती है क्योंकि संघ स्थापित होने से उपराज्यों को अलग अलग निजी स्थल, जल और वायु सेना रखने की आवश्यकता नहीं रहती और न विदेशीय मामलों में उन्हें अपने निजी दूत व दूतावास रखने पड़ते हैं। यह काम और इसका खर्च सब संघ-सरकार पर छोड़ दिया जाता है जो सब उपराज्यों की रक्षा के लिये केवल एक राष्ट्रीय सेना का संगठन करती है।

जर्मन राजनीतिज्ञ जब वीमार (Weimar) में युद्ध के पश्चात् विधान बनाने के लिये एकत्रित हुये तब उनके सम्मुख यही राजनैतिक हेतु थे। उनमें एक ऐसा दल था जो रियासतों के विलगीकरण का समर्थक था जिससे प्रशिया छिन्न भिन्न हो जाये। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये ही उन्होंने संघ-शासन की स्थापना की। भविष्य में भारतवर्ष का भी शासन संघ-शासन ही रहेगा। जब पहिले पहिल सन् १९३५ के शासन विधान के लिये बातचीत चल रही थी तभी यह निश्चय हो गया था कि भारतवर्ष में संघ शासन की स्थापना होनी चाहिये जिसमें रियासतें और प्रान्त दोनों शामिल हों। यह विचार किया जाता था कि संयुक्त-भारतवर्ष विदेशी आक्रमणों से अपनी रक्षा अच्छी तरह कर सकेगा, एक सुदृढ़ व स्थिर वैदेशिक नीति अपना सकेगा और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रभावशाली बनने में सफल हो सकेगा। यदि ऐसा न होकर उसके कई स्वतंत्र इकाई राज्य होंगे तो उपर्युक्त सुविधायें न रहेंगी, न रक्षा हो सकेगी, न संसार में पृथक पृथक छोटे राज्यों का कोई प्रभाव वा मान होगा।

जाति सम्बन्धी और सांस्कृतिक हेतु—जिस देश में एक ही जाति व संस्कृति वाले लोग रहते हों, एक ही धर्म के मानने वाले हों और एक ही भाषा को बोलने वाले हों वहाँ एकिक शासन का सफलीभूत होना सम्भव है। पर जहाँ धर्म, भाषा व जाति की अनेकता है वहाँ एकिक शासन इस विभिन्नता को और भी अधिक चमका देता है जिससे देश की उन्नति रुक जाती है। देश में स्थित भिन्न भिन्न जाति, धर्म व संस्कृति वाले जन समूहों व प्रान्तों को यदि एक सूत्र में बाँधकर रखना ही श्रेयस्कर समझा जाय तो संघात्मक शासन प्रणाली सबसे उपयुक्त सिद्ध होगी। कनाडा में ऐसी ही स्थिति का सामना करने के लिये १८६७ में संघ शासन स्थापित किया गया था। वहाँ फ्रैंच और अंग्रेज़ दो बड़ी प्रमुख जातियाँ थी जिनमें बड़ी पुरानी फूट चली आ रही थी और जिनका रहन-सहन, विचार-शैली, भाषा व धर्म एक दूसरे से भिन्न थे। संघ-शासन में इस विभिन्नता को मान लिया गया और उसको उचित स्थान

देकर एक संयुक्तराज्य की स्थापना कर दी गई। इससे पूर्व एकिक शासन प्रणाली में उनकी भाषा, संस्कृति और जाति की विभिन्नता पग पग पर शासन के कार्य में रोड़ा अटकाती थी और शासन के शान्ति पूर्वक संचालन करने में बाधक सिद्ध हो रही थी। सन् १८६७ के नार्थ अमेरिका एक्ट के पास होने से ऐसे संघ-शासन की स्थापना की गई जिससे इन दोनों जातियों में बहुत कुछ सामञ्जस्य पैदा हो गया। यही बात स्विट्ज़रलैण्ड के बारे में भी सत्य सिद्ध हुई। वहाँ भिन्न भिन्न केन्टनों में फ्राँसीसी, जर्मन और इटैलियन लोग रहते हैं और अपनी अपनी भाषा बोलते हैं। उनका धर्म भी एक दूसरे से भिन्न है। ऐसी अवस्था में इन केन्टनों को एकिक शासन सूत्र में बाँधकर सुव्यवस्थित रखना असम्भव था। उनकी पारस्परिक विभिन्नता की ओर आँख न मूंद कर उसका उचित आदर किया गया और फिर संघात्मक सिद्धान्तों के आधार पर उनमें सामञ्जस्य स्थापित कर १८७४ ई० के स्विस संघ की स्थापना कर दी गई। जर्मन प्रजातंत्र के संघ शासन विधान ने जर्मन उपराज्यों की विभिन्न आवश्यकताओं को उचित मान देकर उनको पूरा करने का सफल प्रयत्न किया। भारतवर्ष में संघ शासन स्थापित करने में भाषा, धर्म और संस्कृति की अनेकता भी एक कारण है।

संघ-शासन के गुण व दोष—संघ-शासन प्रणाली का मूल्याङ्कन करने में राजनीतिज्ञों का भिन्न भिन्न मत है। कुछ राजनीतिज्ञ इसे दोषपूर्ण बताते हैं और कहते हैं कि इस प्रणाली से सरकार निर्बल रहती है क्योंकि प्रजा की राज्यनिष्ठा दो सरकारों के प्रति विभाजित रहती है।

आचार्य डायसी (Prof. Dicey) की आलोचना—आचार्य डायसी का कहना है कि संघ-शासन में या तो उपराज्यों में से एक प्रबल राज्य इतना प्रमुख सम्पन्न हो जायगा कि उपराज्यीय-समानता का उल्लंघन कर दूसरों पर अपना प्रभुत्व जमा लेगा या बहुत से छोटे उपराज्य मिल कर, अपने में से जो सबसे बड़ा और शक्ति शाली सदस्य राज्य होगा, उस पर संघ के करों को बढ़ा कर व दूसरे उपायों से संघ का सारा बोझ उसी पर डाल देंगे और उससे स्वयं बच जायेंगे। पर व्यवहार में यह देखा गया है कि यदि संघ शासन-विधान को होशियारी से बनाया जाय तो इन दोनों अनिष्टों की आशङ्का नहीं रहती। यह सच है कि इस बात का ध्यान युद्ध से पूर्व जर्मन साम्राज्य के शासन विधान बनाने में नहीं रखा गया। प्रशिया जो सबसे प्रभुत्व शाली सदस्य राज्य था दूसरे छः उपराज्यों की सहायता से बचे हुये छोटे उपराज्यों पर अपना प्रभुत्व जमाये रहता था और ये बिचारे शक्ति हीन और असहाय बने

रहते थे। उस शासन विधान की इस कमी को देखकर लोवेल (Lowell) ने कहा था कि इन राज्यों में जो समझौता था वह वैसा ही था जैसा कि एक सिंह, आधे दर्जन लोमड़ियों और बीस चूहों में हो। आस्ट्रिया हँगरी के संघ में हंगरी अपनी संगठित मैगायार प्रजा के बल पर तीस प्रति सैकड़ा संघ शासन का खर्चा देने के बदले संघ की सत्तर प्रतिशित शक्ति का उपभोग करता था। आस्ट्रिया का क्षेत्रफल हंगरी से अधिक था और उसकी जनसंख्या भी हँगरी की जनसंख्या से अधिक थी, पर भाषा-विभेद और जाति-भेद के कारण आस्ट्रिया की शक्ति छिन्न भिन्न रहती थी।

आचार्य डायसी ने दूसरा दोष यह बतलाया है कि संघ-शासन में एक निष्ठा का अभाव रहने से राज्य की इकाइयों में बराबर तनातनी बनी रहती है और प्रायः मुकदमेबाजी तक की नौबत आजाती है। संघ-शासन के विरुद्ध इस अभियोग में ऊपरी दृष्टि से देखने पर बहुत कुछ तथ्य दिखाई देता है, पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यह कोई अनिवार्य दोष नहीं है। यदि संघ-शासन-विधान को चतुराई से रचा जाय तो यह दोष बहुत हद तक दूर हो सकता है और एक शक्ति शाली संघ की स्थापना हो सकती है। आचार्य डायसी आगे कहते हैं कि यदि कोई संघ सफलीभूत हुआ है तो वही जो एक कदम और बढ़ाने पर एकिक शासन का रूप धारण कर ले। इस कथन का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि संघ-शासन के सफल कार्यभूत होने से विभिन्नताऐं मिटकर एकता स्थापित हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संघ-शासन में ऐसी राजनैतिक संस्था की स्थापना नहीं की जाती है जो अपनी विरोधी-शक्तियों को उत्पन्न कर अपने ही बल को कम कर दे, पर उसके द्वारा एक ऐसे शक्ति शाली राज्य की उत्पत्ति होती है जो वास्तव में एकिक शासन न होते हुये ऊपर से ऐसा ही दिखाई दे।

ब्रॉड की आलोचना—संघ-शासन को दोषपूर्ण बतलाने वालों में ब्रॉड (Brand) का नाम भी लिया जाता है। उनका कहना है कि मानव-निर्बलता को अपरिहार्य मान कर संघ-शासन प्रणाली अपनायी गई है। वे आगे चलकर कहते हैं कि इससे अच्छी दूसरी शासन प्रणाली यदि न मिल सके तो संघ-शासन प्रणाली के स्वीकार कर लेने के सिवाय चारा ही क्या है, पर इसकी असुविधायें स्पष्ट हैं। इससे सरकार के अङ्गों के टुकड़े हो जाते हैं और उसके फलस्वरूप उनमें तनातनी और निर्बलता आजाती है। इस प्रणाली में एक नये देश का विकास एक संकुचित मर्यादा के भीतर ही हो सकता है।"* इस

* दी यूनियन आफ साउथ अफ्रीका, पृ० ४६–४७

कथन से यह तो मान ही लिया गया है कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में संघ शासन की बड़ी उपयोगिता होती है क्योंकि इससे यह अभिप्राय स्पष्ट होता है कि जहाँ एकिक शासन असम्भव हो वहाँ संघ शासन ही दूसरी शासन प्रणाली है जो सफल हो सकती है।

आचार्य लास्की (Laski) की प्रशंसा—संघ शासन की प्रशंसा भी बड़े कुशल राजनीतिज्ञों ने की है। उनमें आचार्य लास्की का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनका तो यहाँ तक कहना है कि यदि सामाजिक संगठन को यथेष्ट बनाना है तो उसका रूप संघात्मक ही होना चाहिये (अर्थात् स्थानीय वैयक्तिक स्वतंत्रता और सार्वजनिक मामलों में व्यवस्था की समानता)। इस संघात्मक बनावट में केवल 'मैं और मेरा राज्य' या 'मेरी जाति और मेरा राज्य' ये ही सम्बन्ध नहीं होते पर ये सब और उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी इसी के अन्तर्गत रहता है।"* इसके पश्चात् वे यह कह कर इस कथन को समाप्त करते हैं कि "क्योंकि समाज संघात्मक है, राज्यतंत्र भी संघात्मक ही होना चाहिये।"[१] उनके कथनानुसार "राष्ट्र ही सामाजिक संगठन की अन्तिम इकाई नहीं है। इसकी अभिसत्ता (Sovereignty) मानव समाज के ऐतिहासिक अनुभव का केवल एक रूप है और जैसे जैसे यह अनुभव निखरता जाता है और संसार की एकता का दबाव पड़ता जाता है यह निरर्थक व असामयिक सिद्ध होती जाती है। यह ठीक है कि किसी भी राज्य को उन सब विषयों में स्वतंत्रता मिलनी चाहिये जिनका प्रभाव उस राज्य के निजी क्षेत्र तक ही समिति हो परन्तु होता यह है कि ज्योंही वह अपनी इच्छा को कार्यान्वित करना आरम्भ करता है उसके स्थानीय हितों और उससे बाहर की दुनियां के हितों में टक्कर होने लगती है।"[२] इसमें संदेह नहीं कि अब दुनियाँ अन्तर्राष्ट्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक सहयोग के क्षेत्र में पदार्पण कर रही है और अब कोई बिरला ही साहसी पुरुष मिलेगा जो वर्तमान युग में किसी राज्य को सम्पूर्ण सत्ताधारी कहने का दावा करेगा।

संघ शासन का अनुभव क्या बतलाता है—व्यवहार में संघ-शासन उतना निर्बल सिद्ध नहीं हुआ है जैसा आचार्य डायसी ने बतलाया है। स्विट्ज़रलैंड के केन्टन यदि संघीभूत न हुये होते तो सर्वदा वे यूरोप की अशान्ति

---

* ग्रामर आफ पौलिटिक्स पृ० २६२

[१] ,, ,, ,, पृ० १७१

[२] ,, ,, ,, पृ० २८५

का कारण बने रहते। इनके सम्बन्ध में ब्रुक्स ने ठीक ही कहा था कि जो लोग इतने भौगोलिक घेरों में विभाजित हों, जिनमें भाषा व धर्म की इतनी विभिन्नता हो और जो जाति और रीति-रिवाजों में एक दूसरे से न मिलते हों, उनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक था कि राज्य संगठन में स्थानीय स्वायत्त-शासन के लिये पर्याप्त क्षेत्र छोड़ देना चाहिये था। वास्तव में इस आवश्यकता को संघात्मक प्रणाली द्वारा पूरा कर दिया गया है और इसमें शक्ति का बहुत मात्रा में विकेन्द्रीकरण कर दिया गया है।"*

यही बात अमरीका के संयुक्त-राज्य के सम्बन्ध में सत्य है। यदि फिलाडेलफिया के शासन-विधान के निर्माता संघ शासन के सिद्धान्तों को अङ्गीकार न करते तो आरम्भ के तेरह राज्य अमरीका को शक्ति शाली प्रजातंत्र राज्य बनाने में सफल न होते। फ्रांस में शासन विधान एकिक सरकार की स्थापना करता है। क्या कोई कह सकता है कि संयुक्त-राज्य अमरीका की संघ सरकार फ्रांस की एकिक सरकार की अपेक्षा निर्बल सिद्ध हुई है। फ्रांस में तो बार बार सरकारों के बदलने से शासन में तरह तरह की अड़चनें और असुविधायें पड़ती रहती हैं। कनाडा में फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में ऐसा विरोध और झगड़ा था कि वहाँ एकिक शासन का चिरस्थायी होना असम्भव था। यदि फ्रांसीसी और अँग्रेजी कनाडा का शासन अलग अलग रहता और ये दोनों संघीभूत न हुये होते तब भी इनमें बराबर युद्ध चलता रहता। पर कनाडा के संघ-शासन ने यह सब दूर कर दिया और विविधता के बीच एकरूपता की स्थापना कर दी। सन् १९१४-१८ के युद्ध के पश्चात् जर्मनी में वीमार शासन विधान (Weimar Constitution) के निर्माताओं ने संघ शासन-पद्धति की सहायता से ही जर्मनी को टुकड़ों में बटने से बचाया और जर्मनी यूरोप में एक शक्तिशाली राज्य बना रहा।

"संक्षेप में संघ शासन पद्धति ने झगड़े मिटा दिये हैं, खण्डन रोक दिया है, द्वेष को दबा दिया है, युद्ध को रोक दिया है और संसार के विभिन्न भागों में रहने वाले अनेक जन समूहों में से शान्तिप्रिय शक्तिशाली व सम्पन्न राज्यों को जन्म दिया है। यह सब एकिक-सरकार पद्धति के अन्तर्गत न हो सकता था। यदि हम संघ शासन को, जो राज्यों के बीच समझौता, मेल जोल और शान्ति स्थापित करता है, निर्बल कहें तो ऐसा कहना उसके नाम का प्रतिवाद करना समझा जायेगा। इस शासन पद्धति ने जहाँ निर्बलता थी वहाँ बल दिया है, जहाँ द्वेष और संदेह का दौर दौरा था वहाँ शान्ति और सद्-

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विटज़रलैंड, पृ० १८

भाव की स्थापना की है और इस प्रकार जहाँ छोटे छोटे निर्बल राज्य आपस में अपने अस्तित्व के लिये एक दूसरे से लड़ भिड़ रहे थे वहां शक्ति शाली बड़े बड़े राज्य स्थापित कर दिये"।* यह ठीक है कि स्वभावसे ही एकिक शासन अधिक चिरजीवी और सुव्यवस्थित रहता है पर जहां यह शासन सम्भव न हो क्योंकि परिस्थितियां और आवश्यकतायें विशेष प्रकार की हैं, वहां संघ शासन ही निस्सन्देह श्रेणी में दूसरी सबसे अच्छी पद्धति है और कुछ विशेष परिस्थितियों के लिये तो यह वास्तव में सबसे अच्छी पद्धति सिद्ध होगी।

पाठ्य पुस्तकें

Brand—The Union of South Africa, pp. 1-50

Brooks, R.C.—Government and Politics of Switzerland, pp. 1-50

Bryce, Viscount—Constitutions (Oxford University Press)

Dicey, A. V.—Law of the Constitution. pp. LXXX—LXXXIII

Finer, Herman—Theory and Practice of Modern Government, Vol. I, chs. VIII-IX

Freeman, E. A.—History of Federal Governmen Vol. I

Hamilton, A.—The Federalist, Nos. II-XI

Laski H. T.—Grammar of Politics, ch. VII

Newton, A. P.—Federal & Unified Constitutions, Introduction.

Sharma, B. M.—Federal Polity, chs. I, III, IV

Sidwick, H.—The Development of European Polity, Lecture XXIX.

---

* फेडरल पौलिटी. पृ० १३६

अध्याय ३

सरकार के स्वरूप और कर्तव्य

"राजाओं का दैवी अधिकार बलहीन पर अत्याचारी राजपुरुषों के लिये बहाना मात्र हो, पर सरकार का दैवी अधिकार मानवोन्नति की कुञ्जी है और इसके बिना सरकारें गिरते गिरते केवल पुलिस रह जाती हैं और राष्ट्र का पतन होते होते वह केवल एक असंगत जनसमूह रह जाता है।" (डिसरेली)

सरकार प्रत्येक राज्य का अनिवार्य अङ्ग है—समाज में रहने वाले मनुष्य ने सामाजिक जीवन बिताने के लिये कई संस्थाओं को जन्म दिया है। इन संस्थाओं में राज्य सर्वग्राही और सबसे महत्वशाली संस्था है, क्योंकि इसका अस्तित्व और रूप मनुष्य के जन्म लेने से पूर्व ही निश्चित रहता है। राज्य का परिचय उसके अन्तर्गत भूमि प्रदेश से, वहां के निवासियों से व उन लोगों की उस सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक घनिष्ठता से जिससे वे एक इकाई प्रतीत होते हैं प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त राज्य का परिचायक वह संगठन होता है जिससे राजकीय जीवन नियंत्रित रहता है। इस संगठन को ही हम सरकार कह कर पुकारते हैं। राजकीय संस्था को परिचालित करना अवश्यम्भावी है। चाहे कुछ समय के लिये कोई राज्य बिना सरकार के रह भी जाय पर बिना राज्य के कोई सरकार नहीं रह सकती। सरकार और राज्य का सम्बन्ध इससे स्पष्टतया प्रकट होता है।

आधुनिक राज्यों में सरकार के विभिन्न रूप हैं—अतः सरकार वह संगठन है जिसके द्वारा किसी समाज का राजकीय जीवन परिचालित होता है। यह संगठन राज्य की नीति की रक्षा करता है और उसे व्यावहारिक रूप देता है। जीवन की समस्यायें प्रत्येक राज्य में एक समान नहीं होती। भौगोलिक स्थिति, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक, तथा परम्परा आदि की विभिन्नता ही इस असमानता का कारण रहती हैं। आधुनिक राज्यों में जो भिन्न भिन्न राज्यतंत्र प्रणाली देखने को मिलती है उसका कारण ये ही विभिन्नतायें हैं। मानव इतिहास के प्रत्येक युग में राज्यतंत्र की यह विभिन्नता रहती चली आई है और भविष्य में भी इसके विभिन्न रूप रहेंगे। हर एक राज्य में ऐसी

राज्यतंत्र प्रणाली या सरकार का रूप अपनाया जाता हैं जो उस राजकीय समाज की स्थिति में सम्भव है और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये सब से उपयुक्त सिद्ध होती है।

प्राचीनकाल में सरकारों का वर्गीकरण—यद्यपि सरकार के अनेक रूप हैं पर उनके सूक्ष्म अध्ययन की सुविधा के लिये हम उनको कुछ वर्गों में विन्यस्त कर सकते हैं। प्राचीन काल से लेकर अब तक अनेकों राजनीतिज्ञ-विशारदों ने वर्गीकरण करने का ऐसा प्रयत्न किया है। इन विचारकों में से हर एक ने अपने निराले ढंग पर यह वर्गीकरण किया है और उसके पश्चात् उन्होंने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि आदर्श राज्यतंत्र प्रणाली कौनसी है।

वर्गीकरण के दो मुख्य आधार—सब से प्रथम इस वर्गीकरण का प्रयत्न अरस्तू ने किया जिसको हम राजनीतिज्ञ विज्ञान को अध्ययन का विषय बनाने का श्रेय देते हैं। उसके वर्गीकरण के दो आधार हैं, एक संख्यात्मक और दूसरा गुणात्मक।

सरकार का संख्यात्मक वर्गीकरण—संख्यात्मक दृष्टि से अरस्तू ने राज्य-प्रशासन को संभालने वालों की संख्या के आधार पर सरकारों का वर्गीकरण किया हैं। यदि राज्यतंत्रका सारा संगठन एक व्यक्ति द्वारा या एक व्यक्ति कीइच्छानुसार परिचालित होता हो तो वह सरकार राजतंत्र है, यदि सरकार का संचालन कुछ व्यक्तियों द्वारा होता है तो उसे कुलीन-तंत्र, तथा जब बहुतों द्वारा होता है (बहुतों से अभिप्राय सारी जनता से है) तो उसे जनतंत्र कहते हैं। रोमन युग में बहुत से राजनीति-विचारकों ने इसी संख्यात्मक वर्गीकरण को अपनाया था। उनमें से पोलिबियस (Polybius) और सिसेरो (Cicero) का नाम उल्लेखनीय है, मध्ययुग में भी यही वर्गीकरण प्रचलित था।

सरकार का गुणात्मक वर्गीकरण—सरकार के विभिन्न रूपों का अध्ययन करने के लिये जब अरस्तू गुणात्मक वर्गीकरण की शरण लेता है तो यह वर्गीकरण इतना प्रभावशाली और अनुपम हो जाता है कि अच्छे अच्छे विचारक भी उसकी प्रशंसा करने से नहीं चूकते। इस वर्गीकरण की कसौटी वह उद्देश्य है जिसकी पूर्ति के लिये राज्य संगठन का कार्य रूप होता है। इसमें शासकों का अभिप्राय और इच्छा ये दोनों महत्व की वस्तुएं हैं। यदि सरकार शासितों के हित की दृष्टि से ही प्रमुखतः परिचालित होती हो तो वह सरकार साधारण कही जाती है। ऐसी अवस्था में भी उसके तीन भेद रहते हैं; यदि

एक व्यक्ति शासितों को सुख पहुँचाने और कल्याण करनेके लिये शासन करता है तो वह राज-पद या राजतन्त्र, यदि कुछ व्यक्ति शासन करते हैं तो कुलीन तन्त्र और यदि सब जनता शासन करती है तो उसे पोलिटी या बहुतन्त्र कहते हैं। इसके विपरीत यदि शासन शासकों के हितों का ही प्रमुखतः पालन करता हो तो उपर्युक्त साधारण रूपों का भ्रष्टरूप हो जाता है। इन भ्रष्टरूपों में एक व्यक्ति का शासन अत्याचारी तन्त्र (Tyranny), कुछ का शासन अल्प-जनतन्त्र (oligarchy) और बहुतों का शासन जनतन्त्र या प्रजातन्त्र कहलाता है, ऐसा प्रतीत होता है कि 'जनतन्त्र' या 'प्रजातन्त्र' नाम अरस्तू उस शासन संगठन को देता है जिसे हम आधुनिक समय में अराजकता अथवा असंयतराजतन्त्र (mobocracy) कहते हैं। इन सब रूपों में कौन सी सरकार सबसे उत्तम है इस प्रश्न का उत्तर देने में अरस्तू सरकार की दृढ़ता और स्थायित्व की ही कसौटी को अपनाता है। इस कसौटी से परखने पर "जिस राज्य में निर्धनों की संख्या धनिकों से बहुत अधिक हो वहाँ प्रजातन्त्र सबसे उत्तम है, जहाँ धनिकों की संख्या की कमी उनकी शक्ति और सम्पत्ति से पूरी हो जाती हो, वहाँ अल्पजनतन्त्र और जहाँ मध्यवर्ग वालों की अधिकता हो वहाँ पोलिटी या बहुतन्त्र, सबसे उत्तम सरकारें होती हैं।" पोलिबियस (Polybius) और सिसेरो (Cicero) दोनों ने अरस्तू के वर्गीकरण को अपनाया था पर उनके अनुसार वह राज्यतन्त्र प्रणाली सबसे उत्तम है जिसमें एकतन्त्र (या राजतन्त्र), कुलीनतन्त्र और जनतन्त्र के तत्वों का मिश्रण हो। उन्होंने इसी लिये रोमन पद्धति की बड़ी प्रशंसा की है जिसमें कौंसुल (Consuls) राजतन्त्र के तत्व के परिचायक थे, सोनेट या परिषद् कुलीनतन्त्र तत्व की परिचायक थी और लोक सभायें जनतन्त्र या प्रजातन्त्र तत्व की परिचायक थीं।

आधुनिक सरकारों का हम संख्यात्मक या गुणात्मक वर्गीकरण नहीं करते। आधुनिक राज्यों में राज्यतन्त्र प्रणालियाँ इतनी पेचीदा और अनेक प्रकार की हैं कि उनका वर्गीकरण एक भिन्न आधार पर करना परमावश्यक है।

सरकारों का आधुनिक वर्गीकरण—वर्तमान सरकारों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है, राजतन्त्र या प्रजातन्त्र। राजतन्त्र के भी दो विभाग होते हैं। जब राजा अपनी प्रजा के अधिकारों और स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुये उनका अधिक से अधिक हित करने के उद्देश्य से शासन करता है तो वह लोकप्रिय राजतन्त्र कहलाता है और जब वह रूसी ज़ार

की तरह अपने ही हित में अपनी ही इच्छानुसार शासन करता है तब वह स्वेच्छाचारी निरंकुश राजतन्त्र कहलाता है।

प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रजातंत्र—प्रजातंत्र के भी दो भेद किये जा सकते हैं, एक प्रत्यक्ष प्रजातंत्र और दूसरा अप्रत्यक्ष प्रजातंत्र। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में सब वयस्क स्त्री पुरुष राज्य के सब कानूनों के बनाने, अफसरों के नियुक्त करने और न्याय करने का सारा काम स्वयं ही सम्मिलित होकर करते हैं। इस प्रकार का प्रत्यक्ष प्रजातंत्र स्विट्ज़रलैंड के कुछ केन्टनों में अब भी प्रचलित है। प्राचीन काल में यूनानी नगर राज्यों में ऐसी ही प्रत्यक्ष प्रजातंत्र प्रणाली चालू थी। पर यह प्रणाली एक बहुत छोटे राज्य में ही सम्भव हो सकती है, जहां के नागरिक आसानी से एक स्थान पर एकत्रित हो सकें और जहां राजकीय जीवन इतना सरल और सीधा सादा हो कि शासन की समस्याओं पर सर्वसाधारण विचार कर सकें और अपने लिये उचित प्रबन्ध कर सकें। ऐसी प्रजातन्त्र प्रणाली के सफल होने के लिये लोगों की आवश्यकताएँ बहुत परिमित और पड़ोसी राज्यों से सम्बन्ध बहुत शान्तिपूर्ण होने चाहिये। परन्तु आजकल हम क्या देखते हैं? आजकल वैज्ञानिक आविष्कारों ने मनुष्य की आवश्यकताओं में अपूर्व वृद्धि और पेचीदगी उत्पन्न कर दी है। दूसरी ओर आने जाने की सुविधा से दूरी कम हो गई है, और हम आजकल यह देखते हैं कि संसार में राज्यों को बड़ा बनाने की ओर ही अधिकाधिक प्रवृत्ति होती जा रही है। इन राज्यों में विस्तृत भूमि प्रदेश, असंख्य जनता रहती है और उनके पारस्परिक सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के तथा पेचीदगी से भरे रहते हैं। ऐसे राज्यों में प्रजातन्त्र का अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधिक रूप चालू है और वही सम्भव भी है। ऐसे प्रतिनिधिक प्रजातन्त्र में जनता का मत केवल लोक सभाओं के सदस्यों के चुनाव में ही लिया जाता है। ये सदस्य जनता द्वारा चुने जाकर उनके प्रतिनिधि बनकर निश्चित समय तक कार्य में भाग लेते हैं। साधारण जनता दिन प्रति दिन के शासन कार्य से दूर ही रहती है। वह तो केवल प्रतिनिधियों के चुनाव द्वारा ही शासन नीति की रूप रेखा अप्रत्यक्ष रूप से निश्चित कर देती है। प्रतिनिधिक प्रजातन्त्र ने १८ वीं व १९ वीं शताब्दी में जन्म लिया और १८४८ ई० के उदार विचारों के प्रसार से यूरोप में बहुत से राज्यों में प्रजातन्त्रात्मक सरकारें स्थापित हो गईं। औद्योगिक क्रान्ति, विज्ञान की उन्नति तथा ज्ञानप्राधान्यवाद, तथा अत्याचारी शासकों के विरुद्ध विद्रोह, इन सब ने संसार में प्रतिनिधिक प्रजातन्त्र की बढ़ती में भारी योग दिया। पर अब यह जनतन्त्रात्मक प्रणाली इसी

लिये सर्वमान्य हो गई है क्यों कि सब बातों के देखते हुये यह सफल सिद्ध हुई है।

प्रजातन्त्र अब भी सब से अधिक लोकप्रिय राज्यतन्त्र-प्रणाली हैं। यद्यपि कुछ लोग इसकी आलोचना करने लगे हैं और उसको अपूर्ण बताने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर फिर भी विधान निर्माताओं के लिये यही सब से वाँछनीय सिद्ध होती है। प्रजातन्त्र के आधारभूत सिद्धान्त विभिन्न राजनैतिक संस्थायें बनाकर कार्यरूप किये जाते हैं और साधारणतया एक सभ्य राज्य-संगठन की पहिचान इसी बात से की जाने लगी है कि किस हद तक उस संगठन में प्रजातन्त्र के सिद्धान्त अङ्गीभूत हो पाये हैं। जब १६ वीं शताब्दी को उदार सिद्धान्त वाली प्रजातन्त्र-प्रणाली का परम्परागत रूप बतलाना होता है तो इंगलैंड, फ्राँस, संयुक्त-राज्य अमरीका, स्विट्जरलैण्ड, आइरलैण्ड और बृटिश-साम्राज्य के स्वायत्त शासन वाले प्रदेशों की ओर इशारा कर दिया जाता है। देश की राजकीय संस्थाओं के विकास में यह प्रणाली अन्तिम सीढ़ी समझी जाती है न कि बीच की सीढ़ी।

प्रजातन्त्र के सम्बन्ध में कतिपय मत—प्रजातन्त्रात्मक राज्यतन्त्र को समझने के हेतु यदि हम प्रजातन्त्र के आधार भूत सिद्धान्तों पर कुछ देर के लिये दृष्टि डाल लें तो बड़ा लाभ रहेगा। इन सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त करने में प्रमुख प्रमुख राजनीतिज्ञों य विचारकों के विचारों से बहुत सहायता मिलेगी। अब्राहम लिंकन ने प्रजातन्त्र को बड़ा ऊंचा स्थान दे डाला जब उन्होंने यह कहा कि प्रजातन्त्र प्रजा द्वारा, प्रजा के हेतु, प्रजा की सरकार है। इस कथन से संक्षेप में प्रजातन्त्र का पूरा बखान कर दिया गया। औस्कर विल्डे (Oscar Wilde) ने अकारण ही इसको तोड़ मरोड़ कर यह कहा कि प्रजातन्त्र का अर्थ यह है कि जनता स्वयं अपने आपको अपने ही हितसाधन के लिये डण्डे से पीटती है। इस परिभाषा से प्रजातन्त्र का अर्थ ही कुछ का कुछ हो जाता है और प्रजातन्त्र को इस प्रकार कलंकित करना सच्चाई से बहुत दूर है। सच तो यह है कि प्रजातन्त्र में लोगों के अपने जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति करने की वह स्वतन्त्रता मिलती है जो इस के लिये आवश्यक है। इस प्रणाली से राज्य में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें माननिर्मित निर्धनता आदि की अड़चनें दूर होकर सब को आत्माभिव्यक्ति करने का समान अवसर मिलता है।

प्रजातन्त्र के सिद्धान्त—इस राज्य-प्रणाली में शासन शक्ति वैधानिक

रूप में किसी विशेष सम्प्रदाय, जाति या दल को न सौंपी जाकर सारी जनता को ही यह सत्ता सुपुर्द की जाती है। साधारणतया किसी भी समाज में निर्धनों की ही अधिकता होती है। यदि प्रजातन्त्र की शक्ति, सम्पत्ति-स्वामित्व या साम्प्रदायिकता पर आधारित न हो कर जनता की सम्पूर्ण संख्या को सुपुर्द है तो निर्धन-बहुसंख्यक वर्ग अनायास अपनी बहुलता के बल से ही शासन शक्ति को हस्तगत करने में समर्थ हो जायगा। समानता और स्वतन्त्रता ही प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्त हैं। इस कथन की सच्चाई का उदाहरण अमेरिका निवासियों की उस घोषणा के शब्दों में मिलता है जो सन् १७७६ ई० में उन्होंने स्वतन्त्रता युद्ध के आरम्भ में की थी:—

"हम इन बातों को स्वतः सिद्ध सत्य मानते हैं कि सब मनुष्यों को ईश्वर ने समान बनाया है, यह कि ईश्वर ने उनको कुछ ऐसे स्वत्वों से विभूषित किया है जो दूसरों को हस्तान्तरित नहीं किये जा सकते, यह कि जीवन, स्वतन्त्रता और सुखोपार्जन ही ये स्वत्व हैं, यह कि इन स्वत्वों की रक्षा के लिये सरकारें बनाई जाती हैं जिनके अधिकार शासितों की सम्मति से प्राप्त हुये होते हैं।"

"अपने स्वत्वों के सम्बन्ध में सब मनुष्य समान उत्पन्न हुये हैं और वे समान ही बने रहते है। राजकीय समाज संगठन का उद्देश्य ही इन नैसर्गिक व अदृष्ट स्वत्वों की रक्षा करना है। स्वतन्त्रता, सम्पत्ति सुरक्षा और अत्याचार का प्रतिरोध, ये ही वे स्वत्व हैं।"

"सब अधिसत्ता की प्रधानता प्रमुखतः जनता में रहती है। कोई भी संस्था या व्यक्ति किसी अधिकार का उपभोग नहीं कर सकता जो स्पष्टतया जनता से प्राप्त न हो।"

प्रजातन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति अपने हित का सबसे उत्तम निर्णायक समझा जाता है। प्रजातन्त्र में किसी एक व्यक्ति को असीमित अधिकार नहीं दिये जाते क्योंकि ऐसा करने में निश्चय ही यह भय रहता है कि उन अधिकारों का वह दुरुपयोग करेगा। अतः जितने ही अधिक व्यक्ति प्रशासन में सम्मिलित हों उतनी ही इस बात की अधिक सम्भावना रहती है कि बुराइयाँ दूर होंगी और भूलें सुधरती रहेंगी। प्रजातन्त्र राज संगठन में इस बात की कम सम्भावना रहती है कि कोई व्यक्ति बिना लोक नियन्त्रण के अपना स्वार्थ-साधन करता चला जाय। दूसरी ओर यहाँ प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त अवसर मिलता है कि वह अपने उत्तमत्व की अभिव्यक्ति करे और सार्वजनिक सुखोपवृद्धि में अपनी सहायता दे।

प्रजातन्त्र की सफलता के लिये आवश्यक परिस्थितियाँ—कोई भी प्रणाली कितनी ही अच्छी क्यों न हो वह तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक वे परिस्थितियाँ वर्तमान न हों जो उसको सफल-कार्य बनाने के लिये आवश्यक हैं। सब जगह ये परिस्थितियाँ प्राप्त नहीं होतीं इसी लिये प्रजातन्त्र के असफल होने के उदाहरण जहाँ तहाँ मिलते हैं। प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिये सबसे प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि लोगों की शिक्षा का स्तर ऊँचा होना चाहिये। केवल साक्षरता ही पर्याप्त नहीं हो सकती। साक्षरता और समानता का कोई अनिवार्य मेल नहीं होता। साक्षर व्यक्ति बिलकुल आसानी से हो सकता है और ज्ञानी व्यक्ति बनने के लिये अक्षर ज्ञान ही आवश्यक नहीं है। निरक्षरता को दूर करनेके साथ ही साथ मनुष्योंको ज्ञानवान् भी बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि नागरिकों को अपने स्वत्वों व अधिकारों का समुचित ज्ञान न हो और उनमें सार्वजनिक बुद्धि न हो तो वे प्रजातन्त्र सरकार का संचालन करने में समर्थ नहीं हो सकते। यह ठीक है कि प्रजातन्त्र में निर्वाचन में भाग लेने से, व्यवस्थापिका सभाओं और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं में काम करने से ऊंची शिक्षा मिलती है पर फिर भी यह आवश्यक है कि भावी नागरिकों को सार्वजनिक जीवन के तत्वों का ज्ञान करा देना चाहिये। इस लोक शिक्षण कार्य में वाक् स्वातन्त्र और सामुदायिक स्वतन्त्रता बड़ी सहायक होती है। इसके अतिरिक्त ऐसे समाचार पत्र भी आवश्यक होते हैं जो पूर्णतया स्वतन्त्र हों और जो जिज्ञासु जनता पर अपने निजी मत को न लाद कर उसके सामने निरपेक्ष होकर घटनाओं का ठीक ठीक चित्रण करें।

यह बात स्वयं सिद्ध है कि यदि मानवहितों का पोषण करना है और उनकी रक्षा करनी है तो वर्तमान को अतीत के आधार पर खड़ा करना चाहिये और अनागत की ओर अपनी दृष्टि रखनी चाहिये। प्रजातंत्र स्थापित करने के लिये केवल यही पर्याप्त नहीं है कि वैधानिक समता और व्यक्ति स्वातंत्र का आयोजन कर दिया जाय। इसके साथ साथ यदि परम्परागत असमानता प्राचीन समय से चली आरही हो तो प्रजातंत्र सफल नहीं होगा। इसको सफल बनाने के लिये सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक तीनों समानताओं की स्थापना करनी होगी। वास्तविक प्रजातंत्र की ये तीनों मूल भावनायें हैं। जिस जाति भेद या वर्ग भेद से जनता के कुछ व्यक्ति ही नागरिक अधिकारों का उपभोग कर सकते हों वहां ये भेद प्रजातंत्र की स्थापना में सब से बड़ी रुकावट डालते हैं। इनको जितनी जल्दी हो सके हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी भाँति राज्यपदों पर आसीन होने का सबको समान अधिकार मिलना चाहिये। वे

उन सब व्यक्तियों के लिये खुले रहने चाहिये जो शिक्षा से व योग्यता से उन पदों पर कार्य करने के लिये उपयुक्त हों। मताधिकार भी सार्वजनिक होना चाहिये। प्रत्येक वयस्क स्त्री व पुरुष जो राज्य के शान्ति पूर्वक उन्नति करनें के मार्ग में बाधक न हों मत देने का अधिकारी होना चाहिये। मताधिकार केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित न रहना चाहिये जो किसी विशेष जाति या वंश में उत्पन्न हुये हों या सम्पत्ति के स्वामी हों। अन्त में यह भी बतलाना आवश्यक है कि प्रजातंत्र राजकीय समाज में आर्थिक संगठन ऐसा होना चाहिये जिससे प्रत्येक व्यक्ति को केवल जीविकोपार्जन का साधन ही न मिले पर उसके साथ साथ यह भी देखभाल रहनी चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति को इतना पारिश्रमिक या वेतन मिलता है कि वह मनुष्य की तरह अपना जीवन बिताने में समर्थ हो सके। आजकल बहुत से प्रजातंत्र राज्य ऐसी आर्थिक परिस्थिति उत्पन्न करने में असफल रहे हैं जिससे बेकारी व भुखमरी दूर हो और रहन-सहन सुखी व स्वास्थ्य-वर्द्धक हो। यही कारण है कि प्रजातंत्र लोगों के हृदयों में अच्छी तरह प्रतिष्ठित नहीं होने पाया है और उसके लिये श्रद्धा और प्रेम का भावोद्गार नहीं उठता। कहीं कहीं तो उससे इतनी निराशा हुई कि लोग घृणा करने लगे और उसी प्रणाली के प्रति विद्रोह खड़ा कर दिया जिसका उद्देश्य ही उनके हितों का साधन करना है।

निरंकुशता से युद्ध करने से स्वतंत्रता की प्राप्ति—प्रजातंत्र की स्वतंत्रता बड़े संघर्ष के फलस्वरूप प्राप्त हुई है। इंगलैण्ड का इतिहास इस बात का सबसे उज्वल दृष्टान्त है कि किस प्रकार प्रजा ने निरंकुश शासकों से शक्ति छीन कर अपने आधीन की। वोलटेयर ने अंगरेजों की इस लड़ाई का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया है। "इंगलैंड में स्वतंत्रता स्थापित करने का भारी मूल्य देना पड़ा है। निरंकुश शक्ति की मूर्ति को डुबाने के लिये खून के सागर की आवश्यकता पड़ी पर फिर भी अंगरेज यह नहीं समझते कि उन्होंने अपने कानूनों के खरीदने में अधिक मूल्य चुकाया है। दूसरी जातियों ने भी इनसे कम विपत्तियों का सामना नहीं किया और कम खून नहीं बहाया पर उनके बलिदान का फल केवल यही हुआ कि उनकी दासता की शृंखलायें और मज़बूत हो गईं।" स्वतंत्रता के युद्ध में अधिकारों की एक पद्धति स्वीकार करनी पड़ती है और इसे स्वीकार करने से ही लोग सुखी व सम्पन्न रह सकते हैं। यदि इन अधिकारों को उचित मान न दिया जाय और उनकी रक्षा के लिये लड़ने को सदा तत्पर न रहा जाय तो स्वतंत्रता चार दिन की चाँदनी रहती है। इन अधिकारों के लिये युद्ध करके ही सन् १७८३ ई० में अमरीकन लोगों ने

स्वतंत्रता प्राप्त की। आयरलैंड के लोगों को सैकड़ों वर्ष तक स्वतंत्रता के लिये युद्ध करना पड़ा और तब कहीं जाकर १९३७ ई० में उनको अपनी सरकार बनाने का अवसर मिला।

प्रजातंत्र और अधिकारों की घोषणा—आजकल नागरिकों के अधिकारों की शासन विधान में स्पष्ट घोषणा करने की प्रथा प्रचलित होगई है। पर विधान में इनका उल्लेख हो जाना ही कोई बड़ी बात नहीं है और उसीसे व्यक्ति को अपने अधिकार प्राप्त नहीं हो जाते। अधिकारों का उपभोग बहुत कुछ परम्परा और आदत पर निर्भर है। यदि लोग इन अधिकारों के प्रति उदासीन हैं तो वैधानिक उल्लेख का व्यवहार में कोई महत्व नहीं रहता। यह उल्लेख तभी काम में आता है जब जनता अपने अधिकारों की रक्षा करने में सतर्क रहे क्योंकि ऐसा होने से जब कभी राज्य व्यक्ति के अधिकारों में हस्तक्षेप करेगा व्यक्ति को उस समय यह सुविधा होगी कि वह राज्य के विरुद्ध न्यायालय में पुकार कर सकता है। इस उल्लेख से लोगों की दृष्टि के सामने एक आदर्श भी उपस्थित कर दिया जाता है जिसकी प्राप्ति के लिये उन्हें यह याद दिलाता रहता है कि उन्हें लड़ना है। जहाँ तक सिद्धान्त की पवित्रता का सम्बन्ध है वह इस उल्लेख से सुरक्षित रहती है और इसीलिये विधान एक महत्वशाली वस्तु है। वैयक्तिक अधिकारोंके सिद्धान्त के उल्लेख से सरकार की शक्ति व कार्यों की मर्यादा बंध जाती है। इसके कार्य रूप होने से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें व्यक्ति अपनी स्वतंत्र आत्मा की अभिव्यक्ति कर सकता है।

प्रजातंत्र और प्रथम महायुद्ध—सन् १९१४–१८ के महायुद्ध में मित्रराष्ट्रों ने यह घोषणा की थी कि वे प्रजातंत्र की स्थापना के लिए संसार को सुरक्षित बना रहे हैं। इसमें संशय भी नहीं कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही प्रजातंत्र के एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ। पहिली जनवरी सन् १९०१ में आस्ट्रेलिया के संघ शासन की स्थापना हुई। १९०९ में दक्षिणी अफ्रीका के प्रजातंत्रात्मक संघशासन की नींव पड़ी। पर सन् १९१४ में जर्मनी ने बेलजियम पर आक्रमण करके उसकी तटस्थता का अतिक्रमण किया और ऐसे महायुद्ध का सूत्रपात हुआ जो चार वर्ष तक चला। पहिले इंगलैंड ने युद्ध-भूमि में पदार्पण किया, उसके तीन वर्ष पश्चात् अमरीका भी युद्ध में सम्मिलित हो गया। युद्ध में सम्मिलित होने के साथ ही अमरीका के राष्ट्रपति प्रेसीडेन्ट विलसन ने संसार के राष्ट्रों को विश्वास दिलाया कि युद्ध के समाप्त होने पर आत्म निर्णय ही उनके राज्यतंत्र का आधार होगा। अर्थात् उनकी

सरकार वैसी ही होगी जैसा कि वे स्वयं निर्णय करेंगे। युद्ध के पश्चात् इस घोषणा के अनुसार ही यूरोप में कई प्रजातंत्र राज्यों का जन्म हुआ जिससे वैयक्तिक स्वतंत्रता और समानता का अधिकाधिक प्रचार हुआ और यह भावना सब जगह मान्य होकर दृढ़ होगई। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में लीग आफ नेशन्स (League of Nations) के स्थापित होने से एक नये युग का जन्म हुआ जिसमें प्रत्येक राज्य के अधिकारों को समानता और न्याय के आधार पर उचित महत्व दिया जाने लगा। उस समय प्रजातंत्र का ही सब जगह बोलबाला था पर युद्ध के पश्चात् जो सन्धि हुई उसी में राष्ट्रपति विलसन के आत्म निर्णय के सिद्धान्त को पैरों तले कुचल कर साम्राज्यवाद के नये स्तम्भों की रचना कर दी। पदाक्रान्त जर्मनी ने अपना नया जीवन विमार (Weimar) शासन विधान के अनुसार आरम्भ किया। यह शासन-विधान प्रजातंत्रात्मक व संघात्मक था पर इटैली में युद्ध के पश्चात् निराशा की बड़ी लहर फैली। जिस गुप्त सधि के आधार पर इटैली युद्ध में सम्मिलित हुआ उसमें जो आशायें दिलाई गईं थीं वे पूर्ण न हो सकीं। फलस्वरूप सन् १८४८ के उदार दल के आन्दोलन के अनुयायी संसद प्रणाली (Parliamentary System) के समर्थकों को बड़ी निराशा हुई। वे वार्साई की संधि होते समय कूटनीति के युद्ध में अपना सिक्का न जमा सके। इस हार से जनता की निगाहों में वे गिर गये और प्रजातंत्र की ओर से जनता उदासीन हो गई। इस उदासीनता को निराशा का मुसोलिनी ने पूरा लाभ उठाया और वह राज्यशक्ति अपने हाथ में कर इटैली का अधिनायक बन बैठा। रूस में सन् १९१७ की क्रान्ति से ज़ार की निरंकुशता समाप्त हो गई और एक ऐसी शासन प्रणाली की स्थापना हुई जो उन्नीसवीं शताब्दी की प्रजातंत्र-कल्पना से उतनी ही दूर थी जितनी कि इटैली की अधिनायक शासन प्रणाली। रूस में मार्क्स के दर्शन के आधार पर व्यक्तिवादी सरकार से भिन्न सामूहिक (collective) सरकार की उत्पत्ति हुई।

युद्ध की लूट के फलस्वरूप यूरोप के मध्य में नये राज्य बन गये। आस्ट्रिया-हंगरी, तुर्की तथा जर्मन साम्राज्य के टुकड़े कर दिये गये और या तो वे छोटे २ राज्य बना दिये गये या लीग आफ नेशन्स की नाममात्र की अध्यक्षता में विजेताओं को सुपुर्द कर दिये गये। इस लूट से अधिकतर इंगलैण्ड और फ्रांस ने खूब लाभ उठाया और उनके उपनिवेशों की संख्या और बढ़ गई। युद्ध के पश्चात जिस आत्मनिर्णय के सिद्धान्त पर प्रजातंत्र की स्थापना की जाने वाली थी और जिसके लिये ही युद्ध लड़ने का बहाना

किया गया था, वह उठाकर ताक पर रख दिया गया और साम्राज्यवाद का ज्यों का त्यों बोल बाला रहा।

पहिले महायुद्ध के पश्चात संसार प्रजातंत्र की स्थापना के लिये उतना ही असुरक्षित बना रहा जितना युद्ध के पूर्व था। निःशस्त्रीकरण का स्वप्न सच्चा न हो सका और यूरोप के राष्ट्र होड़ा होड़ी अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाते रहे। युद्ध के फलस्वरूप आर्थिक कठिनाइयां बराबर चल रहीं थी और सारा संसार उस विपत्ति में व्यस्त था। उस आर्थिक विपत्ति ने जर्मनी, आस्ट्रिया, पोलैंड, और दूसरे युरोप के छोटे राज्यों की नव-जात प्रजातंत्रात्मक सरकारों को उत्साहहीन कर दिया। जर्मनी में प्रजातंत्र-राज्य अधिक दिन तक अपने आप को न संभाल सका और कुछ दिन लड़खड़ा कर अन्त में अपनी निर्बल नींव के कारण ढह कर गिर पड़ा। उसके खंडहरों पर हिटलर के जर्मनी का जन्म हुआ। यही क्रम आस्ट्रिया में भी हुआ और वहाँ भी अधिनायक सत्ता अपना ली गई। कुछ कुछ पोलेण्ड में भी यही हाल हुआ। इसके फलस्वरूप यूरोप में एक नया भय उत्पन्न हो गया क्योंकि अधिनायक सत्तायें पड़ोसी राष्ट्रों के प्रति अविश्वास, घृणा, वैरभाव और युद्धभय के सहारे ही अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने का प्रयत्न करती हैं। इस वैर भाव की अग्नि में विभिन्न राजनैतिक भावनाओं के, विशेष कर समाजवाद और उसके विरोधी अधिनायक वाद के संघर्ष ने घी का काम किया। प्रत्येक राष्ट्र में फैसिष्ट सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ने लगा जिससे प्रजातन्त्र प्रणाली अवाँछनीय समझी जाने लगी।

प्रथम महायुद्ध के अग्निकाण्ड की राख के ढेर से दो प्रकार की सरकारों के अंकुर निकले, एक तो समाजवादी सरकार के, जैसी रुस में स्थापित हुई और दूसरी अधिनायक सत्ता के, जैसी जर्मनी और इटैली में उत्पन्न हुई। आधुनिक सरकारों के अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिये इन दोनों राज्यतंत्र-प्रणालियों में इनके आधार-भूत सिद्धान्तों व इनकी संस्थाओं की बनावट को दृष्टि से पर्याप्त सामिग्री मिल सकती है। इसका विवेचन हम इस पुस्तक में आगे चल कर करेंगे।

स्वतंत्र तथा परतंत्र सरकारें :—आधुनिक राज्यों में कुछ की सरकारें स्वतंत्र है और कुछ की परतंत्र। इंगलैंड, फ्राँस, संयुक्त राज्य अमरीका, भारतवर्ष आदि ऐसे देश हैं जहां राज्य प्रणाली जनता से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकृत है। इन सब राज्यों में सरकार का संचालन एक दल के द्वारा होता है या ऐसे विधान के अनुसार होता है जो प्रजा को मान्य है, चाहे वह विधान प्रजातंत्रात्मक हो या अधिनायक-तंत्रात्मक

(dictatorial)। दूसरी ओर वे राज्य हैं जिनको आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं दिया गया है या तो इसलिये कि वे अपना शासन अपने आप करने के योग्य नहीं हैं या उनके सम्बन्ध में विदेशी शासकों के विशेष उत्तरदायित्व हैं। सन् १९४७ से पहिले भारतवर्ष ऐसे ही राज्यों की गिनती में था, अब भी अफरीका के कुछ राज्य जो इटैली के साम्राज्य के अंग थे या जो फ्राँस जर्मनी व बेलजियम आदि के आधिपत्य में थे और इनके अतिरिक्त भी छोटे-छोटे उपनिवेश ऐसे ही राज्यों की श्रेणी में आते हैं। ये सभ्य संसार के उजले पर्दे पर काले धब्बों के समान हैं। प्रजातन्त्र प्रेमियों के लिये यह एक समस्या है कि इनको किस प्रकार स्वतंत्र किया जाय क्योंकि शासक-राज्यों की सद्भावनापूर्ण घोषणाओं पर विश्वास नहीं किया जाता। स्वयं इंगलैंड ही जिसको प्रजातंत्र और संसदात्मक प्रणाली का जन्मदाता कहा जाता है, बहुत से देशों पर आधिपत्य किये हुये था और यही आडम्बरपूर्ण दावा करता था कि वह सद्भावना से प्रेरित होकर ही शासित प्रदेश के हित में ही उस पर राज्य कर रहा है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात भारतवर्ष, ब्रह्मा, मिस्र को स्वतंत्रता मिल गई पर अब भी इंगलैण्ड के आधिपत्य में कई छोटे-छोटे राज्य हैं, प्रजातन्त्र के युग में यद्यपि विदेशी सत्ता का शासन नैतिक दृष्टि से किसी प्रकार भी न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता पर फिर भी साम्राज्य शक्तियाँ अपने आधीन स्वार्थ के वश बहुत से राज्यों को रखे हुये हैं और अपने स्वार्थ को ऊँचे ऊँचे सिद्धान्तों व आडम्बरपूर्ण शब्दों से ढकने का प्रयत्न करती हैं। ब्रिटेन के साम्राज्य के सम्बन्ध में बर्नार्ड शा (Bernard Shaw) ने अपने सहज ढंग से अंगरेजों के बारे में कहा था "कोई भी अच्छी या बुरी बात ऐसी नहीं जिसे अंगरेज न करते हों पर आप उनको गलती करते हुये कभी नहीं पकड़ सकते। वह (अंगरेज) हर एक बात को किसी न किसी सिद्धान्त की आड़ में करता है, वह सिद्धान्त पर लड़ता है, व्यापार-सिद्धान्त पर तुम पर शासन करता है और साम्राज्य-सिद्धान्त पर तुम्हें परतंत्र बनाता है।" परतंत्र प्रदेश की राज्यतंत्र प्रणाली का रूप विदेशी सत्ता द्वारा निर्धारित होता है और यह प्रणाली किसी न किसी सिद्धान्त से उपयुक्त भी ठहराई जाती है। इन विभिन्न प्रदेशों की शासन-प्रणालियां भी वहां की सरकार के उद्देश्य और उसके सँचालन के ढंग की दृष्टि से निराली हैं और अध्ययन करने योग्य हैं।

आधीन प्रदेशों के रखने का अभिप्राय—विदेशी सत्ता अपने आधीन राज्यों के ऊपर इसलिये शासन नहीं करती कि उसके द्वारा आधीन

देश का हित हो पर वह अपने ही स्वार्थ साधन के लिये उन पर अपना अधिकार जमाये रहती है। विदेशी सत्ता को जो कतिपय बड़े-बड़े लाभ होते हैं वे ये हैं :—(१) शान्ति के समय में कर, और युद्ध के समय में धन और आदमी मिलते हैं (२) कच्चा माल कारखानों के लिये, और कारखानों के पक्के माल की खपत के लिये बाजार मिल जाता है (३) समुद्री और हवाई अड्डे मिलते हैं जहां से विदेशी सत्ता की जल सेना और वायु सेना विदेशी सत्ता के जलमार्गों और वायुमार्गों व साम्राज्य की रक्षा करती है। (४) इन आधीन राज्यों में शासक राज्य की बढ़ती हुई जनसंख्या के बसाने का क्षेत्र खुला रहता है और कभी-कभी शासक-प्रदेश के अपराधियों को भी आधीन देश में रहने के लिये स्थान दिया जाता है जैसे पहिले अमरीका में स्थित ब्रिटिश उपनिवेशों में, आस्ट्रेलिया में और कुछ दिन तक अन्डेमन टापू में किया जाता था। (५) शासक-प्रदेश का यश भी इन आधीन राज्यों से बढ़ता है जिसका उदाहरण अंगरेजों को अपने साम्राज्य पर अभिमान प्रदर्शन में मिलता है, यह बड़े अभिमान से कहा जाता था कि ब्रिटिश साम्राज्य इतना विस्तृत है कि उसमें सूर्य कभी छिपता ही नहीं। अपने अन्यायपूर्ण स्वामित्व को आकर्षक बाना पहिनाने के लिये ही ये शासक-प्रदेश यह कहा करते हैं कि वे आधीनस्थ प्रदेशों की प्रजा को स्वायत्त शासन की शिक्षा देने और स्वतंत्र होने के योग्य बनाने के लिये ही उन पर राज्य करते हैं। सर जार्ज कार्नवाल लेविस ने भारतवर्ष का उदाहरण देकर यह बताने का जो प्रयत्न किया कि आधीन प्रदेश को क्या क्या हानि उठानी पड़ती है वह इस कथन से स्पष्ट हो जायगा :—

"यद्यपि ब्रिटिश इण्डिया ने अंगरेज़ पदाधिकारियों की चतुरता और ईमानदारी से बहुत लाभ उठाया हो तब भी केवल अंगरेज़ों को ही सब ऊँचे पदों पर नियुक्त करने से, उनके ऊँचे वेतन और राज्य की आय कम होने के कारण, एक ही ऐसे अंगरेज़ व्यक्ति के सिर पर इतने कामों का बोझ लाद दिया गया है कि बहुत से हिस्सों में अन्याय का बोलबाला है और वहाँ कोई सरकारी लाभदायक काम नहीं होता। यदि जनता के स्थायी व महत्वपूर्ण हितों की रक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाता तो अंगरेज़ अफसरों का वह अभिमानपूर्ण व्यवहार जिससे प्रायः भारतीयों के हृदयों पर चोट पहुँचाई जाती थी अधिक महत्व रखता। परन्तु खेद का विषय यह है कि देश के अधिक भागों में जान और माल मुश्किल से उनसे अधिक सुरक्षित कहे जा सकते हैं जैसे वे देशी सरकारों के समय में थे

और लोगों को ब्रिटिश शासन से जो मुख्य लाभ हुआ है वह यही है कि बाहरी आक्रमणों से उनका बचाव हो गया है।"*

ऐसे ही ज़ोरदार शब्दों में सर जार्ज ने यह विश्वास करने से मना कर दिया कि कोई भी शासक प्रदेश कभी भी ऐसा कर सके कि आधीन देश की प्रजा को स्वायत्त-शासन की धीरे धीरे शिक्षा देकर उनको पूर्ण स्वतन्त्र बना दे। वे कहते हैं "यदि कोई शासक-प्रदेश किसी आधीन देश को लोक संस्थायें तो बनाने देता है और यह कहता है कि वह उसे स्वायत्त-शासन करने देगा तो वास्तवमें उसके साथ स्वतन्त्र देश जैसा व्यवहार नहीं करता, ऐसी दशामें उसका व्यवहार अपने आधीन देश को ऐसी राजकीय संस्थायें देकर जिनका बाहरी रूप तो हो पर वास्तविकता कुछ न हो, केवल चिढ़ाने का काम करता है। आधीन देशके साथ यह कोई सच्ची रियायत नहीं है कि उसे लोक सस्था प्रणाली का नाम-रूप तो दे दिया जाय पर वास्तव में एक स्वतन्त्र देश जैसा उनको कार्यरूप न करने दिया जाय। न ऐसी रियायतें आधीन देश को कोई लाभ पहुंचाती हैं बल्कि इसके विपरीत वे राजनीतिक फूट के बीज बो देती हैं और कदाचित् विद्रोह और युद्ध के भी, जो ऐसी रियायतें न देने से न होता।"[१]

इसीलिये स्वामी दयानन्द ने, जो भारतवर्ष के बहुत बड़े सामाजिक व धार्मिक सुधारकों और राजनीतिज्ञों में गिने जाते हैं, यह दावा किया था कि स्वराज्य बहुत हद तक सब से उत्तम है। विदेशी सत्ता चाहे कितनी भी पक्षपात व धार्मिक द्वेष से रहित और आधीन देशवासियों के प्रति माता पिता के समान दया पूर्ण न्यायपूर्ण और व दानशील क्यों न हो, उनको पूर्ण रूप से सुखी नहीं बना सकती। यह कथन वैसा ही है जैसे यह कि अच्छी सरकार स्वराज्य का स्थान नहीं ले सकती।

उत्तरदायी व अनुत्तरदायी सरकारें—सरकारों का, चाहे वे स्वतंत्र राज्यों की हों या परतंत्र राज्यों की, एकदूसरी दृष्टि से भी वर्गीकरण किया जाता है। वह यह है कि कोई सरकार अपनी प्रजा को उत्तरदायी है या नहीं। जब किसी सरकार का शासन प्रबन्ध जनता या उसके प्रतिनिधियों की इच्छानुसार संचालित होता है तो हम कहते हैं कि सरकार उत्तरदायी है। ऐसी सरकार में कार्यकारिणी इस सरकार से प्रशासन करती है कि जनता या उसके प्रतिनिधि उससे प्रसन्न रहें। जहाँ प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र प्रचलित है जैसे

---

* एन ऐसे ऑन दी गवर्नमेंट ऑफ डिपेन्डेन्सीज़, पृ० २६३

१ एन ऐसे ऑन दी गवर्नमेन्ट आफ डिपेन्डेंसीज, पृ० २६३

स्विट्ज़रलैण्ड के केन्टनों में, वहाँ कार्यकारिणी सत्ता जनता का प्रसन्न रखने का सतत प्रयत्न करती है और जहाँ प्रतिनिधिक प्रजातन्त्र प्रणाली से प्रशासन होता है वहाँ प्रतिनिधियों की प्रसन्नता पर दृष्टि रख कर कार्यकारिणी अपना कार्य करती है। जहाँ जनता की इच्छा या अनिच्छा की परवाह न कर कार्यकारिणी उन पर अपना मन चाहा शासन करती है उसको अनुत्तरदायी सरकार कहते हैं।

सरकार एक पेचीदा संगठन है—आधुनिक राज्यों में जीवन इतना जटिल होगया है और उसकी रूप रेखा निश्चित करने वाले कारणों में ऐसी अनेकता हैं कि आधुनिक शासन संगठन को पहिले की अपेक्षा अधिक मात्रा में शासन कार्य करना पड़ता है। इस शासन कार्य के अन्तर्गत कानूनों का बनाना, उनका पालन करवाना और न पालन करने वाले को दण्ड देने की व्यवस्था करना, यह सब आते हैं। राजनीतिज्ञों ने शासन करने की कई पद्धतियाँ बताई हैं जिनसे प्रजा को अधिक से अधिक स्वतंत्र और सुखी बनाया जा सके और साथ ही साथ शासन-प्रबन्ध की उत्तमता में कमी न हो और न शासन उलटने का डर रहे। अरस्तू ने सरकार के तीन अङ्ग वाला सिद्धान्त अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "दी पोलिटिक्स" में प्रतिपादित किया था। उसने इन तीनों अंगों के अलग अलग नाम दिये हैं, पहिला मनन करने वाला, दूसरा राज्य-पदों से सम्बन्ध रखने वाला और तीसरा न्याय करने वाला।

सरकार के तीन अङ्ग—अरस्तू के पश्चात् कई राजनीति-विचारकों ने इस तीन अङ्ग वाले सिद्धान्त की विवेचना की। अब यह सिद्धान्त इतना सर्वमान्य हो गया है कि प्रत्येक आधुनिक राज्य में इन्हीं तीनों अङ्गों के सामूहिक प्रयत्न से शासन कार्य सम्पादित होता है। इन तीनों अङ्गों को, विधिनिर्बन्धकारी (Legislative), कार्यकारी (Executive) और न्यायकारी (Judicial) सत्ता कहते हैं।

मौन्टेस्क्यू (Montesquieu) और अधिकार विभाग का सिद्धान्त—यद्यपि अब सभी प्रगतिशील राज्यों ने राज्यसत्ता व अधिकारों को तीन विभागों, निर्बन्धकारी, कार्यकारी और न्यायकारी में बाँटने की पद्धति को मान लिया है और उसको व्यावहारिक रूप भी दे दिया है पर पहिले पहिल इस विभाजन के मूल में स्थित सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मौन्टेस्क्यू (Montesquieu) ने अपनी 'दी स्प्रिट आफ लाज़' नामक पुस्तक में किया था। उदारदल के राजनीतिज्ञों ने इस सिद्धान्त का लोकसत्ता की रक्षा करने वाला गढ़ कह कर स्वागत किया।

मौन्टेस्क्यू लिखते हैं "जब निर्बन्धकारी और कार्यकारी सत्ता एक ही व्यक्ति या शासन कर्ता संस्था के सुपुर्द कर दी जाती है तो कोई भी स्वतन्त्र नहीं रह सकता क्योंकि यह भय बना रहेगा कि वह राजा या परिषद उत्पीड़क कानून बनावेगा और उनको निर्दयतापूर्वक कार्यरूप करेगा। उस दशा में भी स्वतन्त्रता न रहेगी जब तक कि न्यायकारी सत्ता (judiciary) निर्बन्धकारी (legislative) और कार्यकारी (executive) सत्ता से प्रथक न कर दी जाय। जहाँ उसका निर्बन्धकारी सत्ता से मेल कर दिया जाता है वहाँ स्वेच्छाचारी शासन से प्रजा की स्वतन्त्रता और जीवन की रक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि न्यायाधीश तब व्यवस्थापक बन जायगा। जहाँ इस न्यायकारी सत्ता का मेल कार्यकारी सत्ता से कर दिया जायगा वहाँ सम्भव है न्यायाधीश अत्याचार व हिंसा करें। यदि एक ही व्यक्ति या संस्था, चाहे वह कुलीनों की हो या साधारण लोगों की, कानून बनाने, उन कानूनों को कार्य-रूप देने और अपराधियों को दण्ड देने के तीनों अधिकारों का उपभोग करेगी तो हर एक वस्तु समाप्त हो जायगी।"

व्यवस्थापक मण्डल—राज्य में व्यवस्थापक मण्डल कानूनों के बनाने और उनका संशोधन करने का कार्य करता है। अनियन्त्रित राजसत्ता (Monarchy) में राजा की आज्ञा ही राज्य का कानून समझा जाता है पर किसी भी लोकसत्तात्मक प्रजातन्त्र में शासन कार्य नहीं चल सकता यदि वहाँ ऐसा व्यवस्थापक मण्डल स्थापित न किया जावे जिसका एकमात्र कर्तव्य यह हो कि वह सारे राज्य या उसके किसी भाग के निवासियों को सुखी बनाने वाले क्षेम कारक विषयों का मनन करे और उसके अनुकूल कानूनों की रचना करे। छोटे राज्यों में सारी प्रजा इस काम को कर सकती है। यूनानी नगर राज्यों में व अब भी स्विट्ज़रलैण्ड के कुछ छोटे कैन्टनों (प्रान्तों) में प्रजा के सब व्यक्ति सम्मिलित होकर कानूनों की व्यवस्था करते हैं। पर अब प्रायः राज्यों का ऐसा छोटा रूप नहीं होता और प्रजा की संख्या करोड़ों और अरबों में होती है। इसलिये ऐसे राज्यों में यह सम्भव नहीं हो सकता कि सारी प्रजा एक चित्त होकर कानूनों की व्यवस्था करे। उनमें तो यही सम्भव है कि प्रजा द्वारा चुने हुये कुछ प्रतिनिधि ही व्यवस्थापक मण्डल बनाकर राज्य के लिये कानून बनावें। कुछ समय के पश्चात् यह प्रतिनिधि-मण्डल इतना अनुभवी हो जाता है कि कानून-निर्माण कला में यह विशेषज्ञ की पदवी प्राप्त कर लेता है। यह प्रति-निधिक प्रणाली सब से प्रथम इङ्गलैण्ड में आरम्भ हुई और उसके पश्चात् लगभग सभी सभ्य राज्यों ने इसे अपना लिया है।

व्यवस्थापक मण्डल के भिन्न भिन्न रूप—द्विआगारिक व एकागारिक (Bicameral or Unicameral)—प्राचीन काल में धर्म, नैतिक नियम और राजाज्ञा ये तीन कानून के उद्गम थे। रीति-रिवाज को भी बड़ा महत्व दिया जाता था। पर आधुनिक राज्यों में विचार विमर्श के पश्चात् वैज्ञानिक रीति से ही कानूनों की व्यवस्था की जाती है, यद्यपि इस कार्य में रीति-रिवाजो, न्यायतत्वों और न्यायालयों के निर्णयों का भी प्रभाव पड़ता रहता है। इसलिये आजकल राज्य में व्यवस्थापक मण्डल की बनावट और उसके कर्तव्यों व अधिकारों का बड़ा महत्व समझा जाता है। इंगलैण्ड के इतिहास के अध्ययन करने से यह मालूम हो जायगा कि अकस्मात् ही पार्लियामेन्ट के दो भाग हो गये थे, एक हाउस आफ लार्ड्स (House of Lords) और दूसरा हाउस आफ कामन्स (House of Commons), ऐसा विभाजन किसी वैज्ञानिक दृष्टि या विशेष उद्देश्य से प्रेरित न हुआ था। पर दूसरे राज्यों ने जब इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट-प्रणाली का अनुकरण किया तो उन्होंने भी द्विआगारिक (Bicameral) व्यवस्थापक मण्डल की पद्धति को अपनाया और दो आगारों की स्थापना की। कुछ राज्य अब भी एक ही आगार (House) से काम चलाते हैं। अतः व्यवस्थापक-मण्डल दो प्रकार का होता है एक द्विआगारिक, जिसमें दो सभायें कानून बनाने के कार्य में भाग लेती है, और एकागारिक जिससे एक ही सभा कानून बनाती है।

द्विआगारिक पद्धति के गुण—राजनितिज्ञों में बहुत से इस मत के समर्थक हैं कि द्विआगारिक पद्धति एकागारिक पद्धति से अधिक लाभदायक है। दो आगारों के होने पर एक आगार में जब कोई विधेयक (Bill) पास हो जाता है तो वह दूसरे आगार में विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है और वहाँ एक बार पुनः उसकी आलोचनात्मक परीक्षा हो जाती है जिससे उसके बचे हुए दोष भी दूर हो जाते हैं। इस प्रकार दूसरा आगार कानूनों को दोहरा कर संशोधन करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। दूसरे आधुनिक राज्य में शासन का कार्य उतना अधिक हो गया है कि एक ही आगार के लिये यह कठिन हो गया है कि वह प्रत्येक योजना पर जो उसके सामने प्रस्तुत की जाय सूक्ष्म निरीक्षण कर सके। यदि दूसरे आगार में भी कुछ विधेयक प्रारम्भ कर दिये जायें तों दोनों आगारों में साथ साथ बहुत सा व्यवस्था-कार्य सम्पादित किया जा सकता है। इस प्रकार दो आगारों के होने से काम की मात्रा बढ़ जाती है। यह ठीक है कि प्रत्येक विधेयक एक धारा सभा में स्वीकृति के लिये भेजना

पड़ता है और उससे काम में कमी होने की सम्भावना नहीं पर यह याद रखने योग्य है कि बहुत से बिल (विधेयक) आरम्भ में ही रद्द हो जाते हैं और दूसरे आगार में जाने की आवश्यकता ही नहीं रहती। अतः दो आगारों के होने से यह आसानी रहती है कि जिस आगार में कम काम हो वहाँ ऐसे बिल प्रारम्भ हों जिनके सम्बन्ध में निश्चित रूप से पहिले पहिल यह नहीं कहा जा सकता है कि वे वाँछनीय हैं या नहीं। वहाँ यदि अनावश्यक सिद्ध हो गये तो उन्हें आगे बढ़ने और दूसरे आगार के समय खराब करने का अवसर ही नहीं मिलता। ऐसी बचत तब न हो सकती थी जब एक ही धारासभा को सब काम करना पड़ता। तीसरी बात यह है कि जहाँ दो आगारों का व्यवस्थापक मण्डल होता है वहाँ उनमें से एक साधारण लोक सभा होती है जिसे प्रथम आगार या निचली सभा (Lower House) कहते हैं। इसमें प्रजा से प्रत्यक्ष निर्वाचित कम आयु वाले प्रतिनिधि बैठते हैं। उनमें दलबन्दी का पुट प्रचुर मात्रा में रहता है। प्रायः ऐसा होता है कि किसी विषय में वाद-विवाद इतना बढ़ जाता है कि उनमें आपस में अनावश्यक गर्मागर्मी हो जाती है और उस समय वे प्रस्तुत विषय के गुण दोषों पर विवेकशील होकर ठण्डे दिमाग से मनन नहीं कर पाते। फलतः इस तनातनी से लोकहित के विरुद्ध भी निर्णय हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में दूसरी सभा जिसे परिषद या ऊपर वाली सभा (Upper House) भी कहते हैं, जिसमें अनुभवी, स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति होते हैं जो सहज ही भावावेश में नहीं आ जाते व जल्दी ही लोभवश होकर अनौचित्य की ओर नहीं झुकते, वह शान्तिपूर्वक सूक्ष्म विचार के द्वारा निचली सभा के निर्णयों के गुण दोषों पर पुनः विचार करते हैं। दूसरे शब्दों में, परिषद लोकसभा के जल्दी में, बिना विचारे हुये, बनाये हुये विधेयकों पर रोक लगाने का काम करती है। चौथी बात यह है कि लोकसभा, अर्थात् निचली सभा, स्थलात्मक आधार पर साधारण जनता का प्रतिनिधित्व करती है। उसमें उन हितों व वर्गों के प्रतिनिधि नहीं होते जो राज्य में स्थिरता लाते हैं, जैसे अल्प-जन संख्यक धन सम्पत्ति के स्वामी, जमींदार, उद्योगपति आदि जिनका हित इसमें है कि राज्य में सुरक्षा व शान्ति रहे। इस दोष को परिषद की स्थापना करके दूर किया जा सकता है जिसमें ऐसे लोगों के प्रतिनिधि रहें कि राज्य में जिनकी प्रधानता संख्या-बाहुल्य पर निर्भर न हो वरन् जो या तो अपने अनुभव, वैयक्तिक योग्यता व सदाचरण के कारण राज्य के योगक्षेम में सहायक और शुभचिन्तक हैं या जिनका हित राज्य के हित से जुड़ा हुआ है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इनके प्रतिनिधियों का

निर्वाचन या नियुक्ति लोकसभा के सदस्यों के निर्वाचन से भिन्न रीति पर होनी चाहिये। इस ढंग से राज्य के व्यवस्थापक मण्डल में सब वर्गों व सब हितों का उचित प्रतिनिधित्व होना सम्भव हो जाता है। पाँचवी बात यह है कि परिषद् में सदस्यों की संख्या कम होने से व उनमें लोकसभा के सदस्यों की अपेक्षा योग्य व्यक्तियों के रहने से, वहाँ कानून बनाने में अधिक समय तक सूक्ष्म मनन हो सकता है। लोकसभा में वाक्पटुता दिखाने में ही बहुत सा समय निकल जाता है। परिषद् में ज्ञानवान् व परिपक्व बुद्धि वाले व्यक्तियों के रहने से विधि-निर्माण कार्य में दक्षता और दूर दर्शिता का पुट रहता है।

द्विआगारिक पद्धति के दोष—द्विआगारिक पद्धति के समर्थकों के विरुद्ध वे लोग हैं जो यह कहते हैं कि परिषद् या ऊपर वाली सभा (Upper House) जिस उद्देश्य से बनाई गईं थीं उसे पूरा करने में असफल रहीं हैं। उनका यह भी कहना है कि प्रजातन्त्र राज्य में यदि ऊपरली सभा के सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा होता है और यदि उसके वही अधिकार हों जो लोक-सभा या निचली सभा (Lower House) के हैं तो ऊपरली सभा से केवल निचली सभा का द्विगुणीकरण हो जाता है। फलतः व्यवस्थापक संगठन केवल अधिक खर्चीला और अनावश्यक पेचीदा बन जाता है। दूसरे यदि फ्राँस और इङ्गलैंड की तरह ऊपरली सभा के अधिकार निचली सभा से कम हों तो उसका होना न होना कोई महत्त्व नहीं रखता। तीसरे, यदि ऊपरली सभा अधिक अनुदार हो और उसके सदस्यों का निर्वाचन निचली सभा के सदस्यों की अपेक्षा अधिक संकुचित क्षेत्र से हुआ हो, तो वह गाड़ी के पाँचवें पहिये के समान शासन की प्रगति में रोक लगाने के सिवाय कुछ नहीं कर सकती। इससे वह प्रजातन्त्र की विरोधी ही सिद्ध होगी। चौथी बात यह है कि यदि कनाडा की तरह ऊपरली सभा के सदस्यों को मनोनीत किया जाये तो उससे मनोनीत करने वाले अधिकारी (authority) को ही विधायिनी-शक्ति (legislative power) सुपुर्द हो जाती है। यदि इंगलैंड की तरह इस सभा की सदस्यता पैतृक अधिकार पर निर्भर हो और उसकी स्थिति परम्परा-गत हो गई हो तो यह मान लिया जाता है कि विधायिनी बुद्धि माता पिता से प्राप्त होती है या सन्तान को दी जा सकती है, जो सत्य प्रतीत नहीं होता। यदि इस सभा में व्यवसायों व विहित वर्गों के प्रतिनिधि रखे जायं तो यह निश्चय करना असम्भव हो जाता है कि उन सब व्यवसायों और वर्गों में प्रत्येक को कितना प्रतिनिधित्व दिया जाय। यह भी कहा जाता है कि ऊपरली

सभा को न रख कर दूसरी युक्तियों से वही काम निकाला जा सकता है जो यह सभा करती है। उदाहरणार्थ एक आगार स्थापित करने के साथ साथ कमैटी-पद्धति अपनाई जाय। प्रत्येक शासन विभाग के लिये एक स्थायी कमैटी बना दी जाय जो विधेयकों पर पहिले विचार करे और फिर उन्हें धारासभा में अन्तिम स्वीकृति के लिये भेजे। या किसी भी विधेयक के पास होने से पूर्व उस पर जनता की राय ली जाय अथवा विशेषज्ञों का परामर्श प्राप्त किया जाय कि क्या वास्तव में अमुक विधेयक वाँछनीय और पर्याप्त है या नहीं। ऐसा करने से विधेयकों के पास होने में आवश्यक देरी और छिद्रान्वेषण की वही सुविधा हो जायगी जिसके कारण ही ऊपरली सभा का अस्तित्व आवश्यक समझा जाता है।

संघ-शासन और ऊपरली सभा—द्विआगारिक पद्धति के समर्थकों का कहना है कि संघ-शासन में ऊपरली सभा का होना नितान्त आवश्यक है। उसके द्वारा उपराज्यों की समता अक्षुण्ण रखी जा सकती है क्योंकि उसमें छोटे बड़े सब उपराज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है। संघ-शासन में यह सभा उपराज्यों के विशेष अधिकारों की रक्षक समझी जाती है। यदि वह उपराज्यों की परिषद् न हो तो बड़े उपराज्य लोकसभा में अपने प्रतिनिधियों की संख्या-बाहुल्य के बल पर छोटे राज्यों से बाजी मार ले जाया करेंगे क्योंकि लोकसभा में जन संख्या के अनुपात से ही उपराज्यों को प्रतिनिधित्व मिलता है। ऐसा होने से संघ-शासन में उपराज्यों की समानता का जो महत्व-पूर्ण सिद्धान्त है वह समाप्त हो जायगा। इस सम्बन्ध में यह निस्सन्देह ठीक है कि सब संघ-शासनों में संघ-शासन स्थापित होते समय इस बात पर जोर दिया गया कि ऊपरली सभा बननी चाहिये जिसमें सब संघीभूत इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। यही नहीं बल्कि इन इकाइयों ने संघ में सम्मि-लित होने के लिये यह शर्त लगा दी कि ऐसी परिषद् बनना चाहिये। पर संघ-शासन की धारा सभाओं के व्यावहारिक रूप को देखकर हम कह सकते हैं कि जिस भय के कारण इन परिषदों का बनाना आवश्यक समझा गया वह निर्मूल था। जैसी आशा की जाती थी वैसी ये ऊपरली सभायें उपयोगी सिद्ध नहीं हुईं।

दोनों आगारों की रचना और उनके अधिकार—आधुनिक राज्यों में यह एक बड़ी भारी समस्या है कि व्यवस्थापक-मण्डल के दोनों आगारों की रचना किस प्रकार की जाय और उनमें किसको अधिक व किसको कम अधि-

कार दिये जायँ। साधारणतः जो स्थिति पाई जाती है वह यह है कि ऊपरली सभायें प्रायः निचली सभा से अल्पसंख्यक होती हैं। केवल ब्रिटिश हाउस आफ लार्ड्स ही उस नियम में एक अपवाद है। इनके अधिकार या तो निचली सभा से कम होते हैं या बराबर। पर अमरीका में ऊपरली सभा जिसे सीनेट (Senate) कहते हैं प्रतिनिधि-सभा (House of Representatives) से अधिक शक्तिशाली है और वह संसार की अन्य ऊपरली सभाओं में सबसे अधिक अधिकारों का उपभोग करती है। ब्रिटिश हाउस औफ लार्ड्स के अधिकार सबसे कम हैं। ऊपरली सभाओं की अवधि निचली सभाओं से लम्बी होती है, ब्रिटिश हाउस आफ लार्ड्स तो कभी समाप्त होता ही नहीं। कनाडा में सदस्य आजीवन ऊपरली सभा में बैठ सकते हैं। आय-व्यय सम्बन्धी विषयों में निचली सभा को अन्तिम अधिकार होता है यद्यपि अमरीका में दोनों सभाओं को समान अधिकार है, केवल यही प्रतिबन्ध है कि मुद्रा-विधेयक (money bills) निचली सभा में प्रारम्भ होते हैं। बहुत से देशों में ऊपरली सभा उच्च राजकर्मचारियों और राजपदाधिकारियों के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों को सुनती है और न्याय निर्णय भी करती है और इस प्रकार से न्याय संस्थाओं का काम करती है। जहाँ ऊपरली सभायें निर्वाचित होती हैं वहाँ प्रायः इनके निर्वाचन के लिये मताधिकार संकुचित होता है अर्थात् कुछ थोड़े से व्यक्ति इनके सदस्यों का निर्वाचन करते हैं। कहीं कहीं अप्रत्यक्ष निर्वाचन-प्रणाली से सदस्यों का चुनाव किया जाता है। पर अमरीका में सन् १९१३ के पश्चात् सीनेट के सदस्यों को प्रत्येक उपराज्य की मतधारक जनता ही चुनने लगी है। ऐसी ही प्रथा आस्ट्रेलिया में भी प्रचलित है। पास में जुड़ी हुई सारिणी (table) में द्विआगारिक विधानों वाले राज्यों के व्यवस्थापक-मण्डलों की दोनों सभाओं की तुलनात्मक रचना और अधिकार दिये हुये हैं।

धारासभाओं की निर्वाचन प्रणाली—प्रत्येक राज्य में विभिन्न निर्वाचन प्रणालियों के द्वारा धारा सभाओं में प्रतिनिधि चुन कर भेजे जाते हैं। इंगलैंड में एक-प्रतिनिधिक निर्वाचन क्षेत्रों (single member constituenies) से पार्लियामेंट के सदस्य चुने जाते हैं। केवल विश्वविद्यालय वाले क्षेत्र से एक से अधिक सदस्य चुने जा सकते हैं। जो उम्मेदवार अपेक्षाकृत सबसे अधिक मत अपने पक्ष में प्राप्त करता है वही निर्वाचित समझा जाता है। चाहे इन मतों की संख्या उस

निर्वाचन-क्षेत्र के मतधारकों की संख्या या मतदाताओं की संख्या के आधे से अधिक हो अथवा न हो। इस पद्धति को निर्वाचन की अपेक्षाकृत मताधिक्य पद्धति (Relative majority system of election) कह कर पुकारते हैं। यह पद्धति तब तक बड़ी सफलकार्य सिद्ध हुई जब तक इंगलैंड में उदार (Liberal) और अनुदार (Conservative) दो दल थे और केवल दो दलों के उम्मेदवारों में प्रतिद्वन्द्विता चलती थी और दोनों में से मतधारक एक को चुनते थे जिससे बहुमत की ही जीत होती थी। लेबर पार्टी के आने के बाद यह पार्टी बहुमत का प्रतिनिधित्व कराने में स्पष्टतया सफल न हो सकी। ऐसा क्यों होता है, यह हम आगे बतायेंगे। जहाँ अपेक्षाकृत मताधिक्य प्रणाली प्रचलित है वहाँ प्रत्येक दल को अपनी संख्यानुसार प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं मिल पाता चाहे वहाँ निर्वाचन क्षेत्र में केवल दो ही राजनीतिक दल हों। निम्नलिखित आँकड़े इस को स्पष्ट कर देंगे। कनाडा की निचली संघीय धारा सभा के लिये सदस्यों के निर्वाचन में जो मत (vote) पड़े उनसे ये आँकड़े सम्बन्धित हैं।

निर्वाचन का वर्ष	प्रान्त	दल	मत जो दल को प्राप्त हुये	स्थान जो दलको मिले
१९०४	नोवा स्कोटिया	लिबरल	५६,५२६	१८
	,,	कन्जरवेटिव	४६,१३१	शून्य
९११	ब्रिटिश कोलम्बिया	लिबरल	२५,६३२	७
		कन्जरवेटिव	१६,३५०	शून्य
१९२६	एलबर्टा	फार्मर्स पार्टी	६०,०००	११
१९२६	मैनीटोबा	कन्जरवेटिव	४९,०००	१
		लिबरल	८३,०००	७
		प्रोग्रेसिव	३८,०००	शून्य

समानुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति—(System of proportional representation)—यह सभी मानने लगे हैं कि अपेक्षाकृत मताधिक्य प्रणाली (Relative majority system) में बड़ा दोष है। इसलिये उसे सुधारने के लिये कई नई योजनायें तैयार हुई हैं उनमें से सब से महत्वपूर्ण समानुपाती

प्रतिनिधित्व प्रणाली है इस प्रणाली से प्रत्येक राजनीतिक दल को लोकसभा में उसी अनुपात से स्थान मिलते हैं जो अनुपात उस दल के लिये पड़े हुये मतों में और कुल डाले हुए मतों में होता है। इस प्रणाली में बहु-प्रतिनिधिक-निर्वाचन क्षेत्र होते हैं और मतधारकों को या तो निर्वाचित होने वाले उम्मेदवारों की संख्या से कम मत देनेका अधिकार होता है या उनको यह सुविधा दे दी जाती है कि वे सारे वोट एक ही उम्मेदवार को दे दें अथवा उन्हें एक से अधिक उम्मेदवारों में बाँट दें। एक दूसरी निर्वाचन प्रणाली में एक मतधारक को एक मत देने का अधिकार होता है पर वह उम्मेदवारों के लिये अपनी क्रमानुसार रुचि बैलट पेपर (मत पत्र) पर उम्मेदवारों के नाम के सामने १, २, ३, ४ संख्या लिखकर प्रकट कर सकता है। इस प्रणाली में बड़ी पेचीदगी रहती है जिसका वर्णन करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

मतधारकों और उनके प्रतिनिधियों का सम्बन्ध—यह प्रश्न उठा करता है कि मतधारकों और उनके प्रतिनिधियों में कैसा सम्बन्ध रहना चाहिये। क्या प्रतिनिधि अपनी इच्छानुसार धारा सभा में किसी योजना को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिये स्वतन्त्र हैं? यदि नहीं तो क्या उसे अपने मतधारकों की इच्छा के अनुसार व्यवहार करना चाहिये? उसे अपने मतधारकों से किस प्रकार सम्पर्क रखना चाहिये? ये महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं और प्रत्येक राज्य में इसको पृथक पृथक ढंग से सुलझाया जाता है। इस सम्बन्ध में बहुत सी युक्तियाँ काम में लाई जाती हैं। कतिपय ये हैं, जैसे निचली लोक सभा के लिये निश्चित समय के बीतने पर नया निर्वाचन करना, ऊपरली सभा के कुछ भाग को निश्चित समय के पश्चात् नये सदस्यों से भरना, मन्त्रि-परिषद और लोकसभा में विरोध होने पर लोकसभा का विलयन कर देना, लोक निर्णय (Referendum), प्रत्याहरण (Recall), व निर्बन्ध उपक्रम (Initiative) आदि को अपनाना, इन सब का वर्णन हम आगे चलकर उपयुक्त स्थानों पर करेंगे।

कार्यकारिणी (Executive)—सरकार का दूसरा अङ्ग कार्यकारिणी है। इसकी बनावट, शक्ति और लोकसभा से इसका सम्बन्ध, ये तीनों बातों सब राज्यों में एक समान नहीं होतीं। पर किसी राज्य के शासन की आत्मा उसकी कार्यकारिणी की बनावट पर ही निर्भर है। हमें यहाँ कुछ प्रश्नों पर विचार करना पड़ता है। कार्यकारिणी सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में हो या कई व्यक्तियों के हाथ में, इस कार्यकारिणी के पद की क्या अवधि होगी? निश्चित अवधि होनी चाहिये या परिवर्तन शील? कार्यकारिणी उत्तरदायी हो या अनुत्तरदायी?

यदि उत्तरदायी हो तो किसको ? व्यवस्थापिका सभा को या जनता को ? यदि कार्यकारिणी उत्तरदायी हो और कई व्यक्तियों से बनी हो, तो क्या प्रत्येक व्यक्ति पृथक पृथक उत्तरदायी हो या सामूहिक रूप से सब उत्तरदायी हों ? इन प्रश्नों का उत्तर प्रत्येक राज्य ने अपने अपने ढंग से दिया है।

सरकारों का उनकी कार्यकारिणी की बनावट के आधार पर वर्गीकरण; स्वेच्छाचारी, अध्यक्षात्मक, संसदात्मक (Parliamentary)—सरकारों का वर्गीकरण उनकी कार्यकारिणी की बनावट के अनुसार ही किया जाता है। जब कार्यकारी सत्ता पूर्णरूप से एक व्यक्ति को सौंप दी जाती है जो किसी को उत्तरदायी नहीं होता तो वह स्वेच्छाचारी सरकार कहलाती है। इस श्रेणी में अफगानिस्तान का अनियन्त्रित राजतन्त्र गिना जा सकता है। जहाँ कार्यकारी सत्ता जनता से निर्वाचित एक व्यक्ति को सुपुर्द रहती है और वह व्यक्ति निश्चित समय के लिये उस सत्ता का अधिकारी रहता है वहाँ अध्यक्षात्मक (Presidential) प्रजातन्त्र सरकार कहलाती है। ऐसी सरकार संयुक्त-राज्य अमरीका की है। अमरीका का राष्ट्रपति अकेला कार्यकारी सत्ताधिपति है पर वह विधान द्वारा नियन्त्रित है। वह अपनी शक्ति का उपयोग विधान का उल्लंघन करके नहीं कर सकता। इंगलैण्ड, फ्राँस आदि में कार्यकारिणी मन्त्रिपरिषद कहलाती हैं। इसमें कई व्यक्ति रहते हैं जो सामूहिक रूप से प्रायः लोकसभा अर्थात् निचली सभा को उत्तरदायी रहते हैं। लोकसभा उनको जब चाहे उनके पद से हटा सकती है। ऐसी कार्यकारिणी वाली सरकार को संसदात्मक या पार्लियामेन्टरी प्रणाली वाली या मन्त्रिपरिषद् वाली सरकार कहते हैं। जब तक कार्यकारिणी लोकसभा की विश्वासपात्र बनी रहती है तभी तक वह पदासीन रहती है।

मंत्रिपरिषद प्रणाली के सिद्धान्त—प्रजातंत्र को प्रचलित करने में जो ग्रेट ब्रिटेन ने सब से महत्वपूर्ण योग दिया है वह मंत्रिपरिषद प्रणाली का विकास है। मंत्रिपरिषद या पार्लियामेन्टरी प्रणाली का कैसे आरम्भ हुआ और किस प्रकार उसका धीरे धीरे विकास हुआ इसका विवेचन इस पुस्तक में आगे किया गया है। इस प्रणाली के कुछ निश्चित सिद्धान्त हैं जिनके अनुसार यह कार्यरूप होती है। नाम के लिये कार्यकारिणी सत्ता का स्वामी इंगलैंड में अब भी राजा ही है पर वास्तव में सारी शक्ति मंत्रिपरिषद के ही हाथ में रहती है और वही उसको काम में लाती है। इस प्रणाली के कतिपय सिद्धान्त ये हैं :—पहिला, व्यवस्थापिका सभा में निश्चित राजनीतिक दल होने चाहिये

और मंत्रिपरिषद बनाने का अधिकार उस दल को होना चाहिये जिसका व्यवस्थापिका सभा में अपना बहुमत हो या बहुमत पर प्रभाव हो। दूसरे कार्यकारिणी शक्ति एक छोटे से मंत्रिमण्डल में निहित होनी चाहिये जो लोक सभा को उत्तरदायी हो चाहे उनमें से कुछ ऊपरली सभा के सदस्य ही क्यों न हों।

मंत्रिपरिषद् शासन नीति को निर्धारित करती और व्यवस्थापक मण्डल के सम्मुख उस नीति को कार्यान्वित करने के लिये कार्यक्रम उपस्थित करती है। मंत्रिपरिषद् ही व्यवस्थापक मण्डल को बतलाने का काम करती है कि मण्डल सुशासन के लिये कौन से और किस तरह के निर्बन्ध बनावे। विधि विधान बनाने के सम्बन्ध में वह मण्डल की निर्देशक रहती है और उसी दिशा में उसे परिचालित करती रहती है पर उसे आय-व्यय आदि के सम्बन्ध में मण्डल की स्वीकृति लेनी पड़ती है। मंत्रिमण्डल एक बड़ा संगठन होता है जिसमें मंत्रिपरिषद् एक छोटी सी समिति के समान है। मंत्रिमण्डल में वे सब मंत्री, पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी, व दूसरे पदाधिकारी होते हैं जो मंत्रिपरिषद् के त्याग-पत्र देने पर अपने सब पदों का त्याग कर देते हैं। परिषद् में प्रधान मंत्री ही प्रमुख व्यक्ति होता है, परिषद् उसी की बनाई हुई होती है और वही उस परिषद् की शासन नीति की रूप रेखा निश्चित करता है। कौन कौन से शासन विभाग किस किस मंत्री को मिलेंगे, यह वही निर्णय करता है। यदि कोई मंत्री पदत्याग करता है तो वह अपना त्याग-पत्र प्रधान मंत्री को देता है, पर उसके ऐसा पदत्याग करने पर सारे मंत्रिमण्डल को पदत्याग किये हुये समझा जाता है। प्रधान मंत्री ही लोकसभा का नेतृत्व करता है और अपनी मंत्रिपरिषद् पर लगाये हुये अभियोगों का प्रतिवाद कर उसकी नीति का समर्थन करता है।

इस प्रणाली का तीसरा सिद्धान्त यह है कि मंत्रिपरिषद् अपने पद पर उस समय तक आसीन रहती है जब तक वह लोकसभा की विश्वास पात्री बनी रहती है। जैसे ही लोक सभा का इस पर से विश्वास उठ जाता है, वह पद त्याग कर देती है। यह अविश्वास या तो अविश्वास के प्रस्ताव के पास होने से प्रकट हो सकता है या तब जबकि लोकसभा मंत्रिपरिषद् द्वारा प्रस्तुत किसी महत्वपूर्ण योजना को अस्वीकृत कर दे अथवा मंत्रिपरिषद् द्वारा किये हुये किसी कार्य की निन्दा करे और उससे अपनी असम्मति प्रकट करे। यदि ऐसा किये जाने पर मंत्रिपरिषद् यह निर्णय करती है कि उसकी नीति ठीक है और लोक सभा का मत गलत है और जनता उसकी नीति का ही

समर्थन करेगी न कि लोकसभा के मत का, तो उसे यह स्वतंत्रता रहती है कि वह लोकसभा के विलयन कराने का प्रयत्न करे और विलयन हो जाने के पश्चात् जनता से अपनी नीति के समर्थन की प्रार्थना करते हुये नये निर्वाचन में भाग ले, यदि इस मंत्रिपरिषद् के दल के लोग ही अधिकांश में लोक सभा के सदस्य चुन लिए जायं तब तो वह परिषद् पदासीन बनी रहती है वरना पदत्याग कर देती है, विरोधी दल नई परिषद् बना कर सरकार की बाग डोर अपने हाथ में लेता है। पार्लियामेंटरी प्रणाली की यह पद्धति इसकी आत्मा है।

चौथा सिद्धान्त यह है कि मंत्रिमण्डल के सब सदस्य उस दल के होने चाहियें जिसका लोकसभा में बहुमत है और जिस दल को राज्यतंत्र का भार सौंपा गया हो। ऐसा करने से शासन नीति में एकरूपता रहती है, वह भिन्न भिन्न दलों की नीति में खिचड़ी नहीं बनती और न शासन कार्य में खींचातानी का अवसर रहता है। परन्तु यदि लोक सभा में दो से अधिक राजनैतिक दल हैं और उनमें से किसी का भी बहुमत न हो तो सबसे प्रभावशाली दल के नेता से मंत्रिमण्डल बनाने को कहा जाता है। वह मंत्रिमण्डल में या तो अपने ही दल के लोगों को रखे और इस आशा में शासन-भार अपने ऊपर ले ले कि दूसरे दल उस से सहयोग रखेंगे या वह दूसरे दलों में से भी कुछ व्यक्तियों को अपने मंत्रिमण्डल में रख ले जिससे वे दल उसका समर्थन करते रहें। ऐसी मंत्रिपरिषद् मिली-जुली परिषद् (coalition cabinet) कहलाती है। मिली जुली परिषद् की शासन नीति उन कई राजनीतिक दलों के सिद्धान्तों के सम्मिश्रण से निर्धारित होती है जिनके सहयोग से मंत्रिपरिषद् बनती है इस लिये परिषद् के सदस्यों में वह घनिष्ठता और एकाग्रता नहीं रहती जो समान सिद्धान्तों पर चलने वाले एक आदर्श की प्राप्ति का प्रयत्न करने वाले संगठन में हुआ करती है। फलतः ऐसी परिषद् बहुत दिनों तक नहीं टिकती और जब तक यह रहती है उसकी नीति में दृढ़ता नहीं आने पाती।

संसदात्मक या पार्लियामेन्टरी राजतन्त्र प्रणाली के गुण—जिस राज्यतन्त्र प्रणाली का हमने ऊपर वर्णन किया है उसमें कई अच्छाइयाँ हैं। पहिली बात तो यह है कि इस प्रणाली में विभिन्न पृथक पृथक राजनैतिक दलों का होना आवश्यक है। इन दलों का अपना अपना कार्यक्रम होता है जिसे वे राज्यशक्ति को अपने अधिकार में कर पूरा करने की इच्छा किया करते हैं। इस कार्यक्रम को वे जनता के सामने रखते हैं और यह आशा करते हैं कि

जनता उनके कार्यक्रम से सहमत होगी तो उन्हें लोकसभा के लिये चुनेगी। यदि वे बहुमत प्राप्त करने में सफल होते हैं तो शासन सत्ता सभालते और अपने कार्यक्रम को व्यावहारिक रूप देते हैं। राजनीतिक दलों के आधार पर निर्वाचन होने से साधारण जनता को बहुत सी राजनीति सम्बन्धी बातों की जानकारी हो जाती है। इससे राजकीय जीवन में उनकी रुचि बढ़ती है। वे अपने अधिकारों व कर्तव्यों को अच्छी तरह समझने लगते हैं और उन्हीं के अनुसार अपने जीवन-व्यापार की रूप-रेखा बना लेने में प्रयत्नशील होते हैं। दूसरे, इस प्रकार निर्वाचन होने से अपनाई जाने वाली शासन नीति का रूप अच्छी तरह व्यवस्थित हो जाता है और सबको उसके विषय में जानकारी हो जाती है जो समाज के योग क्षेम के लिये बड़ी महत्वपूर्ण बात है। शासन सत्ता को भी नीति व आदर्श के लिये इधर उधर भटकना नहीं पड़ता। उसके सामने निश्चित ध्येय व आदर्श रहता है जिसपर पहुँचने के लिये जनता ने उसे पदासीन किया है। तीसरे इस प्रणाली में शासन नीति के गुण-दोष की चर्चा भली भाँति होती है। विरोधी दल हमेशा सरकार के कामों में दोष ढूंढ़ निकालने को प्रयत्नशील रहता है और उसकी दृष्टि से कोई भी ऐसी बात नहीं छिप पाती जो जनता के हित के विरुद्ध हो। सरकार छिद्रान्वेषी विरोधी दल की आलोचना और दोष-प्रकाशन से भयभीत बनी रहती है जिससे वह स्वेच्छाचारी नहीं हो पाती। यह विरोधी दल पदासीन व्यक्तियों को सदा उन प्रतिज्ञाओं की याद दिलाता रहता है जिनके आधार पर उनको बहुमत मिला है और सरकार की शक्ति उनके हाथ सौंपी गई है। चौथे, विरोधी दल ऐसे कानून बनने से रोकता हैं जिनपर अच्छी तरह विचार नहीं हुआ है व जिनमें दूसरे शीघ्रता-दोष रहते हैं। वह केवल धारासभा में ही विधेयक (Bill) की आलोचना नहीं करता पर बाहर व्याख्यानों द्वारा व समाचार पत्रों द्वारा उसके गुणदोषों पर विचार करने के लिये जनता के सामने बहुत सी सामिग्री उपस्थित कर देता है।

राजनीतिक दल-प्रणाली और प्रजातन्त्र राज्य—संसदात्मक प्रजातंत्र को सुचारु रूप से चलाने के लिये राजनीतिक दल-प्रणाली एक महत्वपूर्ण काम करती है। जहाँ अध्यक्षात्मक कार्यकारिणी बनाने की प्रथा है या ऐसी दूसरी प्रकार की कोई और कार्यकारिणी बनाने की रीति है जो अपने पद से अवधि से पूर्व नहीं हटाई जा सकती, पर जहाँ यदि प्रजातन्त्रात्मक राज-संस्थायें हैं तो वहाँ भी यह दल-प्रणाली कम लाभदायक नहीं है। ब्राइस के कथनानुसार राजनीतिक दल के अस्तित्व का प्रकट कारण तो यही है कि वह किन्हीं सिद्धान्तों वा किसी विचारशैली का प्रसार करे पर इन सूक्ष्म सिद्धान्तों के साथ

ही साथ व्यवहार में वह व्यक्तियों को भी उचित महत्व देता है। इसका सञ्चालन सहानुभूति, अनुकरण, स्पर्द्धा और कलह-प्रियता आदि मानव गुण-दोषों के सहारे चलता है, यह नहीं कि सर्वदा उच्चादर्शों से ही उसकी प्रत्येक क्रिया प्रेरित होती हो, दल के सदस्य आपस के प्रेम और ध्येय की समानता के बन्धन से बँधे रहते हैं। यह बन्धन दल के अनुशासन-सम्बन्धी नियमों से दृढ़ बना रहता है। इनको अपने विरोधियों को सार्वजनिक जीवन में नीचा दिखाने के हेतु विभिन्न उपाय ढूँढ़ने में एक निराली प्रसन्नता का सुख मिलता है।

दल-प्रणाली में राजनैतिक सिद्धान्तों और मतों का खुलासा हो उनका निश्चित रूप व आकार स्थिर हो जाता है जिससे जनता को तत्कालीन राजकीय जीवन की आवश्यकताओं की जानकारी हो जाती है। प्रायः साधारण जनता सार्वजनिक विषयों के प्रति उदासीन रहती है और लोग अपने स्वार्थ की परिधि के बाहर विषयों पर बहुत कम ध्यान देते या उनपर मनन करते हैं। इसलिये यदि राजनैतिक दल उन विषयों पर सतत प्रकाश न डालते रहे तो लोकमत बड़ा अस्पष्ट और बेकार सिद्ध हो। अनेकों मतदाताओं के मस्तिष्कों के भीतर जो अव्यवस्थित व अस्पष्ट विचार घूमते रहते हैं दल-प्रणाली उनको ठीक ढंग से एकत्रित कर उन्हें स्पष्ट और सुव्यवस्थित रूप देने में सहायता करती है, यद्यपि प्रत्येक दल अपने अनुकूल दृष्टिकोण को ही उपस्थित करता है और विरोधी दल की अच्छाइयों को छिपाने का प्रयत्न करता है, तब भी सब दलों की बातें सुनने से जनता को वास्तविकता का ज्ञान हो ही जाता है।

किसी राज्य में राजनैतिक दलों का बनना बिगड़ना उस देश की परम्परा, रीतिरिवाजों व राजनैतिक समस्याओं के ऊपर निर्भर रहता है। इनका विवेचन उपयुक्त स्थान पर इस पुस्तक में आगे चलकर किया जावेगा।

राज्य में सिविल सर्विस—यदि राजनैतिक दल कार्यकारिणी की गलतियों को सुधारने का प्रयत्न करते हैं और सरकार को अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक रखते हैं तो सिविल सर्विस पदासीन दल के सिद्धान्तों को कार्यरूप कर शासन करती है। सिविल सर्विस (Civil Service) में भिन्न भिन्न श्रेणियों के अनेक शासनाधिकारी होते हैं। वे स्थायीरूप से अपने पदों पर आरूढ़ रहते हैं। इन पदाधिकारियों से यह आशा की जाती है कि वे अपने पद के लिये योग्य होंगे और सरकार की आज्ञानुसार व पदासीन दल के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर शासन चलायेंगे। ये अधिकारी भी कार्यकारिणी के अङ्ग ही होते हैं। मन्त्रिपरिषद और इनमें केवल यही अन्तर रहता है कि ये

मन्त्रिपरिषद् के पदत्याग करने पर अपने पद का त्याग नहीं करते। कोई भी दल पदासीन हो या या पदच्युत हो ये अपने स्थानों पर बने रहते हैं। इनका काम यही है कि पदासीन दल की शासन-नीति की आलोचना न कर उसको क्रियात्मक रूप दें। इसके लिये उन्हें प्रशासन में कुशल होने की आवश्यकता रहती है, शासन नीति या राजनीति निर्धारित करने का भार उनके ऊपर नहीं रहता। ये शासनाधिकारी सरकार की भुजायें हैं, वे स्थायी राज कर्मचारी हैं और प्रकट रूप से वे ही शासन करते हैं। इसलिये शासन की अच्छाई या बुराई उनके आचार व योग्यता पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। चाहे सरकार की नीति ऐसी हो कि उसको जनता के हितों की रक्षा और वृद्धि ही इष्ट हो पर यदि शासन-अधिकारी उस नीति में अनुराग रखते हुये उसका भली भाँति सञ्चालन न करें तो अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती।

राज्य का तीसरा अङ्ग न्यायाधीश वर्ग है—न्यायकारी सत्ता राज्य का तीसरा अंग है। जैसे ही मनुष्य समाज में संगठित हुये होंगे, आपस के झगड़े व राज्य और व्यक्ति के झगड़ों को निबटाने की आवश्यकता पड़ी होगी। राज्य के लिये भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ होगा कि झगड़ों के निबटाने के लिये क्या व्यवस्था की जाय। राज्य नियन्त्रण केवल इसी बात से पूरा नहीं हो सकता कि कानून बना दिये जाँय और शासनाधिकारी शासन करने के लिये नियुक्त कर दिये जाँय। इसकी भी आवश्यकता पड़ती है कि यह देख भाल रखी जाय कि कानून लागू किये जायें, कानूनों के तोड़ने वालों को उचित दण्ड दिया जाय और अधिकारों के प्राप्त करने व कर्तव्यों के पालन करने में नागरिकों के साथ न्याय बरता जाय। इस देख भाल के लिये ही सरकार के न्यायवर्ग की स्थापना की जाती है।

न्यायकारी सत्ता के कार्य-सिद्धान्त— न्यायकारी अंग की बनावट, कर्तव्य और उसके सिद्धान्त या तो धारा सभा और कार्यकारिणी मिल कर निश्चित कर देती हैं या इन सब का विधान में ही उल्लेख कर दिया जाता है। पर कुछ ऐसे सर्वमान्य सिद्धान्त हैं जो प्रत्येक सभ्य राष्ट्र में न्यायसत्ता के क्रिया रूप होने में लागू किये जाते हैं। न्याय-कारी सत्ता का प्रमुख कर्तव्य न्याय करना है इसलिये निरपेक्षित रहना इसका सर्वप्रथम सिद्धान्त है। पक्षपात शून्य तभी रहना सम्भव है जब न्यायाधीश को किसी प्रकार का न भय हो न प्रलोभन। पक्षपात-शून्यता स्थापित करने के लिये तीन बातों का होना आवश्यक है। पहली आवश्यकता यह है कि न्यायाधीश अपने पदों पर पूर्णरूप से सुरक्षित

हों। यदि अपने पद पर आसीन रहने के लिये उन्हें दूसरों का मुंह देखना पड़े और उनसे भयभीत रहना पड़े तो वे पक्षपात रहित होकर न्याय नहीं कर सकते। वे तभी न्याय के पलड़ों को बराबर रख सकते हैं जब उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो कि उनका निर्णय चाहे किसी भी ऊंचे से ऊंचे पदाधिकारी सत्ता को क्यों न बुरा लगे वह उनको उनके पद से हटा नहीं सकते। इसलिये पद का स्थायित्व और कार्यकारी सत्ता के तन्त्र से उसका परे होना आवश्यक है। जब तक न्यायाधीशों के काम में हस्तक्षेप करने से कार्यकारिणी को बिल्कुल रोक न दिया जाय तब तक न्यायाधीशों के मन से यह भय पूर्णतया नहीं निकल सकता कि वे अपना काम यदि पक्षपात रहित होकर करेंगे तो उनकी हानि हो सकती है। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशों को पर्याप्त वेतन मिलना चाहिये जिससे वे प्रलोभन में फंसने से बचे रह सकें। जहां न्यायाधीश वर्ग रिश्वतखोर व भ्रष्टाचारी होता है वहां निश्चय ही न्याय की आशा करना व्यर्थ है। रुपया मन को मोह लेता है और न्यायाधीश मानव होने के नाते इस दुर्बलता से बचे नहीं रह सकते। पर तब भी भ्रष्टाचार की सम्भावना कम कर दी जा सकती है और यदि उनको पारिश्रमिक ठीक ढंग से दिया जाय जिससे वे जल्दी ही मोह में न पड़ सकें और लोभ उनको चंचल न कर दे, तो इस भ्रष्टाचार की सम्भावना बिल्कुल ही मिट सकती है। दूसरी आवश्यकता इस बात की है कि न्यायाधीश कानून के ज्ञाता हों। इसके लिये यह आयोजन कर दिया जाता है कि विशेष कानूनी योग्यता वाले शिक्षित व्यक्ति ही न्यायाधीश बनाये जाते हैं। तीसरी बात यह है कि न्यायालय हर एक व्यक्ति के लिये समान रूप से खुले रहें। वहाँ हर एक को अपनी पुकार करने का अधिकार होना चाहिये। कोई भी व्यक्ति, चाहे उसकी कोई भी जाति, वर्ण, सम्प्रदाय या धर्म हो, न्यायाधीश के सम्मुख अपना मुकदमा पेश करने के लिये स्वतन्त्र होना चाहिये। धनी और निर्धन सब ही को न्यायालय में न्याय के लिये प्रार्थना करने की सुविधा होनी चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि छोटे बड़े न्यायालय स्थापित किये जायं, न्यायशुल्क की मात्रा थोड़ी हो और निर्धन व्यक्तियों को निःशुल्क कानूनी सहायता देने का राज्य द्वारा प्रबन्ध रखा जाय। यदि न्याय-शुल्क की मात्रा बहुत अधिक रखी जाती है तो गरीब आदमी न्यायालयों का उपयोग करने से वञ्चित रह जाता है और उसकी व्यथा

के दूर होने का रास्ता ही बन्द हो जाता है। फलस्वरूप धनी आदमियों से गरीबों के मन में डर बैठ जाता है क्योंकि वे अपने धन के बल पर दुर्बल निर्धनी व्यक्तियों पर अत्याचार करेंगे और न्याय को अपने रुपयों की थैली से अपनी ओर झुका लिया करेंगे। न्यायालयों की कई छोटी बड़ी श्रेणी होना आवश्यक है। सब के ऊपर एक उच्च-न्यायालय हो जिसमे मुकदमे की अन्तिम सुनवाई हो। यदि कोई व्यक्ति छोटी अदालत के निर्णय से असंतुष्ट रहे तो उसे उस निर्णय के विरुद्ध उस पर पुर्नविचार करने के लिये ऊपर वाले न्यायालय से प्रार्थना करने की सुविधा होनी चाहिये क्योंकि न्यायाधीश कितने ही योग्य व्यक्ति क्यों न हों, उनका निर्णय सर्वदा अचूक नहीं होता।

नागरिकों के स्वत्वों की रक्षा भी न्यायकारी सत्ता के हाथ में रहती है। न्यायाधीश निषेधाज्ञा द्वारा राज्य को किसी काम के करने से रोक सकता है या कोई काम करा सकता है जिसके करने या न करने से नागरिकों के अधिकारों पर राज्य का आक्रमण होता हो या उन अधिकारों की प्राप्ति न होती हो। कानून तो केवल विधान कर देता है कि क्या अधिकार नागरिकों को मिलना चाहिये। इनको उपलब्ध करा देना न्यायाधीशों का काम है। शासन विधान में नागरिक के अधिकारों का कितना ही विस्तृत और स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाय, वहाँ वाक्स्वातन्त्र, धर्म स्वातन्त्र आदि पर कितना ही ज़ोर दिया गया हो, पर जब तक न्यायकारी सत्ता नागरिकों को उनका भोग करने में सहायता न दे तब तक वे केवल कोरी कल्पना ही रह जाते हैं। सुसंगठित न्यायमण्डल द्वारा ही शरीर और धन की रक्षा का अधिकार, मतदान का अधिकार व दूसरे ऐसे ही अधिकारों की रक्षा होती है। जो राज्य अपने नागरिकों के स्वत्वों की रक्षा नहीं करता वह सभ्य कहलाने योग्य नहीं है। प्लूटार्क ने कहा था कि "राजा को और कोई गुण उतना शोभित नहीं करता जितना उसकी न्यायप्रियता,.....न्याय ही संसार का सच्चा सम्राट है"।

इसलिये जिस न्यायमण्डल में अकलंकित आचार वाले न्यायाधीश हों, जो न भय से, न लोभ से विचलित हो सकते हों, व जिन पर शासनाधिकारियों की अप्रसन्नता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता हो, वे अपने निर्णयों से स्वतन्त्रता का ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देते हैं जिसमें नागरिक प्रसन्नता पूर्वक निर्भीक

होकर घूम सकते हैं। आधुनिक सब विधानों में ऐसे न्यायमण्डल की स्थापना के लिये आयोजन रहता है जिससे अतिव्यय न कराकर शीघ्रतापूर्वक न्याय निर्णय की सुविधा प्रत्येक नागरिक को प्राप्त हो। इसमें सन्देह नहीं कि विभिन्न देशों की न्याय पद्धति एक दूसरे से भिन्न है। पर यह भिन्नता केवल छोटी छोटी बातों में ही है। उनके अतिरिक्त वे सब समान सिद्धान्तों पर ही आधारित हैं। जैसा पहिले बतलाया जा चुका है, संघ शासन में न्यायमण्डल को विशेष महत्व पूर्ण स्थान दिया जाता है।

राज्य के कर्तव्य—राज्य पहिले पहिल यदि संरक्षण के लिये उदय हुआ तो पोषण के लिये वह जीवित रहता है। इस अभिप्राय को सिद्ध करने के लिये उसके सामने कुछ ध्येय होते हैं जिनपर पहुँचने के लिये उसे किन्हीं कामों को करना पड़ता है। राज्य के क्या उद्देश्य होने चाहियें और किन कर्तव्यों को इसे पूरा करना चाहिये, ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर युग युग में राजनीतिज्ञों ने देने का प्रयत्न किया है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, परम्परा आवश्यकता और राज्य से भविष्य में किस आदर्श की आशा करते थे, इन सब बातों को ध्यान में रखकर इन प्रश्नों का उत्तर दिया। इन उत्तरों के ही द्वारा राजनीति-विचारकों ने राज्य के घटना चक्र में बड़ी हेर फेर कर दी और उसके द्वारा राज्यनीति और शासन-नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के लिये रास्ता साफ कर दिया। इसी से यह समझ में आता है कि भिन्न भिन्न देशों में राज्य के कर्तव्यों की कल्पना भिन्न क्यों है। कारण यह है कि राज्यों की उत्पत्ति व परम्परा एक दूसरे से भिन्न और निराली रही है। परिस्थितियों ने उनको विशेष ढाँचे में ढाला, आवश्यकता व स्वार्थ के वश में होकर और कहीं कहीं व्यक्ति विशेषों की इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने पृथक पृथक मार्गों का अनुसरण किया है। राज्य के आदर्श और कर्तव्यों से हमें व्यवहृत सिद्धान्तों और भविष्य की आकांक्षाओं का परिचय मिल जाता है। सरकार के कर्तव्यों की रूप-रेखा जानने के लिये हमें यह मालूम करना चाहिये कि सरकार का रूप क्या है, और सरकार का रूप इस बात से निर्णीत होता है कि हम आदर्श सरकार का कैसा चित्र अपने सामने खींचे हुये हैं।

राज्य के कर्तव्यों का वर्गीकरण—सरकार के अनेक कर्तव्य हैं और उनकी अनेकता बढ़ती जाती है। उनका अध्ययन करने के लिये उनका वर्गीकरण आवश्यक है। यह वर्गीकरण उनके रूप व विस्तार के अनुसार किया जाता है। कुछ कर्तव्य ऐसे हैं जिनका करना प्रत्येक राज्य के लिये अपरिहार्य है। उनके किये बिना कोई भी राज्य राज्य कहलाने का दावा नहीं कर सकता।

आचार्य विल्सन ने सरकार के कर्तव्यों को दो विभागों में बाँटा था, अनिवार्य और वैकल्पिक (optional), व्यवधानिक (constituent) या सामाजिक (ministrant)। अनिवार्य कर्तव्यों में जीवन रक्षा, स्वतन्त्रता, सम्पत्ति रक्षा व दूसरे वे सब कर्तव्य गिने जाते हैं जो सामाजिक संगठन के लिये आवश्यक हैं। ये कर्तव्य इतने अपरिहार्य हैं कि व्यक्तिस्वातन्त्र्य का कट्टर से कट्टर सिद्धान्ती भी राज्य को इन्हें करने से मना नहीं कर सकता। राजा का सबसे प्रथम धर्म तो संरक्षण है और उसके लिये शान्ति और सुव्यवस्था रखने का काम सर्वप्रथम है, इस कर्तव्य के अन्तर्गत आनुषङ्गिक दूसरे कर्तव्य हैं जैसे पिता-पुत्र व पति-पत्नी के कानूनी सम्बन्ध स्थिर करना, धन सम्पत्ति के स्वामित्व उसके क्रय विक्रय, वसीयत करने आदि के नियम बनाना, ऋण व अपराध का स्वरूप निश्चय करना अर्थात् उनके लिये उचित दण्ड का विधान करना, नागरिकों के आपस के ठेकों को कार्यान्वित कराना व उनके पारस्परिक झगड़ों को निबटाना, राजनीतिक अधिकारों व कर्तव्यों को निश्चित रूप देना और विदेशी राज्यों से आदान प्रदान की व्यवस्था करना।

वैकल्पिक या सामाजिक कर्तव्यों में निम्नलिखित कर्तव्यों की गिनती की जाती है : व्यापार व उद्योग का नियमन, जिससे नाप तौल व मुद्रा आदि की देखभाल की जाती है, श्रमजीवियों के पारिश्रमिक, काम करने के घण्टे व काम करने की सुविधाओं के सम्बन्ध में नियमन करना, यातायात के मार्ग जैसे रेल, सड़कें, हवाई अड्डे, तार डाकघर, टेलीफोन आदि का प्रबन्ध करना, शिक्षा, अनाथों व निधनों की देखभाल, कृषि, उद्योग आदि की उन्नति, इत्यादि।

राज्य के कर्तव्यों की प्राचीन कल्पना—पुराने समय में राज्य के कर्तव्यों की कल्पना इतनी संकुचित थी कि राज्य का रूप एक बड़ी पुलिस संस्था से उच्चतर न था। उस समय संरक्षण ही राजा का कर्तव्य समझा जाता था। उसके कर्तव्य निषेधात्मक होते थे जैसे अत्याचार, चोरी, दंगा फिसाद आदि को रोकना। उस कल्पना में समय के प्रवाह से अनेक परिवर्तन हुये हैं और आजकल इसका बिलकुल नया रूप ही हो गया है।

सरकार के कर्तव्यों की आधुनिक कल्पना—निषेधात्मक कर्तव्यों के अतिरिक्त आधुनिक सरकार समाज के पोषक काम भी करने लगी है। अब राज्य में व्यक्ति के सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक अधिकार भी मान्य होने लगे हैं जिसकी प्राप्ति व रक्षा का उचित प्रबन्ध करना सरकार का कर्तव्य समझा

जाता है। औद्योगिक क्रान्ति ने राज्य के कर्तव्यों में बहुत हेर फेर कर दी है। मशीन युग में ऐसा होना अवश्यम्भावी था। भौतिक विज्ञान की उन्नति से राष्ट्रों में निकट सम्बन्ध स्थापित होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की कल्पना बराबर व्यापक होती जा रही है। अब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अधिकाधिक अन्योन्याश्रयी होता जा रहा है। इसलिये सरकार के कर्तव्यों की अनेकता व व्याप्ति भी बढ़ती जा रही है। व्यक्तिवादियों के इस कथन का अब कोई मूल्य नहीं रह गया है कि सरकार वही उत्तम है जो कम से कम शासन करती है। इस के विपरीत अब यह भावना दृढ़ होती जा रही है कि सरकार को अधिक से अधिक नियंत्रण करना चाहिये। अब सरकारें नागरिक के जीवन की छोटी छोटी बातों में भी हस्तक्षेप करने लगी हैं, यहां तक कि वे यह भी निश्चित करती हैं कि नागरिक क्या पढ़े, क्या लिखे, क्या खाये, किस वृत्ति को अपनाये, किस प्रकार विवाह करे और किस प्रकार इस सम्बन्ध को तोड़े। सब से अधिक हस्तक्षेप सरकार आर्थिक क्षेत्र में करने लगी है। एक ओर पूंजीवादी राष्ट्रों में सरकार अनेकों प्रकार से व्यक्तियों को वृहत्-उद्योगों को स्थापित करने में प्रोत्साहन देती है दूसरी ओर समाजवादी राष्ट्रों में इस बात का खुला प्रयत्न किया जा रहा है कि सब उत्पादक उद्योग सरकार के स्वामित्व में आ जायें अर्थात् सब उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जावे जिससे व्यक्तियों को आर्थिक संगठन को स्वार्थवश बिगाड़ने की कम से कम स्वतन्त्रता रह जाये। अमरीका जैसे व्यक्तिवादी राष्ट्र में जहां संघ सरकार की शक्ति विधान से मर्यादित है रुसवेल्ट के समय में नेशनल रिकवरी एक्ट (National Recovery Act) आदि जो तत्कालीन आर्थिक संकट को मिटाने के लिये पास किये गये उनका उद्देश्य राष्ट्र द्वारा छोटे आदमी को सहायता देना ही था इससे स्पष्ट है कि संसार की स्थिति ही ऐसी होती जा रही है कि समाजवाद के सिद्धांतों के अपनाये बिना कुशल दिखाई नहीं देती।

आधुनिक सरकारें प्रतिदिन ऐसे नियम बनाती जा रही हैं जिनसे कर्तव्यों की पराधि बराबर विस्तृत होती जा रही है और व्यक्ति स्वातंत्र्य का दायरा कम होता जा रहा है। ऐसा करना मनुष्य को सुखी बनाने के लिये आवश्यक होता जा रहा है। सरकार की बढ़ती हुई शक्ति आर्थिक क्षेत्र में अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देती है क्योंकि उसका हर समय व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव पड़ता है। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जर्मनी, इटैली व रूस में सरकारें व्यक्ति के जीवन पर सब से अधिक नियंत्रण करती थीं। पर अब इंगलैंड

जैसे जनतंत्रात्मक देश में भी समाजवादी सरकार की स्थापना हो गई है जो व्यक्ति के आर्थिक जीवन को सामूहिक रूप देती जा रही है। इससे प्रकट है कि सरकार के कर्तव्यों का प्रवाह निश्चय ही प्राचीन समय से चले आने वाले सिद्धान्तों के विरुद्ध, समाजवादी दिशा की ओर होने लगा है। अब जीवन-यात्रा का कोई ऐसा मार्ग नहीं जो राष्ट्र के नियंत्रण से परे समझा जाता हो। संसार की जैसी वर्तमान स्थिति है, जहाँ भावनाओं का व विचारों का संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है वहां बरबश सब राष्ट्रों में एक ही दिशा की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति होती जा रही है। जनतंत्रात्मक राष्ट्रों में भी राज्य नागरिकों के जीवन पर अधिकाधिक नियंत्रण करता जा रहा है। राज्य के कर्तव्यों की सीमा बांधना अब असम्भव है।

पाठ्य पुस्तकें

इस अध्याय में जिन विषयों पर विचार किया गया है उसके अध्ययन के लिये वृहत् साहित्य उपलब्ध है। प्रत्येक राजनीतिज्ञ और लेखक ने कुछ न कुछ इन विषयों पर अवश्य लिखा है। हाल ही में इस प्रकार का साहित्य प्रचुर मात्रा में तैयार हुआ है। यद्यपि पाठकों को किसी भी राजनीति की पुस्तक से प्रयाप्त पठन सामग्री मिल सकती है पर फिर भी निम्नलिखित पुस्तकें इस अध्ययन के लिये विशेष उपयुक्त होंगी।

Bryce, Viscount:—Modern Democracies, Vol. I
Burns, C. Delisle—Political Ideals
Coker, F. W.—Recent Political Thought
Cole, G. D. H., and M. I.—Modern Politics, Books V & VI
Finer, Herman—Theory & Practice of Modern Government, Vol. I, Chs. I, III, VII, XI, XIII, XVI and XVII
Laski, H. J.—A Grammar of Politics
Laski, H. J.—Liberty in a Modern State
Laski, H. J.—Introduction to Politics
Michels, R.—Political Parties
Seeley, J. R.—Introduction to Political Science
Wilson, Woodrow—The State

*

अध्याय ४

इंगलैंड की सरकार

अंगरेजी शासन-विधान का विकास

"ब्रिटिश साम्राज्य एक नियंत्रित राजसत्ता द्वारा एक बन्धन मे बँधा हुआ है। यह राजसत्ता वही प्राचीन नियंत्रित राजसत्ता है जिसका गठ बन्धन पहिले स्काटलैंड की राजसत्ता से हो कर उसका संवर्द्धन हुआ जिसमें समुद्रपार दूसरे राष्ट्र भी आकर सम्मिलित हो गये। इसका वर्तमान वैधानिक स्वरुप किसी एक घटना या आंदोलन से उत्पन्न न होकर एक ऐसे क्रमिक विकास से हुआ है जो उतना ही प्राचीन है जितनी कि प्राचीन नौर्मन (Norman) जाति की विजय। स्यात् हमें अपनी दृष्टि हटाकर उससे भी पहले उन सैक्सन राजाओं पर लगानी पड़ेगी जिनके आधिपत्य में इंगलैंड के राजा और उसके प्रदेशों का जन्म हुआ। विशेषतया हमारी दृष्टि एलफ्रैड पर जाकर जमती है जो हमारे राजाओं में सब से महान था, जिसका जीवन व चरित्र अंगरेज़ी विधान का जीता जागता रुप था"

(जी. एम. ट्रेविल्यान)

इंगलैंड में एंग्लो-सेक्सन जाति—लगभग पाँचवीं शताब्दी में पिक्ट् और स्कौट लोगों से ब्रिटेन लोगों की रक्षा करने के हेतु जो एंग्ल, सेक्सन और जूट लोग आये वे बृटेन में बस गये थे। इन नवागुन्तकों ने ब्रिटेन की संस्थाओं का आकार व व्यवहार में बड़ा परिवर्तन किया। ये संस्थायें कैल्ट और रोमन संस्कृतियों के एक निराले मिश्रण से बनी थीं। इन नयी जातियों के आने के बाद कई छोटे छोटे राज्य बस गये जिनमें पारस्परिक संगठन सुदृढ़ नहीं था। कोई राज्य कभी एक राज्य से मिल जाता था कभी दूसरे से। इसके पश्चात तुरन्त ही एक ऐसे युग का आरम्भ हुआ जिसमें थेग्न्स (Thegns) नामक एक शूर जाति का उत्थान हुआ। इस जाति के लोगों में जागीरें बंटी हुई थीं और वे लोग इस शर्त पर इन जागीरों का उपभोग करते थे कि युद्ध के समय वे राजा को सेना व धन से सहायता करेंगे।

ब्रिटेन में ईसाई धर्म—छठी शताब्दी में जब ब्रिटेन के रहने वालों ने ईसाई धर्म अपना लिया तो वहाँ एक नई सभ्यता का आरम्भ हुआ जिससे वहाँ की सामाजिक व राजकीय स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा। ईसाई

धर्म जो विश्वेकता के आधार पर प्रचलित था, इन लोगों को यूरोपियन राजकीय समाज के निकट ले आया और वे अपने राजकीय सभाओं का धार्मिक संघों के अनुरूप संगठन व संचालन करने लगे। "आरम्भ से ही राज्य व धर्म का निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया और यद्यपि वहाँ का धर्मसंघ रोम के पादरी का प्रभुत्व मानता था पर उसका निजी राष्ट्रीय ढंग पर विकास हुआ"।* इस समय जब ब्रिटेन में सात आँग्ल व सैक्सन राज्य साथ साथ स्थित थे सारे प्रदेश में सात छोटे छोटे राजा राज्य करते थे। इन सातों राजाओं में, वैसेक्स, मर्शिया और नौर्थम्ब्रिया के राजा और सब से अधिक प्रबल थे। वैसेक्स के राजा ऐग्बर्ट (Egbert) ने दूसरे राज्यों को अपने आधीन कर उन पर अपना आधिपत्य जमा लिया और अपने को "पश्चिमी सेक्सनों का राजा" कहने लगा। जिस ईसाई धर्म की प्रेरणा से अलग अलग राज्यों में लोग संगठित थे और एक केंद्रीय शक्ति अर्थात राजा को माने हुये थे, उसने राष्ट्रीय भावना के उगने में योग नहीं दिया। यह राष्ट्रीय एकता की भावना तभी जाग्रत हुई जब कि विधर्मियों के आक्रमण के भय से उन्हें एक साथ मिलकर रहने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अंगरेजी एकता का श्रेय उत्तर की ओर से होने वाले डेन लोगों के आक्रमण को है। यह आक्रमण लगभग ७९३ ई० से प्रारम्भ हुआ और पचास वर्ष के भीतर ही यह एक भारी समस्या हो गयी। पर अंगरेजों के लिये यह एक वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि इसके कारण तत्कालीन राज्य मिल कर एक हो गया।

एलफ्रैड और इङ्गलैण्ड का एक रूप होना—सन् ८७१ ई० में जब एग्बर्ट (Egbert) का चौथा पोता एलफ्रैड, वैसेक्स (Wessex) का राजा हुआ उस समय डेनों के आक्रमण ने विकट रूप धारण किया। सन् ८७८ ई० में एलफ्रैड ने एथेन्डन की लड़ाई में डेनों के सरदार गुथरुम (Guthrum) को करारी हार दी और उसे वैडमोर (Wedmore) के संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने को विवश किये। इस संधि से उत्तरी ब्रिटेन पर डेनों का राज्य ज्यों का त्यों मान लिया गया पर वैसेक्स की स्वतन्त्रता सुरक्षित कर दी गई। इसके पश्चात् ऐलफ्रैड ने वैसेक्स की शक्ति को सुदृढ़ करने की ओर ध्यान दिया। उसने स्थल सेना की शक्ति बढ़ाई, जल सेना तैयार की, कानूनों का सुधार किया और विद्या व देश भक्ति को प्रोत्साहन दिया।

---

* टैसवैल-लैंगमीड-इंगलिश कंस्टीच्यूशनल हिस्टरी पृ० ८

उसके समय में सारी जमीन राजा की सम्पत्ति समझी जाती थी और वही समाज का केन्द्र समझा जाता था। राजा ने यह जमीन अर्लों (Earls) और थैगनों (Thegns) में इस शर्त पर बाँट रक्खी थी कि वे राजा की युद्ध में सहायता करेंगे। इस प्रकार के वितरण को फ्यूडल प्रणाली कहते हैं। राज्याधिकार पिता से पुत्र को मिला करता था पर राजा की मृत्यु होने पर राजा के पुत्रों में से सब से योग्य राजकुमार या राजघराने का और कोई व्यक्ति उसका उत्तराधिकारी चुन लिया जाता था। यह कोई नियम न था कि ज्येष्ठ राजकुमार ही राज्यासन पर बैठे। राजा की आय उसकी निजी जायदाद या न्यायालयों द्वारा लगाये हुये आर्थिक दण्डों से होती थी। राजा अभी न्यायकर्ता न समझा जाता था क्योंकि जागीरदारों की अपनी अपनी जागीरों में न्याय संस्थायें थीं जो न्याय करने का काम करती थीं। पर धीरे धीरे राजा की न्यायकारी सत्ता जागीरदारों की सत्ता को हटा कर उसका स्थान स्वयं ले रही थी।

विटैनगैमौट (Witenagemot) इसकी बनावट और इसके कर्तव्य—उस समय भी राजा निरंकुश न था। उसकी शक्ति अमर्यादित न थी। उस समय भी एक राज्य परिषद् थी जिसका नाम विटैनगैमोट (Witenagemot) था। इस परिषद् के बड़े अधिकार थे और यह राजा की शक्ति पर अंकुश रखती थी। इस परिषद् में प्रत्येक स्वाधीन नागरिक बैठ सकता था। पर यह कुलीन-संस्था ही थी जिसके राजा, जागीरदार, मठधारी पादरी या बुद्धिमान कहलाने वाले व्यक्ति ही सदस्य होते थे। जो लोग इस परिषद् में उपस्थित होते थे उनको विटन या बुद्धिमान व्यक्ति कहते थे और बुद्धिमानों की परिषद् होने के कारण इसका नाम विटैनगैमेट पड़ गया। इसके बड़े विस्तृत अधिकार थे। यह राजा को चुन सकती थी उसको गद्दी से उतार सकती थी और शासन-प्रबन्ध में स्वयं भाग लेती थी। राजा के साथ बैठ कर यह परिषद् कानून बनाती थी और राजकीय सेवाओं के बदले में कर लगाती थी। संधि करना, स्थल व जल-सेना एकत्रित करना, राजा की जागीर में से भेंट देना, पादरियों को पदासीन व पदच्युत करना, दूसरे राज्याधिकारियों व जागीरदारों को अपने पद पर नियुक्त करना या हटाना अपराधियों की व निःसन्तान व्यक्तियों की जायदाद का फैसला कर ज़ब्त करना और धार्मिक आज्ञाओं का अनुकरण कराना, ये सब काम यह परिषद् किया करती थी। इन सब कामों के अतिरिक्त जब तब परिषद् सम्पत्ति-सम्बन्धी व झगड़े सम्बन्धी मुकदमों में सर्वोच्च न्यायालय का काम भी किया करती थी। संक्षेप में, भ्रूणावस्था में यह आधुनिक पार्लियामेंट थी। यद्यपि इसके अधिकार बड़े विस्तृत थे पर उनका प्रायः उपभोग न किया

जाता था और राजा का व्यक्तित्व इन मामलों में बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता था।

सारा देश गाँवों में विभक्त था। जिस कुल ने जिस गाँव को बसाया उसी के नाम पर गाँव का नाम पड़ गया। सौ गाँवों के समूह का नाम "दी हन्ड्रेड" होता था और प्रशासन का वह दूसरी बड़ी इकाई होती थी, पहिली इकाई गाँव थी। तीसरी इकाई "शायर" कहलाती थी जिसमें सौ "दी हन्ड्रेड" होते थे अर्थात् शायर एक हजार गाँवों का प्रदेश कहलाता था। राज्य का सबसे बड़ा स्थलात्मक विभाग शायर (Shire) ही था।

इन प्रशासन विभागों की संस्थाओं और अधिकारियों के संगठन और सम्बन्ध में इतिहासकारों का भिन्न भिन्न मत है। पर साधारणतया यह माना जाता है कि शायर (Shire) में राजा का सबसे बड़ा अफसर एल्डरमैन (Elderman) होता था जिसको राजा नियुक्त करता था। यह अफसर प्रायः राजघराने का ही व्यक्ति होता था और सैनिक तथा शासन सम्बन्धी अधिकारों का उपभोग करता था। शायर-मूट (Shire-moot) जो शायर की पुनर्विचार करने वाली अदालत (appellate court) थी उसका एल्डर-मैन सभापति होता था। इस अदालत को एकत्रित करने का काम शैरिफ करता था। शैरिफ (Sheriff) शायर (Shire) का निर्वाचित कर्मचारी होता था। इस अदालत के दूसरे सदस्य पादरी जमींदार सब राज कर्मचारी, धर्म्म-पुजारी और कुछ चुने हुए व्यक्ति होते थे।

दी हन्ड्रेड (The Hundred) शायर (Shire) का एक उप-विभाग था और स्थानीय अदालत होती थी जिसका नाम "हन्ड्रेड-मूट" (Hundred-moot) था। इस अदालत में बारह या बारह के अपवर्त्य (multiple) संख्या में जज होते थे। इस अदालत में शेरिफ (Sheriff) या उप-शैरिफ (Deputy Sheriff) प्रधान का काम करता था। दीवानी और फौजदारी मुकदमे इसी अदालत में प्रारम्भ होते थे।

नौर्मन (Norman) **काल**—सन् १०६६ में जो हेस्टिङ्स का युद्ध हुआ उससे इङ्गलैण्ड के शासन-विधान के इतिहास का रुख ही बदल गया। नार्मण्डी (फ्राँस) के राजा विलियम प्रथम ने इंगलैण्ड के राजा हैरोल्ड को हराकर इंगलैण्ड का राज सिंहासन अपने अधिकार में कर लिया और वह इंगलैण्ड का प्रथम नार्मन (Norman) राजा बन बैठा। राज्याभिषेक होते समय उसने इंगलैण्ड के प्राचीन काल से प्रचलित राजशपथ ली। उसने

इंगलण्ड के प्राचीन नियमों का ही पालन किया और वैधानिक राजा की तरह राज्य किया। उसने उन जागीरदारों की जागीरें छीन लीं जो उसके विरुद्ध युद्ध में लड़े और उन जागीरों को अपने उन नौर्मन सामन्तों में बाँट दिया जिन्होंने उसे सहायता दी या जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता देने का वचन दिया। पुराने जागीरदारों को राजभक्ति की शपथ लेनी पड़ी और वे अपनी शिकायतों की पुकार न्यायालयों में करने पर विवश किये गये। धर्म्म-न्यायालय (Spiritual Courts) राजकीय न्यायालयों (Civil Courts) से पृथक कर दिये गये। परन्तु धर्ममठों पर राज्य का प्रभुत्व सुरक्षित रखा गया। यह नियम बना दिया गया कि राजा की आज्ञा बिना कोई पादरी मान्य न समझा जाय न उसके आदेशों का पालन किया जाय, राष्ट्रीय याजक-परिषदों (Ecclesiastical assemblies) के निर्णय और आज्ञायें तब तक आदरणीय न हों जब तक राजा उसका समर्थन न कर दे और कोई जागीरदार या राज कर्मचारी बिना राजा की आज्ञा के पदच्युत या समाजच्युत न किया जाय।

इस प्रथम नौर्मन विजय के फलस्वरूप जो नये जागीरदार (Barons) बने उन्होंने कुछ समय के पश्चात विलियम द्वितीय के लिये बड़ी कठिनाई उत्पन्न करदी और उसे इंगलैंड के निवासियों से मिलकर इनके विद्रोह को दबाना पड़ा। हैनरी प्रथम के समय में ही राजा को अंगरेज़ी जनता की स्वतंत्रता के कुछ अधिकार मान्य करने पड़े। जिस अंगीकार-पत्र द्वारा इन की घोषणा हुई उसको दूसरे नौर्मन राजाओं ने भी आगे चल कर उसे मानने का वचन दिया। एञ्जीविन (Angevin) राजवंश का नींव डालने वाले हैनरी द्वितीय ने भी ऐसा ही किया। इस राजवंश में जोन नामक राजा का राज्यकाल इंगलैण्ड की लोक स्वतंत्रता के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है।

इंगलैंड की जनता के अधिकारों का मैग्ना कार्टा (Magna carta) **सन् १२१५ ई०**—जोन नामक राजा के समय में जागीरदारों और पादरियों ने, जो उस समय देश के नेता थे, राजा के विरुद्ध आन्दोलन किया। उन्होंने मिलकर एक षड्यन्त्र रचा और राजा को "ग्रेट चार्टर" (Great charter) अर्थात अंगीकार पत्र स्वीकार करने पर विवश किया। इस चार्टर (charter) में ऐसे प्रावधान (Provisions) अर्थात् शर्तें थीं जिनसे यह स्पष्ट होता था कि राजा पर जनता के किसी भी वर्ग का विश्वास नहीं है। राजा ने सामन्तों व पादरियों दोनों से झगड़ा कर लिया

था। मैग्ना कार्टा (Magna carta) उन तीन चार्टरों में से एक है जो चौथम (Chatham) के कथनानुसार इंगलैंड के शासन विधान की बाइबिल हैं। दूसरे दो चार्टर पिटीशन आफ राइट्स (Petition of Rights) और बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) के नाम से प्रसिद्ध हैं। यदि मैग्ना कार्टा की सूक्ष्म परीक्षा की जावे तो उससे पता चलेगा कि यह केवल सन् १२१५ ई० के पूर्व जो जनस्वातंत्र्य के अधिकार मान्य थे उनको लेखन-क्रिया द्वारा पुनः प्रतिष्ठित ही करता है। प्रस्तावना (Preamble) के अतिरिक्त इसमें ६३ खंड (Clause) हैं जो किसी क्रम से लिखे हुये नहीं है। प्रथम, इसमें सामन्त शाही (feudal) के कर्तव्यों को फिर से दुहराया गया है और सामन्तों के प्रति राजा की मांगों को मर्यादित कर दिया गया। दूसरे यह न्याय-प्रणाली को सरल बनाने का प्रयास करता है। इसमें कहा गया है कि (१) साधारण जनता के मुकद्दमों की सुनवाई निश्चित स्थानों पर होगी, (२) अर्लों (Earls) और बैरनों (Barons) को उनके ही कुलीन न्यायाधीश अपराध के अनुसार दण्ड दे सकेंगे (३) राजा के मुकदमे, शैरिफ, पुलिस अफसर, अमीन आदि सुनकर निबटारा न करेंगे (४) कोई स्वाधीन नागरिक न्यायालय में जाने से न रोका जा सकेगा (५) कोई भी अमीन विश्वसनीय गवाहों को सुने बिना अपना निर्णय नहीं देगा (६) न्याय के ज्ञाता ही न्यायाधीश, अमीन और शैरिफ नियुक्त किये जायेंगे, आदि आदि। तीसरे, इसमें शासन-विधान के मौलिक सिद्धान्तों की परिभाषा करदी गयी है इसमें लिखा है कि विटन (बुद्धिमानों की सभा, न्यायालय) को बुलाने के लिये पादरियों, महन्तों, मठधारियों अर्लों व बड़े बैरनों के पास अलग अलग व्यक्तिगत रूप से निमंत्रण भेजा जाना चाहिये; प्रमुख आसामियों (tenants) को प्रत्येक शायर में शैरिफ की लिखित आज्ञा द्वारा बुलाया जायगा; न्याय न किसी को बेचा जायगा न कोई इससे वंचित रखा जायगा। चौथे इस मैग्ना कार्टा में नगरों व कस्बों के अधिकारों को फिर से दुहराया गया है और कुछ व्यापारिक-अधिकारों की परिभाषा की गई है और पांचवें, राजा द्वारा लगाये जाने वाले करों की निश्चित मर्यादा बाँध दी गई।

इस चार्टर में उच्च वर्गों के व्यक्तियों के अधिकारों का वर्णन था पर इस का हैनरी तृतीय ने छः बार, एडवर्ड ने तीन बार, एडवर्ड तृतीय ने चौदह बार, रिचार्ड द्वितीय ने छः बार, हैनरी चतुर्थ ने छः बार और हैनरी पाचवें और छठे ने एक एक बार समर्थन करने की घोषणा की। जनता, विशेषकर

बैरन और पादरी, अपनी स्वतंत्रता व अधिकारों की रक्षा करने का जो महत्व इस चार्टर को देते थे वह इससे बिलकुल स्पष्ट ही है।

एङ्ग्लोविन वंश के राज्यकाल में इंगलैण्ड का शासन विधान—मैग्ना-कार्टा (Magna carta) ने प्रजा के लिये राजा से अपने अधिकार माँगने का मार्ग खोल दिया। इसके पश्चात हैनरी तृतीय के समय में राजा की वैधानिक स्थिति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। हैनरी तृतीय छोटी अवस्था में ही राज्याधिकारी हो चुका था, उसकी ओर से राज्य प्रबन्ध करने के लिये जो कौंसिल बनाई गई उसने अपनी शक्ति बढ़ाली जिससे जब हैनरी पूर्ण वयस्क होकर राजसिंहासन पर बैठा तो उसे इस कौंसिल से परामर्श करना पड़ता था। उस समय तक उस कौंसिल का प्रीवि कौंसिल नाम पड़ चुका था। इसके पश्चात हैनरी के विदेशी मित्रों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली जिससे देश में असंतोष फैलने लगा और गड़बड़ मंचना अरम्भ हो गई। सन् १२५८ में इस अनुशासन हीनता की हद हो गई। उस समय बैरनों (Barons) ने एक ग्रेट कौंसिल (Great Council) बुलाई। यह कौंसिल "मैड पार्लियामेंट" (उन्मादिनी संसद) के नाम से प्रसिद्ध है। यह ऑक्सफोर्ड नगर में अपनी मांगों को लेख बद्ध करने के लिये बुलाई गई। ये लेख अन्त में ऑक्सफोर्ड के प्रावधान (Provisions of Oxford) के नाम से प्रसिद्ध हुये।

ऑक्सफोर्ड के प्रावधान—विद्रोह पर तुले हुए बैरनों को देख कर राजा को इन प्रावधानों (Provisions) को मानने पर विवश होना पड़ा और यह स्वीकार करना पड़ा कि इनके आधार पर ही शासन प्रबन्ध होगा। इनके अनुसार पंद्रह बैरनों और पादरियों की कौंसिल नियुक्त की गई जो राजा को शासन कार्य में परामर्श देने की अधिकारिणी थी। हर तीसरे वर्ष पार्लियामेंट बुलाना आवश्यक था। इस पार्लियामेंट में कौंसिल के १५ सदस्यों के अतिरिक्त बैरनों के १५ प्रतिनिधि और राजा के १५ मनोनीत व्यक्ति बुलाने पड़ते थे। इस प्रकार सामन्तों को तो शासन प्रबन्ध में हाथ बटाने का अवसर मिल गया पर साधारण जनता को कोई प्रतिनिधित्व नहीं मिला।

साइमन डि मान्टफोर्ड द्वारा बैरनों का नेतृत्व—इस कौंसिल से परामर्श लेने को पहिले तो हैनरी सहमत हो गया पर सन् १२६१ ई० में उसने खुल्लम खुल्ला आक्सफोर्ड के प्रावधानों का अनुकरण करने से मना

कर दिया। बैरनों ने इस ललकार का सामना करने की ठान ली। गृहयुद्ध आरम्भ हुआ और सन् १२६४ ई० में १४ मई को लिविस लड़ाई में हार खाकर राजा और राजकुमार दोनों ने आत्म समर्पण कर दिया। इस संघर्ष में साइमन डि मान्टफार्ड (Simon de Montford) ने बैरनों का नेतृत्व किया था। प्रायः उसको साधारण-जनता का नेता कह कर भी पुकारा जाता है। फ्राँस के इतिहासकार गुइज़ट (Guizot) ने उसे "प्रतिनिधिक सरकार का जन्मदाता" कह कर पुकारा है। गुइज़ट का जीवनी लेखक पाउली (Pauli) साइमन को "हाऊस आफ कामन्स का जन्मदाता" कहता है, सच तो यह है कि वह दोनों में से एक भी नहीं है। यह ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है। मोन्टफोर्ड एक दुःसाहसी नौर्मन था जिसका चरित्र कई आकर्षक गुणों व दोषों का अद्भुत मिश्रण था। वह अपने बहनोई हैनरी तृतीय के प्रोत्साहन के कारण आरम्भ में उन्नित कर गया और उस समय तक प्रतिनिधिक राज्यशासन प्रणाली की ओर उसका बिलकुल झुकाव न था। जब उसने देखा कि उसके स्वार्थ की सिद्धि ढंग से होगी तभी इस प्रणाली का समर्थक होने का उसने दावा किया इंगलैंड के शासन विधान की प्रगति तो जोरी थी ही और उसमें तो परिवर्तन होने जा ही रहा था पर मौन्टफोर्ड के स्वार्थ का व इस का अनायास ही मेल हो गया। उस समय नगरों और कस्बों की आबादी बढ़ रही थी और उनकी समृद्धि भी बढ़ रही थी। ऐसी स्थिति में इन नगरों को अधिक समय तक पार्लियामेंट द्वारा उपेक्षा न की जा सकती थी। प्रतिनिधित्व तो आने वाला था ही। साइमन ने इस सम्बन्ध में असामयिक प्रयास किया।

साइमन की १२६४ और १२६५ की पार्लियामेंट—राजा से राजनैतिक लड़ाई लड़ने के लिये साइमन ने सन् १२६४ ई० में एक पार्लियामेंट बुलाई। इस पार्लियामेंट में उन बैरनों और पादरियों के अतिरिक्त जो पहले से ही अधिकारी थे, प्रत्येक प्रान्त (Country) के चार प्रतिनिधियों को भी बुलाया। इस पार्लियामेंट ने यह निश्चय किया कि शासन प्रबन्ध साइमन की अध्यक्षता में एक नौ सदस्यों की कमेटी के सुपुर्द कर दिया जाय। सन् १२६५ ई० में साइमन ने फिर पार्लियामेंट बुलाई जिसमें उसने "नाइट्स आफ दी शायर्स" (Knights of the Shires) को नहीं बुलाया पर सब बड़े नगरों और कस्बों से प्रतिनिधि बुलाये। इसमें सन्देह नहीं कि प्रजातंत्रात्मक सरकार की स्थापना करने के लिये यह पहला कदम था और इसका श्रेय साइमन को ही दिया जा सकता है।

एडवर्ड प्रथम के शासन-सुधार—सन् १२७४ ई० में हैनरी तृतीय के मरने के पश्चात् एडवर्ड प्रथम राजसिंहासन पर बैठा। उसकी पार्लियामेंटने कई शासन सुधार किये। सन् १२७५ ई० में ही वैस्टमिंस्टर का प्रथम विधान (First Statute of Westminster) पास हुआ था। इसमें भूमि-कर (Land tax) निश्चय कर दिया गया और निर्वाचन होने का आयोजन कर दिया गया। सन् १२७८ ई० में ग्लौसस्टर का विधान (Statute of Gloucester) पास हुआ जिससे यह जानने का प्रयत्न किया गया कि बैरन लोग किस अधिकार से जागीरों पर अपना स्वामित्व किये हुऐ थे। इस विधान के पास होने से बैरनों ऊपर के राजा का नियंत्रण अधिक दृढ़ हो गया। सन् १२७९ के मोर्टमेन के विधान (Statute of Mortmain) से पादरियों के उस अधिकार की काट छाँट कर दी गई जिससे वे मरणासन्न व्यक्तियों को अपनी जायदाद गिरजाघरों या मठों के नाम कर देने के लिये विवश किया करते थे। सन् १२८५ ई० में वैस्टमिन्सटर का दूसरा विधान (Second Statute of Westminster) पास किया गया उससे मरने के बाद स्वाधीन नागरिकों की भूमि इनके ज्येष्ठ पुत्रों को दिये जाने का विधान कर दिया गया। सन् १२८५ ई० में विन्चेस्टर का विधान (Statute of Winchester) पास हुआ जिससे देश की रक्षा व नगरों गावों की पुलिस का प्रबन्ध होने का आयोजन हुआ। इनके अतिरिक्त दूसरे और सुधार भी हुये।

सन् १२९५ ई० की ग्रेट पार्लियामेन्ट (Great Parliament)—एडवर्डका सबसे महत्वपूर्ण शासन सुधार यह था कि उसने सन् १२९५ ई० में ग्रेट पार्लियामेन्ट को बुलाया। इस पार्लियामेन्ट में इंगलैण्ड के राजनैतिक जीवन में भाग लेने वाले तीनों वर्गों के प्रतिनिधियों को बुलाया गया। पादरी लार्ड्स और कामन्स (Commons) ये ही तीन वर्ग थे। ऐसा एक भी नगर न बचा था जिसका कोई प्रतिनिधि पार्लियामेन्ट में न हो। इसलिये इस पार्लियामेन्ट का "प्रथम पूर्ण और आदर्श पार्लियामेन्ट" (First Complete and Model Parliament") नाम पड़ा।

शतवर्षीय युद्ध और पार्लियामेन्ट—सन् १३३८ ई०में शतवर्षीय युद्ध के आरम्भ होने से कई महत्वपूर्ण शासन सुधार हुये। उस समय तक पार्लियामेन्ट के उपर्युक्त तीनों वर्ग एक ही आगार में बैठकर वाद विवाद करते और वोट दिया करते थे हालाँ कि बैरन मनचाही कर लेने में सफल हो जाया करते थे। इसके अनन्तर पादरियों ने व बैरनों ने मिलकर एक अलग आगार में

बैठना आरम्भ कर दिया जहाँ वे विचार करते थे और इस तरह हाऊस आफ लार्डस (House of Lords) की नींव पड़ी। नगरों और कस्बों के प्रतिनिधि अपने अलग आगार में बैठकर राजकाज करने लगे यह आगार हाऊस आफ कामन्स (House of Commons) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। एडवर्ड तृतीय के राज्य के समाप्त होते होते पार्लियामेन्ट का इन दो शाखाओं में विभाजन पक्का हो गया, ऊपरी आगार में सामन्तशाही का प्रतिनिधित्व था और निचले आगार में साधारण जनता का। पहिले पार्लियामेन्ट की बैठकें किसी नियम से न होती थीं परन्तु सन् १३३० ई० में यह कानून बना दिया गया कि "प्रति वर्ष एक बार पार्लियामेन्ट की बैठक होगी और यदि आवश्यक हो तो एक से अधिक बार भी हो सकती है"। सन् १३६२ ई० में इसको फिर दुहराया गया और इस बैठक के उद्देश्यों की निश्चित रूप से घोषणा इस प्रकार कर दी गई: "भिन्न भिन्न प्रकार के झगड़ों और शिकायतों को दूर करने के लिये जो प्रतिदिन होते रहते हैं प्रतिवर्ष पार्लियामेन्ट की एक बैठक बुलाई जायगी। एडवर्ड तृतीय के राज्य के समाप्त होते होते निचले आगार (Lower House) ने अपने तीन महत्वपूर्ण अधिकार अपने हाथ में कर लिये। यह तीन अधिकार ये थे:—(१) बिना इस आगार की सम्मति के कर अवैध (illegal) हैं, (२) निर्बन्धों अर्थात् कानूनोंके बनने के लिये दोनों आगारों की सहमति आवश्यक है, और (३) निचले आगार यानी हाउस आफ कामन्स को शासन प्रबन्ध के दोषों में छानबीन करने और सुधारने का अधिकार है। प्रश्न यह उठता है कि राजा ने यह सब प्रतिबन्ध क्यों मान लिया। बात यह थी कि राजा को युद्ध के व्यय के लिये धन की आवश्यकता थी और विवश होकर उसे आय-व्यय व कानून-व्यवस्था पर पार्लियामेन्ट का नियन्त्रण स्वीकार करना पड़ा। उस समय से ही पार्लियामेन्ट में हाउस आफ लार्ड्स का महत्व कम होने लगा और कामन्स की शक्ति व महत्ता बढ़ने लगी।

नौर्मन और एञ्जीविन राजवंशों के समय में न्याय मण्डल का विकास:—नौर्मन और एञ्जीविन राजवंशों के समय में न्याय प्रणाली में जो विकास हुआ वह अध्ययन करने योग्य हैं। उस समय राजा ही सारे शासन का स्वामी होता था और इसलिये न्यायमण्डल का भी वही प्रमुख व्यक्ति था। प्रारम्भ में राजा स्वयं न्यायालय में बैठता था और न्याय करता था परन्तु उसके फ्राँस स्थित प्रदेशों के शासन का उत्तरदायित्व इतना भारी था कि वह उसे पूरा करने के लिये फ्राँस में ही अधिक समय तक रहने लगा। इसलिये

अपनी अनुपस्थिति में काम काज करने के लिये राजा ने अपना एक प्रधान-मन्त्री नियुक्त कर दिया जो न्याय और आय-व्यय के प्रबन्ध की देखभाल करने लगा इस प्रधान-मन्त्री को जस्टिसिअर (Justiciar) भी पुकारा जाता था। एडवर्ड प्रथम ने जस्टिसिअर (Justiciar) के पद को तोड़ दिया और उसके काम को चाँसलर (Chancellor) को सौंप दिया। एडवर्ड दी कनफैसर (Edward the Confessor) ने इस चाँसलर के पद को सब से प्रथम जन्म दिया था। इस प्रकार चाँसलर के ऊपर न्याय कार्य करने का भार पड़ा और उसी समय से वह न्याय कर्ता बन गया

जस्टिसिअर (Justiciar) और चाँसलर (Chancellor) के अतिरिक्त एक और संस्था थी जिसका बड़ा मान था। इस संस्था का नाम क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) था और यह न्यायकारी कर्तव्यों को पूरा किया करती थी। पहिले यह ग्रेट काउंसिल आफ दी रील्म (Great Council of the Realm) अर्थात् राष्ट्र की महान परिषद् कहलाती थी। उस समय इसमें कुछ राज्य-कर्मचारियों की एक छोटी सी समिति थी जिसका नाम क्यूरिया (Curia) था। यही समिति न्याय-सम्बन्धी सब काम करती थी। कुछ समय पश्चात् इस समिति का काम, किंग्स बैंच (Kings Bench) दी कोर्ट आफ कामन प्लीज़ (The Court of Common Pleas) और कोर्ट आफ एक्सचैकर (Court of Exchequer) । इन तीन न्याय संस्थाओं में बाँट दिया गया कोर्ट आफ एक्सचैकर कर-सम्बन्ध और आय-व्यय सम्बन्धी मुकदमे सुनती थी। दीवानी के मुकदमे कोर्ट आफ कामन प्लीज में सुने जाते थे। इनको छोड़कर और बचा हुआ न्याय सम्बन्धी काम सब किंग्स बैंच में हुआ करता था। हैनरी तृतीय के राज के अन्त में यह कार्य-विभाजन हो चुका था।

हैनरी प्रथम के समय में क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) के कुछ न्यायाधीशों को घूम घूम कर एक जिले से दूसरे जिले में जाकर मुकदमे निबटाने पड़ते थे। ये लोग साथ-साथ मालगुजारी (आगम) वसूल करते और अपराधियों को दण्ड भी देते थे। इनको आइटीनरेण्ट (itinerant) अर्थात् भ्रमणशील न्यायाधीश कहते थे। इन न्यायाधीशों के लिये हैनरी द्वितीय ने सारे राज्य को ६ भागों में बाँट दिया। प्रत्येक भाग में दौरा करने के लिये तीन न्यायाधीश नियुक्त कर दिये। ये सरकिट कोर्ट (Circuit court) शायरमूट (Shire moot) जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है और क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) अर्थात् लोक न्यायालय और राज

न्यायालय में सम्बन्ध स्थापित करते थे। इनके द्वारा पुरानी प्रणाली और नई न्याय प्रणाली में मेल स्थापित हो गया। हैनरी द्वितीय ने फौजदारी (Criminal) मामलों में पंचों (Jury) की सहायता से न्याय करने की प्रथा पहिले पहल आरम्भ की। कुछ समय पश्चात् यह प्रथा दीवानी मुकदमों के लिये भी लागू कर दी। पहिले पहल ये पंच केवल वे ही लोग होते थे जो शपथ लेते हुए सच बातें बतला कर गवाही देते थे।

जब न्याय-मण्डल का यह विकास हो रहा था राजा की ग्रेट कौंसिल (King's Great Council) जिसका पीछे से कंटीन्यूअल कौंसिल (Continual Council) नाम पड़ गया, अपने विशेष न्याय-अधिकार क्षेत्र में काम करती रही। यद्यपि सिद्धान्तिक रूप से इस न्यायालय में कौंसिल (पूर्व भूत पार्लियामेंट) के तीनों भागों अर्थात् बैरनों, पादरियों और कामन्स के लोग होते थे, पर साधारणतया कामन्स कौंसिल के न्याय सम्बन्धी काम में योग न देते थे। इसलिये यह न्याय-सम्बन्धी काम पीयर (Peers) ही करने लगे। ये लोग जब एक पृथक आगार में बैठकर काम करने लगे और हाउस आफ लार्डस का जन्म हुआ तो ये दोनों काम करने लगे। उनका एक काम तो विचारक मण्डली जैसा था और दूसरा न्यायालय का। बाद में धीरे-धीरे यह न्याय सम्बन्धी काम इस हाउस आफ लार्डस की एक छोटी समिति द्वारा होने लगा। इस समिति का ही नाम प्रीवी-कौंसिल पड़ा।

गुलाब-युद्ध (Wars of Roses) और शासन-विधान सम्बन्धी परिवर्तन—उपर्युक्त शासन प्रणाली लंकास्टर (Lancaster) और यार्क (York) के राजवंशों में होने वाले गुलाब-युद्ध के छिड़ने के समय तक चलती रही। यह युद्ध सन् १४५५ से १४८५ ई० तक चलता रहा और जब यह समाप्त हुआ तो उस समय कई महत्वपूर्ण शासन विधान सम्बन्धी परिवर्तन हुए। बैरनों की शक्ति दोनों युद्ध-वर्गों में बट जाने से छिन्न भिन्न हो गई और राजा पर जो अब तक उनका प्रभाव चला आ रहा था वह सब समाप्त हो गया। युद्ध से लोग बड़ी आपत्ति में पड़ गये और उनकी आर्थिक दशा शोचनीय हो गई। इस से हेनरी सप्तम ने पूरा लाभ उठाया और प्रजा की सम्मति से ही उसने शान्ति और सुरक्षा के हित में अपनी शक्ति खूब बढ़ा ली। हेनरी सप्तम के राज्याभिषेक को पार्लियामेंट ने स्वीकार कर लिया तब से राजा को चुनने का पार्लियामेंट को अधिकार मिल गया। पहिले दो ट्यूडर वंशी राजाओं ने (हेनरी सप्तम और अष्टम)

गिरी हुई आर्थिक दशा का अपनी शक्ति बढ़ाने में खूब लाभ उठाया और वे निरंकुश शासन स्थापित करने में बहुत कुछ सफल हुए। यद्यपि पार्लियामेंट की अब भी बैठकें होती थी पर इन ट्यूडर वंशी राजाओं ने उसको अपनी निरंकुश शक्ति बढ़ाने का साधन बना रखा था।

ट्यूडर वंशीय निरंकुशता की स्थापना—वे पार्लियामेंट में ऐसे व्यक्तियों को चालाकी से निर्वाचित करा लेते थे जो उनकी हाँ में हाँ मिलाने वाले होते थे और फिर करों को बढ़वा कर अपने राजकोष को भरा पूरा रखते थे। वैरनों की शक्ति को कुचलने के लिये उन्होंने स्टार चैम्बर (Star Chamber) का न्यायालय और हाई कमीशन (High Commission) का न्यायालय ये दो संस्थायें स्थापित कीं।

इधर जागीरदारों पर हेनरी सप्तम ने अपना प्रभुत्व जमा लिया। दूसरी ओर पोप से झगड़ा कर उसने अंगरेजो नये ईसाई-संघ की स्थापना की, जिस पर रोम के पोप का प्रभुत्व न रहा। यह झगड़ा रानी को तलाक देने के प्रश्न पर उठा था। नये ईसाई-संघ (church) पर राजा का बड़ा प्रभाव रहने लगा। एडवर्ड षष्टम व मेरी (Mary) के समय में प्रोटेस्टेन्ट जो रोमी धर्म-सम्प्रदाय के विरोधी थे और कैथोलिक जो रोम के पोप और उसके सम्प्रदाय के समर्थक थे, इन दोनों में प्रायः झगड़ा होता रहता था। रानी एलिजाबेथ ने जनता की इस निजी धार्मिक फूट का लाभ उठाने में कोई कसर न रखी। वह चालाकी से कभी एक दल को अर्थात् प्रोटेस्टेन्ट और कभी कैथोलिक को उकसाती रहती थी जिससे इन सम्प्रदायों के मानने वाले दो दल हमेशा रानी के मुंह की ओर देखते रहते थे। राज-सत्ता की शक्ति इस प्रकार बढ़ती चली गई। इसके अतिरिक्त १५वीं शताब्दी का जो कला व साहित्य के पुनरुद्धार (Renaissance) का आन्दोलन चला उसका भी देश पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इंगलैंड एक शक्तिशाली जल-सेना का स्वामी हो गया, उसका व्यापार बढ़ने लगा। व्यापार करने के लिये जो कम्पनियाँ खुली उस से साधारण जनता फलने फूलने लगी और देश की समृद्धि तेज़ी से बढ़ने लगी। अब इस प्रकार जनता समृद्ध हुई तो स्वभावतः अपनी आर्थिक स्थिति की ओर से निश्चित होने के कारण उसे राजा और अपने पारस्परिक सम्बन्धों व अधिकारों पर विचार करने का अवसर मिला और वह कुछ अधिक जागरूक रहने लगी। पर इस जागरूकता को व सार्वजनिक अधिकारों की माँग को जो निरंकुश ट्यूडर राजाओं के स्वेच्छाचारी

शासन से बच पाती जा रही थी एलिज़ाबेथ ने सफलता पूर्वक अपनी कूट-नीति की सहायता से रोके रखा।

स्टूआर्ट-काल में शासन-परिवर्तन—स्टूआर्ट राजवंश का राजा उस समय से प्रारम्भ हुआ जब से जेम्स प्रथम इंगलैंड के राजसिंहासन पर बैठा। स्टूआर्ट राजाओं के राज-सिद्धान्त और शासन नीति ने दो बार ऐसी आपत्ति-पूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी जिसके फलस्वरूप कई महत्वपूर्ण शासन-सम्बन्धी परिवर्तन हुये। जेम्स प्रथम ने राजाओं के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के मुख्य प्रस्ताव चार थे :—(१) यह कि राजा सीधे ईश्वर से अपना राज्याधिकार प्राप्त करता है (२) यह कि राजा का यह अधिकार अनियंत्रित और अमर्यादित है (३) यह कि राजा की आज्ञा का विरोध करना प्रत्येक दशा में अवैध है (४) यह राजपद पैत्रक है और राजा के लड़कों में सब से बड़ा उसका उत्तराधिकारी होना चाहिये। इन सिद्धान्तों के मानने में जेम्स प्रथम और पार्लियामेंट में मुठभेड़ हो गई। राजा की धार्मिक नीति ने, जिसके द्वारा उसने रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के लोगों को किसी प्रकार की स्वतंत्रता देने से मना कर दिया, इस राजा-प्रजा के वैमनस्य की आग में घी का काम किया। रोमन कैथोलिक पोप की प्रभुता के समर्थक थे न कि राजा की प्रभुता के। प्यूरिटन सम्प्रदाय (उत्कट पवित्रावादी) जो प्रोटेस्टेन्ट धार्मिक मत का ही एक भाग था, वह भी राजा की नीति से अप्रसन्न था। इसलिये जेम्स प्रथम को जब पहिली पार्लियामेंट बैठी तो इन सब असंतुष्ट दलों ने मिल कर राजा से यह मांग की कि राजा जनता के सार्वजनिक अधिकारों को स्वीकार करे और यह भी माने कि कामन्स (House of Commons) को ही कर लगाने की अनुमति देने का अधिकार है। जेम्स प्रथम ऊपर से कामन्स के अधिकारों का आदर करने का बहाना करता रहा पर भीतर ही भीतर वह उनसे स्वतंत्र होने की चाल चलने लगा। सन् १६११ से १६१४ तक उसने पार्लियामेंट को बुलाया ही नहीं और बिना पार्लियामेंट के ही उसने राज्य किया। जब १६१४ ई० में उसने पार्लियामेंट को बुलाया तो "प्रदान स्वीकार करने के पूर्व शिकायतें दूर हों" इस बात पर आपस में झगड़ा हो गया और पार्लियामेंट भंग कर दी गई। उसके पश्चात् फिर छः वर्ष तक बिना पार्लियामेंट के उसने राज्य किया सन् १६२१ में उसने तीसरी बार पार्लियामेंट बुलाई। इस बार भी पार्लियामेंट अपनी पुरानी हट पर जमी रही। उसने फिर यह माँग की कि उन को बोलने की स्वतंत्रता दी जाय

उनको पकड़ा न जाय और राजा के परामर्श दाताओं की निन्दा करने का उन्हें अधिकार दिया जाय। इस पर राजा ने पार्लियामेंट भंग कर दी। सन् १६२४ ई० में राजा के चित्त में कुछ परिवर्तन हुआ और चौथी पार्लियामेंट बुलाई। इस पार्लियामेंट ने जो माँगें उपस्थित कीं वे अधिकतर मान ली गईं, इस से पार्लियामेंट का आदर और ख्याति बढ़ गई।

चार्ल्स प्रथम और पार्लियामेंट—जेम्स प्रथम के बाद उसका पुत्र चार्ल्स प्रथम राजसिंहासन पर बैठा। चार्ल्स भी अपने पिता के समान राजाओं के दैवी अधिकारोंमें विश्वास करता था, राजा के अनियंत्रित अधिकार वाले सिद्धान्त की व्यवहार में उसने अति कर दी। उसने पार्लियामेंट की स्थिति और उसके परामर्श से शासन करने की आवश्यकता दोनों को ठुकरा दिया। परन्तु धनाभाव के दबाव से विवश होकर उसे पार्लियामेंट बुलानी पड़ी। सन् १६२६ ई० में जो पार्लियामेंट बुलाई गई उसने चार्ल्स के मंत्री बर्किंघम (Buckingham) पर अभियोग लगाया। इससे राजा और पार्लियामेंट में अनबन हो गई और राजा ने पार्लियामेंट को भंग कर दिया, पर फिर कर उगाहने की आवश्यकता के कारण बेमन उसे सन १६२८ में पार्लियामेंट बुलानी पड़ी। परन्तु इस बार कामन्स ने प्रदानों को स्वीकार करने से पहिले यह प्रस्ताव पास किया कि बिना उनकी स्वीकृति के कोई भी कर वैध न समझा जायगा। और उन्होंने राजा के स्वेच्छाचारी शासन की कड़ी निन्दा की। उन्होंने मैग्नाकार्टा (Magna carta, पिटीशन आफ राइटस १६२८ ई०) और उसके बाद के चार्टरों में स्वीकृत अपने प्राचीन अधिकारों के आधार पर एक पिटीशन आफ राइट्स (Petition of Rights) अर्थात् अधिकारों का प्रार्थना पत्र, तैयार किया जिसमें उनकी मांगें लिखीं थीं। उन मांगों में से कुछ ये थीं; (१) कोई अवैध कर-वसूली न की जाय जैसा कि एडवर्ड प्रथम के समय में घोषित हो चुका था कि राजा या उसके उत्तराधिकारी पादरियों, अर्लों (Earls). बैरनों (Barons), नाइटों (Knights), आत्म शासित नगरों के नागरिकों (Burgesses) और दूसरे स्वाधीन देश वासियों की कृपा व स्वीकृति के बिना कोई भी कर राज्य में न लगाया जायगा और जिसका एडवर्ड तृतीय की पार्लियामेंट ने इस प्रकार स्पष्टीकरण कर दिया था "कि आज यह घोषित किया जाता है कि अब से आगे किसी भी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध राजा के लिये ऋण देने पर विवश न किया जायगा क्योंकि ऐसे ऋण नागरिकता और औचित्य

के विरुद्ध प्रतीत होते हैं। (२) दूसरी मांग यह थी कि राजा व्यक्तियों को कारावास देने में स्वेच्छाचार न करे जिसके सम्बन्ध में मैग्नाकार्टा में घोषणा हो चुकी थी और जिसको एडवर्ड तृतीय के राज्यकाल में पार्लियामेंट ने फिर दुहरा दिया था। (३) जैसा मैग्नाकार्टा ने और एडवर्ड तृतीय ने घोषित किया था राज्य में मार्शल लॉ (Martial Law) अर्थात् सामरिक कानून न लगाया जाय। (४) चौथी माँग यह थी कि विधान व कानून के अनुसार प्रजाकी स्वतंत्रता और उसके स्वत्वोंकी रक्षा की जाय। पिटीशन आफ राइट्स अंग्रेज़ी स्वतंत्रता रूपी भवन का दूसरा स्तम्भ है। पर उसमें कोई नई बातें न थीं। इससे पूर्व जो अधिकार राजाओं द्वारा मान्य हो चुके थे उनको ही संक्षिप्त रूप से एक स्थान पर इस पत्र में एकत्रित कर दिया गया था। राजा को विवश होकर यह प्रार्थना-पत्र स्वीकार करना पड़ा। उसके पश्चात् पार्लियामेंट ने राजा को शराब व दूसरी वस्तुओं के आयात-निर्यात् पर कर लगा कर धन इकट्ठा करने का अधिकार दे दिया। पर साथ ही साथ नौसेना रखने के लिये लगाये हुये कर को तोड़ दिया और स्टार चैम्बर व हाई कमीशन कोर्ट को भी भंग कर दिया। यह सब राजा ने स्वीकार कर लिया परन्तु भीतर ही भीतर चार्ल्स सेना को पार्लियामेंट के विरुद्ध भड़काने लगा और इस प्रकार बलप्रयोग से पार्लियामेंट पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करने लगा। जब पार्लियामेंट को इसका पता लगा तो उसने ग्रांड रिमोंस्ट्रेन्स (Grand Remonstrance) नामक एक प्रलेख तैयार किया जिसमें अपने स्वत्वों व अधिकारों का गौरवपूर्ण दृढ़ समर्थन किया और राजासे प्रार्थना की कि वह उनको स्वीकार करे। राजा और पार्लियामेंट की अनबन ने गृहयुद्ध का रूप धारण किया जिसमें चार्ल्स को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा और उसके पश्चात् प्रजातंत्र शासन की स्थापना हुई जिसका संगठन एक शासन-विलेख (Instrument of Government) के अनुसार हुआ। इस विलेख से हाउस आफ लार्ड्स तोड़ दिया गया और राजसत्ता भी समाप्त कर दी गई। हाउस आफ कामन्स में से वे सब दल निकाल दिये गये जो राजसत्ता के समर्थक थे और इंगलैंड का शासन एक नये राज्य प्रमुख की अध्यक्षता में होने लगा जिसका नाम प्रोटेक्टर (Protector) रखा गया।

राजसत्ता की पुनर्स्थापना (१६०० ई०)—इंगलैंड में यह प्रजातंत्र शासन केवल ग्यारह वर्ष ही रह पाया। इस काल में शासन की कमियाँ स्पष्ट होने लगीं और पार्लियामेंट ने राजसत्ता को पुनः स्थापित करने का निश्चय किया। चार्ल्स प्रथम के पुत्र चार्ल्स द्वितीय को राजसिंहासन पर बैठाया। इस

नये राजा ने प्रजा के स्वत्वों व अधिकारों की रक्षा करने का वचन दिया। उसके राज्य में जो सब से महत्व पूर्ण शासन-विधान सम्बन्धी लाभ हुआ वह यह था कि सन् १६७६ ई० में हेबियस कोरपस (Habeas Corpus) एक्ट पास हुआ। इस एक्ट से प्रत्येक व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता सुरक्षित होगई क्योंकि इस एक्ट में यह आयोजन कर दिया गया था कि यदि किसी व्यक्ति पर अपराध करने का अभियोग लगाया जाय व बन्दी बना लिया जाय और वह व्यक्ति स्वयं या किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा किसी न्यायालय में इसके विरुद्ध प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करावे तो वह न्यायालय शासन को उस बन्दी को न्यायालय के सामने अभियोग की सुनवाई करने के लिये उपस्थित करने की आज्ञा दे सकता है। चार्ल्स द्वितीय ने भी अपने पिता के समान स्वेच्छाचारी शासन करने का प्रयत्न किया पर पार्लियामेंट ने इस बार कोई कड़ी कार्यवाही नहीं की क्योंकि उसे प्रजातंत्र-काल के कड़ुए अनुभव की स्मृति ने सतर्क बना दिया था।

सन् १६८८ ई० की क्रांति और प्रतिफलित शासन-विधान सम्बन्धी परिवर्तन—चार्ल्स द्वितीय के पश्चात् उसका भाई जेम्स द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। उसके मनमें आरम्भ से ही यह कुचक्र रचा हुआ था कि वह किस प्रकार निरंकुश शासक बनने का प्रयत्न करेगा और राज्यरक्षित ईसाई धर्मसंघ को नष्ट करेगा। उसने अवैध कर उगाहना आरम्भ किया, एक नई हाई कमीशन अर्थात् महान् अपराध की अदालत स्थापित की जिससे न्याय निर्णय उसके पक्ष में हो और सन् १६८८ ई० में दो डिसिज़न्स आफ इंडलजैन्स (Decisions of Indulgence) अर्थात् अनुग्रह-निर्णय जारी किये। इन निर्णयों से राजा राज्य-रक्षित धर्मसंघ में हस्तक्षेप कर सकता था। इन सब बातों से पार्लियामेंट चिढ़ गई और उसने विलियम आफ औरेञ्ज (William of Orange) को इंगलैंड के राजसिंहासन पर अधिकार करने का निमंत्रण भेजा। इसको सुन कर जेम्स २३ दिसम्बर सन् १६८८ को इंगलैंड छोड़ कर भाग निकला। बाईस जनवरी सन् १६८९ को पार्लियामेंट स्वयं एकत्रित हुई और दो प्रस्ताव पास किये जो इस प्रकार थे; (१) क्योंकि राजा ने प्रजा-राजा के प्रारम्भिक ठेके को तोड़ कर राजा के शासन विधान को विध्वंस करने का प्रयत्न किया और जैसुइट (Jesuist) और दूसरे दुष्ट व्यक्तियों की सलाह से देश के मौलिक निर्बन्धों का उल्लंघन किया और क्योंकि उसने देशसे भागकर राजपद त्याग कर दिया है जिससे राजसिंहासन रिक्त पड़ा है (२) क्योंकि

अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि इस प्रोटेस्टेन्ट राज्य की सुरक्षा और श्रेय तब तक नहीं हो सकता जब तक कि इस देशका राजा पोप का समर्थक हो...।"

बिल आफ राइट्स (Bill of Rights)—पार्लियामेंट ने उसी समय डिक्लरेशन आफ राइट्स (Declaration of Rights) अर्थात् अधिकारों की घोषणा नामक प्रलेख तैयार किया जिसमें जेम्स द्वितीय के द्वारा जो जो अवैध और स्वेच्छाचारी काम हुए उनको दुहराया और इंगलैंड का राजमुकुट विलियम व उसकी रानी मेरी को सुपुर्द किया। विलियम ने अपनी ओर से तथा अपनी स्त्री की ओर से इसे धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार किया। इन युगल राजा-रानी ने पार्लियामेंट द्वारा २५ अक्टूबर सन् १६८९ को पास किये हुए बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) को स्वीकार किया। अंगरेजों की स्वतंत्रता का यह तीसरा चार्टर था और इसने मैग्नाकार्टा की नींव पर खड़े हुए शासन-विधान के भवन को पूरा कर दिया। इस बिल में जेम्स द्वितीय के अवैध कामों का वर्णन था, उदाहरणार्थ—कानून अवहेलना करना व उनका उल्लंघन करना, हाई कमीशन अदालत की स्थापना, अनाधिकारी करों का लगाना, स्थायी सेना एकत्रित करना और उसे शान्ति के समय में भी बिना पार्लियामेंट की अनुमति बनाये रखना, निर्वाचन-स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करना, अपराधी सिद्ध होने से पूर्व ही जुर्माने वसूल करना व सम्पत्ति ज़ब्त करना, आदि आदि। इसके पश्चात् इस बिल से विलियम को राज्याधिकारी घोषित किया गया और ऐसे राजवंश के व्यक्तियों को राज्य का उत्तराधिकारी होने से वञ्चित कर दिया जो पोप के समर्थक हों, या जो पोप के समर्थकों से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर ले। इस बिल में यह स्पष्ट कर दिया गया कि प्रत्येक राजा और रानी को इस सम्बन्ध में घोषणा करनी होगी।

सन १७०१ ई० में पार्लियामेंट ने एक्ट आफ सैटिलमेंट (Act of Settlement) पास करके यह निश्चित कर दिया कि रानी अने (Anne) की मृत्यु के पश्चात यदि उसका कोई उत्तराधिकारी न हो तो इंगलैंड का राजमुकट हैनोवर की राजकुमारी सोफिया और उसके उत्तराधिकारियों को प्रदान किया जाय। इस एक्ट में और भी कई महत्वपूर्ण वैधानिक व्यवस्थायें थीं जिनसे अंगरेजी जनता के धर्म, न्याय और स्वतंत्रता की रक्षा का आयोजन होता था। इस एक्ट की निम्नलिखित तीन धारायें इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं :—

(१) जो कोई भी इंगलैंड के राजमुकुट को धारण करेगा वह कानून

से स्थापित हुये इंगलैंड के ईसाई धर्म-संघ (Church of England) में मिल कर रहेगा।

(२) यदि इस राज्य का राजमुकुट और राज्यश्री किसी ऐसे व्यक्ति को सुशोभित करती हो जो इस देश का निवासी न हो तो यह राष्ट्र किसी ऐसे देश की रक्षा के लिये, जो इंगलैंड की राजसत्ता के आधीन न हो, युद्ध में भाग लेने पर बिना पार्लियामेंट की सहमति से बाध्य न किया जायगा।

(३) कोई भी व्यक्ति जो भविष्य में राजमुकुट धारण करेगा वह पार्लियामेंट की सहमति के बिना इंगलैंड, स्काटलैंड और आइरलैंड की राज्य-सीमा से बाहर न जा सकेगा।

इस एक्ट में यह आदेश था कि प्रत्येक आगे होने वाला राजा या रानी देश के निर्बन्धों और विधानों का आदर करेगा और जनता के स्वत्वों और स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखेगा।

दो राजनीतिक दलों का प्रारम्भ—इंगलैंड के राज्य-शासन में यह जो महान क्रांति हुई वह बड़ी महत्वपूर्ण थी और वह इतनी शान्तिपूर्वक हुई कि उसका नाम ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) पड़ा। इस क्रांति का प्रत्यक्ष फल तो यह था कि बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) और एक्ट आफ सैटिलमेंट (Act of Settlement) पास हुये पर इस क्रांति के दूरवर्ती और अप्रत्यक्ष परिणाम अधिक महत्व रखने वाले थे। यह युद्ध (Civil War) ने पार्लियामेंट व देशवासियों को दो पृथक दलों में बाँट दिया था। एक दल तो चार्ल्स प्रथम का सहायक था और दूसरा पार्लियामेंट का समर्थक होने से स्टूआर्ट निरंकुशता का विरोधी था। क्रौमवैल के पश्चात जब राजा को फिर पदासीन किया गया तो कुछ समय के लिये इन दलों का विरोध कुछ ठंडा पड़ गया था लेकिन ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) से फिर पुरानी आग भभक उठी। वे लोग जो जेम्स द्वितीय और उसके पुत्र के अनुयायी थे वे टोरी (Tories) कहलाते थे। जो लोग ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revoluton) के पक्ष में थे और हैनोवर के राजघराने के अनुयायी थे वे व्हिग (Whig) नाम से प्रसिद्ध थे। टोरियों ने विलियम तृतीय को मारने और उसके स्थान पर जेम्स द्वितीय को सिंहासनासीन करने का असफल प्रयत्न किया। विलियम तृतीय की पार्लियामेंट में आरम्भ से व्हिग दल का मताधिक्य था पर उसने मिली जुली मंत्रिपरिषद् बनाने का ही निश्चय किया। सन् १६९५-९८

में उसकी तीसरी पार्लियामेंट में भी व्हिगों (Whigs) का मताधिक्य था और उसने केवल व्हिगों (Whigs) का मंत्रिमण्डल बनाया। इस प्रकार इंगलैण्ड में इस प्रथा का श्री गणेश हुआ कि ऐसे मंत्रिमण्डल की स्थापना हो जिसके समर्थक पार्लियामेंट में बहुमत रखते हों।

व्हिगों और टोरियों की नीति—व्हिगों का कहना था कि राजा प्रजा का सेवक है और उसे इसलिये पार्लियामेंट की इच्छा के अनुसार शासन करना चाहिये। इसके विपरीत टोरी दल वाले राजा के दैवी अधिकार में विश्वास करते थे। ये लोग अधिकतर लार्ड्स, बड़े जमींदार या ईसाई संघ के पादरी होते थे। राजनीतिक प्रश्नों के अतिरिक्त इन दोनों दलों में दूसरे विषयों में भी विचार-विभिन्नता थी। वे धर्म सम्बन्धी व सामाजिक प्रश्नों पर भी एक विचार न रखते थे। व्हिग पूजा-पाठ की स्वतंत्रता के समर्थक थे। वे कहते थे कि तत्कालीन भूमि से सम्बद्ध श्रम-जीवियों (Serfs) को स्वतंत्रता मिलनी चाहिये और जमींदारों के आसामियों को भी जमींदारों के आधिपत्य से अलग करना चाहिये। इसके विपरीत टोरी लोग अंग्रेजी ईसाई-धर्म संगठन के समर्थक थे और जमींदारों व पादरियों के अधिकारों को सुरक्षित रखना चाहते थे।

राज्यनीति विचारक अंगरेजों का इन दो दलों में विभाजन इतना पूर्ण व व्यापक हुआ और उनमें इतना गहरा विरोध उत्पन्न होगया कि वोलटेयर (Voltaire) को ये शब्द लिखने पड़े :—"व्हिगों और टोरियों की पुस्तकें पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है, यदि व्हिगों की बात सुनें तो वे कहते हैं कि टोरियों ने इंगलैंड के साथ विश्वासघात किया है, यदि टोरियों को सुनें तो उनका कहना है कि प्रत्येक व्हिग ने स्वार्थ के लिये राज्य का बलिदान कर दिया है। यदि इन दोनों की बात पर विश्वास किया जाय तो सारे देश में आगे चल कर अपने अपने सिद्धान्तों के अनुसार शासन के ढांचे को ढालने के लिये जो संघर्ष हुआ उसी से इंगलैंड के शासन विधान का इतिहास रंगा पड़ा है।

रानी अने (Queen Anne) के शासन-काल में पार्लियामेंट में कभी व्हिगों की व कभी टोरियों की संख्या अधिक होती रही। रानी ने कभी मिली जुली मंत्रि-परिषद नियुक्त की, कभी केवल एक ही दल के लोगों की, पर सन् १७०८ ई० के बाद सब मंत्रिमंडलों में एक ही दल के मंत्री होने लगे।

हैनोवर राज्य परिवार के शासनकाल में राजनीतिक दलों की

सरकारें—जब सन् १७१४ ई० में एक्ट आफ सैटिलमेंट (Act of Settlement) के अनुसार जार्ज प्रथम जो हैनोवर राज्य परिवार का पहिला इंगलैंड का राजा था, राजसिंहासन पर बैठा तो उस समय से मंत्रिमंडल की शक्ति बढ़ने लगी। जार्ज प्रथम अंगरेजी भाषा न जानता था इसलिये उसे सारा राज-कार्य प्रधान मंत्री पर छोड़ने को विवश होना पड़ा। प्रधान मंत्री ही मंत्री मंडल की बैठकों में अध्यक्ष का पद लेता था, क्योंकि राजा भाषा की जानकारी न होने से ऐसा करने में असमर्थ था। प्रधान मंत्री ही इसलिये शासन नीति की रूप-रेखा निश्चित करने लगा। इस प्रकार अनायास ही शासन-सत्ता राजा के हाथ से निकल कर मंत्रियों के हाथ में आगई। जार्ज प्रथम के प्रथम मंत्रिमण्डल में टाउन्सेन्ड (Townsend) के नेतृत्व में व्हिग मंत्री थे। उस समय तक सन् १६९४ ई० के ट्रेनियल एक्ट (Triennial Act) के अन्तर्गत पार्लियामेंट के सदस्यों का निर्वाचन हर तीसरे वर्ष होता था। पर सन् १७१७ ई० में सेप्टीनियल एक्ट (Septennial Act) पास हुआ जिसने हैनोवर परिवार को व प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बियों का राज्याधिकार पक्का करने के साथ-साथ पार्लियामेंट की अवधि सात वर्ष तक बढ़ादी। इस अवधि के बढ़ जाने से पार्लियामेंट राजा के नियन्त्रण से बाहर हो गई। सन् १७२१ ई० में लार्ड वालपौल (Walpole) ने अपना मंत्रिमण्डल बनाया और स्वयं प्रधान मंत्री बनकर अर्थ विभाग का काम अपने हाथ में लिया। वही प्रथम इंगलैंड का प्रधान मंत्री था जिसने शासन नीति का सूत्र अपने हाथ से सम्भाला, मंत्री परिषद की शासन नीति का निरीक्षण करने का काम करना आरम्भ किया, हाउस आफ कामन्स का नेतृत्व किया और आवश्यकता पड़ने पर उसके असम्मतिसूचक आदेश के सामने सिर झुकाया। जब सन् १७४२ ई० में हाउस आफ कामन्स में उसकी हार हुई तो उसने पद त्याग कर दिया और पार्लियामेंट के प्रति मंत्रि परिषद के उत्तरदायित्व का पहिला उदाहरण उपस्थित किया। वालपोल प्राइम मिनिस्टर (Prime Minister) की शक्ति बढ़ाने में बहुत सफल सिद्ध हुआ क्योंकि जार्ज प्रथम और द्वितीय दोनों अंगरेजी भाषा और रीति-रिवाजों से परिचित न थे।

कैबिनेट प्रणाली (Cabinet System) का जन्म—उसके मंत्रिमण्डल के प्रमुख सदस्यों ने एक छोटी परिषद् बनाई जिसका नाम कैबिनेट (Cabinet) पड़ा। यह परिषद् प्रिवी कौन्सिल से छोटी थी। इस कैबिनेट-प्रणाली के जन्म का श्रेय पार्लियामेंट और राजा

के बीच होने वाले उस संघर्ष को है जो चार्ल्स प्रथम के समय से भिन्न भिन्न रूपों में बराबर होता आ रहा था पर केवल हैनोवर के दो राजाओं जार्ज प्रथम और द्वितीय के समय में ही कैबिनेट को शासन प्रबन्ध में अपना सिक्का जमाने का अवसर मिला और तभी से राजा इसकी कार्यवाही के संचालन के भार से मुक्त कर दिया गया। जब जार्ज तृतीय राजसिंहासन पर बैठा तो वह कैबिनेट के कार्य में हस्तक्षेप करने लगा क्योंकि उसका पालन पोषण इंगलैण्ड में हुआ था और वह वहाँ के रीति-रिवाजों व राजनीतिक दलों की नीति से अच्छी तरह परिचित था। तीस वर्ष के समय बीतने के बाद यह हस्तक्षेप मंत्रिमण्डल को बुरा लगने लगा। राजा और व्हिगों (Whigs) में तनातनी बढ़ने लगी। कुछ समय के लिये इस तनातनी में राजा की जीत हुई और उसने सन् १७७० ई० में टोरी दल के नेता लार्ड नार्थ को अपना प्रधान मंत्री बनाया। परन्तु इसी काल में अमरीकन स्वतंत्रता का युद्ध हुआ और अमरीका-स्थित तेरह उपनिवेश इंगलैण्ड के आधिपत्य से बाहर निकल गये और स्वतंत्र होगये। इसका परिणाम यह हुआ कि टोरियों की लोकप्रियता समाप्त हो गई और व्हिग पक्ष फिर शक्तिशाली होने लगा। जार्ज तृतीय ने पुनः शासन शक्ति को हथियाने का प्रयत्न किया पर वह सफल न हुआ क्योंकि पिट (Pitt) ने हाउस आफ कामन्स के बहुमत की सहायता से एक मिला जुला मंत्रिमण्डल बना डाला जिसने जार्ज तृतीय के हाथ में शासन शक्ति न जाने दी। पिट के पौरुष और दूरदर्शिता ने कैबिनेट की शक्ति को नष्ट होने से बचा लिया। जब राजा और कैबिनेट के बीच यह संघर्ष चल रहा था उस बीच के समय में हाउस आफ कामन्स ने अपनी शक्ति बढ़ा ली और निर्वाचनों पर तथा अपनी कार्यपद्धति के निश्चय करने पर निजी स्वत्व प्राप्त कर लिया।

जार्ज तृतीय के शासन काल में ही, सन् १७६० ई० में एक एक्ट पास हुआ जिससे न्याय मण्डल की स्वतंत्रता पूर्णतया स्थापित होगई। इस एक्ट में यह आयोजन कर दिया गया कि सम्राट की व उसके उत्तराधिकारियों की मृत्यु के हो जाने पर भी न्यायाधीश अपने पदों पर पूरी तरह सुरक्षित रहेंगे यदि उनका व्यवहार दोषरहित रहता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के वैधानिक सुधार—उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसे बहुत से वैधानिक परिवर्तन हुये जिनसे एक वास्तविक प्रजातंत्र राज्य के स्थापित होने में बड़ी सहायता मिली। इन परिवर्तनों ने केन्द्रीय और स्थानीय शासन व व्यवस्थापन-कार्य में प्रजातंत्र के सिद्धान्तों को प्रचलित किया। इन

परिवर्तनों के मूल में कई कारण थे। पहिला तो यह था कि फ्राँस की राज्य-क्रांति ने साधारण यूरोपीय जनता के मस्तिष्कों में बड़ी उथल-पुथल कर दी। वे अब राजा और कुलीनों को बिलकुल दूसरी ही दृष्टि से देखने लगे और देश की सरकार व साधारण जनता के अधिकारों से सम्बन्धित एक नई विचार धारा में बहने लगे थे। स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृभाव के सिद्धान्तों का प्रचार सारे यूरोप में फैल चुका था, और यद्यपि सन् १८१५ ई० की वियना की काँग्रेस ने राजाओं को फिर पदासीन कर व नैपोलियन की बनाई हुई व्यवस्था को तोड़ फोड़ कर फ्राँस की क्राँति के करे-धरे पर पानी फेरने का प्रयत्न किया परन्तु सन् १८४८ ई० का उदार-आन्दोलन (Liberal movement) इन्हीं सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष परिणाम था। इंगलैण्ड में यद्यपि राजनीतिज्ञों ने इन सिद्धान्तों के प्रचार को रोकने का प्रयत्न किया पर वे भी समझ गये कि क्राँति की लहर दब जाने के बाद शासन-पद्धति में सुधार करना ही होगा। दूसरे अठाहरवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के औद्योगिक विकास ने समाज का रूप ही बदल दिया था। इस समय भी पार्लियामेंट में कुलीन व्यक्ति या उनके प्रतिनिधि ही सदस्य होते थे। मतदान का अधिकार बहुत थोड़े लोगों को प्राप्त था और पुराने नगरों के निवासी ही मत देने के अधिकारी होते थे। औद्योगिक उन्नति के परिणाम स्वरूप नये बड़े बड़े औद्योगिक नगर बस गये थे जिनमें पुराने शहरों से या गाँवों से लोग आकर रहने लग गये थे। इन नये नगरों के प्रतिनिधि पार्लियामेंट में न होते थे, दूसरी ओर उन बौरो (Boroughs) अर्थात् स्वशासित नगरों को बहुत से प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था जिनकी जनसंख्या नये नगरों में लोगों के चले जाने से बहुत घट गई थी। कहीं कहीं तो बैरनों (Barons) के मनोनीत व्यक्ति ही प्रतिनिधि नियुक्त हो जाते थे। किन्हीं नगरों में कोई मतधारक (voter) न होता था पर फिर भी उसके प्रतिनिधि पुराने कानून के आधार पर पार्लियामेंट में बैठते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि ये पौकिट (Pocket) बौरो और रोटेन (Rotten) बौरो बड़े प्रभावशाली बने हुये थे पर बड़े बड़े नगर जैसे बर्मिन्घम आदि बिना प्रतिनिधित्व के ही रह जाते थे। यह स्थिति अधिक समय तक न रह सकती थी क्योंकि इससे नये समृद्धिशाली नगरों में असंतोष बढ़ रहा था। तीसरे, उन्नीसवीं शताब्दी के दार्शनिकों व राजनीतिज्ञों ने जनता के सामने नये विचार प्रस्तुत कर दिये थे जिससे ये लोग अपने सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूक हो गये थे।

सन् १८३२ के सुधार—अठारहवीं शताब्दी के अन्त में भी कुछ राजनीतिज्ञों ने शासन पद्धति में सुधार करने का प्रयत्न किया पर वे सफल न हुये। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में पुरानी पद्धति काम न दे सकती थी। इसलिये १२ दिसम्बर सन् १८३१ को लार्ड जोन रसैल (Lord John Russell) ने तीसरा सुधार विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया, (सन् १८३१ ई० में दो विधेयक पास न हो पाये थे), यह विधेयक हाउस आफ कामन्स में तीसरी बार २१ सितम्बर सन् १९३२ को पढ़ा गया। लार्ड्स ने भी इसका विरोध करना उचित न समझा और जब राजा ने यह धमकी दी कि वह हाउस आफ लार्ड्स में नये व्हिग पीयरों (Whig peers) को बनाकर विधेयक के समर्थकों की संख्या बढ़ा देगा तो इन लोगों ने उस विधेयक को पास कर दिया। इस अधिनियम (Act) से तीन प्रमुख परिवर्तन हुये। पहिला यह कि ५६ पौकेट और रोटेन बोरो जिनमें अलग अलग २००० से कम व्यक्ति निवास करते थे उनके प्रतिनिधित्व को समाप्त कर दिया। इन के १११ प्रतिनिधि हुआ करते थे। ये सब इस अधिनियम के द्वारा तोड़ दिये गये। दूसरे ३० बौरों का एक एक प्रतिनिध तोड़ दिया गया। एक के दो प्रतिनिधि तोड़ दिये गये। इस प्रकार जो १४३ स्थान रिक्त हुए उनको उन काउन्टियों और बौरों में बाँट दिया गया जिनका कोई प्रतिनिधि पार्लियामेंट में न होता था या जिनका प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर अपर्याप्त था। दूसरा यह है कि मताधिकार विस्तृत कर दिया गया। वे सब लोग जो १० पौंड प्रतिवर्ष किराया देते थे या जो ५० पौंड प्रतिवर्ष के देने वाले पट्टेदार या आसामी थे उन सबको मताधिकार दे दिया गया। तीसरा यह कि भ्रष्टाचार और बेईमानी को रोकने के लिये निर्वाचन के नियम बना दिये गये। इस प्रकार सन् १८३२ ई० के पश्चात् हाउस आफ कामन्स में पहिले से अधिक जनता का प्रतिनिधित्व होने लगा।

सामाजिक सुधारों की मांग—परन्तु १८३२ के सुधारों से उन लोगों को संतोष न हुआ जो श्रमजीवियों और साधारण जनता के अधिकारों की रक्षा करना चाहते थे। सर रोबर्ट ओवेन (Sir Robert Owen) से चलाया हुआ एक आन्दोलन पहिले से ही हो रहा था जिसमें कारखाने में काम करने वाले व दूसरे श्रमजीवियों की दशा सुधारने की मांग हो रही थी। यह एक अनौखी बात थी कि यह आन्दोलन एक ऐसे व्यक्ति ने आरम्भ किया जो स्वयं स्कोटलैंड में एक कपड़े के कारखाने का स्वामी था। सर रोबर्ट ओवन ने इस पर ज़ोर दिया कि राज्य श्रमजीवियों के प्रति अपना कर्तव्य पालन करे। उसने स्वयं ही इस ओर कदम उठाया और अपने कारखाने में से १० साल से

नीची उम्र वाले काम करते हुये बच्चों को हटा दिया, वयस्कों के लिये काम करने का समय कम करके निश्चत कर दिया, मजदूरोंके लिये स्वास्थ्यवर्द्धक घर और प्रमोदोद्यान बनवाये और उनकी प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये सहकार-समितियाँ बनवाईं। उसने दो पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित कीं, एक "न्यू व्यू आफ सुसायटी (A new View of Society)" सन् १८१३ ई० में और दूसरी "ए बुक आफ दी न्यू मोरल वर्ल्ड" (A book of the New Moral World) सन् १८३६-४४ ई० में, इन पुस्तकों में सामाजिक सुधार के सिद्धान्तों का विवेचन किया। सन् १८३६ ई० में "लन्दन वर्कमेन्स एसोसियेशन" (London Workmen's Association) की स्थापना हुई जिसका कार्यक्रम उसके द्वारा निकाले हुये "पीपल्स चार्टर" (Peoples Charter) में दिया हुआ था।

चार्टिस्ट आन्दोलन (The Chartist Movement)—उपर्युक्त चार्टर का उद्देश्य साधारण जनता के हितों का साधन करना था, इसीलिये उसका नाम पीपिल्स चार्टर अर्थात् जनसाधारण का अधिकार-पत्र पड़ा। इस अधिकार-पत्र को प्रकाशन करने वाली सभा ने सारे देश के श्रमिकों से इन शब्दों में अपने उद्देश्यों का स्पष्टीकरण किया—"यदि हम राजनीतिक अधिकारों की समानता के लिये लड़ रहे हैं तो इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम किसी अन्यायपूर्ण कर को हटाना चाहते हैं या सम्पत्ति, शक्ति व प्रभाव को किसी दल के हाथ में दूसरों से छीन कर रखना चाहते हैं। हम यह सब इसलिये करते हैं जिससे हम अपने सामाजिक कष्टों के स्रोत को सुखाने में में सफल हों और धीरे धीरे निवारण करते हुये हम अन्याय पूर्ण कानूनों के दण्ड से बच जायं"। इस अधिकार-पत्र के अनुगामी अपने को "चार्टिस्ट" कह कर पुकारते थे और उनका आन्दोलन "चार्टिस्ट आन्दोलन" के नाम से प्रसिद्ध है। इस चार्टर की मुख्य मांगें ये थीं:—सब वयस्कों को मताधिकार मिलना चाहिये, पार्लियामेन्ट के सदस्यों का निर्वाचन प्रतिवर्ष हो, निर्वाचन क्षेत्र समान माप के हों, गुप्त रीति से मतदान हो (जिससे मत देते समय धनी लोग छोटे लोगों पर अनुचित दबाव न डाल सकें), पार्लियामेन्ट की सदस्यता के लिये कोई सम्पत्ति-सम्बन्धी योग्यता की आवश्यकता न हो और पार्लियामेन्ट के सदस्यों को वेतन मिले, जिससे निर्धन लोग भी निर्वाचन के लिये खड़े हो सकें और देश के शासन प्रबन्ध में अच्छी तरह हाथ बटा सकें। लिबरल (उदारदल) और कन्जरवेटिव (अनुदार दल) दोनों दलों ने मिलकर इस

आन्दोलन का विरोध किया और फलतः वह कुछ ही दिनों में ठण्डा पड़ गया।

सन् १८६७ ई० का द्वितीय सुधारक एक्ट— यद्यपि चार्टिस्ट आन्दोलन का तुरन्त ही कोई प्रभाव न दिखाई पड़ा पर इसमें जिन सुधारों की माँग की गई वे बहुत समय तक रोके न जा सके। सन् १८३२ के अधिनियम (एक्ट) से तत्कालीन समस्याओं का समाधान न हो सका। परिस्थिति उस समय बहुत बदल चुकी थी, उद्योग की बराबर उन्नति हो रही थी और उपयोगितावाद (Utilitarianism) की धूम थी जिसका सिद्धान्त यह था कि अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक सुख ही समाज का उद्देश्य है। इन सबके परिणामस्वरूप सन १८६७ में द्वितीय सुधार-एक्ट पास हुआ। इससे पार्लियामेन्ट ने मताधिकार को और विस्तृत कर दिया। नगर में मताधिकार (Borough franchise) उन सब लोगों को दे दिया गया जो मकान बनाकर एक वर्ष तक नगर में रहे हों और दरिद्र पोषणार्थ जो कर लगाया जाता था उसे चुकाया हो। वे लोग जो किरायेदार की तरह रहते थे उनको भी मताधिकार दिया गया यदि वे १० पौंड मकान का किराया देते थे। ग्यारह नगरों को मताधिकार से वञ्चित कर दिया और ३५ नगरों में प्रत्येक का प्रतिनिधित्व दो से घटाकर एक कर दिया गया। इस प्रकार जो स्थान खाली हुये वे बड़े नगरों को दे दिये गये। इस एक्ट से अल्पसंख्यकों को भी कुछ प्रतिनिधित्व मिल गया।

सन् १८८४ का सुधार-एक्ट—दूसरे सुधार एक्ट के चार वर्ष बाद सन् १८७२ ई० में फिर और सुधारों के लिये आन्दोलन उठा। व्हिग दल के लोग जो अब लिबरल कहलाने लगे थे मताधिकार को और बढ़ाने की माँग करने लगे। वे कहते थे कि निर्वाचन क्षेत्र बराबर माप के हों और पार्लियामेन्ट के सदस्यों को वेतन दिया जाय। ग्लैडस्टोन (Gladstone) उस समय प्रधान मन्त्री था। उसने सुधार करने की माँग स्वीकार कर ली और ६ दिसम्बर सन् १८८४ ई० को तृतीय सुधार एक्ट पास हो गया। इस एक्ट का सरकारी नाम "रिप्रजेन्टेशन आफ पीपल्स एक्ट, १८८४" था। इस एक्ट से काउन्टी (जिला) में भी वही मताधिकार दे दिया गया जो सन् १८६७ ई० के एक्ट से नगरों के लिये दिया गया था। इस एक्ट से गाँव के श्रमजीवियों को भी मताधिकार मिल गया। इस एक्ट के पास होने से बीस लाख व्यक्तियों को मताधिकार मिला।

रीडिस्ट्रीब्यूशन आफ सीट्स एक्ट १८८५ (Redistribution of Seats Act 1885)—जब मतधारकों की संख्या बढ़ गई तो यह आवश्यक समझा गया कि निर्वाचन-क्षेत्रों को फिर से बनाया जाय। इसके लिये सन १८८५ का रीडिस्ट्रीब्यूशन आफ सीट्स एक्ट पास हुआ। इस एक्ट से पहिले जो एक निर्वाचन क्षेत्र से दो प्रतिनिधि निर्वाचित होने की प्रथा थी वह तोड़ दी गयी और नये एक-प्रतिनिधिक-निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये। परन्तु २२ नगर और आक्सफार्ड व कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालय प्रत्येक दो प्रतिनिधि चुन सकते थे। इनको छोड़ कर दूसरे जो बहु-प्रतिनिधिक निर्वाचन क्षेत्र थे उनको काट छांट कर एक-प्रतिनिधिक-निर्वाचन क्षेत्रों में बदल दिया गया। यद्यपि सन १८३६ को चार्टिस्ट आन्दोलन दबा दिया गया था पर उसकी बहुत सी मांगें सन १८८५ ई० तक पूरी करदी गईं।

स्थानीय-शासन में सुधार—स्थानीय शासन में भी उन्नीसवीं शताब्दी में कई सुधार हुये। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक स्थानीय शासन कुलीनों के हाथ में था। लार्ड लेफ्टिनैन्ट (Lord Lieutenant) की सलाह से राजा कुलीन घराने के व्यक्तियों को जिलों में शान्ति और न्याय स्थापित करने के लिये नियुक्त करता था। सन १८३५ ई० में एक म्यूनिसिपल कौरपोरेशन एक्ट (Municipal Corporation Act) पास हुआ जिससे इन कुलीन सत्ताओं को हटा कर फेंक दिया गया और उनके स्थान पर मेयर (Mayor), एल्डरमैन (Aldermen) और कौंसिलर्स (Councillors) को सारे अधिकार सौंप दिये। सन १८८८ में लोकल गवर्मेन्ट ऐक्ट (Local Government Act) पास हुआ। इस एक्ट से जिलों में पुरानी स्थानिक शासन-पद्धति तोड़ दी गई और उसके स्थान पर लोक निर्वाचित जिला संस्थायें बनादी गईं। इस एक्ट का प्रमुख उद्देश्य यही था कि जो नगर-शासन-पद्धति आत्मशासित नगरों (Boroughs) में ही पहिले प्रचलित थी वही पद्धति जिलों में भी प्रचलित कर दी जाय—। प्रत्येक जिले की संस्था एक कौरपोरेशन बना दी गई। सन १८९४ ई० के लोकल गवर्नमेन्ट एक्ट (Local Government Act) ने प्रत्येक एडिमिनिस्ट्रेटिव काउन्टी (Administrative County) को नागरिक और ग्राम्य छोटे जिलों में बाँट दिया। इन एक्टों से जो स्थानीय शासन का रूप निश्चित हुआ वह बिना अधिक हेर फेर के अभी तक चला आरहा है।

बीसवीं शताब्दी के सुधार—सन् १९१० ई० में हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्ड्स में जो मतभेद हुआ उससे व प्रथम

महायुद्ध (१६१४–१८) के फलस्वरूप प्रजातन्त्र की बढ़ती हुई लहर से जो वैधानिक सुधार हुये उनका विस्तृत विवरण आगे जहाँ व्यवस्थापिका सभाओं और स्थानीय शासन के सम्बन्ध में लिखा गया है, किया जायगा।

न्याय-पद्धति का सुधार—पूर्व अध्याय में यह बतलाया जा चुका है कि हैनरी प्रथम के समय से इंगलैंड में न्याय पद्धति का किस प्रकार विकास हुआ। पर यह स्पष्ट है कि इस विकास में कोई क्रम न था। फलतः विभिन्न प्रकार के मुकदमों के लिये पृथक पृथक न्यायालय स्थापित कर दिये गये थे। सन १८७३ ई० में पार्लियामेंन्ट ने सुप्रीम कोर्ट आफ ज्यूडीकेचर (Supreme Court of Judicature) एक्ट पास किया जिससे न्याय-मण्डल का पुनर्संङ्गठन हुआ। सब से ऊपर एक सर्वोच्च न्यायालय बनाया गया। क्वीन्स बैंच (Queen's Bench) का न्यायालय, कौमन प्लीज (Common Pleas), एक्सचैकर (Exchequer), चाँसरी (Chancerry), एडमिरल्टी (Admiralty) और प्रोबेट व डाइवोर्स (Pobate and Divorce) के न्यायालय जो तब तक स्वतंत्र थे अब सर्वोच्च न्यायालय के अङ्ग बना दिये गये, एक नया पुनर्विचार करने वाला न्यायालय भी बना दिया गया। कानून सम्बन्धी व साधारण न्याय (Equity) वाले दोनों तरह के मुकदमें एक ही न्यायालय में सुने जाने लगे।

पाठ्य पुस्तकें

लगभग इङ्गलैण्ड के इतिहास की प्रत्येक पुस्तक अंगरेजी शासन विधान के विकास का वर्णन करती है और उसमें राजा, कैबिनेट, धारासभा, स्थानीय शासन और न्याय मण्डल आदि का उल्लेख रहता ही है। फिर भी निम्नलिखित पुस्तकों का अध्ययन लाभदायक सिद्ध होगा :—

Adams, G. B.—Constitutional History of England (1934 Edition).

Bagehot, W.—Evolution of Parliament.

Cross, A. L.—Short History of England and Greater Britain.

Dicey, A. V.—The Law of the Constitution (1939 Edition).

Maitland, F. W.—Constitutional History of England.

Montague, F. C.—Elements of English Constitutional History.

Pollard, A. F.—The Evolution of Parliament.

Puntambekar, S. V.—English Constitutional History (2 vols., 1935)

Smith, G. B.—History of English Parliament (2 vols., 1892).

Taswell-Langmead, T. P.—English Constitutional History (9th ed.)

Taylor, H.—Origin and Growth of English Constitution, (2 vols., 1898)

Usher, R.G.—Institutional History of the House of Commons, 1547-1641 (1924)

White, A. B.—The Making of the English Constitution (1925)

पांचवां अध्याय

अङ्गरेजी शासन-विधान के विशेष लक्षण

'वैधानिक सिद्धान्त और उसके भिन्न भिन्न आकार केवल अव्यक्त बुद्धि की क्रीड़ा भूमि नहीं हैं। वे एक ऐसे साधन हैं जो किन्हीं निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये काम में लाये जाते हैं और उस अभिप्राय की सिद्धि के अनुकूल ही उनका रूप निर्धारित किया जाता है। जिस उदार भावना की अभिव्यक्ति सबसे प्रथम लौक ने की, उसकी ही संस्थात्मक अभिव्यञ्जना इङ्गलैण्ड के ढाई सौ वर्ष पुराने राज्य के रूप में हुई।' (एच० जे० लास्की)

'हमारे शासन विधान का सार विधि (Law) है जिसका आदर किया जाता है और जो लागू किया जाता है। हमारे देश के विधि-निर्बन्ध और न्यायालय व पार्लियामेन्ट का सर्वोच्च न्यायालय इन सब के विकास का श्रेय मध्ययुगीन अंगरेजी राजाओं और उनके भृत्यों को है।' (जी० एम० ट्रैविलियान)

अङ्गरेजी-शासन विधान का मुख्य लक्षण उसका क्रमिक विकास ही है—पहिले अध्याय में जो अंगरेजी शासन विधान का संक्षिप्त इतिहास वर्णन किया गया है उससे यह भली भाँति प्रकट हो गया कि अंगरेजी शासन विधान की प्रमुख विशेषता यह है कि उसका क्रमिक विकास हुआ है। इंगलैण्ड के इतिहास में किसी समय भी यह दिखाई नहीं पड़ता कि वहाँ के निवासियों ने कोई बड़ा परिवर्तन सहसा ही कर डाला हो और राजनीतिक पद्धति और संस्थाओं को बिल्कुल नये सिरे से प्रारम्भ किया हो या संगठित किया हो। क्रोमवैल के समय में जो थोड़े समय के लिये गृहयुद्ध के फलस्वरूप कौमनवैल्थ की नवीनता रही वह उपर्युक्त नियम का केवल अपवाद ही कहा जा सकता है। कई शताब्दियों के इस लम्बे क्रमिक विकास में प्रत्येक अवस्था अपना निजी प्रभाव राजकीय संस्थाओं पर छोड़ गई। इसलिये अंगरेजी शासन-विधान का चित्र उस भवन के चित्र से भिन्न दिखाई पड़ेगा जिसको पूर्व कल्पित अभिप्राय से विचार पूर्वक किसी एक शिल्पी ढंग पर बनया गया हो। यह तो उस पुरानी गढ़ी के समान है जिसमें प्रत्येक आने वाली पीढ़ी ने अपनी अपनी आवश्यकता के अनुसार कोई भीत या बुर्ज जोड़ दिया हो और इस बात का ध्यान न रखा हो कि ऐसा करनेसे भवन की सुडौलता बनती या बिगड़ती है।

इसलिये राजनीति-विज्ञान के विद्यार्थी की अंगरेजी विधान को एक स्थान पर पाने की अभिलाषा पूरी न हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं।

अंगरेजी शासन-विधान किसी एक पत्र में लिखा हुआ नहीं है—आजकल प्रायः सभी राष्ट्रों में कोई एक प्रलेख होता है जिसमें उस राष्ट्र के शासन-सम्बन्धी मुख्य मुख्य सिद्धान्त लिखे रहते हैं। उदाहरणार्थ, संयुक्त राष्ट्र का शासन-विधान उस एक प्रलेख में पाया जाता है जो फिलाडेलफिया की सभा में तैयार हुआ और जिसको उपराज्यों ने स्वीकार कर लिया था। इस प्रलेख में थोड़े से संशोधन जो बाद में हुये, जोड़ने से शासन-विधान का पूरा चित्र हमारे सामने आ जाता है। सन् १८७५ ई० के तीन आर्गेनिक विधियों (Organic Laws) में फ्राँस के शासन-विधान की रूप रेखा देखने को मिल सकती है, पर अंगरेजी शासन विधान किसी एक प्रलेख या पार्लियामेन्ट से बनाये हुये कानून से नहीं जाना जा सकता, इसका परिचय पाने के लिये हमें उन सब अनेकों सिद्धान्तों की जानकारी करनी पड़ेगी जो सन् १२१५ ई० के मैग्ना कार्टा (Magna Carta) से लेकर सन् १९३६ ई० के राज्य त्याग एक्ट तक जितने कानून पार्लियामेन्ट ने बनाये हैं, उनमें बिखरे पड़े हैं। परन्तु विधान के बड़े बड़े सिद्धान्तों वाले कानूनों की ही गिनती की जाय तो वे प्रमुख कानून ये हैं:—

मैग्ना कार्टा (Magna Carta: 1215)—इसने राजा के अधिकार कम कर दिये क्योंकि इसके द्वारा बैरनों और पादरियों के कुछ अधिकार सुरक्षित हो गये, कर लगाने पर सम्मति प्रकट करने के लिये एक नेशनल कौंसिल (National Council) का बुलाया जाना आवश्यक कर दिया और इससे २५ बैरनों की एक कौंसिल बना दी गई जिसका काम यह था कि वह यह देखभाल करे कि इस चार्टर (Magna Carta) की शर्तों को क्रियात्मक रूप दिया जाय।

पिटीशन आफ राइट्स (Petition of Rights: 1628)—इसके द्वारा मैग्नाकार्टा से प्रदत्त अधिकारों की पुनः घोषणा की गई। पार्लियामेंट की सम्मति के बिना स्वेच्छा से राजा जो कर लगा लेता था, उस अधिकार को समाप्त कर दिया और बिना परीक्षा व विचार किये और कारण समझाये किसी व्यक्ति को बन्दी बनाने के राजा के अधिकार को अस्वीकृत कर दिया।

हैबियस कौर्पस एक्ट (Habeas Corpus Act: 1879)—इससे व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा हुई। यद्यपि वैयक्तिक स्वतंत्रता का अधिकार बहुत प्राचीन समय से मान्य था पर उसकी प्राप्ति के उपाय दोषपूर्ण व अपर्याप्त थे। इस एक्ट ने उन सब असुविधाओं व दोषोंको दूर कर दिया और

लोगों को एक ऐसे महत्वपूर्ण अधिकार का लाभ कराया जो दूसरे देशों में स्वयं शासन-विधान में उल्लिखित रहता है।

बिल आफ राइट्स (Bill of Rights: 1689)—यह ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) का परिणाम था। मैकोले के कथनानुसार इस क्रांति ने अन्तिम बार इस प्रश्न का निबटारा कर दिया कि लोकतत्व जो अँगरेजी राजकीय जीवन में फिट्जवाल्टर और डि मौन्टफोर्ड के समय में उत्पन्न हुआ, राजतत्व से दब जायगा या उसको धीरे धीरे बढ़ने की स्वतंत्रता मिलेगी जिससे वह प्रबल हो कर सब पर अपना प्रभुत्व करने के योग्य हो जाय। मैकौले ने आगे चलकर कहा कि यद्यपि बिल आफ राइट्स ने कोई ऐसा कानून नहीं बनाया जो पहिले न था पर उसमें उन सब अच्छे कानूनों का अँकुर था जो पिछली डेढ़ शताब्दी में पास हो चुके थे, या जो अच्छे कानून भविष्य में समाज की उन्नति व कल्याण के लिये आवश्यक समझे जांय और जिनसे जनमत संतुष्ट होता हो।

दी एक्ट आफ सैटिलमैंट (The Act of Settlement: 1707) —यह वास्तव में राजा और प्रजा के बीच एक प्रकार का प्रारम्भिक ठेका था क्योंकि इसने राजा के दैवी अधिकार को अमान्य ठहरा दिया और पार्लियामेंट के इस अधिकार को मान्य कर दिया कि वह राज्यसिंहासन पर बैठाने के लिये उत्तराधिकारी का निर्णय करे।

दी एक्ट आफ यूनियन (The Act of Union:1701)—इस एक्ट से इंगलैण्ड और स्कौटलैंड को मिलाकर यूनाइटेड किंगडम आफ ग्रेट ब्रिटेन (United Kingdom of Great Britain) की स्थापना हुई।

दी एक्ट आफ यूनियन विद आइरलैंड (The Act of Union with Ireland: 1800)—इस एक्ट से आइरलैंड को इंगलैंड से नियमित रूप से संयुक्त कर दिया गया जिससे पार्लियामेंट संगठन में कुछ परिवर्तन हुआ।

दी रिफार्म्स एक्टस (The Reforms Acts of 1832, 1867, 1884 and 1885)—इनसे मताधिकार विस्तृत हुआ जिससे हाउस आफ कामन्स वास्तव में लोक प्रतिनिधि सभा बनी।

रिप्रजैन्टेशन आफ दी पीपल एक्टस (Representation of the People Acts of 1918 and 1928) इनसे हाउस आफ कामन्स के लिये वयस्क मताधिकार दे दिया गया।

लोकल गवर्नमेंट एक्टस (Local Government Acts of 1888, 1894 and 1929) इनसे स्थानीय स्वायत्त शासन की स्थापना व उन्नति हुई क्योंकि इनसे उन प्राचीन शासन संस्थाओं का पुनर्संङ्गठन हुआ जो प्रायः आकस्मिक ढंग से स्थापित हो गई थीं। इनके द्वारा देश में स्थानीय स्वायत्त शासन की एक निश्चित पद्धति का प्रचार हुआ।

दी जुडीकेचर एक्ट्स (The Judicature Acts of 1873, 1875, 1876 and 1894)—इनसे न्यायमण्डल का पुनर्संङ्गठन हुआ व न्यायक्षेत्र में जो अन्धाधुन्धी चलती आ रही थी उसके स्थान पर एक अच्छी व्यवस्था स्थापित हो गई।

पार्लियामेंट एक्ट (The Parliament Act of 1911)—इस एक्ट से हाउस आफ लार्ड्स के अधिकार कम कर दिये गये जिससे हाउस आफ कामन्स ही सर्वप्रमुख धारासंस्था बन गई।

अंगरेजी शासन-विधान के सिद्धान्तों के परिचायक अधिनियमों (Acts) में से प्रमुख अधिनियमों का ही वर्णन ऊपर किया गया है। इस वर्णन से विधान का मोटा स्वरूप समझ में आ जाता है। परन्तु शासन विधान का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी का इनसे ही काम नहीं चल सकता। पूरी तरह हृदयङ्गम करने के लिये उसे पार्लियामेंट के उल्लेख पत्रों (Records) और अनेक छोटे अधिनियमों की छानबीन करनी पड़ेगी। जैसा मैरियट (Marriot) ने कहा है "शासन विधान की निर्बाकृता और अस्पष्टता को देखकर विदेशी लोग हैरान भी रहते हैं और प्रशंसा भी करते हैं। स्थान स्थान पर उनको प्रामाणिक लेखों की अनुपस्थिति खटकती है पर फिर भी वे अपने सरल स्वभाव के कारण अंगरेजी पद्धति की उपयोगिता को देखने से और उसका समर्थन करने से नहीं चूकते"। शासन-विधान के बनाने में अंगरेजों ने अपने परम्परागत स्वभाव का परित्याग नहीं किया है और कभी भी ऐसा परिवर्तन करने का साहस नहीं किया जिससे उनका अपनी पुरानी संस्था और परिपाटी से सम्बन्ध टूट जाता हो। प्रत्येक आगे आने वाली परिस्थिति में उन्होंने केवल उतना ही परिवर्तन करना ठीक समझा जितने से नई परिस्थिति का सफलता पूर्वक सामना किया जा सके। इस लक्षण को बौटमी (Boutmy) ने इन शब्दों में बड़ी भली प्रकार दर्शाया है:—

"अंगरेजों ने अपने शासन-विधान के भिन्न भिन्न भागों को वहीं छोड़ दिया जहाँ इतिहास की लहर ने उन्हें लाकर डाल दिया। उन्होंने इस बात

का प्रयत्न नहीं किया कि इन टुकड़ों को एक स्थान पर इकट्ठा कर लिया जाय या उनका वर्गीकरण किया जाय और यदि कोई कमी दिखाई पड़े तो उसे पूरा कर लिया जाय। मूल लेखों के अन्वेषकों व परीक्षकों को इस बिखरे हुये विधान में कोई सहारा नहीं मिलता। जो आलोचक भूलों की ओर उंगली उठाने के लिये व्यग्र हों उन्हें पर्याप्त सामिग्री मिल सकती है, व जो सिद्धान्ती विरोधी नियमों को धिक्कारने के लिये उत्सुक हों उन्हें भी कोई भय नहीं, उन्हें भी अपनी उत्सुकता पूरी करने का इस विधान में पूरा अवसर प्राप्त हो सकता है। इन्हीं भूलों व विरोधों से सुखमयी असम्बद्धता, उपयोगी असंगतियाँ रक्षा करने वाले विरोध सुरक्षित रखे जा सकते हैं। उनका मानव संस्थाओं में सुरक्षित रहना भी अहेतुक नहीं है क्योंकि प्रथम तो वे प्रकृति में ही वर्तमान है, इसके अतिरिक्त इनके होने से सामाजिक शक्तियों को क्रियात्मक होने का पूरा अवसर प्राप्त होने के साथ ही साथ अपनी मर्यादा को उल्लंघन करने का साहस नहीं होता, न उन्हें यह अवसर मिलता है कि सारे सामाजिक मन्दिर की नींव हिला दें। अंगरेजों ने अपने वैधानिक लेखों को बखेर कर जो यह लाभ प्राप्त किया है उस पर उन्हें अभिमान है और वे सतर्क रहे हैं कि विधान को एक स्थान पर एकत्रित व सुसम्बद्ध कर इस लाभ को खो न दिया जाय"।

अलिखित विधान—यही निर्वाकृता और अस्पष्टता व विधान के दूर दूर बिखरे हुये टुकड़ों का होना, अंगरेजी शासन विधान को अलिखित विधान का लक्षण प्रदान करता है। अंगरेजी शासन-विधान के अलिखित कहे जाने का अभिप्राय यह है कि यह विधान किसी एक अधिनियम या प्रलेख में नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त सब अधिनियमों को जोड़ कर रखने से भी इस विधान का पूर्ण रूप नहीं जाना जा सकता क्योंकि बहुत सी वैधानिक बातें अंगरेजी राजकीय समाज की परिपाटी, रीति रिवाजों आदि में निहित हैं।

यह प्रश्न उठता है कि इन अंगरेजी समाज की रीति-रिवाजों का क्या महत्व है? इस प्रश्न का उत्तर यों दिया जा सकता है। इंगलैंड में नियमबद्ध कानून और वैधानिक-व्यवहार में बहुत अन्तर है, जिन विधि-निर्बन्धों में दिये हुये सिद्धान्तों के अनुसार शासन विधान का ऊंचा भवन बन कर तैयार हुआ है, उनसे बहुत कुछ हट कर शासन-पद्धति कार्यरूप होती है। पार्लियामेंट के विधि-निर्बन्धों से बहकने की जुम्मेवरी इन्हीं रीति-रिवाजों की है। इन वैधानिक रीति-रिवाजों या प्रथाओं का अर्थ क्या है? प्रथायें

नियम तो हैं पर वे कानून या निर्बन्ध नहीं हैं जो किसी देश के शासन-विधान के अङ्ग हुआ करते हैं। आचार्य डायसी ने इन प्रथाओं की इस प्रकार परिभाषा की है—"ये वे सिद्धान्त या व्यावहारिक नियम हैं जो यद्यपि राजा, मंत्रियों और दूसरे शासन पदाधिकारियों के कार्यों का नियंत्रण करते हैं पर वास्तव में वे कानून नहीं हैं"। इस परिभाषा को स्पष्ट करने के लिये वह इन प्रथाओं के उदाहरण भी उपस्थित करता है। पहिला यह कि 'राजा पार्लियामेंट के दोनों आगारों से पास किये हुये कानून को स्वीकार करने पर बाध्य है, उसे वह अस्वीकृत नहीं कर सकता"। दूसरा "हाउस आफ कामन्स के विश्वासपात्र न रहने पर मंत्रियों को पदत्याग कर देना चाहिये"। पहिले उदाहरण से यह स्पष्ट है कि किस प्रकार कानून से मान्य राजा की विधायिणी शक्ति (Legislative Power) व्यवहार में उससे छीन ली गई है। दूसरे उदाहरण से यह प्रकट है कि यद्यपि वैधानिक नियम के अनुसार राजा ही मंत्रियों को स्वेच्छा से नियुक्त करता है पर वे वास्तव में हाउस आफ कामन्स को उत्तरदायी हैं, जिसका व्यवहार में मतलब यह हुआ कि राजा उन्हीं व्यक्तियों को मंत्री चुन सकता है जो कामन्स के विश्वासपात्र हैं।

इस प्रकार वैधानिक प्रथायें इंगलैंड में बड़ा महत्व रखती हैं। इन प्रथाओं व कानूनों में केवल अन्तर यही है कि कानून लिखित है और प्रथायें अलिखित। इंगलैंड में वैधानिक सम्बन्धों में प्रमुख प्रमुख सम्बन्ध प्रथाओं से ही मर्यादित है और इनके कारण कानून का रूप ही बदल जाता है।

विधान का लचीलापन—अलिखित होने से और इसके व्यवहाररूप होने में प्रथाओं का बड़ा महत्व रहने के कारण, अंगरेजी शासन-विधान बड़ा लचीला है। वैसे तो सभी एकात्मक (unitary) शासन-विधान लचीले होते हैं अर्थात् साधारण कानून की तरह से उनमें परिवर्तन व संशोधन हो जाता है, परन्तु इंगलैंड का शासन विधान जो मूलतः एकात्मक है, संसार के वर्तमान शासन विधानों में सबसे अधिक लचीला है,यह लचीलापन इस बात में नहीं है कि वह साधारण प्रणाली के द्वारा बदला जा सकता है वरन् यह लचीलापन इसी बात में भी है कि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल झट उसका उपयोग हो सकता है। पार्लियामेंट की विधायिनी प्रभुता इतनी अधिक ऊंची है कि वह किसी भी विधि-निर्बन्ध को बना सकती है चाहे उसका सम्बन्ध सड़क के कर की चौकी से, हाउस आफ कामन्स के अधिकारों के परिवर्तन से या किसी अंगरेजी उपनिवेश को स्वतन्त्रता देने से हो। इन सब

के लिये एक ही प्रणाली अपनाई जाती है, किसी विशेष र द्धति का अनुकरण नहीं करना पड़ता। विधान में परिवर्तन करने के लिये किसी विशेष पद्धति को अपनाने की आवश्यकता न होने के कारण विधान प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल सहज ही बनाया जा सकता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण सन् १९३६ ई० का राजत्याग एक्ट (Abdication Act) था। पुर स्थापित होने के आधे घंटे के भीतर ही यह एक्ट पास हो गया और पार्लियामेंट ने एक राजा के राज्यत्याग को वैध बना दूसरे को राजमुकुट पहिना दिया। किसी दूसरे देश में ऐसा परिवर्तन करने के लिये एक बड़ी क्रान्ति की आवश्यकता हो जाती पर इंगलैंड में अष्टम् एडवर्ड के राजसिंहासन छोड़ने से राजकीय क्षेत्र में जरा सी भी उथल पुथल नहीं हुई। यह सब इंगलैंड के शासन विधान के लचीलेपन के कारण ही सम्भव हो सका था।

शासन विधान से पार्लियामेंटरी प्रजातंत्र स्थापित किया हुआ है—शासन संगठन की चोटी पर राजा के आसीन होने से और जैसी उसकी ख्याति व कीर्ति है, उससे साधारण दृष्टा को यह धारणा होगी कि इंगलैण्ड का शासन-विधान राजसत्तात्मक (Monarchic) ढंग का है। पर वास्तव में ऐसा नहीं है और संसदात्मक (Parliamentary) प्रजातंत्र सरकार की ही स्थापना की गई है। कुछ लोग इसे नियंत्रित राजसत्ता कहते हैं, दूसरे इसे राजसत्तात्मक-प्रजातंत्र (Monarchic Democracy) कह कर वर्णन करते हैं। यह ठीक है कि सिद्धान्ततः राजा ही विधायिनी, कार्यकारिणी व न्यायकारिणी शक्ति का स्वामी है, पर वैधानिक प्रथाओं व कुछ कानूनों ने केवल उसे राज्य का वैधानिक अध्यक्ष भर ही रहने दिया है। पार्लियामेंट की सर्वोच्च प्रभुता से संसदात्मक कार्यकारिणी (Parliamentary Executive) का जन्म हुआ। मंत्रिपरिषद् यद्यपि राजा द्वारा नियुक्त होती है पर वास्तव में वह कामन्स को उत्तरदायी है। यह सब उस वैधानिक संघर्ष का फल है जो अप्रत्यक्ष रूप से कई शताब्दियों तक चलता रहा था।

राजनीतिक-दल-प्रणाली अँगरेजी शासन-विधान की विशेषता है—यदि संसदात्मक सरकार को सर्वप्रथम जन्म देने का श्रेय इंगलैंड को दिया जाता है तो उसकी अनुगामिनी पक्ष-प्रणाली (Party system) के विकास का भी श्रेय उसी को है। पक्ष प्रणाली वास्तव में संसदात्मक कार्यकारिणी या सरकार की सफलता के लिये नितान्त आवश्यक है। पहिले अध्याय में यह वर्णन हो चुका है कि इंगलैंड में विभिन्न राजनीतिक दलों का आविर्भाव किस प्रकार हुआ। किसी भी सूक्ष्मदर्शी अंगरेजी शासन विधान के

विद्यार्थी को यह स्पष्ट हो जायगा कि व्यवस्थापिका सभा में बिना राजनीतिक पक्षों के बने संसदात्मक या परिषदात्मक सरकार का बनना असम्भव है ।

अंगरेजी शासन विधान इस प्रकार एक विकसित पक्ष प्रणाली पर आधारित है । इंगलैंड में साधारण निर्वाचन के समय प्रारम्भ होने वाला राजनैतिक संघर्ष अमरीका के समान निर्वाचन के बाद समाप्त नहीं हो जाता। यह लड़ाई पार्लियामेंट के भीतर जारी रहती है जहाँ लगभग प्रत्येक प्रश्न पर सम्राट की सरकार व सम्राट का विरोधी दल बुद्धि-रूपी तलवारों से लड़ते हैं और अपनी अपनी बात पक्की करने का प्रयत्न करते हैं। कार्यकारिणी के ऊपर संसद् के नियंत्रण का मूलमंत्र ही यही है कि संसद् में सुसंगठित व अनुशासित राजनीतिक दल हों ।

संसदात्मक कार्यकारिणी के सफल-कार्य होने के लिये दो और केवल दो ही पक्ष आवश्यक हैं। इंगलैंड में बहुत समय तक लिबरल और कंज़रवेटिव दो ही दल थे। पर बाद में सामाजिक और राजनैतिक छोटे छोटे भेदों के कारण ही दूसरे दल बन गये। ये नये दल रैडीकल (Radicals), होम रूलर्स (Home Rulers), यूनियनिस्ट (Unionists), लेबराइट्स (Labourites) और कम्यूनिस्ट (Communists) नामों से प्रसिद्ध हुये। पर इस समय तीन राजनीतिक दल हैं जो अच्छी तरह संगठित हैं, जिनके प्रतिनिधियों की पार्लियामेंट में अच्छी संख्या है और जिनका निश्चित राजनीतिक कार्यक्रम है। ये तीन राजनीतिक दल, कंज़रवेटिव (Conservative), लिबरल (Liberal) और लेबर (Labour) हैं, अर्थात् अनुदार दल, उदार दल और मज़दूर दल। हम यहाँ उन सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे जिन पर इन तीनों दलों का संगठन हुआ है और जिनके कारण यह एक दूसरे से भिन्न हैं ।

कन्ज़रवेटिव दल (Conservative Party)—कुछ समय पहिले इंगलैंड में कन्ज़रवेटिव दल की संख्या सबसे अधिक थी। "कन्ज़रवेटिज्म के सारभूत तत्व उन संस्थाओं में मिलेंगे जिनका यह समर्थन करती है या इसके प्रगति-सम्बन्धी दृष्टिकोण से। सामाजिक संस्थाओं में कन्ज़रवेटिव दल (Conservative Party) वाले लोग राजा, राष्ट्रीय एकता, ईसाई-धर्म-संघ (Church), एक शक्ति शाली शासक-वर्ग और वैयक्तिक सम्पत्ति की राज्य के हस्तक्षेप से स्वतंत्रता इन सब बातों के समर्थक हैं।"* कन्ज़रवेटिव

---

* फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेंट, पृ० ५१६

दल के लोग यदि पार्लियामेंट से अधिक नहीं तो कम से कम उसके समान ही राजा को राष्ट्र व साम्राज्य की एकता का प्रतीक समझते हैं। राजा के प्रति उनकी भक्ति और उनका प्रेम ईश्वर-भक्ति से कुछ ही कम होगा। वे राष्ट्र भावना से पूरी तरह अभिप्रेत रहते हैं और दूसरे राष्ट्र या वर्ग को बिलकुल अविश्वास भरी दृष्टि से देखते हैं। इस दल के लोगों का विश्वास है कि उनकी जाति सब जातियों में श्रेष्ठ है। यहाँ तक कि युद्ध में मित्र-राष्ट्रों की जातियों को भी वह अपने बराबर स्थान नहीं देते। उन्हें अपनी राजकीय संस्थाओं व परम्पराओं की उत्तमता पर भी बड़ा विश्वास और गर्व है। उनकी धारणा है कि उनकी जाति को ईश्वर ने दूसरे लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध भी सभ्य बनाने के लिये भेजा है। वे अपने इस कार्य को सम्पादित करने में हिंसा व राक्षसी क्रूरता का भी उपयोग करने से नहीं हिचकते। देश की रक्षा और उसको महान् बनाने वाली बातों को प्रशंसा द्वारा ऊँचा उठाने में उनकी यह राष्ट्रीय-भावना व्यक्त हुआ करती है। महान् बनाने से उनका अभिप्राय राष्ट्र की सांसारिक समृद्धि और सामरिक शक्ति को बढ़ाने से ही होता है न कि आत्मोन्नति से.....। साम्राज्य तो इनका जीवन है क्योंकि साम्राज्य से जाति की उस सामर्थ्य का निर्देश होता है जिससे वह दूसरों पर अपनी प्रभुता बढ़ाने में सफल होती है और इस सफलता को वे भारी आध्यात्मिक उन्नति का पर्यायवाची समझते हैं।*

इन सब बातों से स्पष्ट है कि कन्जरवेटिव दल के लोग वैदेशिक नीति में एक दृढ़ और सतत् बढ़ने वाले साम्राज्य के समर्थक हैं और ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के विरोधी हैं।

कन्ज़रवेटिव दल और ईसाई धर्म-संघ—ये लोग हमेशा से इंगलैंड के राष्ट्रीय ईसाई धर्म-संघ के भक्त रहे हैं, क्योंकि यह संघ प्रारम्भ से ही एक कन्ज़रवेटिव (Conservative) संस्था रही है। टोरियों (जो कन्जरवेटिव लोगों के पूर्व-गामी थे) की तो आवाज ही यह थी—"यदि बिशप नहीं तो राजा नहीं।" ये संघ के आसन को ऊँचा रखने के लिये सत्रहवीं शताब्दी में राजनैतिक लड़ाइयाँ लड़ भी चुके थे।

कन्जरवेटिव दल और समाज—सामाजिक क्षेत्र में इस दल के लोग सदा से एक शासक-वर्ग के होने के समर्थक रहे हैं। उनकी धारणा यह है कि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो इतने कुशल हैं कि उन्हें बिना

---

* फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेंट, पृ० ५१७

लोकेच्छा का सहारा लिये शासन करने का अधिकार है। इसी लिये उन्होंने बराबर मताधिकार के विस्तृत करने और हाउस आफ कामन्स के अधिकार बढ़ाने का विरोध किया है। हाउस आफ कामन्स में साधारण जनता के प्रतिनिधि बैठकर उच्चवर्गों पर शासन करते हैं। यह बात कन्ज़रवेटिव दल के लोगों को कैसे अच्छी लग सकती है। हाउस आफ लार्डस में कन्ज़रवेटिव लोगों का ही प्रभुत्व रहा है क्योंकि इंगलैंड की सम्पत्ति और भूमि के अधिक भाग पर उन्हीं का स्वामित्व है। वे इसी कारण से वैयक्तिक सम्पत्ति में राज्य के हस्तक्षेप के विरोधी हैं। सम्पत्ति और भूमि के स्वामित्व के ही कारण इस दल के लोग राजघराने से सान्निध्य प्राप्त किये हुये रहे हैं और उसके द्वारा ये राज्य की शासन-नीति पर अपना प्रभाव डालने में सफल हो सके हैं।

पूंजीपतियों और उद्योगस्वामियों की मध्यस्थता के द्वारा कन्ज़रवेटिव लोग इंगलैंड के समाचार पत्रों पर अपना नियंत्रण रखते हैं। बड़े बड़े सभी समाचार पत्रों का वे ही संचालन करते हैं जससे लोकमत पर अपना प्रभाव डालने में उन्हें बड़ी सुविधा रहती है। यह प्रभाव विशेषतया वैदेशिक-नीति-सम्बन्धी मामलों और साम्राज्य सम्बन्धी विषयों में अधिक रहता है।

लिबरल दल (Liberal Party)—दूसरा राजनैतिक दल लिबरल लोगों का है। यद्यपि अब इसके अनुयायियों की संख्या अधिक नहीं है पर फिर भी यह दल कन्ज़रवेटिव दल के समान ही प्राचीन है। लिबरलवाद का मूलमंत्र "नये अनुभव के प्रति उदारता और मुक्त-विकास का समर्थन" है। इंगलैंड में उदारदल के सिद्धान्तों का उदय रिफौरमेशन मूवमेन्ट (Reformation Movement) अर्थात् सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप हुआ। उस समय वैयक्तिक विचार-स्वतंत्रता का अधिकार बहुत मान्य हो चुका था। इसीलिये ये सिद्धान्त राष्ट्रीय धर्म-संघ और अनियंत्रित शासन सत्ता के कट्टर विरोधी थे, यही कारण था कि ह्विग (लिबरलों के पूर्व गामी) लोग स्टूआर्ट राजाओं की निरंकुशता से लड़ने के लिये खड़े हुये, ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) के जन्मदाता बने और उन्होंने राजा की शक्ति को कम कर पार्लियामेंट की शक्ति को बढ़ाया। उन्नीसवीं शताब्दी के जितने भी वैधानिक सुधार हुए उनको लिबरल सरकार ने ही इंगलैंड में प्रचलित किया था क्योंकि लिबरल-दल की सदा से ही यह भावना रही है कि शासन-पद्धति में ही स्वतंत्रता व अत्याचारी शासन के अंकुर निहित हैं और उसी ओर अपना ध्यान रखना आवश्यक है। लिबरल-सिद्धान्ती के लिये

"राज्य से पूर्व व्यक्ति अधिक महत्व रखता है। व्यक्ति में ही सृजन शक्ति प्रेरणा आदि का आविर्भाव होता है और व्यक्ति अपने अनुभव के आधार पर ही दूसरों के अनुभव को सत्य मानता है। इस सब सृष्टि का अन्तिम उद्देश्य अधिक से अधिक संख्या में पूर्ण-व्यक्तियों को उत्पन्न करना है। व्यक्ति अपना जीवन कैसा बनाये, इसका निर्णय वे नहीं कर सकते जिनके हाथ में शासन शक्ति है, पर व्यक्ति स्वयं ही अपने विवेक से इसका निश्चय कर उसे अङ्गीकार करेगा क्योंकि कोई भी निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि अमुक ज्ञान या अनुभव अधिक सत्य है, अधिक सुन्दर है और अधिक कल्याणकारी है। जब ऐसा है तो सत्य की खोज की आशा इसी में है कि सबको समान अवसर दिया जाये जिससे वे अपने विचार प्रकट कर सकें और अपनी निहित शक्तियों का विकास कर सकें। इस स्वतंत्रता पर केवल उतना ही नियंत्रण हो जितना इस स्वतंत्रता की रक्षा के लिये नितान्त आवश्यक हो।"* यद्यपि लिबरल लोग राष्ट्र व जाति की भावना को स्वीकार करते हैं परन्तु वे साम्राज्य की विभिन्न जातियों को धीरे धीरे स्वतंत्र करने के पक्ष में हैं। उन्होंने इस नीति को कार्यरूप करते हुए कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका को स्वतंत्र सरकार बनाने दिया। घरेलू मामलों में उनका यह कहना है कि व्यापार और उद्योग की उन्नति कर साधारण जनता को अधिक सुविधायें दी जायें, नगर-पालक संस्थाओं को अधिक अधिकार दिये जायें और बेकारी समाप्त की जाय।

लिबरल दल की विशेषता ही यह है कि वह मध्य व निम्न वर्ग से सहानुभूति रखता है। यदि कन्ज़रवेटिव सम्पत्ति-वर्ग है तो लिबरल बुद्धि-वर्ग है। ये अधिकतर मध्यवर्ग के लोग होते हैं। हाउस आफ लार्ड्स में इनकी संख्या बहुत है पर कामन्स में लेबर दल के प्रभाव के बढ़ने से इनकी गिनती कम होती जा रही है। लिबरल दल का मार्ग कन्ज़रवेटिव और समाजवाद के बीच से होकर जाता है।

लेबर दल (Labour Party)—पहिले महायुद्ध के पश्चात् इंगलैंड में कन्ज़रवेटिव दल का सामना करने के लिये एक तीसरा राजनीतिक दल शक्तिपूर्ण हुआ। यह दल लेबर पार्टी (Labour Party) के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसमें लिबरल दल के बहुत से लोग आकर मिल गये। इस दल का बनना पुराने दोनों राजनीतिक दलों को चुनौती देना था। इस दल का आधार-सिद्धान्त समाजवाद है इसलिये इस दल का संगठन राजनीति में तब

* फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेंट, पृ० ५२३

तक विशेषाधिकारों, पूंजीवाद और सम्पत्ति का जो प्रभुत्व चला आ रहा था उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप है। इस दल के लोग अधिकतर श्रमिक व निर्धन वर्ग के हैं। यह ठीक है कि इंगलैंड के प्रत्येक ऐतिहासिक काल में, विशेषकर उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जबकि चार्टिस्ट आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, बहुसंख्यक निर्धन वर्ग की दशा सुधारने के लिये बराबर आन्दोलन चलता रहा। पर इस आन्दोलन को प्रथम महायुद्ध के पश्चात् बड़ा प्रोत्साहन मिला। लेबर पार्टी के उद्देश्य ये हैं—बड़ी बड़ी आर्थिक योजनाओं का राष्ट्रीयकरण, श्रमिकों के रहन सहन का स्तर ऊंचा करना, धनिक वर्ग पर अधिक कर लगाना, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और साम्राज्य के आधीन देशों को स्वतंत्रता देना। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि घरेलू तथा वैदेशिक दोनों मामलों में लेबर दल की नीति कन्ज़रवेटिव दल की नीति से प्रतिकूल है। हाउस आफ लार्ड्स में उनकी संख्या बहुत कम है, पर हाउस आफ कामन्स में उनकी संख्या द्वितीय महायुद्ध से पूर्व भी बहुत थी। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जो नया निर्वाचन हुआ उसमें लेबर दल को आशातीत सफलता हुई और इसके सदस्यों की संख्या दूसरे दोनों दलों की संयुक्त संख्या से भी अधिक है। आजकल लेबरदल का ही मंत्रिमण्डल है जो अपने सिद्धान्तों को व उद्देश्यों को कार्यरूप दे रहा है। भारतवर्ष की स्वतंत्रता व ब्रह्मा की स्वतन्त्रता इसका ज्वलंत उदाहरण है।

इगलैण्ड में राजनीतिक दल प्रणाली—इंगलैंड की राजनीतिक दल प्रणाली पर ही प्रतिनिधिक सरकार का भव्य भवन खड़ा हुआ है। प्रत्येक दल अपने नेताओं को मंत्रिमण्डल में पदासीन करने का प्रयत्न करता है। इस अभिप्राय की सिद्धि के लिये वह लोकमत को नाना प्रकार से अपनी ओर झुकाने में प्रयत्नशील होता है। "यह भोज देता है, नृत्य सत्कार आदि का आयोजन करता है। सभायें, उपदेश शिक्षण सम्मेलन आदि भी बराबर होते रहते हैं। दल के अपने अपने वक्ता, मत एकत्र करने वाले, व कार्यकर्ता होते हैं। यह अपने लिये धन इकट्ठा करता है और यह स्थानीय व राष्ट्रीय समाचार पत्रों में अपना प्रचार भरने का प्रयत्न करता है।"* प्रत्येक दल का अपना राष्ट्रीय संगठन होता है जिसकी अनेक शाखायें होती हैं और जो इन शाखाओं की कार्यवाही पर नियंत्रण रखता है। इस संगठन का काम बराबर चलता रहता है। राजनीतिक दल प्रणाली इस प्रकार सब समय शासन-पद्धति

---

* लास्की—पार्लियामेंटरी गवर्नमेन्ट इन इंगलैंड, पृ० ७१

पर अपना काबू रखती है। इसीलिये यह शासन विधान का एक आवश्यक अङ्ग बन गई है।

अंगरेजी शासन विधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता निर्बन्ध-शासन (Rule of Law) है। यह साधारण सार्वजनिक नीति-नियमों पर आधारित है और शताब्दियों से चले आने वाले राजा-प्रजा के संघर्ष के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। इंगलैंड में नागरिकों के अधिकार किसी एक अधिनियम या कानून में अन्तर्भूत नहीं हैं। कुछ अधिकारों का तो किसी भी अधिनियम में समावेश ही नहीं किया गया है फिर भी यहां के नागरिक उन्हीं वैयक्तिक, धार्मिक और सामाजिक स्वतंत्रताओं का उपभोग करते हैं जो अमरीकन या फ्रैंच नागरिकों को अपने राष्ट्र में उपलब्ध हैं। यह स्वतंत्रता निर्बन्ध शासन (Rule of Law) से सुरक्षित रहती है। यह निर्बन्ध शासन (Rule of Law) इंगलैंड में सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ और इसके कारण ही अंगरेजी शासन-प्रणाली और यूरोपियन शासन-प्रणाली में भेद है।

आचार्य डायसी के अनुसार मोटे तौर पर निर्बन्ध-शासन (Rule of Law) के तीन मूल सिद्धान्त हैं.—

पहिला, "यह कि किसी व्यक्ति को दण्ड नहीं दिया जा सकता या उसको शारीरिक कष्ट व सम्पत्तिक हानि नहीं पहुंचाई जा सकती जब तक कि उसने किसी निर्बन्ध (कानून) को न तोड़ा हो और उसका यह अपराध राज्य की साधारण अदालतों के सामने विधिपूर्वक निर्णीत न हुआ हो।"*

इसका यह मतलब निकला कि निर्बन्ध-शासन (Rule of Law) के होने से राज्यतंत्र सत्ताधिकारियों की स्वेच्छाचारिता से बचा रहेगा क्योंकि वे लोग जनता की स्वतंत्रता को मन चाहा कुचल नहीं सकेंगे।

दूसरा, निर्बन्ध-शासन (Rule of Law) यह निश्चित कर देता है कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी श्रेणी का हो या कैसा भी उसका प्रभुत्व हो, कानून से परे नहीं है और प्रत्येक नागरिक "राज्य के सार्वजनिक विधि-निर्बन्धों के आधीन है व सार्वजनिक न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र के वशवर्ती है।"[१] अँगरेजी शासन-प्रणाली की यह अनुपम विशेषता है और इसके जोड़ की कोई वस्तु यूरोपियन शासन-प्रणाली में नहीं मिलती। वहाँ सरकारी

---

* लॉ आफ दी कन्स्टीट्यूशन, पृ० १८३–८४

१ लॉ आफ दी कन्स्टीट्यूशन, पृ० १८३–८४

कर्मचारियों के अपराधों पर विशेष प्रशासन-न्यायालयों (Administrative Courts) में विचार किया जाता है। इन प्रशासन-न्यायालयों की नियुक्ति प्रशासन-निर्बन्ध (Administrative Law) के अन्तर्गत की जाती है। आचार्य डायसी ने सार्वजनिक विधि-निर्बन्धों की सर्वोच्चता का इस प्रकार बखान किया है—"हमारे यहाँ प्रत्येक कर्मचारी, प्रधानमंत्री से लेकर कान्स्टेबिल और कर-संग्रह कर्ता तक, अपने अवैध कार्यों के लिये उतना ही उत्तरदायी है जितना और कोई नागरिक।"*

निर्बन्ध, विधि या कानून की दृष्टि में सबकी यह समानता इतनी पूर्ण है कि केवल राजा ही इसकी परिधि से बाहर समझा जाता है और उसका कोई कार्य अवैध नहीं समझा जाता। पर राजा के विषय में भी एक बचत है, वह यह है कि उसका कोई भी आदेश प्रजापर तब तक लागू नहीं हो सकता जब तक कि उस आदेश-पत्र पर किसी मंत्री के हस्ताक्षर न हों। मंत्री के हस्ताक्षर होने पर राजा के कृत्य का उत्तरदायित्व मंत्री पर आ पड़ता है और मंत्री देश के सार्वजनिक कानून की परिधि के भीतर है उससे परे नहीं है। ऐसे कई उदाहरण देखने को मिल सकते हैं जहां शासनाधिकारियों को अपनी राजकीय अवस्था में किये हुये अवैध कृत्यों के लिये सार्वजनिक न्यायालयों में साधारण ढंग पर ही विचार करके दण्ड दिया गया है।

तीसरा—निर्बन्ध-शासन (Rule of Law) यह निर्देश करता रहता है कि "अंगरेजों के शासन-विधान सम्बन्धी सिद्धान्त न्यायालयों द्वारा समय समय पर स्थिर किये गये हैं, जब जब विशिष्ट अभियोग उनके सम्मुख उपस्थित किये गये और उन्होंने साधारण व्यक्तियों के अधिकारों को निश्चित किया है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्बन्ध-शासन (Rule of Law) किसी भी शासन कर्मचारी या साधारण नागरिक को विशिष्ट स्थान या अधिकार प्रदान नहीं करता। "जो व्यक्ति सरकार के अङ्ग हैं वे मनचाहा नहीं कर सकते, उन्हें पार्लियामेंट के बनाये हुये नीति-निर्बन्धों के अनुसार ही अपनी शक्ति को उपयोग करने की स्वतंत्रता है।"[1] यदि कोई राजकर्मचारी अपने अधिकार की सीमा का उल्लंघन करता है, उस पर साधारण न्यायालय में अभियोग लगाया जा सकता है जहाँ सार्वजनिक कानून के अन्तर्गत उस पर

---

* लॉ आफ दी कन्स्टीट्यूशन, पृ० १८३–८४

१ हीगन और पौवेल्ल: गवर्नमेन्ट आफ ग्रेट ब्रिटेन, पृ० ६

लगाये हुये अभियोग पर विचार किया जायेगा और यदि वह अपराधी सिद्ध हुआ, उसी न्याय-पद्धति से जिससे साधारण नागरिक होते हैं, तो वह दण्डनीय होगा। यूरोप में ऐसा नहीं होता। वहाँ राजकर्मचारी यदि कोई अपराध करते हैं तो उन पर लगाये गये अभियोग की सुनवाई विशेष प्रशासन न्यायालयों में होती है, साधारण सार्वजनिक न्यायालयों में नहीं होती।

इंगलैंड में इस प्रकार कार्यकारिणी सत्ता पर निर्बन्ध-शासन (Rule of Law) का नियंत्रण रहता है और उससे उनके अधिकार-उपभोग की मर्यादा बंधी रहती है, परन्तु हाल ही में इस निर्बन्ध-शासन (Rule of Law) के प्रति आदर की कमी होने लगी है। आचार्य डायसी ने स्वयं ही स्वीकार किया है कि अब "राजनैतिक व सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अवैध साधनों का उपयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।" प्रथम तो हमें यह न भूलना चाहिये कि जब किसी राजकर्मचारी पर न्यायालय में मुकदमा चलाया जाता है और अपराधी सिद्ध होने पर यदि उसे किसी गैर-सरकारी नागरिक को दण्ड-स्वरूप क्षतिपूरक धन देना पड़ जाता है तो वह धन राजकोष से दे दिया जाता है, राजकर्मचारी स्वयं अपने कोष से नहीं देता क्योंकि यह समझा जाता है कि वह राज्य का कार्यवाहक है और उसके कृत्यों के लिये राज्य को ही उत्तरदायी होना चाहिये। इससे राजकर्मचारी सतर्क नहीं रहता और अपने अधिकार का उपयोग कानून के अनुसार करने पर कड़ी दृष्टि नहीं रखता, क्योंकि अपराधी ठहराये जाने पर उसको कोई हानि होने का भय नहीं रहता। द्वितीय, हाल ही में पार्लियामेंट ने राजकर्मचारियों को बहुत से न्यायकारी अधिकार भी सौंप दिये हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९०२ ई० का एज्यूकेशन एक्ट ऐसे अधिकार एज्यूकेशनल कमिश्नर्स को व फाइनेन्स एक्ट (१९१०) और नेशनल इन्श्योरैन्स एक्ट (१९११ व १९१२) दूसरे अफसरों को सौंपते हैं। १९११ के पार्लियामेंट के एक्ट से स्पीकर (Speaker) को बड़े विस्तृत अधिकार सौंप दिये गये हैं। इस एक्ट के अन्तर्गत स्पीकर का प्रमाण-पत्र (Certificate) अन्तिम निर्णयकारी समझ लिया जाता है और उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। इसके साथ साथ यदि यह स्मरण रक्खा जाय कि न्याय करते समय न्यायाधीश बराबर यह ध्यान रखता है कि चाहे दस अपराधी छूट जायं पर एक निरपराधी दोषी ठहर कर दण्डित न हो जाय, तो हमें यह ज्ञात हो जाएगा कि राजकर्मचारियों को इतने विस्तृत स्वविवेकी

(Discretionary) अधिकार सुपुर्द करने से न्यायाधीश की शक्ति कितनी कम हो जाती है और इस प्रकार निर्बन्ध-शासन (Rule of Law) का महत्व बहुत कुछ घट जाता है। इसके अतिरिक्त राजकर्मचारी कानून के अन्तर्गत नियम या उपनियम बनाने का अधिकार भी अधिकाधिक लेते जा रहे हैं। इस प्रकार इंगलैंड में ऐसी प्रणाली का आविर्भाव हो रहा है जो किसी क्षण भी व्यक्ति के लिये, जनता के लिये व राजकर्मचारियों के लिये अन्यायकारी सिद्ध हो सकती है। सिद्धान्तों में एकरुपता नहीं रह गई है क्योंकि निर्बन्ध-शासन का स्थान इधर उधर के अनियमित सिद्धान्तों ने ले लिया है"।*

ऊपर हमने अंगरेजी शासन-विधान के प्रमुख लक्षणों का वर्णन कर दिया। यह शासन-विधान प्रतिक्षण राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में परिवर्तन के अनुसार नया रुप धारण करता रहता है। ऐसे विधान के अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को एक विशाल साहित्य का छान बीन करने के पश्चात् इसका ठीक ठीक परिचय मिल सकता है।

पाठ्य पुस्तकें

Anson, W.R.—Law and Customs of the Constitution.

Bagehot, W.—English Constitution.

Boutmy,—English Constitution.

Boutmy,—Studies in Constitutional Law.

Dicey, A.V.—Law of the Constitution, (1939 Edition.)

Finer, H.—Theory & Practice of Modern Government, chs. XII–XV.

Greaves, H.R.G.—The British Constitution, pp. 11–24

Jennings, W.I.—The Law and the Constitution (1933)

Keith, A.B.—An Introducion to the British Constitutional Law, (1931).

---

* फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट, पृ० १४४७

Keith, A.B.—Constitution, Administration and Laws of the Empire (1924).

Laski, H.J.—Parliamentary Government in England (1938) chs. I & II.

Marriot, J.A.R.—English Political Institutions ch, II.

Ogg, P.A.— English Government and Politics (1936) pp 57-81.

Taswell, Langmead—English Constitutional History.

छटा अध्याय

पार्लियामेंट और विधिनिर्माण

"इंगलैंड में विधान को बदलने का सर्वमान्य अधिकार पार्लियामेन्ट को है इसलिये सतत परिवर्तित होते रहने से वास्तव में उसका अस्तित्व ही नहीं है। पार्लियामेंट धारा सभा भी है और विधान सभा भी।" (डि टोकविली)

"धार्मिक, सामाजिक, सामुद्रिक, सेना-सम्बन्धी, अपराध-सम्बन्धी जितने प्रकार के निर्बन्ध (कानून) हो सकते हैं, इनके बनाने, उनमें वृद्धि करने, कम करने, संशोधन करने, रद्द करने, पुर्नजीवित करने व व्याख्या करने का पार्लियामेंट को सर्वोच्च अनियंत्रित अधिकार है। यहीं उस निरंकुश अनियंत्रित शक्ति को, जो प्रत्येक राज्य में किसी न किसी को सुपुर्द करनी पड़ती है, इस देश के शासन-विधान द्वारा प्रतिष्ठित किया गया है।"

(ब्लैकस्टोन की टीका से)

इंगलैंड में विधि-निर्माण करने वाली संस्था पार्लियामेंट ही है। सारे ब्रिटिश साम्राज्य के लिये और सिद्धान्ततः स्वशासित राष्ट्रों (Dominions) के लिये भी, यह सर्वोच्च विधि-निर्माण अधिकार की स्वामिनी है। वास्तव में पार्लियामेंट के अन्तर्गत राजा, हाउस आफ कामन्स व हाउस आफ लार्ड्स तीनों आते हैं और "पार्लियामेन्ट" शब्द से इन तीनों का बोध होना चाहिये। यह पार्लियामेन्ट के किसी अधिनियम (Statute) के शब्दों से स्पष्ट हो जायगा जहां विधि-निर्माण करने वाली शक्ति का निर्देश किया जाता है। प्रत्येक अधिनियम (Act or statute) में ये शब्द पाये जाते हैं—"Be it therefore enacted by the King's Most Excellent Majesty, by and with the advice and consent of the Lords Spiritual and Temporal, and Commons, in this present Parliament assembled, and by the authority of the same....." अर्थात् सम्राट् याजकीय व अयाजकीय लार्डों, और

कामन्स के लोगों की सम्मति से जो इस पार्लियामेंन्ट एकत्रित हुये हैं और उनके साक्ष्य से यह अधिनियम बनाते हैं कि....." इत्यादि इत्यादि।

यद्यपि राजा के विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकार सिद्धान्ततः ज्यों के त्यों बने हुये हैं पर व्यवहार में वास्तविक निर्बन्धकारी सत्ता का उपभोग हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्ड्स ही करते हैं। सन् १९११ के पार्लियामेंट के एक्ट से तो हाउस आफ लार्ड्स का भी प्रभाव इस विषय में बहुत कम हो गया है। इस अध्याय में हम पार्लियामेंट के दोनों आगारों की बनावट और उनके अधिकारों का अध्ययन करेंगे और साथ साथ यह भी दिखलायेंगे कि उनका पारस्परिक क्या सम्बन्ध है और निर्बन्धों के बनने की पद्धति क्या है।

हाउस आफ कामन्स

आगार की सदस्य-संख्या—हाउस आफ कामन्स प्रथम या निचला आगार है हालांकि निर्माण होने में इसका दूसरा नम्बर है क्योंकि हाउस आफ लार्ड्स के स्थापित होने से बहुत समय पश्चात् इसका जन्म हुआ था। हाउस आफ कामन्स के संक्षिप्त इतिहास का हम पहिले ही वर्णन कर चुके हैं। सन् १२९५ ई० की मोडल पार्लियामेंट (Model Parliament) में जब नगरों व जिलों का प्रतिनिधित्व प्रारम्भ हुआ तभी से समय समय पर व्यवस्थापक मण्डल की बनावट बदलती रही है। एडवर्ड के राज्यकाल में प्रत्येक शायर (Shire) से दो नाइट (Knight) अर्थात् कुल ७४ नाइट और २०० नागरिक पार्लियामेंट के सदस्य होते थे। इसके बाद इस संख्या में घटती बढ़ती होती रही। सन १३७८ ई० के लगभग हाउस आफ कामन्स एक पृथक संस्था के रूप में एकत्रित होकर बैठने लगा। जब इंगलैण्ड और स्काटलैंड का संयोजन हुआ तो हाउस आफ कामन्स के तत्कालीन ५१३ सदस्यों में स्काटलैंड के ४५ प्रतिनिधि-सदस्य और जुड़ गये। सन् १८०० ई० में आइरलैंड भी मिला लिया गया और उसके भी १०० प्रतिनिधि जुड़ गये। सन् १९२८ ई० तक कामन्स के सदस्यों की संख्या ६७० थी पर उस वर्ष जो रिप्रेजेन्टेशन आफ पीपल एक्ट (Representation of People Act) अर्थात लोक प्रतिनिधित्व सम्बन्धी अधिनियम पास हुआ उससे यह संख्या ६४० स्थिर कर दी गयी जो अब भी है।

कामन्स में प्रतिनिधित्व—यह पहिले ही कहा जा चुका है* कि

* अध्याय ४ देखिये।

सन् १८३२ से पहिले हाउस आफ कामन्स साधारण जनता का प्रतिनिधित्व न करता था। इसमें केवल कुलीन-वर्ग के लोग या उनके मनोनीत किये हुये व्यक्ति ही भरे हुये थे। सन् १८३२, १८६७ और १८८४ के सुधारों ने मताधिकार को विस्तृत किया और सन् १९१८ के एक्ट ने लगभग वयस्क-मताधिकार ही दे डाला था (सब पुरुष जो छः महीने निवास कर चुके हों या व्यापार-भवनों में रहते हों या विश्वविद्यालय की उपाधि पाये हुये हों, वे मत दे सकते थे)। स्त्रियों को भी, यदि वे ३० वर्ष की आयु वाली हों, इस एक्ट से मताधिकार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त बौरो और काउन्टी अर्थात नगर व ग्राम निर्वाचन क्षेत्रों में एक समान मताधिकार कर दिया गया। निर्वाचन-सम्बन्धी दूसरी कुछ महत्वपूर्ण बातें भी इस एक्ट द्वारा हुईं। उदाहरण के लिये यह स्थिर कर दिया गया कि यदि कोई उम्मीदवार डाले हुये मतों की कुल संख्या के आठवें भाग से भी कम मत प्राप्त करेगा तो उसकी १५० पौंड की ज़मानत ज़ब्त करली जायगी। इंगलैंड में प्रत्येक ७०००० मतधारकों के लिये और आइरलैंड में ४३००० मतधारकों के लिये एक प्रतिनिधि चुना जा सकता था। इसके १० वर्ष बाद दूसरा सन् १९२८ का लोक प्रतिनिधित्व एक्ट पास हुआ। इस एक्ट के अनुसार सर्व-वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) दे डाला गया और साम्पत्तिक योग्यता की शर्त हटा दी गयी। अब प्रत्येक वयस्क स्त्री पुरुष को जो पहिली जून को निर्वाचन-क्षेत्र में रहता हो, जो अपना नाम मत-धारकों की सूची में लिखे जाने से पहिले कम से कम ३० दिन तक वहां निवास करता रहा हो और निर्वाचन-क्षेत्र में ही या उससे सम्बन्धित पार्लियामेंटरी काउन्टी या बौरो में तीन मास का समय व्यतीत कर चुका हो, वह मतदान का अधिकारी है। व्यापार-भवनों में रहने वालों के लिये भवन की किराये से वार्षिक आय कम से कम १० पौंड होनी चाहिये। विश्वविद्यालय के निर्वाचन-क्षेत्र में सब उपाधि-प्राप्त स्नातक मत दे सकते हैं। एक ही व्यक्ति एक सामान्य निर्वाचन में दो क्षेत्रों से मत नहीं दे सकता अर्थात वह एक निर्वाचन-क्षेत्र में निवासाधिकार के बल पर और उसी समय दूसरे क्षेत्र में व्यापार या विश्व-विद्यालय की मत-योग्यता के आधार पर मत देने का अधिकारी नहीं हो सकता।

निर्वाचन क्षेत्र व निर्वाचक-दल—सन् १९४४ के कानून के अनुसार कामन्स के ६४० सदस्य इस प्रकार बंटे हुये हैं: इंगलैंड ४९२, वेल्स ३६, स्काटलैंड ७४, उत्तरी आयरलैंड १३। निर्वाचन-क्षेत्रों की कुल संख्या ६२० है

जिनमें से ६०१ एक प्रतिनिधि वाले क्षेत्र है, १८ दो प्रतिनिधि चुनते है और स्काटलैंड के विश्वविद्यालय मिलकर तीन प्रतिनिधि चुनते हैं। साधारण निर्वाचन- क्षेत्र इस प्रकार बनाये गये हैं कि उनकी जनसंख्या लगभग बराबर होती है। प्रत्येक में लगभग ५०००० मतधारक होते हैं। सन् १९३५ में मतधारकों की कुल संख्या इस प्रकार बंटी हुई थीः इंगलैंड और वेल्स २७,३९४,९२० (जिनमें से १४,४८२,५८१ स्त्रियां थीं), स्काटलैंड, ३,१६३,८५८ (जिनमें से १,६६६,२४२ स्त्रियां थी)। इन संख्याओं से यह स्पष्ट हो जायगा कि स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या से कहीं अधिक है। इसका सन् १९२८ के बाद होने वाले निर्वाचनों के परिणाम पर बड़ा प्रभाव पड़ा क्योंकि स्त्रियों की प्रवृत्ति राजनीति को संयत बनाने की होती है।

पार्लियामेंट की अवधि—सन् १६८८ की क्रांति के पूर्व राजा पर पार्लियामेंट के नियम पूर्वक बुलाने का मुश्किल से कोई बन्धन कहा जासकता था; पर १६८९ के बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) ने यह निश्चित कर दिया कि पार्लियामेंट प्रति वर्ष बुलाई जाय। स्टूआर्ट राजा पार्लियामेंट के बुलाने में बिलकुल नियम परायण न थे और कभी कभी उन्होंने बिना किसी पार्लियामेन्ट के ही राज्य किया। पर सन् १६९४ के एक्ट ने प्रत्येक पार्लियामेन्ट की अवधि तीन वर्ष निश्चित कर दी। सन् १७१५ में जैकोबाइटों (Jacobites) की धूर्तता के डर से और इस भय से कि निर्वाचन से हैनोवर राजवंश की स्थिति डावांडोल न हो जाय, व्हिग (Whig) मंत्री-मण्डल ने हाउस आफ लार्ड्स में एक विधेयक रखा जिसके दोनों आगारों द्वारा स्वीकृत हो जाने से पार्लियामेंट की अवधि बढ़ कर सात वर्ष हो गई। यह वृद्धि इस लिये भी आवश्यक समझी गई क्योंकि जैसा सर जार्ज स्टलि ने १७१५ की ससवार्षिक योजना का समर्थन करते हुये कहा था, "त्रिवार्षिक विधेयक के स्वीकृत होने के पश्चात् देश में बराबर झगड़ा व मतभेद चलता चला आ रहा है। त्रिवार्षिक पार्लियामेन्ट का सत्र (Session) पिछले निर्वाचनों से उत्पन्न वैमनस्य का प्रतिशोध करने के लिये अनुचित निर्णय करने में लग जाता है। दूसरा सत्र (Session) कुछ काम करता है, तीसरे सत्र में जो कुछ थोड़ा बहुत दूसरे सत्र में काम किया जाता है, उसको पूरा करने में भी ढीलढाल पड़ जाती है और होने वाले निर्वाचन के डर से सदस्य आँख बन्द करके अपने अपने सिद्धान्तों के दास बन जाते हैं और उन्हीं को कसौटी पर प्रत्येक प्रश्न की अच्छाई बुराई की परख प्रारम्भ कर देते हैं" इसके बाद एक बार फिर त्रिवार्षिक निर्वाचन की पुनःस्थापना का प्रयत्न किया

गया पर १६११ के पार्लियामेन्ट एक्ट (Parliament Act) ने पार्लियामेन्ट की अवधि को सात वर्ष से घटा कर पाँच वर्ष कर दिया। उसी पार्लियामेंट ने सन् १६१६ में एक प्रस्ताव पास कर लिया जिससे इसने प्रथम महायुद्ध के संकट के कारण पाँच साल से आगे अपनी अवधि बढ़ा ली। यह इसलिये उचित समझा गया क्योंकि उस समय युद्ध जीतने के उपायों पर एकचित्त होकर ध्यान देने की आवश्यकता थी और उस एकचित्तता में निर्वाचन करके गड़बड़ हो सकती थी। इस प्रकार इस समय पार्लियामेन्ट (अर्थात् हाउस आफ कामन्स) की अवधि पाँच वर्ष है। पर इससे पहिले ही कभी कभी इसका विलयन हो जाता है यदि राजा किसी प्रधान मंत्री का मतधारकों के सम्मुख अपनी योजनाओं को रखने का प्रस्ताव स्वीकृत करले। नीचे लिखी सारिणी से यह प्रकट हो जायगा कि किस प्रकार एक के बाद दूसरी पार्लियामेंट निश्चित समय से पूर्व ही समाप्त हो गई :—

पहिली बैठक का दिनाङ्क		विलयन का दिनाङ्क	अवधि
			वर्ष माह दिन
१३ फरवरी, १६०६	...	१० जनवरी, १६१०	३—११—२७
१५ फरवरी, १६१०	...	२८ नवम्बर, १६१०	०—६—१३
३१ जनवरी, १६११	...	२५ नवम्बर, १६१८	७—६—२५
४ फरवरी, १६१६	...	२६ अक्टूबर, १६२२	३—८—२२
२० नवम्बर, १६२२	...	१६ नवम्बर, १६२३	०—११—२७
८ जनवरी, १६२४	...	८ अक्टूबर, १६२४	०—६—१
२५ दिसम्बर, १६२४	...	१० मई, १६२६	४—५—७
२५ जून, १६२६	...	२४ अगस्त, १६३१	२—१—२६
३ नवम्बर, १६३१	...	२५ अक्टूबर, १६३५	३१—१—२२
२६ नवम्बर, १६३५	...	१५ जून, १६४५	६—६—२०

इससे यह मालूम होगा कि नौ पार्लियामेन्टें ३८ वर्ष २ मास और १० दिन चलीं जिसका औसत प्रत्येक पर्लियामेंट के लिये ३ वर्ष ६ मास और २५ दिन आता है। प्रथम युद्धोत्तर काल में यह औसत तीन वर्ष से भी कम आता है। पर सर रिचार्ड ने १६६४ में त्रिवार्षिक पार्लियामेंट की जो आलोचना की थी वह अब लागू नहीं होती क्योंकि अब परिस्थिति बदल गई है और अब

निर्वाचन ऐसी निश्चित दल-प्रणाली पर होते हैं कि पार्लियामेंट के बहुमत वाले दल को अपना कार्य-क्रम नये सिरे से प्रारम्भ करने की आवश्यकता नहीं है। उसका कार्यक्रम पूर्वनिश्चित रहता है और सभी उससे परिचित रहते हैं। इसके अतिरिक्त मंत्रिपरिषद का पार्लियामेंट पर इतना प्रभुत्व रहता है कि पार्लियामेंट परिषद के विचारों का केवल समर्थन भर कर देती है। अब विधि-निर्माण पदासीन दल की नीति के अनुसार निर्धारित हुआ करता है।

हाउस आफ कामन्स के सदस्यों का निर्वाचन—आजकल की निर्वाचन पद्धति को हम इन तीन शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं (१) उम्मीदवारों का मनोनीत होना, (२) निर्वाचन-प्रचार और (३) मतदान व उसके परिणाम की घोषणा। जैसे ही पार्लियामेंट का विलयन होता है—चाहे उसकी अवधि पूरी होने के कारण या प्रधानमंत्री के प्रस्ताव की राजा द्वारा स्वीकृति के फलस्वरूप, प्रत्येक राजनीतिक दल निर्वाचन लड़ने की तैयारी आरम्भ करता है। यहाँ यह बतलाना ठीक होगा कि प्रत्येक दल का एक राष्ट्रीय संगठन होता है जिसकी शाखायें प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में होती हैं। प्रत्येक दल की सर्वोच्च राष्ट्रीय संस्था दल का कार्यक्रम और शासन नीति की रूप-रेखा स्थिर करती है और उसे अपनी शाखाओं को समझा देती है। उसके पश्चात् उम्मीदवारों के चुनने का महत्वपूर्ण कार्य आरम्भ होता है। प्रत्येक राजनीतिक दल की स्थानीय शाखा अपने क्षेत्र में सफलता की सबसे अधिक सम्भावना वाले व्यक्ति का नाम प्रस्ताव करके भेजती है। ऐसे उम्मीदवार के नाम का प्रस्ताव करने में स्थानीय संस्था उस व्यक्ति की लोकप्रियता, निर्वाचन-व्यय को सहने की शक्ति, दल के प्रति उसकी सेवायें और उसके व्यवस्थापक होने की योग्यता, इन पर प्रमुखतः विचार करती है। इन सब स्थानीय संस्थाओं द्वारा भेजे हुये नामों को राष्ट्रीय संस्था विधिपूर्वक स्वीकार करती है। यह आवश्यक नहीं है कि उम्मेदवार जिस निर्वाचन क्षेत्र में खड़ा हो वहाँ का निवासी भी हो पर उसे किसी न किसी क्षेत्र में मतधारक होने का अधिकार मिला हुआ होना चाहिये। क्षेत्र के मतधारकों को निर्वाचन-सम्बन्धी राजकर्मचारी से प्राप्त मनोनीत करने वाले पत्र पर उम्मेदवार (अभ्यर्थी) का नाम लिखकर हस्ताक्षर करना पड़ता है। एक ही निर्वाचन-क्षेत्र से कितने ही उम्मेदवार खड़े हो सकते हैं पर प्रत्येक उम्मेदवार को १५० पौंड बन्धक रखने पड़ते हैं जो उस निर्वाचन क्षेत्र में पड़े हुये मतों के आठवें भाग प्राप्त न होने पर ज़ब्त कर लिये जाते हैं। दल के बड़े बड़े नेता ऐसे क्षेत्रों में खड़े किये जाते हैं जहाँ उस दल का प्रभाव सबसे अधिक होता है और उसके उम्मीदवारों की जीत निश्चित कही

जा सकती है, क्योंकि इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि दल के उन नेताओं की हार न हो जिनका पार्लियामेंट में होना अत्यावश्यक हो। इन क्षेत्रों को उस दल के सुरक्षित स्थान (Safe seats) कह कर पुकारा जाता है। अधिकतर क्षेत्रों में तीनों बड़े बड़े दल अपना एक एक उम्मीदवार खड़ा करते हैं। इनके अतिरिक्त छोटे छोटे दल कुछ क्षेत्रों में अपने उम्मीदवार खड़े करते हैं, इनके अतिरिक्त स्वतंत्र उम्मीदवार भी जो किसी दल के सदस्य नहीं होते उन निर्वाचन-क्षेत्रों में खड़े होते हैं जिनके निवासियों पर उनका अपनी पहिली सेवाओं के कारण इतना प्रभाव है कि उन्हें उनका बहुमत पाने की आशा रहती है।

निर्वाचन—उम्मीदवारों के मनोनीत होने से पूर्व ही राजनीतिक दल अपने अपने प्रचार में लग जाते हैं। जब उम्मीदवार मनोनीत हो चुकते हैं तब राजनीतिक दल अपने प्रचार में तीव्रता लाते हैं। यह प्रचार अनेकों तरह से किया जाता है और जनता पर अपना प्रभाव डालने व उनकी रुचि अपनी ओर करने के लिये जितने भी साधन हो सकते हैं वे अपनाये जाते हैं। सभायें की जाती हैं, पर्चे बाँटे जाते हैं, समाचार पत्रों में, रेडियो पर, यहाँ तक कि थियेटर और सिनेमा में भी यह प्रचार किया जाता है। इस प्रचार में जनता के सामने प्रत्येक दल अपना कार्यक्रम रखता है और यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि विपक्षी दलों के कार्यक्रम व नीति से उसका कार्यक्रम व नीति क्यों उत्तम है और किस प्रकार राज्यशक्ति उसके हाथ में आने से वह अपने कार्यक्रम के द्वारा जनता को सुखी और देश को समृद्धिशाली बना सकता है। सारे देश में निर्वाचन के कारण एक हलचल उत्पन्न हो जाती है। इसी समय विचारों के संघर्ष द्वारा भविष्य में अपनाई जाने वाली शासन-नीति को जनता परख कर नया रूप देती है। जिस दिन निर्वाचन होता है उस दिन तो चारों ओर कोलाहल व उत्तेजना रहती है। प्रत्येक दल अन्तिम क्षणों में अपनी सारी शक्ति व चतुरता विजय की आशा में लगा देता है और जितने उपाय मतधारकों को अपनी ओर खींचने में सफल हो सकते हैं उनका सहारा लिया जाता है, पर मतधारक निश्चित स्थान पर जाकर अपना मत गूढ़ शलाका (secret ballot) पद्धति पर देते हैं।

निर्वाचन के फल की घोषणा—जब मतदान कार्य समाप्त हो जाता है तब मतों की गिनती करने का काम प्रारम्भ होता है। जो उम्मीदवार सबसे

अधिक मत अपने पक्ष में प्राप्त करता है वही निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। ऐसा निश्चय करने में इस बात को कोई महत्व नहीं दिया जाता कि इन मतों की संख्या कुल संख्याका कौनसा भाग है। इस प्रणाली को अपेक्षाकृत मताधिक्य (Relative majority system) प्रणाली कह कर पुकारा जाता है क्योंकि इस प्रणाली में केवल यही बात देखी जाती है कि जिस उम्मीदवार को सब का अपेक्षा अधिक मत मिले वही निर्वाचित हो। इस प्रणाली में यह दोष है कि इसके आधार पर सगठित किया हुआ विधान मण्डल (Legislature) लोकमत को ठीक प्रकार से प्रदर्शित नहीं करता। कारण यह है कि जिस निर्वाचन क्षेत्र में दो से अधिक उम्मीदवार एक ही स्थान के लिये खड़े हुए हों वहाँ यह सम्भव है कि विजयी उम्मीदवार के पक्ष में कुल मतों का आधिक्य न हो अर्थात् जितने मत पड़ें उनके आधे से अधिक मत उसे न मिलें और फिर भी वह निर्वाचित हो जाय क्योंकि अपेक्षाकृत, उसके पक्ष में पड़े हुए मतों की संख्या दूसरों के पक्ष में पड़े हुए मतों की संख्या से अधिक है। उदाहरण के लिए हम यह मान लेते हैं कि किसी निर्वाचन क्षेत्र में एक स्थान के लिये चार उम्मीदवार खड़े होते हैं क, ख, ग और घ। क को १५०००, ख को १४६००, ग को १४५०० और घ को ५१०० मत मिलते हैं। सौ मतों के अपेक्षाकृत आधिक्य के कारण क निर्वाचित हो जायगा और वह सब मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करेगा। यहाँ तक कि वह उन ३४५०० मतदाताओं का भी प्रतिनिधि समझा जायगा जिन्होंने उसके विरुद्ध मत दिया। इससे स्पष्ट हो जायगा कि निर्वाचित सदस्य जनता के सच्चे प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते क्योंकि वे बहुमत का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

यह बात सन् १६२२ के नवम्बर में हुए सामान्य निर्वाचन से स्पष्ट हो जायगी। यहाँ केवल चार निर्वाचन क्षेत्रों के मतों के आंकड़े दिये जायँगे :—

ड्यूजबैरी

उम्मीदवार का नाम	दल का नाम	मतों की संख्या	
रीले, बी	लेबर	८,८२१	निर्वाचित
हारवे	लिबरल	८,०६५	
पीक	यूनियनिस्ट	६,७४४	

हडर्सफील्ड

मार्शल	लिबरल	१५,८७६	निर्वाचित
हडसन	लेबर	१५,५७३	
साइक्स	नेशनल लिबरल	१५,२१२	

कैन्ट मेडस्टोन

बैलेअर्स	यूनियनिस्ट	८,६२८	निर्वाचित
ब्लैक	लिबरल	८,८६५	
डाल्टन	लेबर	८,००४	

पोर्ट्समाउथ सेन्ट्रल

प्रीवेट	यूनियनिस्ट	७,६६६	निर्वाचन
फिशर	नेशनल लिबरल	७,६५६	
ब्रैम्सडन	लिबरल	७,१२६	
गौर्ड	लेबर	७,१२६	

उपर्युक्त प्रत्येक क्षेत्र में निर्वाचित व्यक्ति को कुल मतों का बहुत थोड़ा अंश ही प्राप्त हुआ और फिर भी वह जनता का प्रतिनिधि घोषित कर दिया गया।

यह देखा गया है कि अधिकतर क्षेत्रों में दो या तीन उम्मीदवार खड़े होते हैं। जब तीन उम्मीदवार खड़े होते हैं तो इस बात की सम्भावना बहुत रहती है कि जनता को अपनी पसन्द का उम्मीदवार चुनने के लिये मिल जाय हालाँकि तब भी यह हो सकता है कि जो उम्मीदवार निर्वाचकों के समान ही विचार रखता हो वह दूसरी बातों में वाँछनीय न हो और पार्लियामेंट का सदस्य बनाकर भेजे जाने के लिये अयोग्य हो या किसी एक विषय में उसका दृष्टिकोण ऐसा हो जो निर्वाचक के दृष्टिकोण से प्रतिकूल हो। पर जहाँ दो ही व्यक्तियों में से एक को चुनना है वहाँ ऐसे बहुत से मतदाता होंगे जो उन दोनों में किसी को पसन्द नहीं करते। उदाहरण के लिये उन में से एक समाजवादी और दूसरा संरक्षणवादी (Protectionist) हो, और वह सम्भव है कि निर्वाचक यह समझता हो कि समाजवाद और संरक्षणवाद दोनों ही देश का अहित करेंगे। ऐसी दशा में यदि वह इनमें से एक को अपना मत दे तो वह ठीक सिद्ध न होगा, क्योंकि वह उस बात का समर्थन करेगा जिसमें उसे अविश्वास ही नहीं, वरन् जिसका वह विरोधी भी है। यह प्रश्न उठता है कि

ऐसी स्थिति में वह क्या करे। उसके सम्मुख दो उपाय हैं, या तो वह किसी को मत न दे और अपने मताधिकार को व्यर्थ होने दे या उन दोनों में से अपेक्षाकृत अधिक वाँछनीय को अपना मत दे। प्रायः दूसरा उपाय ही काम में लाया जाता है। पर उसका परिणाम यही होता है कि किसी भी निर्वाचित व्यक्ति के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि उसने जो बहुमत प्राप्त किया है वह वास्तव में बहुसंख्यक निर्वाचकों की सच्ची इच्छा का प्रतीक है। यह बात सामूहिक रूप से सारे राष्ट्र के लिये लागू हो सकती है और यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि लोक-सभा जनता की वास्तविक इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है।

अंगरेजी निर्वाचन-प्रणाली में एक दूसरी तरह से भी लोकमत की विकृति हो जाती है। जब तीन राजनीतिक दल निर्वाचन में खड़े हों तो यह सम्भव हो सकता है कि कोई दल गिनती में सब से अधिक मत अपने पक्ष में प्राप्त करे पर फिर भी हाउस आफ कामन्स में एक भी स्थान उसको न मिल पावे। यह उस अवस्था में सम्भव है जब कि उस दल के उम्मीदवार अधिकतर क्षेत्रों में मतों की थोड़ी थोड़ी कमी के कारण हार जाँय और विपक्षी दल किन्हीं क्षेत्रों में बहुत कमी के कारण हार जाय और दूसरों में थोड़ी अधिकता के कारण जीत जाय। ऐसा होने पर यह हो सकता है कि जो राजनीतिक दल सारे देश को दृष्टि में रखते हुये तो अल्प-संख्यक हो फिर भी हाउस आफ कामन्स में उसका बहुमत हो जाय। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ऐसा दो बार हो चुका है। इसलिये निर्वाचन एक जूआ है जिसमें बहुत कुछ दैव पर छोड़ना पड़ता है। इस अनिश्चितता से राष्ट्रीय-जीवन पर व शासन-नीति पर बड़ा अहितकर प्रभाव पड़ता है। इस विकृति को हम उदाहरण के द्वारा यों समझा सकते हैं :—सन १९१८ का निर्वाचन लीजिये। उस समय मिली-जुली सरकार ने युद्ध-विजय के भारी प्रयास के पश्चात जनता के समर्थन की प्रार्थना की। इस निर्वाचन में अपने विपक्षी दल को करारी हार दी क्योंकि हाउस आफ कामन्स में विपक्षी दल के १३० स्थानों के मुकाबिले में इसको ४७२ स्थान मिले, फिर भी हिसाब लगाने से यह पता लगा कि विजयी पक्ष को डाले हुये मतों के केवल ५२ प्रतिशत मत प्राप्त हुये और विपक्षी दल को ४८ प्रतिशत। यदि प्राप्त हुये मतों के अनुपात से इन दोनों दलों को हाउस आफ कामन्स में स्थान दिये जाते तो सरकार का बहुमत ३४२ स्थानों से न हो कर केवल १० मतों से होता।

सन् १६२२ में मिली जुली सरकार के भंग होने पर एक के बाद एक इस प्रकार तीन निर्वाचन थोड़े थोड़े समय के पश्चात् हुये, पहिला १६२२ में, दूसरा १६२३ में और तीसरा १६२३ में। सन १६२२ के निर्वाचन में कन्ज़रवेटिव दल को ३४७ स्थान मिले जो विरोधी दलों के कुल प्राप्त स्थानों से संख्या में ७६ अधिक थे। फिर भी उन्हें कुल डाले हुये मतों के ३७ प्रतिशत मत ही प्राप्त हुये, लिबरल दल को २८·५ प्रतिशत और लेबर दल को २६·५ प्रतिशत मिले। सब से बहुसंख्यक दल होते हुये भी बचे हुये दोनों दलों के संयुक्त स्थानों से अधिक संख्या में स्थान कन्ज़रवेटिव दल को न मिलने चाहियें थे। इस सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट करने के लिये कुछ आंकड़े नीचे दिये जाते हैं:—

विश्वविद्यालयों को छोड़कर क्षेत्रों में जहां निर्वाचन लड़ा गया

दल	मतों की संख्या	जीते हुये स्थान	मतों के अनुपात से स्थान	प्रति स्थान मतों की संख्या
कन्ज़रवेटिव	५,३८१,४३३	२६६	२०८	१८,१८०
लेबर व कौपरेटिव	४,२३७,४६०	१३८	१६४	३०,७०६
लिबरल	२,६२१,१६८	५४	१०१	४८,५४०
नेशनल लिबरल	१,५८५,३३७	५१	६१	३१,०८५
स्वतंत्र व दूसरे	३३७,४४३	८	१३	४२,१८०

इन आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि लिबरल दल को बहुत हानि उठानी पड़ी, उनके बाद स्वतंत्र व दूसरों को और लेबरदल को। कन्ज़रवेटिव दल को इन सब की हानि से बहुत लाभ हुआ। इस प्रकार जो हाउस आफ कामन्स बना उससे यह ठीक ठीक पता न लग सकता था कि भिन्न २ दलों को जनता का विश्वास किस मात्रा में प्राप्त है।

सन् १६२३ का निर्वाचन संरक्षण (Protection) के प्रश्न पर लड़ा गया। इसमें भी कन्ज़रवेटिव दल को पहिले के समान ही ३८ प्रतिशत मत प्राप्त हुये पर निर्वाचन प्रणाली की कुछ ऐसी अनिश्चितता है कि अबकी बार उन्हें ६७ स्थान कम मिल पाये जिससे सब विरोधी दलों के स्थानों के मुकाबिले में उनके १०० स्थान कम रहे। फिर भी उन्होंने जितने स्थान मतों की संख्या के अनुपात से उन्हें मिलने चाहिये थे उनसे २४ स्थान अधिक पाये

और लिबरल दल को २४ स्थान कम मिले। जिस प्रश्न पर यह निर्वाचन लड़ा गया, उसके होते हुये कन्ज़रवेटिव दल को मंत्रिमण्डल से निकलना ही पड़ता इस लिये लेबरदल ने मन्त्रिमण्डल बनाया। इंगलैंड में पार्लियामेंट के आधुनिक इतिहास में यह पहिला उदाहरण था जब अल्पमत वाले दल ने शासन-सत्ता को अपने हाथ में संभाला हो।

सन् १९२४ के निर्वाचन में लिबरल दल की हार आश्चर्यजनक थी, उनको केवल ४२ स्थान ही मिल सके जहाँ पहिले उनको १०८ स्थान प्राप्त थे। यदि मतों के अनुपात से स्थान मिलते तो अब भी उनको ये १०८ स्थान मिल सकते थे क्योंकि उन्हें कुल मतों के १७ प्रतिशत मत प्राप्त हुये थे। इसके विपरीत कन्ज़रवेटिव दल को ४१५ स्थान मिले जब कि उन्हें कुल के ४७ प्रतिशत मत ही प्राप्त हुये थे और मतों के अनुपात से केवल २८९ स्थान ही मिल सकते थे। सन् १९२९ में लेबर दल को २८८ स्थान मिले जब कि मतों के अनुपात से उन्हें २२४ स्थान ही मिल सकते थे क्योंकि उनके मतों की संख्या केवल २६ प्रतिशत ही थी। इन दोनों निर्वाचनों के आंकड़े इस प्रकार हैं:—

१९२४

दल	मतों की संख्या	प्राप्त स्थानों की संख्या
कन्ज़रवेटिव	७,४५१,१३२	४१५
लिबरल	३,००८,४७४	४२
लेबर	५,४८४,७६०	१५१

१९२९

कन्ज़रवेटिव	८,६५९,६३९	२५६
लिबरल	५,३०९,४२६	५९
लेबर	८,३८५,३०१	२८८

सन् १९३५ में १५ नवम्बर को जो हाउस आफ कामन्स चुन कर तैयार हुआ उसमें भी इसी प्रकार की निर्वाचन अद्भुतता थी जो नीचे दिये आँकड़ों से स्पष्ट है :—

दल का नाम	मतों की संख्या	स्थानों की संख्या
कन्ज़रवेटिव	१०,४९६,०००	३७५
नेशनल लिबरल	८६६,०००	३१

दल का नाम	मतों की संख्या	स्थानों की संख्या
नेशनल लेबर	३४०, ०००	७
नेशनल (सरकार)	९७, ०००	५
लेबर	८, ४६५, ०००	१६८
लिबरल	१, ४३३, ०००	१९
दूसरे	३०२, ०००	८

यद्यपि १९३५ में जो सरकार बनी वह अपने आप को राष्ट्रीय सरकार कहती थी, अर्थात् ऐसी सरकार जो राष्ट्र के सब दलों का प्रतिनिधित्व करती हो, पर उसमें कन्ज़रवेटिव दल के इतने मंत्री थे कि वह कन्ज़रवेटिव सरकार ही कही जा सकती थी। इस सब विवरण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि दो-दल-प्रणाली के समाप्त होने पर जब बहुदल प्रणाली (Multiparty system) का जन्म हुआ तो एक-प्रतिनिधि निर्वाचन क्षेत्रों से अपेक्षाकृत मताधिक्य पद्धतिसे चुना हुआ हाउस आफ कामन्स सच्चे रुप से जनता का प्रतिनिधित्व न करने लगा।

बहुसंख्यक मतदाताओं का मताधिकार से वञ्चित होना—युद्धोत्तर निर्वाचन के विश्लेषण से यह भी प्रकट हो जायगा कि ब्रिटिश निर्वाचन प्रणाली में बहुसंख्यक व्यक्ति अपने मताधिकार के लाभ से वञ्चित रह जाते हैं। यदि हम उन व्यक्तियों की संख्या गिनें जो अपने क्षेत्र में केवल एक ही उम्मीदवार के खड़े होने के कारण अपने मताधिकार का उपयोग ही न कर सके, व उनकी जिनका प्रतिनिधि निर्वाचन में हार गया और उसके लिये दिया हुआ मत व्यर्थ हो गया, व उनकी संख्या जिन्होंने अपने मत का उपयोग ही नहीं किया क्योंकि उनको कोई ऐसा उम्मीदवार न मिला जिसकी नीति का वे समर्थन करते और उनकी संख्या गिनें जिन्होंने बेमन से अपना मत ऐसे उम्मीदवार दिया जो उनके विचारों का प्रतिनिधत्व तो न करता था पर दूसरों से अधिक अनुकूल था, तो यह पता लग जायगा कि लगभग ७० प्रतिशत मतधारक ऐसे होंगे जो अपने मत का प्रभाव शासन-सगठन पर न डाल सके होंगे या जिन्होंने ऐसी नीति का समर्थन कर दिया होगा जिसके वे विरोधी हैं।

निर्वाचन की इन्हीं न्याय प्रतिकूलता और असंगतता को दूर करने के लिये इंगलैंड में कई सुधार के सुझाव उपस्थित किये गये। दूसरे देशों में तो इन सुधारों को कार्यान्वित भी किया गया पर इंगलैंड में कन्ज़रवेटिव और लेबर दो बड़े दलों ने इन सुधारों पर अधिक ध्यान नहीं दिया है क्योंकि इनमें

से प्रत्येक यह सोचता कि यदि पुरानी पद्धति ही चलती रहे तो स्यात् उसको लाभ हो। दोनों ही यह आशा लगाये बैठे हैं कि लिबरल दल कुछ दिनों में लोप हो जायगा और उसका स्थान मुझको ही मिलेगा।

निर्वाचन-प्रणाली के दोष-निवारक सुझाव

निर्वाचन-प्रणाली के जिन दोषों की ओर ऊपर ध्यान आकृष्ट किया है उनको कई उपायों से दूर किया जा सकता है। इन उपायों में से एक उपाय तो यह है कि प्रतिनिधित्व प्रणाली (Proportional representation) या द्वितीय-शलाका (Second ballot) प्रणाली का उपयोग किया जाय। द्वितीय-शलाका प्रणाली में यदि किसी क्षेत्र में किसी भी उम्मेदवार को सब विपक्षी दलों के कुल मतों से अधिक मत न मिलें, तो दूसरी बार निर्वाचन हो जिसमें वे ही दो अभ्यर्थी (उम्मीदवार) खड़े हों जिनको पहिले निर्वाचन में अपेक्षाकृत अधिक मत मिले हों। इस दूसरे निर्वाचन में इन दोनों में से जिसको अधिक मत प्राप्त हों वही प्रतिनिधि घोषित कर दिया जाय। अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली के सम्बन्ध में कई सुझाव रखे गये हैं और इनका उपयोग प्रजातंत्री जर्मनी, बेलजियम, हालैंड, डेनमार्क, स्वीडन, नौर्वे, स्विटज़रलैंड व स्वतंत्र आइरे में हुआ जहां इनसे कहीं पर कम व कहीं अधिक सफलता मिली। इस प्रणाली का उपयोग इंगलैंड में पार्लियामेंट के सदस्यों के निर्वाचन में नहीं किया गया है क्योंकि इस प्रणाली की अच्छाई स्वीकार करते हुये भी उनकी यह धारणा है कि मानव क्षेत्र में तर्क या विज्ञान सच्चा पथप्रदर्शक नहीं सिद्ध होता। उनका कहना है कि यदि यह प्रणाली दूसरे देशों में सफल-सिद्ध हुई है तो यह आवश्यक नहीं कि इंगलैंड में भी वह लाभदायक सिद्ध होगी।

एकल संक्राम्य मत प्रणाली (Single transferable vote —इंगलैंड की अनुपाती प्रतिनिधिक प्रणाली का समर्थन करने वाली संस्था आजकल एकल-संक्राम्य-मत-प्रणाली को अधिक महत्व देती है। यह प्रणाली अनुपाती प्रणाली की ही एक पद्धति है। इस पद्धति में वर्तमान दो या अधिक एक-प्रतिनिधिक क्षेत्रों को आपस में मिला कर कुछ बड़े बड़े निर्वाचन क्षेत्र इस प्रकार बना दिये जावेंगे कि प्रत्येक बड़े निर्वाचन क्षेत्र में कम से कम तीन और अधिक से अधिक सात अभ्यर्थी (उम्मेदवार) चुने जा सकें। एक निर्वाचन क्षेत्र से कितने ही प्रतिनिधि चुने जासकें पर प्रत्येक मतधारक को एक ही मत देने का अधिकार होगा। साथ ही साथ उसको

मतदान-पत्र पर इस एक मत को देते समय यह स्पष्ट करने की भी स्वतंत्रता होगी कि वह सर्वप्रथम किस उम्मीदवार को चाहता है, दूसरे नम्बर पर किसको। इसी प्रकार वह सब उम्मीदवारों के नाम के सामने अपनी रुचिसूचक १, २, ३, ४ आदि संख्या लिख देगा। यदि पहिली पसन्द के उम्मीदवार को उस मतदाता के मत की आवश्यकता न हुई और वह उसके मत पाने से पहिले ही निश्चित मतों की संख्या पा चुकने से निर्वाचित होगया या उसके निर्वाचित होने की आशा ही नहीं है तो वह मत दूसरी पसन्द वाले उम्मीदवार को दे दिया जायगा। इसी प्रकार वह मत यदि आवश्यक हो तो तीसरी, चौथी आदि पसन्द वाले उम्मीदवारों को दे दिया जायगा। मतधारक का मत किसी प्रकार भी व्यर्थ नहीं जायेगा, वह किसी न किसी उम्मेदवार को निर्वाचित करने में उपयोगी सिद्ध होगा। इस प्रणाली की विशेषता यही है कि कोई भी मत व्यर्थ नहीं जाता। यदि कोई कठिनाई है तो वह गिनने की पर उससे मतदाता को कोई कष्ट नहीं होता। गणना से पहिले तो यह स्थिर करना पड़ता है कि निर्वाचित होने के लिये प्रत्येक उम्मीदवार को कम से कम कितने मत मिलने चाहियें। इसका निकालना बहुत सरल है जबकि हमें कुल प्रतिनिधियों की संख्या व कुल मतधारकों की संख्या मालूम हो। इस प्रणाली से लोकमत का अधिक सच्चा परिचय मिलता है जो वर्तमान प्रणाली से नहीं मिल सकता। इससे प्रत्येक मतधारक को वास्तव में पसन्द करने का अवसर मिल सकता है।

अवरोधक और एकत्रीभूत मत (Restrictive and cumulative vote)—अनुपाती प्रणाली की दूसरी दो पद्धतियां अवरोधक-मत-पद्धति और एकत्रीभूत-मत-पद्धति हैं। इन दोनों के लिये भी बहु-प्रतिनिधिक निर्वाचन-क्षेत्र होने चाहियें पर पहिली पद्धति में निर्वाचित होने वाले प्रतिनिधियों की संख्या से कम संख्या में मतधारक को मत देने का अधिकार होता है। दूसरी में उसको जितने प्रतिनिधि चुने जाने वाले हैं उतने ही मत देने का अधिकार होता है पर उसे इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह अपने सब मत केवल एक ही उम्मीदवार को दे दे या उनको सब में बाँट दे।

अनुपाती प्रतिनिधिक-प्रणाली हो तो अच्छी पर इससे अनेक दल बन जायेंगे और दो दल वाली सरकार-प्रणाली समाप्त हो जायगी। इस प्रतिनिधिक-प्रणाली से बहुत से दलों को बनने का बड़ा प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि सभी को अपने समर्थकों की संख्या के अनुपात से पार्लियामेंट में स्थान मिलने की आशा रहेगी। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या प्रतिनिधिक

शासन-प्रणाली को सफल-कार्य बनाने के लिये केवल दो दल ही होने चाहिये। यह कहा जाता है कि अब भी तो इंगलैंड में तीन राजनीतिक दल हैं, अनुपाती प्रणाली के अपनाने से इन तीनों दलों में स्थिरता आजायेगी और वे लोकमत के सब अङ्गों का प्रतिनिधित्व कर सकेंगे। इस स्थिरता और सुरक्षा के होने पर ही शासन-नीति व शासन कार्य के गुण-दोषों की उचित आलोचना हो सकती है।

क्या हाउस आफ कामन्स वास्तव में सब वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है?—सिद्धान्त रूप से लोकसभा को बिना किसी एक दल को प्रधानता दिये समस्त जनता की इच्छा का प्रदर्शन करना चाहिये। इस सिद्धान्त पर यदि हाउस आफ कामन्स की रचना की परीक्षा करें तो यह स्पष्ट हो सकता है कि यह आगार किन किन वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि इसकी सदस्यता का विश्लेषण किया जाय तो हमें कुछ रोचक बातें मालूम होंगी। ब्रीव्ज़ ने अपनी "दी ब्रिटिश कन्स्टीट्यूशन" नामक पुस्तक में लिखा है, "हाउस ऐसे दो विभागों में बँटा हुआ है जो उसके बाहर सामाजिक वर्ग-विभाग से मिलते जुलते हैं। दोनों प्रमुख दलों के सदस्य एक ही सामाजिक वर्ग से नहीं आते। उनमें वश की, शिक्षा की, आर्थिक व्यवसाय की, सम्पत्ति की व अवकाश-उपयोग की विभिन्नता रहती है। और यदि ऐसा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है कि राजनीति के विषय में उन दोनों में मौलिक मतभेद हो और उनके राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य एक दूसरे के विरोधी हों"।* सन् १९३१ में हाउस के १८८ सदस्य कम्पनियों के सञ्चालक-मण्डलों में ६९१ स्थानों पर आसीन थे जिनमें से १५२ उन मण्डलों के सभापति के स्थान थे। इन १८८ सदस्यों में १६५ कन्ज़रवेटिव दल के लोग थे। बाकी ५३ श्रमिक दल के सदस्य थे जिनमें ३२ श्रमिक संघों के पदाधिकारी थे। अधिकतर उपाधि-प्राप्त पार्लियामेंट के सदस्य कन्ज़रवेटिव दल के सदस्य थे। कन्ज़रवेटिव दल साधारणतया उच्च श्रेणी के व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, श्रमिक (लेबर) दल साधारण मनुष्य का। "यह स्मरण रखना चाहिये कि उच्च श्रेणी के व्यक्तियों की सामाजिक श्रेष्ठता और भूमि के स्वामित्व से मेल खाने वाली साधारण श्रेणी वालों की औद्योगिक या व्यापारिक प्रभुता पहिले की तरह अब देखने को नहीं मिलती"। पहिले जहाँ एक के हाथ में सामाजिक श्रेष्ठता और जागीर होती थी वहाँ दूसरे दल

* ब्रीव्ज़: दी ब्रिटिश कन्स्टीट्यूशन, पृ० ३७

के हाथ में उद्योग और व्यापार से कमाई हुई सम्पत्ति थी। "इस मामले के न रहने से और दोनों प्रभुताओं को एक ही हाथ में कर लेने की इच्छा बलवती होने के कारण शासक दल और विरोधी दल के हितों का पहिले जैसा संघर्ष नहीं बनता"।

आगार का संगठनः—जब सामान्य निर्वाचन हो चुकता है तब नया आगार अपना संगठन करने के लिये एकत्रित होता है। सब से पहिला काम स्पीकर (सभापति) का निर्वाचन करना होता है। किसी भी धारासभा के सभापति का आसन ग्रहण करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति में दो गुणों की विशेष आवश्यकता है, निरपेक्षता और निर्णय करने की योग्यता। सभापति को कार्यप्रणाली के सब नियमों की जानकारी होनी चाहिये। यदि ये बातें न हों तो धारासभा केवल एक भीड़ रह जाती है जहाँ समय बर्बाद होता है, बिना समुचित विचार हुये कानून बनते हैं और धारा सभा की उपयोगिता में विश्वास नहीं रहता। भाग्यवश इंगलैंड की पार्लियामेंट का यह दावा सत्य सिद्ध हो चुका है कि उसका स्पीकर (सभापति) पक्षपात-शून्य है। सभापति आगार की पूरी अवधि के लिये चुना जाता है पर एक बार चुने जाने के बाद वह जितनी बार चुना जाना चाहे चुना जा सकता है। उसके चुनाव के लिये विभिन्न दलों के नियामक (Whips) पहिले ही मिल कर समझौता कर लेते हैं और एक उम्मीदवार को चुन लेते हैं जिससे आगार में चुनाव होते समय एकमत होकर सभापति का चुनाव हो। जिस क्षण सभापति चुन लिया जाता है तब से वह किसी दल का सदस्य नहीं रहता और धारासभा के संघर्ष में बिल्कुल तटस्थ रहकर दोनों दलों के मध्य में बराबर जाता रहता है। वह अनुशासन रखता है और वादविवाद को नियम-पूर्वक चलाने का काम करता है। इसी लिये इस पद की निरपेक्षता सर्वमान्य हो गई है और हर सामान्य निर्वाचन में सभापति का निर्वाचन-क्षेत्र उसे बिना विशेष के चुन लेता है। केवल एक बार ही ऐसा हुआ कि श्रमिक दल (Labour Party) ने स्पीकर (Speaker) के विरुद्ध अपना उम्मीदवार खड़ा किया और उसमें वह हार भी गया। तब से स्पीकर (Speaker) की महत्ता और भी बढ़ गई है।

स्पीकर (Speaker) के कर्तव्य—इंगलैंड में स्पीकर का पद बहुत प्राचीन है और १४वीं शताब्दी से बिना कभी भंग हुये चलता चला आरहा है। स्पीकर के मुख्य कर्तव्य आगार की बैठकों में अध्यक्ष का काम करना

है। इस काम में उसे आगार के काम को नियमानुकूल रखना पड़ता है और जब विधेयक (Bills) पास हो जाते हैं तब उन्हें प्रमाणित करना पड़ता है। स्पीकर को अच्छा वेतन दिया जाता है ; और अवकाश प्राप्त करने पर पेंशन भी दी जाती है, साथ साथ लार्ड की उपाधि भी दी जाती है पर उसे पाने का कोई अधिकार नहीं होता, वह तो राजा की भेंट स्वरूप ही मिलती है।

आगार के दूसरे कर्मचारी भी होते हैं। उनमें से क्लर्क (clerk) सारे उल्लेख पत्रों (Records) की देखभाल करता है और उसी को विधेयक व प्रश्न सम्बन्धी नोटिस पहुँचने चाहिये। वही स्पीकर के आदेश से प्रतिदिन का कार्यक्रम तैयार करता है। सारजेंट-एट-आर्म्स (Seregeant-at-Arms) आगार में स्पीकर के प्रवेश की घोषणा करता है और अनुशासन रखने में स्पीकर के आदेशों का पालन करता है।

आगार की समितियाँ—प्रत्येक नये आगार के संगठित हो चुकने पर कुछ समितियों का संगठन किया जाता है और प्रत्येक समिति को निश्चित कार्य भार सौंप दिया जाता है। मुख्य समितियाँ वे छः स्थायी समितियाँ है जो प्रत्येक सत्र के आरम्भ में चुनी जाती हैं और उस सत्र के अवसान तक ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। जितने विधेयक आगार के सामने प्रस्तुत किये जाते हैं वे सब पहिले परीक्षा और सुझाव के लिये इन समितियों में से एक को भेज दिये जाते हैं। इनके अतिरिक्त जो विधेयक किसी भी समिति के अधिकार क्षेत्र में नहीं पड़ते उनके लिये दूसरी समितियाँ बनाई जाती हैं। विशेषकर वे विधेयक जिनमें कोई नये सिद्धान्त अन्तर्भूत होते हैं उनके लिये पृथक समितियाँ बनाई जाती हैं। इन समितियों को "सैलैक्ट" (Select) समितियाँ कहते हैं। जो स्थायी छः समितियाँ हैं वे क्रमानुसार लोक-लेखा (Public Accounts), स्थायी आदेशों (Standing orders), जनता के प्रार्थना पत्रों (Select Public Petitions), स्थानीय विधान-निर्माण (Local Legislation) और विशेषाधिकारों (Privileges) से सम्बन्ध रखती हैं। छठी समिति सारे आगार की होती है। जब आगार समिति के रूप में अपनी कार्यवाही करता है उस समय स्पीकर अपने आसन से उठ जाता है, दण्ड (Mace) आसन के नीचे रख दिया जाता है जो इस बात की सूचना देता है कि आगार का स्थगन (Adjournment) हो गया, और सभापति का आसन वह पुरुष लेता है जो इसके लिये विशेषतया चुना हुआ होता है। यह सभापति (Chairman) स्पीकर की भाँति पक्षपात-शून्य नहीं होता वरन् वह अपने दल का सदस्य बना

रहता है। जब आगार समिति के रूप में बैठकर काम करता है तब कार्य-क्रम के नियमों का कड़ाई के साथ पालन नहीं किया जाता। कोई सदस्य एक ही प्रश्न पर जितनी बार चाहे उतनी बार बोल सकता है, प्रस्तावों के समर्थन की आवश्यकता नहीं होती, जिस विषय पर निर्णय हो चुका हो उस पर पुनः विचार हो सकता है। जब आगार समिति के रूप में अपना कार्य समाप्त कर चुकता है तो वह अपनी रिपोर्ट देने के लिये फिर से आगार के रूप में आ जाता है, स्पीकर अपना आसन ग्रहण कर लेता है, दण्ड फिर आसन पर रख दिया जाता है और पूर्ववत आगार का काम आरम्भ हो जाता है।

समितियां कैसे नियुक्त की जाती हैं—यद्यपि सिद्धान्तरूप से समितियों की नियुक्ति आगार में चुनाव के द्वारा हुई समझी जाती है पर व्यवहार में यह काम निर्वाचन-समिति (Committee of selection) पर छोड़ दिया जाता है जिसमें ११ सदस्य होते हैं जो प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में दोनों आगारों द्वारा छांट लिये जाते हैं। वास्तव में प्रधानमंत्री और विरोधी पक्ष का नेता दोनों मिलकर इनके छांटने में सहमत हो लेते हैं, उसके पश्चात् ये नाम आगार में स्वीकृत हो जाते हैं। उसके बाद निर्वाचन समिति प्रत्येक स्थायी और 'सैलेक्ट' समिति के सदस्यों को चुनती है। चुनते समय बहुमत दल के ही सब व्यक्ति नहीं चुन लिये जाते वरन् यह ध्यान रखा जाता है कि आगार में प्रत्येक दल के सदस्यों की गिनती के अनुपात से ही इन समितियों में उन दलों के व्यक्ति रहें।

आगार की गणपूरक संख्या (Quorum), अर्थात् सदस्यों की जिस संख्या में उपस्थिति के बिना कार्यारम्भ नहीं हो सकता, वह ४० है। जब तक ४० सदस्य आगार में उपस्थिति न हों तो आगार वैधरूप से कार्यवाही नहीं कर सकता। जब गणपूरक संख्या नहीं होती तो एक घंटी बजाई जाती है और इस घंटी के बजने के दो मिनट के समय के भीतर सदस्य आकर यदि इस संख्या को पूरा नहीं करते तो स्पीकर आगार को स्थगित कर देता है।

आगार में कार्यक्रम के नियम—अपने कार्यक्रम के सम्बन्ध में आगार स्वयं ही नियम बनाता है। इनमें से कुछ ये हैं: वाद-विवाद में दूसरे आगार में होने वाले वाद-विवाद का कोई परिचय न दिया जाय; या न्यायालय द्वारा विचाराधीन विषय पर कोई आलोचना न की जाय; राजा का नाम अनादर-पूर्वक या आगार में प्रभाव जमाने के हेतु न लिया जाय; देश-द्रोही या विद्रोहात्मक वचन न बोले जायं; न बाधा डालने वाली या विलम्बकारी चालें

सभी कार्य। कोई सदस्य चाहे तो अपनी टिप्पणियाँ देख सकता है पर अपने व्याख्यान को पढ़ कर सुना नहीं सकता; दूसरे सदस्यों का नाम लेकर व्याख्यान में निर्देश नहीं किया जा सकता, और स्वीकर के आदेश की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आगार ने वाद-विवाद को कम करने और कार्यवाही में शीघ्रता लाने के लिये बहुत से उपाय निश्चित कर रखे हैं। उनमें से पहिला यह है कि यदि कोई सदस्य अनावश्यक विलम्ब करने का प्रयत्न करे और कार्यवाही में रुकावट डाले तो स्पीकर अपराधी का नाम बता देता है। यदि इस सदस्य के विरुद्ध निलम्बन का प्रस्ताव रखा जाय और वह स्वीकृत हो जाय तो उस सदस्य को आगार से निश्चित समय के लिये बाहर निकाला जा सकता है। यह समय उस सत्र के बचे हुये समय से अधिक नहीं हो सकता। दूसरा, वाद-विवाद या व्याख्यान को समाप्त करने के लिये क्लोज़र (Closure) अर्थात् समाप्ति का प्रस्ताव काम में लाया जाता है। इस प्रस्ताव के लिये कोई सदस्य यह कह दे "कि अब प्रश्न पर मतनिर्णय किया जावे" और यदि इस कथन को सभापति स्वीकार करले तो वह वाद-विवाद को वहीं समाप्त कर देता है और इस प्रस्ताव को आगार के सामने रखता है। यदि समाप्ति के प्रस्ताव के समर्थन के लिये १०० सदस्य खड़े हो जायं तो वह स्वीकृत समझा जाता है। गिलोटीन (Guillotine) कहलाने वाला उपाय भी वाद-विवाद को अन्त करने के लिये काम में लाया जाता है। इसके द्वारा व्याख्यानों पर समय-सम्बन्धी सीमा बाँध दी जाती है। जब समिति-रूप में आगार कार्य करता है तो उपस्थित संशोधनों में से सभापति कुछ संशोधनों को ही विचार करने के लिये छाँट लेता है जिससे बचे हुये संशोधनों पर विचार करने का समय बच जाता है, क्योंकि उन पर विचार नहीं किया जाता। इस युक्ति को कंगारू (Kangaroo) कहते हैं।

सदस्यों के कर्तव्य (Obligations) और विशेषाधिकार (Privileges):—सदस्यों के कुछ कर्तव्य और कुछ विशेषाधिकार होते हैं। कर्तव्यों में पहिला तो यह है कि प्रत्येक सदस्य को आगार के कार्य में भाग लेने से पहिले पार्लियामेंट की सामान्य शपथ लेनी पड़ती है जो इस प्रकार है "मैं ..... शपथ लेता हूँ कि मैं सम्राट जार्ज ..... व उसके उत्तराधिकारियों के प्रति विधान के अनुसार सच्ची भक्ति रखूंगा, इसलिये ईश्वर मुझे शक्ति दे"। दूसरे, प्रत्येक सदस्य को आगार के नियमों का पालन करना पड़ता है और स्पीकर की आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ती है। अधिकारों में, सदस्यों

की १००० पौंड वार्षिक वेतन मिलता है, उन्हें बोलने की स्वतन्त्रता रहती है, पार्लियामेंट की जब बैठक हो रही हो उस समय व उससे ४० दिन पूर्व व पश्चात् तक उनको बन्दी नहीं बनाया जा सकता, उन्हें विधेयक और प्रस्तावों को रखने की स्वतन्त्रता रहती है और वे प्रश्न भी पूछ सकते हैं जिनका उत्तर मंत्रिपरिषद् देती है।

आगार के संस्था-रूपी अधिकार:—आगार के जो संस्था-रूपी कुछ अधिकार होते हैं वे ये हैं। स्पीकर की मध्यस्थता से यह सामूहिक रूप से सम्राट तक पहुँच सकता है। इसका यह अधिकार है कि इसकी कार्यवाही का अधिक से अधिक अनुकूल अर्थ लगाया जाय। स्पीकर चाहे तो दर्शकों को बाहर हटाने की आज्ञा दे सकता है, वह चाहे तो आगार की कार्यवाही के ओलेख के जनता द्वारा प्रकाशन पर रोक लगा सकता है। आगार स्वयं ही अपनी रचना पर नियंत्रण रखता है, यह अपने सदस्यों को या बाहर वालों को आगार के अनादर करने के अपराध का दण्ड दे सकता है।

हाउस आफ लार्ड्स

"हाउस आफ लार्ड्स का जन्म राजनीतिक विकास की प्रथम प्रफुल्ल अचेतनावस्था में हुआ। बड़े बड़े जागीरदारों व विजयी सामन्तों के लिये यह स्वाभाविक था कि वे राजा को परामर्श देने का कार्यभार अपने ऊपर लेते और स्वाभाविक था उन विद्वान सम्पत्तिवान् धर्मपुजारियों के लिये कि वे ग्रेट कौंसिल के शक्तिशाली वृत्त के भाग बनते" |* वर्तमान हाउस आफ लार्ड्स उस एंग्लो-सेक्सन विटैनगैमौट (Witenagemot) का ऐतिहासिक प्रतिनिधि है जो मौर्मन काल में अपने पूर्व नाम को छोड़ कर मैग्नम कांसीलियम (Magnum Concilium) के नाम से प्रकट हुआ। बहुत प्राचीन समय से अब तक पीयरों (Pears) के बनाने का विशेषाधिकार राजा का ही रहा है। ये पीयर अपने आप ही, बिना किसी दूसरी आवश्यकता को पूरी किये हाउस आफ लार्ड्स में बैठने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

हाउस आफ लार्ड्स नाम क्यों ?—यद्यपि ब्रिटिश हाउस आफ लार्ड्स ऐतिहासिक दृष्टि से इंगलैंड में ही नहीं वरन् सारे विश्व में प्रथम धारासभा है परन्तु अपने अधिकारों और कर्तव्यों के कारण यह दूसरा आगार कहलाता है। कभी कभी इसे 'हाउस आफ पीयर्स' कह कर भी पुकारा जाता

---

* फाइनर : थ्यौरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट, पृ० ६७८

है परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है क्योंकि सब पीयरों को हाउस में स्थान नहीं मिलता और न सब सदस्य पीयर ही होते हैं। पीयरेज (peerage) और हाउस आफ लार्ड्स से एक ही वस्तु का भान नहीं होता। स्काटलैंड और आयरलैंड के सब पीयर हाउस आफ लार्ड्स के सदस्य नहीं होते, उनके अतिरिक्त बिशप (पादरी) और पुनर्विचार करने वाले न्यायाधीश लार्ड्स पीयर नहीं होते पर वे हाउस के सदस्य होते हैं। पीयर की उपाधि पैतृक होती है और पिता से पुत्र को यह उपाधि व इससे संलग्न विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं और हाउस आफ लार्ड्स के सब लार्ड्स को यह अधिकार प्राप्त हुआ नहीं होता।

पीयर बनाने का राजकीय विशेषाधिकार—जैसा पहिले कहा जा चुका है केवल राजा को ही यह विशेषाधिकार है कि वह पीयर बनावे, यही नहीं वह जितने पीयर बनाना चाहे बना सकता है। हाँ, पीयर बनाने की इस स्वतन्त्रता पर कुछ नियंत्रण अवश्य हैं। वे ये हैं—पहिला, स्काटलैंड से सम्मिलत कराने वाले विधान के अनुसार स्काटलैंड का कोई नया पीयर नहीं बनाया जा सकता, दूसरे, आयरलैंड को मिलाने वाले विधान के अनुसार प्रत्येक तीन विलीन हुये पुराने पीयरों के स्थान पर एक नया पीयर बनाया जायगा उस समय तक जब तक कि वहाँ के पीयरों की संख्या घटते घटते १०० न रह जाय, तीसरे, राजा उस व्यक्ति को फिर से पीयर नहीं बना सकता जिसने पहिले कभी अपनी पीयर की उपाधि वापिस कर दी हो। पर वास्तव में कोई व्यक्ति अपनी उपाधि वापिस नहीं कर सकता क्योंकि हाउस ने सन् १६६४ में यह प्रस्ताव पास कर दिया था कि कोई पीयर अपनी उपाधि को समाप्त नहीं कर सकता। चौथे, जागीर भेंट करने पर राजा पीयर की उपाधि को ऐसे नियमों से मर्यादित नहीं कर सकता जो अवैध हों अर्थात् जो विधान से मान्य न हों।

हाउस आफ लार्ड्स में कौन कौन लोग होते हैं—हाउस आफ लार्ड्स में तीन श्रेणियों के सदस्य होते हैं (क) पार्लियामेंट के पैतृक अधिकार वाले लार्ड्स जिनमें राजघराने के राजकुमारों के अतिरिक्त पांच प्रकार के इंगलैंड के पीयर होते हैं—ड्यूक, मर्क्विस, अर्ल, वाइकाउन्ट और बैरन। ये उपाधियाँ ज्येष्ठ पुत्र को पिता के पश्चात् प्राप्त होती हैं। (ख) बिना पैतृक अधिकार वाले लार्ड्स, जिनमें स्काटलैंड के पीयरों से चुने हुये १६

पीयर होते हैं और आयरलैंड के पीयरों द्वारा चुने हुये २८ आजीवन पीयर होते हैं, स्काटलैंड के बचे हुये पीयर हाउस आफ कामन्स की सदस्यता के लिये खड़े नहीं हो सकते पर आयरलैंड के पीयर हाउस आफ कामन्स में निर्वाचित होकर जाने के लिये खड़े हो सकते हैं। (ग) आजीवन लार्ड, जिनमें २६ धर्माधिकारी लार्ड और छः लार्ड्स आफ अपील-इन-और्डिनरी (Lords of Appeal-in-ordinary) जो १५ वर्ष तक बैरिस्टर रह चुके हों या जो किसी बड़े न्यायाधीश के पद पर आसीन रह चुके हों, होते हैं। धर्माधिकारी लार्ड्स में कैन्टरबरी और यार्क के दो बड़े पादरी और २४ छोटे पादरी होते हैं। लार्ड्स आफ अपील (Lords of Appeal) की नियुक्ति राजा ही करता है और उनको ६००० पौंड प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। इन छः लार्डों को तभी अपने पद से हटाया जा सकता है जब पार्लियामेंट के दोनों आगार मिलकर ऐसा करने के लिये राजा से प्रार्थना करें। ये आजीवन लार्ड जब तक जीवित रहते हैं हाउस के सदस्य बने रहते हैं। पहिले, पीयर लोग प्राक्सी (Proxy) अर्थात् दूसरे पुरुष के द्वारा अपना वोट हाउस में दे सकते थे पर सन् १८६८ के पश्चात् से यह प्रथा बन्द कर दी गई, अब अपना वोट (मत) देने के लिये प्रत्येक पीयर को हाउस में उपस्थित होना चाहिये।

लार्डों के कर्तव्य और विशेषाधिकार—पार्लियामेंट के लार्डों के कुछ कर्तव्य और कुछ विशेषाधिकार भी होते हैं। प्रत्येक पीयर की, चाहे वह पार्लियामेंट का सदस्य हो या न हो, राजा के पास सीधी पहुंच होती है। जो लार्ड २१ वर्ष की आयु वाला न हो या जिसने सन् १८६६ के शपथ विधान के अनुसार राजभक्ति की शपथ न ली हो वह हाउस में न बैठ सकता है न वोट (मत) दे सकता है। यदि किसी लार्ड को देशद्रोह या किसी दूसरे महापराध का दण्ड मिल चुका है तब वह उस समय तक हाउस में बैठ कर वोट नहीं दे सकता जब तक कि वह दण्ड भुगत न चुका हो। जो व्यक्ति ब्रिटेन का नागरिक नहीं वह हाउस आफ लार्ड्स में बैठने के लिये नहीं बुलाया जा सकता न किसी दिवालिया पीयर को बुलाया जाता है। एक बार जब पैतृकाधिकार वाले पीयर को बुलावा मिल जाता है तो वह बुलावे का अधिकार उसके उत्तराधिकारी को भी उसके बाद अपने आप मिल जाता है। रायपुर (बिहार) के प्रथम लार्ड सिनहा की जब मृत्यु होगई (प्रथम लार्ड सिनहा हाउस आफ लार्ड्स के सदस्य थे) तो उनके पुत्र और

उत्तराधिकारी लार्ड सिनहा को जो अभी जीवित हैं, हाउस में आने का बुलावा न मिला क्योंकि उनसे यह सिद्ध करने को कहा गया कि वे बहु-विवाह की अयोग्यता के अपराधी तो नहीं है। इस पर यह प्रश्न हाउस की विशेषाधिकार सम्बन्धी समिति (Committee of Privileges of the House of Lords) के सम्मुख रखा गया जिसका निर्णय लार्ड सिनहा के अनुकूल रहा और अब लार्ड सिनहा को बराबर हाउस के लिये बुलावा आता है और वे हाउस में बैठने के लिये जाते हैं। पार्लियामेंट की जब बैठक हो रही हो, उस समय या किसी सत्र के चालीस दिन पूर्व और पश्चात् तक हाउस आफ लार्ड्स के किसी सदस्य को किसी अपराध के लिये पकड़ा नहीं जा सकता। यह सुविधा लार्डों के नौकरों को भी मिलती है और उनको भी सत्र के २० दिन पूर्व व २० दिन पश्चात् व जब बैठक हो रही हो पकड़ा नहीं जा सकता। प्रत्येक लार्ड को बोलने की स्वतंत्रता होती है और उसे यह भी अधिकार होता है कि वह चाहे तो किसी प्रस्ताव पर अपनी अस्वीकृति को हाउस के आलेखों में लिखवा दे। उसे ज्यूरी (jury) में काम करने के भार से मुक्त कर दिया जाता है, पर किसी पीयर की स्त्री हाउस में न बैठ सकती है और न वोट दे सकती है। हाउस की पूर्ण सदस्य-संख्या लगभग ८४० है किन्तु वास्तव में मताधिकारियों की संख्या लगभग १२० है।

हाउस आफ लार्ड्स के विशेषाधिकार—संस्था रूप में हाउस आफ लार्ड्स को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं। हाउस का अनादर करने वाले व्यक्ति को हाउस अनिश्चित काल तक के लिये भी कारागृह भेज सकता है। अपने संगठन के विषय में यह स्वयं ही देखभाल करता है और इस अधिकार का उपभोग करने में यह नये पीयरों के नियमानुकूल बनने या न बनने पर विचार करके निर्णय दे सकता है। यहाँ तक कि हाउस यदि निर्णय करे तो किसी नये पीयर को, जो अयोग्य ठहरा दिया गया हो, हाउस में बैठने और कार्यवाही में भाग लेने से रोक सकता है और उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है। सन् १९३६ से पूर्व यदि कोई लार्ड देशद्रोह या महापराध का दोषी कहा जाता और यदि वह यह कहता कि उसका मुकदमा लार्डों द्वारा ही सुना जाय तो हाउस ऐसे मुकदमे को सुनता था और निर्णय देता था। पर सन् १९३७ में एक ऐसा कानून लार्ड सांके ने पास सभा में रक्खा जिसके पास हो जाने पर यह विशेषाधिकार समाप्त कर दिया गया। लार्ड सांके (Lord Sankey)

ने यह प्रस्ताव क्यों रक्खा, इसके पीछे एक छोटा सा इतिहास है। जब लार्ड डि किलमोर्ड पर मोटर दुर्घटना के फलस्वरूप मनुष्य-हत्या का अपराध लगाया गया तो उन्होंने अपने विशेष अधिकार की मांग की। दिसम्बर १२, १९३५ को हाउस में मुकदमे की सुनवाई हुई और सुनवाई के अन्त में जब यह प्रश्न रखा गया कि बन्दी अपराधी है या नहीं तो ८४ पीयरों में से प्रत्येक ने खड़े होकर कहा "अपराधी नहीं", इससे सबकी यह भावना होगई कि यह विशेषाधिकार "कानून के सम्मुख समता" के नियम का उल्लंघन करता है और फलस्वरूप लार्ड सांके ने इसको तोड़ने का प्रस्ताव धारा सभा में रख दिया।

लार्ड्स किसका प्रतिनिधित्व करते हैं—हाउस आफ लार्ड्स दूसरे आगार के रूप में बड़ी ही अप्रगतिशील संस्था है क्योंकि वह सम्पत्तिवर्ग का वह गढ़ है जहां से वे अपनी रक्षा करते रहे हैं। इसलिये यह आगार लोकमत का प्रतिनिधित्व नहीं करता। लार्ड्स अपने आप का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इसीलिये वे उन योजनाओं का विरोध करते रहे हैं जिनसे उनके या दूसरे धनिकों के अधिकारों पर आक्रमण होता हो। लार्ड्स में बहुत से बड़े धनी व्यक्ति हैं, यह इससे प्रकट हो जायगा कि "सन् १९३१ में हाउस में २४६ जमींदार थे, बैंकों के डाइरेक्टर ६७, रेलों के ६४, कल के कारखानों के ४९ और बीमा कम्पनियों के ११२। सन् १९२७ में प्रत्येक पीयर के पास औसतन् ३२,४०० एकड़ भूमि थी और २२७ पीयर कुल ७,३६२,००० एकड़ भूमि के स्वामी थे। ७६१ कम्पनियों में ४२५ डाइरेक्टरों के पद पर २७२ लार्ड आसीन थे"*। इसलिये यह आश्चर्य की बात नहीं कि कई अवसरों पर इस हाउस ने रुकावट डालने वाली चालें चलीं, विशेषकर सन् १८३२ और १९१० में। जौन स्टूआर्ट मिल (John Stuart Mill) ने इसका वर्णन "एक बड़ी क्रोध दिलाने वाली छोटी सी असुविधा" कह कर किया था। ऐसा होते हुये भी अन्त में प्रगतिशील पीयरदल की जीत ही हुई है और रुकावटें हटा ली गईं। पार्लियामेंट के लार्डों की संख्या ७४० है पर उनमें से ७२० ही हाउस आफ लार्ड्स में बैठ सकते हैं और वोट दे सकते हैं, बचे हुये नाबालिग (अप्राप्त वयस्क) या स्त्री होने के कारण अयोग्य हैं। सब पार्लियामेंट के लार्डों की अधिकतर संख्या उन पांच श्रेणियों में विभक्त है जिनको पैतृक अधिकार है। उदाहरण के लिये

* ग्रीव्ज़: ब्रिटिश कन्स्टीट्यूशन, पृ० ५४

सन् १६४२ में २६ ड्यूक, ४० मार्क्वेस, १६६ अर्ल, ६७ वाइकाउन्ट और ३४४ बैरन थे। अधिकतर लार्ड हाउस में उपस्थित होने को उत्सुक नहीं रहते इसलिये हाउस की औसतन् उपस्थिति केवल ८० है। यह पता लगा है कि सन् १६३२ और १६३३ में २८७ पीयर कभी भी उपस्थित नहीं हुये और सन् १६१६ से सन् १६३१ तक १११ पीयरों ने कभी अपना वोट देने की परवाह न की। जितने उपस्थित भी होते हैं उनमें से आधे कभी बोलने का प्रयत्न नहीं करते। इससे यह स्पष्ट है कि हाउस की कार्यवाही की ऐसी उपेक्षा ये लार्ड करते हैं कि कभी कभी इस आगार की उपयोगिता पर संदेह होने लगता है, इसके वर्तमान स्वरूप को बदलने व इसमें सुधार करने के लिये कई प्रयत्न भी किये जा चुके हैं।

हाउस आफ लार्ड्स के सुधार—ब्रिटिश राज्यनीति का एक महत्वपूर्ण प्रश्न हाउस आफ लार्ड्स के सुधार का प्रश्न रहा है। सन् १८३२ तक तो हाउस आफ कामन्स भी साधारण जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करता था। पर पहिले दो सुधार-विधानों (Acts) के पास हो जाने के पश्चात् हाउस आफ कामन्स तो वास्तविक प्रजातंत्रात्मक आगार में परिवर्तित हो गया और हाउस आफ लार्ड्स की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगा क्योंकि यह भय था कि हाउस आफ लार्ड्स प्रजातंत्र की उन्नति में बाधक सिद्ध होगा। सन् १८६६ और १८८८ के बीच में अधिकारों की दृष्टि से या संगठन के सम्बन्ध में या दोनों बातों में हाउस आफ लार्ड्स के सुधार करने के लिये कई प्रयत्न किये गये। एक बार तो यह सुझाव रखा गया कि धर्माधिकारी पीयरों को समाप्त कर दिया जावे। पर इनमें से कोई भी प्रयत्न सफल न हुआ। सन् १६०६ में जब लिबरल दल का मंत्रिमण्डल बना तो कन्ज़रवेटिव दल के लोग हाउस आफ लार्ड्स में अपने बहुमत के आधार पर महत्वपूर्ण उदार योजनाओं के पास होने में रोड़ा अटकाने लगे। इसके फलस्वरूप दोनों आगारों में विरोध उत्पन्न हो गया। कामन्स ने यह प्रस्ताव पास किया कि लार्ड्स का विरोध होते हुये भी जनता के प्रतिनिधियों की इच्छा सर्वमान्य होनी चाहिये और उसी के अनुसार कार्य होना चाहिये। इसलिये सन् १६०८ में लार्ड्स ने अपनी एक समिति नियुक्त की जिसके सभापति लार्ड रोज़बैरी हुये। इस समिति को यह काम सौंपा गया कि वह सुधार के लिये सुझाव उपस्थित करे। समिति ने यह सिफारिश की कि ऊपरले आगार (Upper House) की रचना निर्वाचन के द्वारा हो पर इस सुझाव को कामन्स में उदारदल के बहुमत ने स्वीकार नहीं किया।

ब्राइस समिति—सन् १९११ में पार्लियामेंट एक्ट (Parliament Act) पास हुआ जिससे तुरन्त ही कुछ महत्वपूर्ण सुधार हुये और उसकी प्रस्तावना में यह वचन दिया गया कि भविष्य में हाउस आफ लार्ड्स के सुधार के लिये कोई वैधानिक कार्यवाही की जायगी, यह प्रस्तावना इन शब्दों में थी "और क्योंकि यह इच्छा है कि हाउस आफ लार्ड्स के स्थान पर एक द्वितीय आगार (Second chamber) पैतृक अधिकार के आधार पर न बना कर लोकसत्ता के आधार पर बनाया जाय, परन्तु ऐसा परिवर्तन तुरन्त कार्यान्वित नहीं किया जा सकता.....।" सन् १९१७ में एक समिति नियुक्त हुई जिसके सभापति लार्ड ब्राइस थे। इस समिति को यह काम सौंपा गया कि वह हाउस आफ लार्ड्स के सुधार के सुझाव उपस्थित करे। इस ब्राइस समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव रखे:—(१) द्वितीय आगार के अधिकार हाउस आफ कामन्स के अधिकारों के समान न हों जिससे वह हाउस आफ कामन्स का प्रतिद्वन्द्वी न बन सके (२) इस द्वितीय आगार को मंत्रिमण्डल बनाने या बिगाड़ने की शक्ति न होनी चाहिये और (३) अर्थ-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने के लिये इसे हाउस आफ कामन्स के बराबर अधिकार न मिलने चाहिये। भविष्य में द्वितीय-आगार के संगठन के लिये समिति ने ये सिफारिशें कीं: (क) किसी राजनीतिक मत को प्रबल व स्थायी प्रभुत्व न मिलना चाहिये (ख) इसका संगठन ऐसा हो कि सम्पूर्ण राष्ट्र के विचार और दृष्टि कोण का इससे प्रदर्शन हो सके, और (ग) इसमें ऐसे व्यक्ति रखे जायं जो शारीरिक शक्ति न होने या प्रबल दलबन्दी के अनुकूल स्वभाव न होने के कारण हाउस आफ कामन्स में जाना नहीं चाहते। समिति के विचार से इस द्वितीय आगार के निम्नलिखित कर्तव्य होने चाहियें:—

(१) हाउस आफ कामन्स से आये हुए विधेयकों (Bills) की परीक्षा करना और दुहराना। यह काम बड़ा आवश्यक हो गया है क्योंकि हाउस आफ कामन्स में काम इतना बढ़ गया है कि पिछले तीस वर्ष में कई अवसरों पर हाउस आफ कामन्स में वाद-विवाद को कम करने के लिये विशेष नियम बनाने पड़े और उनके अनुसार कार्यवाही करनी पड़ी।

(२) उन अविरोधी विधेयकों को प्रारम्भ करना जो यदि विचार करने के पश्चात् सुव्यवस्थित रूप में रख दिये जायं तो हाउस आफ कामन्स में सहज ही स्वीकृत हो जायं।

(३) किसी विधेयक के निर्बन्ध (Law) बनने में इतना ही और केवल इतना ही विलम्ब करना जिससे लोकमत को प्रकट होने का पर्याप्त समय मिल सके। उन विधेयकों के सम्बन्ध में इसकी विशेष आवश्यकता है जो विधान के आधारभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन करना चाहते हों या जो निर्बन्ध-सम्बन्धी नये सिद्धान्त प्रचलित करते हों या जो ऐसे प्रश्न उठाते हों जिनके अनुकूल व विरोध में लोकमत समान रूप से विभक्त हो।

(४) जिस समय हाउस आफ कामन्स में इतना काम हो कि वह महत्वपूर्ण और बड़े प्रश्नों, उदाहरणार्थ. जैसे वैदेशिक नीति के लिये समय न निकाल सके, तब उन प्रश्नों पर खुले ढंग पर पूरी तरह वाद-विवाद करना। ऐसा वाद-विवाद यदि उस सभा में हो जिसे कार्यकारिणी के भाग्य-निर्णय करने का अधिकार न हो तो और भी लाभदायक होगा।

हाउस आफ लार्ड्स् के इस सुधार को कार्यान्वित करने के लिये ब्राइस समिति ने यह सिफारिश की कि नये द्वितीय आगार के सदस्यों की कुल संख्या ३२७ हो। इनमें से २४६ को कामन्स के सदस्य चुनें। इस चुनाव के लिये कामन्स के सदस्यों को १३ प्रादेशिक भागों (Regional Divisions) में बाँट कर प्रत्येक भाग से अपनी निश्चित संख्या को चुनने का काम दे दिया जाय। बचे हुए ८१ सदस्यों को दोनों आगारों की एक सम्मिलित समिति सब पीयरों (Peers) में से छाँटे। इस द्वितीय आगार की अवधि १२ वर्ष रखी गई और प्रत्येक चार वर्ष पश्चात् एक तिहाई सदस्य हट जायं। कोई एक हाउस आफ कामन्स २४६ सदस्यों के एक तिहाई सदस्य निर्वाचित न करे, इसका अभिप्राय यह था कि यह योजना क्रमानुसार धीरे-धीरे कार्यान्वित हो न कि तुरन्त किसी एक निश्चित समय पर। यह योजना भी केवल लिखी ही रह गई, उस पर कोई कार्यवाही न की गई।

सन् १९२९ की योजनायें—सन् १९२९ में लार्ड केव (Cave) ने एक दूसरी योजना उपस्थित की। इस योजना का उद्देश्य हाउस आफ कामन्स के विरुद्ध हाउस आफ लार्ड्स् को अधिक शक्तिशाली बनाना था। पर इसका बड़ा विरोध हुआ, सब ही ने इसको धिक्कारा। उसी वर्ष दिसम्बर में लार्ड क्लैरैन्डन (Lord Clarendon) ने फिर एक दूसरी योजना हाउस आफ लार्ड्स के सम्मुख रखी जिसका उद्देश्य यह था कि दक्षता पूर्वक शीघ्रता से कार्यसम्पादन के हित में दोनों आगारों में अधिक मेल रहे और एक दूसरे के सहायक रहें। इस योजना के अनुसार सब पीयर (Peers)

मिलकर अपने में से १५० पीयर चुनते, दूसरे १५० पीयरों को राजा प्रत्येक पार्लियामेंट की अवधि तक के लिये मनोनीत करता। मनोनीत करने में राजा यह ध्यान रखता कि पीयर हाउस आफ कामन्स में विभिन्न दलों की संख्या के अनुपात से ही नियुक्त किये जायँ। इसके अतिरिक्त राजा को कुछ आजीवन पीयर बनाने का अधिकार भी दिया गया था। पर यह योजना भी स्वीकृति की अन्तिम सीढ़ी तक न पहुंच सकी।

सैलिज़बरी की सुधार योजना—सन् १९३३ में कतिपय वैधानिक सिद्धान्तों का सहारा लेकर लार्ड सैलिज़बरी ने हाउस आफ लार्ड्स के सुधार का एक विधेयक पुरःस्थापित किया। इस विधेयक के सिद्धान्त ये थे कि अर्थ-सम्बन्धी विषयों में जनता के प्रतिनिधियों की राय सर्वोच्च समझी जाय और उनको अन्तिम स्वीकृति देने का अधिकार हो, दूसरे विषयों में निर्बन्ध तभी अन्तिम रूप से पार (पास) हों, जब जनता विचारपूर्वक निर्णय करे। पैतृक अधिकार के सिद्धान्त में कमी लाने के लिये द्वितीय आगार (Second Chamber) के सदस्यों की संख्या कम करके ३२० रखी गई। इन ३२० सदस्यों में १५० पैतृक अधिकार वाले पीयर, १५० दूसरे पार्लियामेंट के लार्ड जो पीयरों के बाहर से चुने जायं, और बाकी रौयल पीयर (Royal Peers) न्याय लार्ड (Law Lord) और कुछ धर्माधिकारी रखे गये थे। इसके अतिरिक्त मुद्रा-विधेयकों को प्रमाणित करने के हेतु सन् १९११ के एक्ट में निर्धारित स्पीकर के अधिकार के स्थान पर इस योजना में प्रमाणित करने का अधिकार दोनों आगारों की एक सम्मिलित समिति को दिया गया। यह भी प्रस्ताव किया गया कि यदि किसी योजना को हाउस आफ लार्ड्स तीन बार पूर्ण बहुमत (absolute majority) से रद्द करदे तो उसके सम्बन्ध में निर्णय दूसरे होने वाले हाउस आफ कामन्स पर छोड़ दिया जाय। यह योजना भी निर्बन्ध का रूप न पा सकी।

सुधार की आवश्यकता इतनी योजनाओं के असफल रहने के पश्चात् भी ज्यों की त्यों बनी हुई है क्योंकि हाउस आफ लार्ड्स द्वितीय आगार का कर्तव्य भली भाँति पूरा नहीं करता। ऐसे आगार के दो मुख्य कार्य होने हैं, पहिला, निचले आगार से आई हुई योजनाओं को दुहराना और उन पर पुनर्विचार का अवसर प्रदान करना। दूसरा उन लोगों को राज्यकार्य में साझी होने की सुविधा देना जो हाउस आफ कामन्स में निर्वाचित होने के लिये निर्वाचन लड़ना नहीं चाहते। श्री ग्रीव्ज़ (Greeves) ने यह

सुझाव रखा कि दोनों कार्य सिद्धान्तों को व्यवहार रूप दिया जा सकता है यदि (१) हाउस आफ कामन्स द्वारा पार्लियामेंट के लार्डों का चुनाव हो। यह चुनाव प्रत्येक पार्लियामेंट के पहिले सत्र के प्रथम मास में हो और लार्ड पार्लियामेंट के विलयन होने तक अपने पदों पर स्थित रहें, (२) कामन्स में जिस दल के जितने सदस्य हों वे अपनी संख्या के आधे के बराबर लार्डों को चुनें और (३) हाउस आफ कामन्स का स्पीकर निर्वाचन-पद्धति निश्चित करे। सुधार की कोई योजना भी स्वीकार की जाये पर यह निर्विवाद है कि हाउस आफ लार्ड्स का सुधार होना आवश्यक है जिससे यह व्यवस्थापक मंडल का उपयोगी अंग सिद्ध हो सके।

हाउस आफ लार्ड्स का संगठन—हाउस आफ कामन्स की तरह हाउस आफ लार्ड्स का भी एक संगठन है। इसका सभापति लार्ड चान्सलर (Lord Chancellor) कहलाता है जो मंत्रिपरिषद् का सदस्य होता है। लार्ड चान्सलर को पीयर होना आवश्यक नहीं है इसलिये उसका आसन हाउस की परिधि से बाहर रहता है। उसका आसन वूलसैक (Woolsack) कहलाता है जिसका अर्थ है कि वह लार्ड्स के समान कीमती आसन पर न बैठने योग्य होने के कारण साधारण ऊनी बोरे के आसन पर बैठता है। पर साधारणतया जब कोई ऐसा व्यक्ति लार्ड चान्सलर बनाया जाता है जो पीयर न हो तो वह चान्सलर बनने के पश्चात् पीयर भी बना दिया जाता है। हाउस अपनी कार्य पद्धति को स्वयं ही निश्चित करता है। लार्ड चान्सलर को कार्य-पद्धति सम्बन्धी प्रश्न पर आदेश देने का अधिकार नहीं है, कम से कम तीन पीयरों का कोरम (quorum) अर्थात् गणपूरक-संख्या होती है, पर साधारणतया किसी बैठक में ५० पीयरों के उपस्थित होने की आशा की जाती है। पीयर जब व्याख्यान देते हैं तो सभापति को अपना भाषण नहीं सुनाते वरन आगार को। यदि लार्ड चान्सलर पीयर नहीं होता तो उसे मत देने का अधिकार नहीं होता। यदि वह पीयर होता है तो मत देने का अधिकार और पीयरों के समान उसे भी प्राप्त रहता है, पर उसे निर्णायक द्वितीय मत देने का अधिकार नहीं होता। यदि किसी प्रस्ताव के पक्ष व विरोध में मत बराबर हों तो वह प्रस्ताव गिर जाता है। लार्ड चान्सलर के अतिरिक्त एक व्यक्ति समितियों का सभापति भी होता है जो उस समय सभापति का स्थान ग्रहण करता है जब आगार समिति के रूप में कार्य करता है। वही व्यक्तिगत विवेयकों से सम्बन्धित सब कामों की देख भाल करता है। ग्रेट सील्स (Great seals) अर्थात् राजमुहरों से प्रमाणित अधिकार-पत्रों

द्वारा एक जैंटिलमैन अशर आफ दी ब्लैक रौड (Gentleman Usher of the Black Road) नियुक्त किया जाता है। हाउस आफ लार्ड्स में जो अधिकार सूचक दण्ड (Mace) के रूप में काले रंग का एक डण्डा रखा जाता है उसी से इस पदाधिकारी का नाम पड़ा है। उसका मुख्य काम बन्दी बनाने की आज्ञाओं को कार्यान्वित करना, कामन्स के सदस्यों को आवश्यकता पड़ने पर हाउस के सामने उपस्थित करना और जिन व्यक्तियों को हाउस आफ लार्ड्स ने किसी अभियोग के सम्बन्ध में रोक रखा हो उनको सुरक्षित स्थान में बन्द रखना है। जब लार्ड चान्सलर हाउस में प्रवेश करता है या हाउस छोड़कर जाता है तो सार्जेन्ट-एट-आर्म्स अधिकार-दण्ड (Mace) को लेकर चलता है। हाउस का क्लर्क कार्यक्रम की रिपोर्ट और न्याय-सम्बन्धी निर्णयों के आलेखों को सुरक्षित रखता है।

हाउस आफ लार्ड्स के कर्तव्य—हाउस आफ लार्ड्स के दो प्रकार के कर्तव्य हैं, एक निर्बन्धकारी (Legislative) और दूसरे न्यायकारी (Judicial)। निर्बन्धकारी आगार के रूप में हाउस आफ लार्ड्स को ही आरम्भ में राजा को निर्बन्धों के बनाने में परामर्श देने का अधिकार था। केवल सन् १३२२ में ही कामन्स की सम्मति की इस काम में आवश्यकता समझी गई। १६ वीं शताब्दी के मध्य तक सिद्धान्ततः व व्यवहार में दोनों आगारों को निर्बन्धकारी सत्ता की दृष्टि से समानाधिकारी समझा जाता था। परन्तु सन् १८६१ से अधिकतर निर्बन्धों के बनाने में, विशेष कर अर्थ-सम्बन्धी निर्बन्धों में, हाउस आफ कामन्स की प्रभुता स्वीकार होने लगी। जब सन् १६०६ में लार्ड्स ने आर्थिक-विधेयक (Finance bill) के पास होने में रुकावट डाली तो प्रधानमंत्री एस्क्विथ (Asquith) ने हाउस आफ लार्ड्स की विधायिनी शक्ति को कम करने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत किया। यह विधेयक १६१२ के पार्लियामेंट एक्ट के स्वरूप में पास हो गया। इससे हाउस आफ लार्ड्स की विधायिनी शक्ति बहुत कम होगई। यद्यपि हाउस आफ लार्ड्स अब भी निर्बन्ध-निर्माण कार्य में भाग लेता है पर अब यह केवल एक द्वितीय आगार के समान है जो किसी योजना के बनने में देरी कर सकता है पर रुकावट नहीं डाल सकता।

न्यायकारी कर्तव्य—न्यायकारी संस्था के रूप में हाउस आफ लार्डस का अधिकार-क्षेत्र दो प्रकार का है, प्रारम्भिक और पुनर्विचारक। सन् १६३६ तक उन पीयरों के मुकदमे, जो अपनी श्रेणी के ही न्यायाधीशों से सुने जाने की सुविधा की मांग करते थे, हाउस आफ लार्डस में ही आरम्भ होते थे, पर अब

यह अधिकार समाप्त कर दिया गया है। प्रारम्भिक न्यायालय के रूप में हाउस इन मुकदमों के सुनने का काम करता था :-(१) हाउस आफ कामन्स से लगाये हुये अभियोग। (अब ऐसे अभियोग लगाने की प्रथा नहीं रही है),(२) उन लोगों के विवाहोच्छेद के मुकदमे जो आइरलैंड के निवासी हों (३) पीयर बनने के अधिकार सम्बन्धी मुकदमे (४) विशेषाधिकारों के विरुद्ध किये गये अपराधों के अभियोग (५) स्काटलैंड और आइरलैंड के पीयरों के निर्वाचन-सम्बन्धी झगड़े। पुनर्विचारक (Court of appeal) न्यायालय के रूप में हाउस आफ लार्डस सारे देश की अदालतों के निर्णयों पर पुनर्विचार कर सकता है परन्तु न्यायसम्बन्धी यह कार्य लार्डस आफ अपील-इन-आर्डिनरी (Lords of Appeal-in-Ordinary) ही करते हैं. सम्पूर्ण हाउस इस काम को सम्पादन नहीं करता। जब अपीलों की सुनवाई होती है तब लार्ड चॉसलर-जो लार्ड्स आफ अपील-इन-आर्डिनरी में का एक लार्ड होता है सभापति का आसन ग्रहण करता है। परन्तु जब मुकद्दमों की प्रारम्भिक सुनवाई होती है तो लार्ड हाई स्टीवार्ड (Lord High Steward), जो प्रत्येक मुकद्दमे के लिये विशेषरूप से राजाधिकार से नियुक्त होता है सभापति का काम करता है।

पार्लियामेंट के अधिकार

पार्लियामेंट की सर्वोच्च सत्ता—प्रसिद्ध लेखक मैरियट (Marriot) ने पार्लियामेंट की महत्ता को इन शब्दों में वर्णन किया है "किसी भी दृष्टि से परीक्षा की जाय तो यह ज्ञात होगा कि अंगरेजी विधान-मण्डल संसार में सबसे महत्वपूर्ण और रोचक संस्था है। प्राचीनता में इसके जोड़ की दूसरी संस्था नहीं है, इसका अधिकार-क्षेत्र बड़ा विशाल है और इसकी शक्ति की कोई मर्यादा नहीं है। अधिकारी होने के कारण और सर्वदा मानव जाति के एक चौथाई भाग के लिये विधि निर्बन्ध बनाते रहने से पार्लियामेंट (या यों कहिये पार्लियामेंट स्थित राजा) अपने आप से ऊँचे किसी घरेलू सत्ता को नहीं मानती। इतने विशाल अधिकारों की स्वामिनी पार्लियामेंट के जोड़ की दूसरी संस्था संसार में नहीं है।" आचार्य डायसी ने इस सर्वोच्च सत्ता का स्पष्टीकरण करने के लिये तीन बातें कही हैं (i) ऐसा कोई भी निर्बन्ध अर्थात् कानून नहीं है जिसे पार्लियामेंट न बना सकती हो (ii) ऐसा कोई निर्बन्ध नहीं जिसमें पार्लियामेंट संशोधन या परिवर्तन न कर सकती हो (iii) अंगरेजी शासन विधान में अवैधानिक और वैधानिक नियमों में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं है।

स्टैट्यूट आफ वैस्टमिन्सटर (Statute of Westminster) यद्यपि पार्लियामेंट के विशाल अधिकारों का एक उदाहरण है पर उसके पास हो जाने से पार्लियामेंट की सर्वोच्च सत्ता में कमी आगई क्योंकि उसके द्वारा औपनवेशिक (Dominion) पार्लियामेंटों को यह अधिकार दे दिया गया था कि वे अपने देश के लिये कोई भी निर्बन्ध बना सकती हैं चाहे वह निर्बन्ध ब्रिटिश पार्लियामेंट के किसी एक्ट के विरुद्ध भी हो। पर इन स्वायत्त-शासन वाले देशों को छोड़ कर ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे भाग अब भी पार्लियामेंट की सर्वोच्च सत्ता के आधीन हैं। ब्रिटिश साम्राज्य में (औपनवेशिक राज्यों के बाहर) कोई न्यायालय ब्रिटिश पार्लियामेंट के बनाये हुये निर्बन्ध के वैध-अवैध होने पर शंका नहीं कर सकता। विधान की दृष्टि से सर्वोच्च सत्ता पार्लियामेंट में है सही, पर राजनैतिक सर्वोच्च सत्ता ब्रिटेन की जनता के हाथ में है जो इस पार्लियामेंट को चुन कर जन्म देती है।

पार्लियामेंट का मुख्य काम आर्थिक व दूसरे प्रकार के निर्बन्धों को बनाना है। सब निर्बन्ध सिद्धान्ततः "किन्ग इन पार्लियामेंट" (King in Parliament) अर्थात् राजा और पार्लियामेंट की सम्मति, से बनते हैं, परन्तु व्यवहार में हाउस आफ़ कामन्स के जनतंत्रात्मक बनने से और राजा द्वारा सारे अधिकार पार्लियामेंट को सौंपे जाने से हाउस आफ कामन्स ही सब विधि-निर्माण कार्य का सम्पादन करता है और मंत्रिमण्डल पर नियंत्रण रखता है। इस शक्ति में १६११ के पश्चात् और भी अधिक वृद्धि हो गई है। राजा तो केवल इससे सन्तुष्ट रहने लग गया है कि उसको खर्च करने के लिये पर्याप्त धन मिलता है और शासन के उत्तरदायित्व के भार से वह मुक्त है। सन् १६११ से पहिले भी हाउस आफ लार्ड्स सब महत्वपूर्ण निर्बन्धों के विषय में हाउस आफ कामन्स की प्रभुता स्वीकार कर लेता था, विशेषकर अर्थ सम्बन्धी मामलों में हाउस आफ कामन्स वास्तविक शक्ति व अधिकार का उपभोग करता था यद्यपि हाउस आफ लार्ड्स को परिवर्तन के सुझाव देने और अपना नियंत्रण रखने का कानूनी अधिकार प्राप्त था। एरसकिन (Erskine) ने बड़े स्पष्ट शब्दों में राजा, हाउस आफ लार्ड्स और हाउस आफ कामन्स के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा की है जो इस प्रकार है:—

"राजा मुद्रा चाहता है, कामन्स उसे मंजूर करता है और लार्ड्स उस मंजूरी से सहमत होते हैं। पर कामन्स जब तक राजा को आवश्यकता

न हो मुद्रा की मंजूरी नहीं देते, न वे नये कर लगाते या पुरानों में वृद्धि करते हैं जब तक ऐसा करना अनुदानों की मंजूरी के लिये आवश्यक न हो या आगम में कमी न पड़ गई हो। राजा को करों के प्रकार या उनके वितरण से कोई सरोकार नहीं रहता पर पार्लियामेंट के करारोपण का आधार उन समाज-सेवाओं की आवश्यकता है जिनको राजा ने अपने वैधानिक परामर्शदाताओं के द्वारा निश्चित कर दिया है"।

सन् १६११ का पार्लियामेंट एक्ट—सन् १६०६ में अर्थ-विधेयक के विषय में दोनों आगारों में जो विरोध उत्पन्न हुआ उसके फलस्वरूप सन् १६११ का पार्लियामेंट एक्ट एस्क्विथ के मन्त्रिमण्डल के प्रस्ताव करने पर बना। उस समय एस्क्विथ के उदारदल को विरोध दल की अपेक्षा १२७ सदस्यों का बहुमत प्राप्त था। यद्यपि प्रस्तावना में जिस सुधार की आशा दिलाई गई थी वह सुधार अभी तक नहीं हो पाया है पर इस एक्ट में दोनों आगारों के पारस्परिक सम्बन्ध को निश्चित रूपसे स्थिर कर दिया और उस संदेह को समाप्त कर दिया जो हाउसआफ लार्ड्स के अधिकारों के सम्बन्ध में जब तब हुआ करता था। पार्लियामेंट एक्ट द्वारा दोनों आगारों के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में निम्नलिखित वैधानिक परिवर्तन हुये :—

मुद्रा-विधेयकों के ऊपर हाउस आफ लार्ड्स का कोई अधिकार न रहा। ये मुद्रा विधेयक हाउस आफ कामन्स में पास हो जाने के ३० दिन बाद पास हुए समझे जाते हैं चाहे हाउस आफ लार्ड्स ने उनका विरोध ही क्यों न किया हो। स्पीकर को इस एक्ट से यह अधिकार दे दिया गया कि वह यह निर्णय करे कि कौनसा विधेयक साधारण विधेयक है और कौनसा मुद्रा विधेयक। स्पीकर के इस निर्णय के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में सुनवाई नहीं हो सकती। हाउस आफ लार्ड्स दूसरे विधेयकों को, जो मुद्रा विधेयक न हों दो वर्ष तक टाल सकता है। हाउस आफ कामन्स को कानून बनाने का अनियंत्रित अधिकार दे दिया गया है, इस में केवल एक ही अपवाद है वह यह कि एक्ट से ही निश्चित पाँच वर्ष की अपनी अवधि को हाउस आफ कामन्स बढ़ा नहीं सकता।

सन् १६११ का पार्लियामेंट एक्ट इतना महत्वशाली है कि इसकी मुख्य मुख्य धाराओं का उल्था यहाँ दिया जाता है:—

'क्योंकि यह आवश्यक है कि पार्लियामेंट के दोनों आगारों के सम्बन्ध को नियमित कर दिया जाय'

'और क्योंकि यह विचार हो रहा है कि हाउस आफ लार्ड्स के स्थान पर एक द्वितीय आगार संगठित किया जाय और जो पैतृकाधिकार पर न बनाया जाकर लोकसत्तात्मक ढंग पर बनाया जाय, पर ऐसे नये द्वितीय आगार का बनाना अभी नहीं हो सकता।'

'और क्योंकि ऐसे नये द्वितीय आगार के बनाने पर नये आगार के अधिकारों की परिभाषा और मर्यादा स्थिर करनी होगी पर यह वांछनीय है कि हाउस आफ लार्ड्स के अधिकारों की मर्यादा का प्रावधान इस एक्ट में जैसा किया गया है कर दिया जावे।'

'इस लिये.....यह व्यवस्था की जाती है कि : १ (१) यदि कोई मुद्रा-विधेयक हाउस आफ कामन्स से पास होकर हाउस आफ लार्ड्स के सत्र के समाप्त होने से कम से कम एक मास पहिले भेज दिया गया हो और वह विधेयक इस प्रकार पहुंचने से एक मास के भीतर बिना संशोधन के पास न किया जाय, तो वह विधेयक हाउस आफ कामन्स का कोई विपरीत आदेश न होने पर, सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया जावेगा और सम्राट के सम्मति-सूचक हस्ताक्षर होने पर वह विधेयक एक्ट बन जायगा चाहे हाउस आफ लार्ड्स ने उस विधेयक पर अपनी सम्मति न भी दी हो।

(२) मुद्रा-विधेयक वह सार्वजनिक विधेयक है जिसमें स्पीकर के मत से वही प्रावधान हैं जो आगे वर्णन किये हुये सब या इनमें से किसी एक विषय से सम्बन्ध रखते हों: कर का लगाना, तोड़ना, माफ करना, बदलना या सुव्यवस्थित करना, ऋण चुकाने का भार या किसी दूसरे व्यय का भार एकत्रित कोष पर, या पार्लियामेंट से दिये हुये धन पर डालना, ऐसे व्यय में कमी या वृद्धि करना या बिलकुल समाप्त कर देना, सार्वजनिक धन का दान, पर्यादान उगाहना, सुरक्षित रखना और उसका हिसाब रखना व हिसाब की जांच कराना, किसी ऋण की प्रत्याभूति (guarantee) बढ़ाना या उस ऋण का चुकाना, या इन सब विषयों से सम्बन्धित कोई कार्यवाही करना। इस धारा में, 'कर', सार्वजनित 'धन' और 'ऋण' से स्थानीय संस्थाओं के 'कर', 'धन' और 'ऋण' से अभिप्राय न समझा जाय।

(३) जब कोई मुद्रा-विधेयक हाउस आफ लार्ड्स के लिये या सम्राट की सम्मति के लिये भेजा जाय तो उस पर स्पीकर का प्रमाण लेख होना चाहिये कि वह मुद्रा-विधेयक है। इस प्रकार प्रमाणित करने के पूर्व, स्पीकर यदि सम्भव हो तो निर्वाचन

सभिति द्वारा प्रति सत्र के आरम्भ में नियुक्त सभापतियों में से दो व्यक्तियों से सम्मति लेगा।

२ (१) यदि कोई सार्वजनिक विधेयक (जो मुद्रा-विधेयक न हो या जो पार्लियामेंट की अवधि ५ वर्ष से अधिक न बढ़ाता हो) हाउस आफ कामन्स में लगातार तीन सत्रों में पास हो जाय (चाहे एक ही पार्लियामेंट में या दूसरी में) और वह हाउस आफ लार्ड्स के सत्र के समाप्त होने से एक मास पूर्व भेजा जाकर वहाँ उन सत्रों में से प्रत्येक सत्र में रद्द हो जाय तो वह विधेयक हाउस आफ लार्ड्स में तीसरे सत्र में रद्द होने पर हाउस आफ कामन्स के विपरीत आदेश न होने पर सम्राट के सम्मुख सम्मति के लिये प्रस्तुत किया जावेगा और सम्मति मिलने पर एक्ट बन जायेगा, चाहे हाउस आफ लार्ड्स ने उसे स्वीकार किया ही क्यों न हो। पर यह प्रावधान लागू न होगा यदि उन तीनों सत्रों में से कामन्स के पहिले सत्र के द्वितीय वाचन (Second Reading) के पश्चात् कामन्स के तीसरे सत्र तक जब यह विधेयक पास हुआ हो, २ वर्ष का समय न बीता हो।

२ (२) जब उपर्युक्त धारा के अनुसार विधेयक सम्राट के सम्मुख प्रस्तुत किया जावेगा तो उसके साथ कामन्स के स्पीकर का प्रमाण-पत्र होगा कि इस धारा के प्रावधानों की पूर्ति हो चुकी है।

२ (३) हाउस आफ लार्ड्स में यदि विधेयक बिना संशोधन के या ऐसे संशोधनों के साथ जो कामन्स ने मान लिये हों, पास न हो वह रद्द किया समझा जायगा।

२ (४) कोई विधेयक वही समझा जायगा जो पहिले हाउस आफ लार्ड्स में भेजा गया था, यदि वह पहिले विधेयक से मिलता जुलता हो या उसमें स्पीकर से प्रमाणित ऐसे परिवर्तन हों जो समय के बीतने के कारण आवश्यक होगये हों या जो हाउस आफ लार्ड्स द्वारा किये हुये संशोधनों को मिलाने के लिये किये गये हों। और यदि हाउस आफ लार्ड्स ने ऐसे संशोधन अपने तीसरे सत्र में कर दिये हो जो कामन्स को स्वीकार हों तो वह स्पीकर द्वारा प्रमाणित होकर उस विधेयक में शामिल कर लिये जायेंगे जो विधेयक सम्राट की सम्मति के लिये प्रस्तुत किया गया हो।

पर हाउस आफ कामन्स यदि उचित समझे तो अपने दूसरे और तीसरे सत्र में पास होने पर और दूसरे संशोधनों का सुझाव कर सकता है, बिना उनको विधेयक में शामिल किये हुये, और ये सुझाव किये हुये संशोधन हाउस आफ लार्ड्स में विचार के लिये रखे जायेंगे और वहाँ स्वीकार होने पर ये संशोधन वे संशोधन समझे जायेंगे जो हाउस आफ लार्ड्स ने किये हों और कामन्स ने स्वीकार कर लिये हों। परन्तु हाउस आफ कामन्स के इस अधिकार-प्रयोग से इस धारा के कार्यान्वित होने पर कोई प्रभाव न पड़ेगा यदि हाउस आफ लार्ड्स इस विधेयक को रद्द करदे।

३—इस एक्ट के अनुसार स्वीकर का प्रमाण पत्र अन्तिम समझा जायगा और कोई न्यायालय उस पर विचार न कर सकेगा।

४,५,६.....

७—सन् १७१५ के सैप्टैनियल एक्ट के अन्तर्गत पार्लियामेंट की महत्तम अवधि के सात वर्ष के स्थान पर पांच वर्ष कर दिया जाय,

८—यह एक्ट पार्लियामेंट एक्ट १९११ के नाम से पुकारा जाय।'

विधायिनी कार्यपद्धति

ब्रिटिश पार्लियामेंट ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैंड के लिये ही निर्बन्ध नहीं बनाती पर ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवशों के लिये भी बनाती है। पर इन सब निर्बन्धों के बनाने में एक ही पद्धति अपनाई जाती है। जो निर्बन्ध पार्लियामेंट बनाती है उसमें किसी सार्वजनिक हित-सम्बन्धी विषय पर लोकमत की छाया देखने को मिल सकती है। यह निर्बन्ध बड़ी लम्बी कार्यवाही के बाद बन पाता है इसलिये बर्नेट का यह मत कि "इंगलैंड का निर्बन्ध जनता की सब से बड़ी शिकायत है क्योंकि वह बड़ा खर्चीला और विलम्बकारी है" बिलकुल झूंठ न हो पर फिर भी यह समाज और व्यक्ति के जीवन को नियमित रखने के लिये आवश्यक है।

विधेयक और एक्ट में क्या अन्तर है—निर्बन्ध-निर्माण की पद्धति वर्णन करने से पूर्व विधेयक और एक्ट का अन्तर समझना आवश्यक है। विधेयक (Bill) उस निर्बन्ध के पूरे मसविदे का ढांचा होता है जिसके

बनाने का विचार किया जा रहा हो। यह पहिले पार्लियामेंट के किसी भी आगार में रखा जा सकता है, केवल मुद्रा-विधेयक कामन्स में ही और पीयरों के विशेषाधिकारों से सम्बन्ध रखने वाला विधेयक हाउस आफ लार्ड्स में ही प्रथम प्रस्तुत किया जाता है। जब विधेयक दोनों आगारों में पास हो जाता है और सम्राट उस पर अपनी सम्मति प्रकट कर देता है तब वह एक्ट या विधान कहलाता है।

विधेयकों के प्रकार—विधेयक दो प्रकार के होते हैं, सार्वजनिक विधेयक और व्यक्तिगत विधेयक। सार्वजनिक (Public) विधेयक उसे कहते हैं जो सारी जनता के हित से सम्बन्ध रखता है या उसके एक बड़े भाग के हित से। व्यक्तिगत विधेयक किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह संस्था या कम्पनी से सम्बन्ध रखता है। व्यक्तिगत विधेयक को उस विधेयक से न मिला देना चाहिये जो किसी एक व्यवस्थापक व्यक्ति द्वारा धारा सभा में लाया गया हो। धारासभा के किसी सदस्य द्वारा लाया हुआ विधेयक सार्वजनिक विधेयक भी हो सकता है और व्यक्तिगत् भी यदि वह किसी एक संस्था या कम्पनी के हित से ही सम्बन्ध रखता हो। पार्लियामेंट अपना अधिक समय उन्हीं विधेयकों पर विचार करने में व्यय करती है जो सरकार द्वारा उपस्थित किये गये हों। धारा सभा के सदस्य उन विधेयकों में संशोधन का प्रस्ताव रख सकते हैं या उनकी आलोचना कर सकते हैं। सदस्यों द्वारा प्रस्तुत हुये विधेयकों के पास होने की बहुत कम सम्भावना रहती है यदि सरकार उनका समर्थन न करे और सरकार ऐसा समर्थन बहुत कम करती है। यदि किसी मंत्रिमण्डल को यह पता लग जाय कि सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया हुआ विधेयक वास्तव में लाभदायक होगा तो बाद में सरकार स्वयं अपना विधेयक उपस्थित करती है जो सदस्य के विधेयक के सिद्धान्तों के आधार पर तैयार किया हुआ होता है।

पार्लियामेंट के एक साधारण सदस्य का कार्य—उपर्युक्त वर्णन से यह पता लग जायगा कि ब्रिटिश पार्लियामेंट में गैर सरकारी सदस्यों का काम केवल इतना है कि वे सरकार द्वारा प्रस्तावित योजनाओं की आलोचना ही करते रहें या सार्वजनिक व व्यक्तिगत मामलों में सरकार से पूंछ ताछ के लिये प्रश्न करते रहें। प्रत्येक सदस्य को मंत्रिमण्डल या किसी मण्डल के किसी एक सदस्य से जानकारी के लिये प्रश्न पूछने का अधिकार होता है और मंत्रियों को उन प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है तथा सूचना सामने रखनी पड़ती है यदि जनहित में ऐसा करना उचित हो। कोई रहस्य जिसका खुलासा करना जनहितकारक न हो उसे बतलाने के लिये मंत्री बाध्य नहीं

होता। पार्लियामेंट के सदस्य सरकार की निन्दा का प्रस्ताव भी ला सकते हैं और यदि ऐसा प्रस्ताव पास हो जाय तो मंत्रिपरिषद् पदत्याग कर देती है। आमतौर पर पार्लियामेंट तत्कालीन सरकार के वैधानिक कार्यक्रम को पूरा करने में ही लगी रहती है।

विधेयक का नोटिस—किसी भी विधेयक को तैयार करने में पहिली बात उसका मसविदा बनाना होता है। यह मसविदा सरकारी वकील जो "पार्लियामेंटरी कौंसैल" कहलाता है तैयार करता है। किसी सदस्य द्वारा उपस्थित किया हुआ विधेयक या तो उस सदस्य द्वारा ही तैयार होता है या वह किसी दूसरे से तैयार करा लेता है। पर उस पर नाम उसका ही होना चाहिये। जब सदस्य के विधेयक को प्रस्तुत करने की आज्ञा मिल जाती है तो वह अपना मसविदा पब्लिक बिल आफिस में ले जाता है और हाउस के सामने रखने के लिये उसे एक फार्म भरना पड़ता है। हाउस में वह बार (Bar) के पास जाता है और स्पीकर के पुकारने पर कहता है "ए बिल सर।" तब वह बिल या विधेयक हाउस के क्लर्क को दे दिया जाता है जो उस विधेयक के संक्षिप्त नाम को जोर से पढ़ता है। उसके पश्चात् यह समझ लिया जाता है कि हाउस में विधेयक आ गया।

विधेयक का प्रथम वाचन (First Reading)—दूसरी सीढ़ी विधेयक का प्रथम वाचन होता है। सरकारी विधेयक को कोई मंत्री उपस्थित करता है जो विस्तारपूर्वक उस विधेयक का तथ्य समझाता है। उसके व्याख्यान के पश्चात् वाद-विवाद होता है फिर मत निर्णय किया जाता है, पर सब विधेयकों में पहिली रीडिंग (प्रथम वाचन) में कोई वाद विवाद नहीं होता। गैर सरकारी विधेयक की छपी कापियाँ सदस्यों को बाँट दी जाती हैं, जो सदस्य उस विधेयक को पुनः स्थापित करता है वह तद्विषय सम्बन्धी एक फार्म भर देता है और स्पीकर के पुकारने पर उसे उसके आसन के पास ले जाता है जहाँ क्लर्क उसके संक्षिप्त नाम को पढ़ता है, और इस प्रकार उसका प्रथम वाचन समाप्त हो जाता है।

द्वितीय वाचन (Second Reading)—उसके पश्चात् विधेयक का दूसरा वाचन प्रारम्भ होता है। इस द्वितीय वचन में विधेयक के आधारभूत सिद्धान्तों और धाराओं पर विस्तार पूर्वक वाद-विवाद होता है। पर द्वितीय वाचन के प्रस्ताव में यदि यह संशोधन कर दिया जाय कि इस विधेयक पर "तीन मास" (या और कोई समय की अवधि रख दी जाय जिससे उस समय

में वह वाचन न हो सके) के पश्चात् विचार किया ... ार यदि यह संशोधन स्वीकृत हो जाय तो उसका यह अभिप्राय समझा जाता है कि विधेयक रद्द कर दिया गया। सदस्यों द्वारा प्रस्तुत हुये विधेयकों में से बहुत से इसी प्रकार रद्द कर दिये जाते हैं। पर जो विधेयक द्वितीय वाचन में रद्द होने से बच जाता है वह एक समिति को भेज दिया जाता है। प्रत्येक मुद्रा विधेयक सारे आगार की समिति के सामने रखा जाता है। यदि हाउस आदेश दे तो वे विधेयक भी जो मुद्रा-विधेयक न हों सारे आगार की समिति के सम्मुख रखे जा सकते हैं। वरना वे सम्बन्धित स्थायी-समितियों के लिये भेज दिये जाते हैं। कभी कभी स्थायी समिति या सारे आगार की समिति के सामने जाने से पूर्व कोई कोई विधेयक सैलैक्ट समिति के सामने भी रखे जा सकते हैं। समिति में विधेयक पर पूरी तरह से वाद-विवाद होता है। प्रत्येक खण्ड को अलग अलग लेकर विचार होता है और उन पर संशोधनों के प्रस्ताव हो सकते हैं जिससे उसके दोष दूर हो जायं। जब इस प्रकार समिति में विधेयक पास हो जाता है तो वह फिर आगार में प्रस्तुत किया जाता है और अब आगार उसके ऊपर विस्तार पूर्वक विचार करना आरम्भ करता है। प्रत्येक खण्ड को लेकर वाद-विवाद होता है। यदि संशोधन के प्रस्ताव होते हैं और वे स्वीकार हो जाते हैं तो वे संशोधन विधेयक में कर दिये जाते हैं। कभी कभी विधेयक फिर दुबारा समिति को भेज दिया जाता है।

तृतीय वाचन (Third Reading)—इसके पश्चात् विधेयक का तीसरा वाचन प्रारम्भ होता है। इस वाचन में सारे विधेयक के रूप, सिद्धान्त व उपयोगिता पर विचार होता है। यदि इस समय संशोधन के प्रस्ताव हों और वे स्वीकार हो जायं तो विधेयक फिर समिति में भेज दिया जाता है। यदि तीसरे वाचन में द्वितीय वाचन से निकला हुआ विधेयक ज्यों का त्यों पास हो जाता है तो वह दूसरे आगार में भेज दिया जाता है। वहाँ भी उस पर उसी क्रम से विचार होता है। जब दूसरे आगार में भी बिना संशोधन के वह विधेयक पास हो जाता है तो वह सम्राट की सम्मति हेतु रखा जाता है और सम्मति प्राप्त होने पर वह एक्ट (विधान) घोषित कर दिया जाता है।

यदि दूसरा आगार उस विधेयक में कुछ संशोधन कर देता है तो वह फिर प्रारम्भ करने वाले आगार में वापिस भेज दिया जाता है और यदि प्रारम्भ करने वाले आगार में ये संशोधन मान्य कर लिये जाते हैं तो विधेयक सम्राट की सम्मति के लिये भेज दिया जाता है।

मुद्रा विधेयक के लिये कार्यक्रम—मुद्रा विधेयक के लिये जो कार्यवाही की जाती है वह कुछ भिन्न होती है। कन्सौलिडेटैड फन्ड (Consolidated Fund) अर्थात् एकीकृत-कोष वाली सेवाओं के लिये स्थायी विधानों (Acts) द्वारा ही अनुदान स्वीकृत हो जाते हैं। पर सप्लाई (Supply), सेवाओं (Services) के लिये कार्यकारिणी प्रतिवर्ष खर्चे के आगणन (Estimates) बनाती है और पार्लियामेंट की स्वीकृति लेती है। मुद्रा विधेयकों के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्तों का पालन किया जाता है—(१) प्रत्येक विधेयक जो सार्वजनिक कोष में खर्चा कराने वाली योजना बनाता हो वह क्राउन (Crown) अर्थात् मंत्रिपरिषद् की ओर से प्रस्तावित होना चाहिये, उसे कोई सदस्य उपस्थित नहीं कर सकता (२) ऐसा प्रत्येक विधेयक आगणन के रूप में होना चाहिये, (३) यह हाउस आफ कामन्स में ही प्रारम्भ होना चाहिये।

सप्लाईज़ (Supplies) अर्थात् अनुदानों की मांग सम्राट के भाषण में की जाती है। अर्थमंत्री (Chancellor of the Exchequer) उस के पश्चात् अपने बजट भाषण में उन सब मांगों को उपस्थित करता है। ये माँगें हाउस की कमैटी आफ सप्लाईज़ (Committee of Supplies) या कमिटी आफ वेज एण्ड मीन्स (Committee of Ways & means) में सामने लाई जाकर उन पर वाद्-विवाद होना आरम्भ हे ता है। उपर्युक्त दोनों समितियाँ सारे आगार की होती हैं अर्थात् सारा आगार अपने को एक समिति के रूप में समझ कर काम करता है, उस समय वाद्-विवाद आदि के बन्धन ढीले कर दिये जाते हैं। पर फिर भी कोई सदस्य खर्चे को बढ़ाने वाला प्रस्ताव नहीं कर सकता। यदि ऐसा करना वाँछनीय समझा जाता है तो उसका एक अनुपम ढंग है और वह यह है कि सम्बन्धित मंत्री के वेतन में कटौती का प्रस्ताव किया जाता है। कमैटी आफ सप्लाईज़ (Committee of Supplies) यह निर्णय करती है कि क्राउन (Crown) यानी कार्यकारिणी को कितना खर्चा करने का अधिकार दिया जाय और कमैटी आफ वेज एण्ड मीन्स (Committee of Ways & Means) यह निश्चित करती है कि किस प्रकार खर्चे के लिये धन एकत्रित किया जाय। नया कर लगाने के सब प्रस्ताव आर्थिक विधेयक (Finance Bill) में शामिल होते हैं और जब वह पास हो जाता है तो उसे आर्थिक विधान (Finance Act) कह कर पुकारते हैं।

सब मुद्रा विधेयकों को कार्यक्रम की उन सब सीढ़ियों को पार करना पड़ता है जो साधारण विधेयकों के लिये वर्णन की गई हैं। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि सन् १९११ के पार्लियामेंट एक्ट के अनुसार यदि मुद्रा विधेयक सत्र की समाप्ति से कम से कम एक मास पूर्व हाउस आफ लार्ड्स में भेज दिया जाता है और वह एक मास के भीतर पास नहीं होता तो वह सम्राट की सम्मति के लिये भेज दिया जाता है और सम्मति प्राप्त होने पर एक्ट बन जाता है। ऐसे मुद्राविधेयक को स्पीकर द्वारा प्रमाणित कराना पड़ता है कि वह मुद्राविधेयक है।

दोनों आगारों का मतभेद किस प्रकार समाप्त किया जाता है— सन १९११ के पार्लियामेंट एक्ट के अनुसार हाउस आफ लार्ड्स में यदि कोई मुद्रा-विधेयक एक मास के भीतर स्वीकार न हो तो वह अपने आप सम्राट की सम्मति पाकर एक्ट बन जाता है। इस प्रकार दोनों आगारों का मतभेद समाप्त हो जाता है। यदि मतभेद साधारण विधेयक के सम्बन्ध में हो और हाउस आफ लार्ड्स के संशोधनों को कामन्स न मानें, और यदि वह विधेयक एक ही सत्र में या एक से अधिक सत्रों में कामन्स में तीन बार पास हो जाय और प्रथम तथा तृतीय बार पास होने में १ वर्ष का अन्तर हो जैसा कि १९४९ के संशोधन से निश्चित् है तो वह सम्राट की सम्मति के लिये भेज दिया जाता है और सम्मति प्राप्त होने पर एक्ट बन जाता है। इस प्रकार पास होने में केवल एक रुकावट है, वह यह कि कामन्स के पहिली बार पास करते समय जो दूसरा वाचन हुआ था उससे लेकर तीसरी बार पास होने तक दो वर्ष का समय बीत चुका होना चाहिये। इसका निष्कर्ष यह है कि हाउस आफ लार्ड्स और कामन्स में मत भेद केवल दो वर्ष तक रह सकता है और उस विधेयक के पास होने में दो वर्ष का विलम्ब हो सकता है।

रही सम्राट की सम्मति सो वह केवल एक वाह्य व्यवहार (formality) है, सन १७०७ से लेकर अब तक यह सम्मति कभी भी नामंजूर नहीं हुई। यदि सम्राट किसी योजना के विरुद्ध हो तो वह मंत्रिपरिषद को समझा कर उन्हें इस योजना को प्रस्तुत करने से वर्ज सकता है या वह चाहे तो परिषद का विलयन कर नई परिषद बना सकता है या पार्लियामेंटका विलयन कर जनता से अपील (नये चुनाव) कर सकता है। राजसी सम्मति (Royal assent) देने के लिये या तो सम्राट स्वयं पार्लियामेंट में आता है या रायल साइन मैनूअल

और प्रेटसील द्वारा नियुक्त कमीशन द्वारा यह सम्मति दी जाती है। सन १७०७ में अन्तिम बार यह सम्मति नहीं दी गई जब राजा ने स्काच मिलिशिया बिल को रद्द कर दिया था।

पाठ्य पुस्तकें

Adams.—Constitutional History of England (1934 edition)

Champion, G. F. M.—An Introduction to the Procedure of the House of Commons (1939 edition)

Dicey, A. V.—The Law of the Constitution (1929 edition)

Finer, H —The Theory and Practice of Modern Government, chs. XVIII—XXI.

Greaves, H. R. G.—The British Constitution chs. II-III

Humphreys, J. H.—Practical Aspects of Electoral Reform

Laski H. J.—Parliamentary Government in England, chs. 3-4.

May, Sir, T. E.—Parliamentary Practice (1924 edition)

Marriot, J. A. R.—English Practical Institutions.

Ogg, F. A.—English Government and Politics, chs. on Parliament and Legislation

Poole, A.—English Constitutional History (edition IX), pp. 676—725

सातवां अध्याय

कार्यकारिणी : राजा और मंत्रिपरिषद्

"प्रत्येक श्रेष्ठ राजमुकुट काँटों का मुकुट है और इस पृथ्वीतल पर सर्वदा ऐसा ही रहेगा" (कार्लाईल)

"मंत्रिपरिषद आपस की समझदारी से जीवित रहती और अपना कार्य करती है, राजा से, पार्लियामेंट से, राष्ट्र से या आपस में एक दूसरे से या अपने प्रधान से इसका सम्बन्ध निश्चित करने वाली लिखित कानून या विधान की एक लकीर नहीं है" (ग्लैडस्टोन)

राजा

सिद्धान्ततः इंगलैंड का राज्यतंत्र निरंकुश राज्यतंत्र है क्योंकि प्रत्येक कानून या निर्बन्ध पर राजा के हस्ताक्षर होने चाहिये, मंत्री राजा के मंत्री कहलाते हैं, न्यायालय राजा की ही न्याय संस्थायें हैं, पर बाह्यरूप से यह राज्यतंत्र नियंत्रित है क्योंकि राजा का कोई आदेश तब तक वैध नहीं जब तक कोई मंत्री उसपर अपने हस्ताक्षर न करे और राजा अपनी मंत्रिपरिषद के परामर्श को सर्वदा स्वीकार करता है। व्यवहार में यह राज्यतंत्र प्रजातंत्र है, राजा केवल एक रबड़ की मुहर ही के समान है, राजनीतिक क्षेत्र में वह केवल इतना ही कर सकता है कि अपना परामर्श दे, उत्साहित करे या चेतावनी दे, कानूनों के बनाने वाले और मंत्रिपरिषदों का भाग्य निर्णय करने वाले तथा शासननीति को निश्चित करने वाले तो प्रजा के प्रतिनिधि और अन्ततः स्वयं प्रजा ही है। अंगरेजी राजतंत्र (Monarchy) के जोड़ की कोई शासनसत्ता किसी दूसरे देश में नहीं मिल सकती, यह अपने ढंग की निराली है।

एंग्लो-सेक्सन काल में राजा निरंकुश था यद्यपि उस समय भी वह बुद्धिमानों की सलाह और सम्मति से ही कानून बनाता था। सन १२१५ में बैरनों और पादरियों ने मिल कर जोन नामक राजा को मैग्ना कार्टा पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया और इस प्रकार अंगरेजों की स्वतंत्रताओं के प्रथम अधिकार-पत्र का जन्म हुआ। उसके पश्चात् वैधानिक राजतंत्र (Constitutional Monarchy) की ओर प्रवाह आरम्भ हो गया। उस बहाव में कभी कभी किसी राजा ने शासन सूत्र को अपने हाथ में फिर

से करने के लिये रोक लगाने का प्रयत्न किया। स्टूआर्ट-वंशीय राजाओं ने राजा के स्वेच्छाचारी शासनधिकार का दावा किया और उसके समर्थन में राजा के दैवी-अधिकार वाले सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसके फलस्वरूप जो राजाओं और पार्लियामेंट में संघर्ष उत्पन्न हुआ वह बहुत दिनों तक चला। पर अन्त में सन् १६४६ और १६८८ की क्रांति हो कर पार्लियामेंट की ही जीत हुई। जब जनता के प्रतिनिधि राजा से शासन सत्ता छीन लेने को लड़ रहे थे उस समय भी राजा के महत्त्व को कम नहीं समझा जाता था, यह बैकन (Bacon) द्वारा जेम्स प्रथम (James I) को दी हुई निम्नलिखित सलाह से प्रकट हो जायगा:—

"पार्लियामेंट के एक आवश्यक वस्तु समझो पर वही नहीं उसे राजा और प्रजा को मिलाने वाला एक अनुपम और मूल्यवान साधन समझो जिससे बाहरी दुनिया को यह दिखाया जा सकता है कि अंगरेज अपने राजा को कितना प्यार करते हैं और उसका कितना आदर करते हैं और उसका राजा किस प्रकार अपनी प्रजा पर विश्वास रखता है, इसके साथ खुलासा ढंग पर बर्ताव करो जैसे किसी राजा को करना चाहिये न कि फेरीवाले व्यापारी की तरह संदेह की दृष्टि से। पार्लियामेंट से भय न करो, इसको बुलाने में चतुरता से काम लो पर उसे अपने समर्थकों से भरने का प्रयत्न न करो।

इसको वश में करने के लिये सारी चतुरता, मानव स्वभाव की जानकारी दृढ़ता और गौरव का प्रयोग करो, शरारती और बदमाशों को उनके उपयुक्त स्थान पर रखो पर आवश्यक अड़ंगा लगाने का प्रयत्न न करो, प्रकृति को अपना कार्य करने दो, और हालांकि तुम इसे धन के लिये ही चाहते हो पर दूसरों पर यह प्रकट न होने दो कि इसके बुलाने से तुम्हारा यही अभिप्राय है। कानून बनाने में अग्रसर हो। अपने पास कोई न कोई रोचक और प्रभावशाली सुधार या नीति का विषय तैयार रखो और पार्लियामेंट से कहो कि वह उसके सम्बन्ध में तुम्हारी सलाह ले। इस बात का ध्यान रखो कि ऐसे विधेयकों को बनवा कर तैयार करा लो जिनसे राजा के आदर में वृद्धि हो और उसकी देखभाल मान्य हो, ऐसे विधेयकों को बनवाने के लिये प्रयत्न न करो जो राजा व उसकी कृपा को सस्ती बना डालें पर ऐसे विषय उपस्थित करो जिनके ऊपर पार्लियामेंट कुछ काम करने में लगे क्योंकि खाली पेट केवल विनोदपूर्ण बातों से नहीं भरते।"

चोथे अध्याय में हम यह दिखला आये हैं कि किस प्रकार सन् १६४६ में और १६८८ में जिस बात को राजा ने स्वीकार नहीं किया उसे पार्लियामेंट ने बरवश छीन लिया। १६८६ के बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) और १७०१ के एक्ट आफ सैटिलमेंट (Act of Settlement) में राजा के अधिकारों की मर्यादा व राजा का उत्तराधिकार-क्रम निश्चित कर दिया गया है। जब राज्यसिंहासन खाली होता है तो राजमुकुट सबसे पहिले ज्येष्ठ पुत्र को पहिनाया जाता है। यदि ज्येष्ठ पुत्र जीवित न हो तो उसका बच्चा, लड़का हो या लड़की, राजसिंहासन पर बैठता है। उनके भी न होने पर दूसरे पुत्र को या उसके बच्चों को राजमुकट पहिनाया जाता है। इस प्रकार राज्य करने का अधिकार पैतृक है और राजसिंहासन कभी खाली नहीं रहता। "राजा मर गया, राजा चिरंजीवी रहे" (The King is dead, Long live the King) इस कानूनी सिद्धान्त का यही मतलब है कि यद्यपि एक व्यक्ति विशेष राजा मर गया पर राजसिंहासन खाली नहीं है, दूसरा उत्तराधिकारी राजा उस पर अपने आप ही कानून की दृष्टि से आसीन है। यह उत्तराधिकार अपने आप ही प्राप्त हो जाता है जैसा एडवर्ड अष्टम के प्रिवी कौंसिल में दिये उस भाषण से व्यक्त हो जायगा जो पञ्चम जार्ज की मृत्यु के पश्चात् दिया गया था। एडवर्ड अष्टम ने कहा "मेरे प्रिय पिता सम्राट की मृत्यु से ब्रिटिश साम्राज्य को जो हानि हुई है उसके पश्चात् सर्वोच्च सत्ता के कर्तव्य का भार मेरे ऊपर आ पड़ा है" आगे चल कर उन्होंने कहा "२६ वर्ष पूर्व जब मेरे पिता इस आसन पर खड़े थे उन्होंने घोषणा की थी कि उनके जीवन का एक उद्देश्य यह रहेगा कि वे वैधानिक राज्यतंत्र को सुरक्षित रखें। इस बात में मैं स्वयं भी अपने पिता का अनुगामी बनूंगा और उनकी तरह अपने सारे जीवन भर अपनी प्रजा के सुख व कल्याण के लिये प्रयत्न करता रहूंगा। मुझे सारे साम्राज्य की प्रजा के प्रेम का सहारा है और मुझे विश्वास है कि उनकी पार्लियामेंटें मेरे भारी काम में मुझे सहायता देंगी और मैं प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर इस काम करने में मुझे मार्ग दिखावे"

दूसरे दिन सेंट जेम्स नामक महल की खिड़की से निम्नलिखित संदेश सुनाया गया:—

"क्योंकि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने हमारे राजा जार्ज पञ्चम को अपने पास बुला लिया है जिससे ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड का राजमुकुट अकेले और अधिकारी ढंग से राजकुमार एलबर्ट जार्ज को प्राप्त हो गया है, इसलिये

हम इस देश के याजक व अयाजक लार्ड, सम्राट की प्रिवी कौंसिल के लार्डों के साथ व दूसरे श्रेष्ठ पुरुषों, लन्दन के लार्ड मेयर, एल्डर मैन और नागरिकों के साथ एक स्वर से, वाणी से व अंतःकरण से यह घोषणा करते हैं कि महान् व शक्तिवान राजकुमार एलबर्ट जार्ज एन्ड्रू पैट्रिक डैविड, हमारे पुनीत स्मृति वाले राजा की मृत्यु के पश्चात्, अधिकारी रूप से व वैधानिक रूप से एडवर्ड अष्टम् हमारे राजा हुये, इत्यादि।"

इस घोषणा व उस शपथ के शब्दों से जो प्रत्येक इंगलैंड के राजा को राज्याभिषेक के समय लेनी पड़ती है, प्रकट हो जायगा कि यद्यपि ब्रिटिश राज्यतंत्र पैतृक है पर वह वास्तव में वैधानिक है और उसकी शक्ति की मर्यादा बंधी हुई है।

राजा नाम के लिये कार्य-कारिणी सत्ता है—राजा प्रायः शासन नहीं करता केवल राज्य करता है, वर्तमान राजतंत्र का पहिले जैसा ही गौरव अब भी है, शायद पहिले से अधिक ही हो पर वास्तविक शक्ति मंत्रिपरिषद के हाथ में है। इंगलैंड में राज्यतंत्र को "बाह्यरूपी कार्यकारिणी" (Formal Executive) कह सकते हैं क्योंकि राजा के नाम से सारी शासन-सत्ता का उपभोग मंत्री लोग करते हैं जो पार्लियामेंट को उत्तरदायी रहते हैं।

दूसरे राष्ट्रापतियों की अपेक्षा राजा की आय—शासन सत्ता को दूसरों के सौंपने के बदले में राजा को क्या मिला? उसे शासन की जिम्मेदारी के बोझ से मुक्ति मिल गई। वह पार्लियामेंट के काम में हस्तक्षेप नहीं करता और उसके बदले में पार्लियामेंट प्रतिवर्ष उसके लिये एक बहुत बड़ी रकम मंजूर कर देती है जिससे वह बड़े राजसी ठाट-बाट से रह सकता है। जार्ज षष्ठम् को प्रतिवर्ष ४१०,००० पौंड मिलता है और इसके अतिरिक्त लंकास्टर की जागीर की आय जो ५ लाख के लगभग है मिलती है। कार्नवैल की जागीर से भी उसे एक लाख पौंड की आय है जिसमें से १६००० पौंड कुमारी एलिज़ाबैथ को व ड्यूक आफ ग्लौसेस्टर को दे दी जाती है। राजघराने के दूसरे सब लोगों को मिलाकर प्रतिवर्ष १७०,००० पौंड दिया जाता है। इस प्रकार कुल ६,५०,००० पौंड का राजघराने का खर्चा है। इसके मुकाबिले में हालैंड के राजा की आय ५०००० पौंड, इटैली के राजा की १,२५,००० पौंड, नार्वे और स्वीडन के राजाओं की ३५००० पौंड और ८५,००० पौंड थी। फ्रांस के प्रैसीडेंट को ४५००० पौंड और अमरीका के प्रैसीडेंट को २०००० पौंड मिलता है, इसके अलावा कुछ भत्ता और दिया जाता है। इंगलैंड के राजा की निजी

सम्पत्ति भी बहुत है जो विक्टोरिया के समय से प्राप्त होती चली आ रही है। वह अपनी सम्पत्ति को अन्य व्यक्तियों के समान बेच सकता है और खरीद सकता है।

अंगरेजी राजतंत्रः कानून की दृष्टि में और वास्तव में—कानून की दृष्टि में अब भी इंगलैंड का राजा उतना ही सर्वोच्च सर्वाधिकारी है जितनी १६ वीं शताब्दी के अन्त में था। उसके कानूनी अधिकारों में कोई कमी नहीं आई है। वही सर्वोच्च कार्यकारिणी सत्ता है, वही पार्लियामेंट में अन्तिम विधायिनी शक्ति का स्वामी है और वह अब भी 'जस्टिस' (न्याय) और 'औनर' (प्रतिष्ठा) का 'निर्झर' है। वह धर्म-संघ (Church) का अब भी अध्यक्ष है, अब भी वह राष्ट्र की सैन्यशक्ति का नायक है और साम्राज्य व राष्ट्र की एकता और गौरव उसमें अंगीभूत है। राजनीतिज्ञ बेजहोट (Bagehot) ने विक्टोरिया के राज्य-काल में राजा की उन शक्तियों का संक्षिप्त वर्णन किया था जो वह बिना पार्लियामेंट की सम्मति के उपयोग कर सकता है। वह वर्णन इस प्रकार है "रानी सेना को भंग कर सकती थी, वह सेनापति से लेकर सब अफसरों को बर्खास्त कर सकती थी, सब नाविकों को भी अपने पद से हटा सकती थी, वह हमारे सब पोतों और उनका सब सामान बेच सकती थी। वह कार्नवैल की जागीर देकर सुलह कर सकती थी और ब्रिटैनी की विजय के लिये युद्ध कर सकती थी। वह इंगलैंड के प्रत्येक स्त्री पुरुष को पीयर (peer) बना सकती थी और प्रत्येक पैरिश (Parish) को यूनिवर्सिटी बना सकती थी। वह सब राजकीय कर्मचारियों को बरखास्त कर सकती और सब अपराधियों को क्षमा कर सकती थी। संक्षेप में, रानी सरकार के सारे काम उलट सकती थी, बुरी लड़ाई या सुलह करके राष्ट्र का अपमान करा सकती थी और समुद्री तथा दूसरी सेनाओं को तोड़-फोड़ कर हमको दूसरे राष्ट्रों के आक्रमण के लिये अरक्षित छोड़ सकती थी।"* इंगलैंड के राज के अधिकारों की यह विस्तृत सूची है जिनको राजा आज भी काम में ला सकता है।

वास्तव में राजा के अधिकार नियंत्रित हैं—पर व्यवहार में बड़ा अन्तर हो जाता है। राजा का कोई भी आदेश कार्यान्वित नहीं हो सकता जब तक कोई मंत्री उस आदेश पर हस्ताक्षर न कर दे और हस्ताक्षर करने पर वह मंत्री उस आदेश का उत्तरदायी हो जाता है। राजा को अपने मंत्रियों की सलाह माननी पड़ती है। हालांकि यह बात प्रथानुसार मान्य हो गई है,

---

* बेजहोटः इंगलिश कंस्टीट्यूशन, पृ० ३६

इसके पीछे कोई वैधानिक लिखित नियम नहीं है, पर फिर भी यह अंगरेजी विधि-निर्बन्ध की ऐसी महत्वपूर्ण अंग बन गई है कि सन् १९३६ में अष्टम् एडवर्ड को राजसिंहासन छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा क्योंकि उसके मंत्रियों ने उसे अपनी 'प्रेयसी' से विवाह करने के विचार को त्याग देने की सलाह दी। राजकर्मचारियों के बरखास्त करने का राजा का विशेषाधिकार इसी प्रकार प्रतिबन्धित है। हैल्सबरी ने प्रीरोगेटिव (Prerogative) अर्थात् राजा के विशेषाधिकार की परिभाषा इस प्रकार की है "प्रीरोगेटिव वह सर्वोच्च प्रतिष्ठा है जो प्राचीन प्रचलित नियमों से, पर उनकी परिधि के बाहर, राजकीय गौरव के कारण सब व्यक्तियों से अधिक राजा को मिलती है। इस प्रतिष्ठा के अन्तर्गत वे सब, स्वतन्त्रतायें, विशेषाधिकार, राजकीय ठाटबाट और शान-शौकत है जो प्राचीन प्रचलित नियम के अनुसार इंगलैंड के राजा को प्राप्त रहती हैं। जब इन विशेष राजकीय अधिकारों को काम में लाया जाता है तो न्यायालयों को इनके अस्तित्व के सम्बन्ध में पूंछताछ करने का अधिकार रहता है, क्योंकि सन् १६१० में यह तय कर दिया गया था कि "राजा को ऐसा कोई विशेषाधिकार नहीं जो देश के कानून से न दिया गया हो और वह किसी कानून, प्राचीन प्रचलित नियम, प्रथा या परिपाटी को अपनी घोषणा से नहीं बदल सकता। राजा के विशेषाधिकारों पर, चाहे वे वैधानिक हों या कार्यकारी, कुछ तो राजा और जनता के पारस्परिक समझौतों से, कुछ निषेधक कानूनों से और कुछ अप्रचलित होने से प्रतिबन्ध लग गये हैं। उदाहरणार्थ, कानून का बनाना राजा का विशेषाधिकार है, सही, पर सन् १७०७ से अब तक पार्लियामेंट के बनाये हुये कानूनों पर राजकी सम्मति कभी भी नामंजूर नहीं हुई है। राजा अपने विशेषाधिकार से नये पीयर बना सकता है। जार्ज चतुर्थ ने अर्ल ग्रे को पीयर बनाने की यह आज्ञा दी थी—"राजा अर्ल ग्रे को व लार्ड ब्रोघम को यह अनुमति देता है कि वे इतने पीयर बनादें जितने सुधार-विधेयक को पास कराने के लिये पर्याप्त हों। पर पहिले पीयरों के ज्येष्ठ पुत्रों को पीयर बनाया जाय।" यह सब ठीक है पर फिर भी राजा इस अधिकार को अभेदात्मक ढंग पर काम में नहीं ला सकता। इस बात को लार्ड लिन्धर्स्ट (Lord Lindhurst) ने स्पष्ट कर दिया था। उन्होंने कहा "इस का यह मतलब नहीं है कि क्योंकि यह बिलकुल वैध (legal) है इसलिये विशेषाधिकार का यह या और कोई प्रयोग विधान के सिद्धान्तोंके अनुकूल है। राजा चाहे तो इस अधिकार के बल पर एक दिन में १०० पीयर बनादे और यह

बिलकुल बेध समझा जायगा पर हर एक को यह समझना और जानना है कि राजा द्वारा विशेषाधिकार का ऐसा प्रयोग विधान के सिद्धान्तों का तोड़ना होगा जो निन्द्य समझा जायेगा।

इसलिये अब नये पीयर मंत्रिपरिषद् की सलाह से बनाये जाते हैं। राजा के दूसरे विशेषाधिकार भी इसी प्रकार प्रतिबन्धित हैं। सन् १६८८ की क्रान्ति के बाद राजा की स्थिति इस वाक्य में वर्णित है "राजा बनाया गया, राजा प्रतिबन्धित किया गया, राजा को वेतन दिया जाने लगा।"

राजा और न्याय मण्डल—यद्यपि राजा को न्याय का निर्झर कह कर पुकारा जाता है और न्यायालय सम्राट के न्यायालय कहलाते हैं पर सम्राट न्याय-प्रबन्ध में न हस्तक्षेप करता है न कर सकता है। यद्यपि न्यायाधीश राजा के ही द्वारा बाह्यरूप से नियुक्त और पदच्युत किये जाते हैं पर वास्तव में उनकी नियुक्ति मंत्रियों द्वारा ही होती है और साधारणतया पार्लियामेंट के दोनों आगारों के कहने पर अपने पद से हटाये जा सकते हैं। यह भी ठीक है कि अपराधियों को क्षमा प्रदान करने का विशेषाधिकार को कार्यरूप देता है। राजा को केवल उन बातों की सूचना भर दे दी जाती है जिन पर उसे अपने हस्ताक्षर करने होते हैं, उसका उत्तरदायित्व मंत्री पर रहता है।

राजा और विधायी अधिकार—राजा पार्लियामेंट का उद्घाटन और विलयन करता है पर यह काम वह केवल अपनी मर्ज़ी के अनुसार ही नहीं करता, उसके इस अधिकार पर प्रचलित प्रथाओं के बन्धन लगे हुये हैं। उसे प्रतिवर्ष पार्लियामेंट बुलानी पड़ती है जिससे बजट पास हो सके और सेना सम्बन्धी विधान (Act) स्वीकृत हो सके। सन् १६११ के पार्लियामेंट एक्ट से पार्लियामेंट की अवधि पांच वर्ष कर दी गई है। पार्लियामेंट स्वय ही अपना कार्यक्रम निश्चित करती है। पार्लियामेंट के विलयन करने के अधिकार को काम में लाते समय राजा को राष्ट्र की इच्छा के अनुसार कार्य करना पड़ता है। विलयन के सम्बन्ध में ठीक वैधानिक स्थिति क्या है इसका विशद वर्णन अर्ल ग्रे और एस्किथ ने अपने १८ दिसम्बर सन् १६२३ के व्याख्यान में इस प्रकार किया था: 'इस देश में पार्लियामेंट का विलयन करना राजा का विशेषाधिकार है। यह अधिकार कोरी सामन्तशाही के समय से चली आने वाली प्राचीन परिपाटी नहीं है, पर यह हमारी वैधानिक प्रणाली का एक उपयोगी अङ्ग है जिसके जोड़ की कोई वस्तु किसी दूसरे देश में नहीं मिलती,

उदाहरणार्थ संयुक्तराष्ट्र अमरीका में। इसका मतलब यह नहीं है कि राजा को इस अधिकार को कार्यान्वित करते समय स्वेच्छा से काम करना चाहिये और मंत्रियों का परामर्श न लेना चाहिये, पर इसका मतलब यह अवश्य है कि जब तक राजा को ऐसे दूसरे मंत्री मिल सकते हैं जो सरकार को चलाने के भार को अपने ऊपर लेने को तैयार हों, उस समय तक राजा किसी मंत्री की ऐसी सलाह मानने को बाध्य नहीं जिससे प्रजा को एक के बाद दूसरे निर्वाचन के कुहराम से कष्ट उठाना पड़े"। राजा विलयन की तभी आज्ञा देता है जब वह यह अच्छी प्रकार समझ लेता है कि हाउस आफ कामन्स ने जनता का प्रतिनिधित्व करना बन्द कर दिया है। राजा को यदि पार्लियामेंट से कुछ कहना होता है तो वह सत्र के आरम्भ में या उसकी समाप्ति पर अपने राज्यसिंहासन से वक्तृता देकर या संदेश भेज कर ऐसा कर सकता है। पार्लियामेंट का उद्घाटन करने, स्थगन करने या विलयन करते समय ही राजा हाउस आफ लार्ड्स में, जहां कामन्स के सदस्य भी बुलाये जाते हैं, उपस्थित होता है। पर राजा के सारे संदेश व वक्तृतायें तत्कालीन मंत्रिपरिषद तैयार करती है और उसी की शासन नीति उस संदेश आदि में बतलाई जाती है। पार्लियामेंट में वाद-विवाद होते समय राजा वहां उपस्थित नहीं हो सकता और यद्यपि सारे कानून राजा व पार्लियामेंट के नाम से ही बनते हैं पर वास्तव में केवल पार्लियामेंट या यों कहिये केवल हाउस आफ कामन्स ही कानूनों को बनाता है। हाउस आफ लार्ड्स हस्तक्षेप नहीं कर सकता, राजा तो उससे भी कम हस्तक्षेप कर सकता है। यही नहीं बल्कि नये उपनिवेशों के शासन प्रबन्ध के लिये निकाली हुई घोषणायें व भारतवर्ष के लिये निकाले हुये आर्डर-इन-कौंसिल (Orders-in-Council) यद्यपि प्रिवी कौंसिल में स्थिति राजा द्वारा निकाले हुये समझे जाते हैं पर वास्तव में मंत्री ही उन सब को तैयार करते हैं।

इस सब वर्णन से यह न समझना चाहिये कि विधि-निर्माण में राजा का प्रभाव नहीं के बराबर है। कई मंत्रिपरिषदों का अनुभव प्राप्त कर लेने से कभी कभी वह इस योग्य हो जाता है कि मंत्रियों को किसी कार्य के करने या किसी विधेयक को पुनः स्थापित करने से समझा बुझा कर रोक दे। पर यदि पार्लियामेंट किसी योजना को पास कर दे तो फिर वह उस पर अपनी सम्मति देने से इन्कार नहीं करता। वह कानून से परे है अर्थात् वह किसी भी वैधानिक रीति से न्यायालय में उपस्थित नहीं कराया जा सकता और किसी

अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उसके सब कार्यों का उत्तरदायी कोई न कोई मंत्री ही होता है।

राजा और कार्यकारी अधिकार—राज्य का अध्यक्ष होने से राजा मुख्य मजिस्ट्रेट होता है और कार्यकारिणी का अध्यक्ष होता है। पर व्यवहार में मंत्रिपरिषद् ही कार्यकारिणी सत्ता है। राजा प्रधान मंत्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से दूसरे मंत्रियों को नियुक्त करता है, पर वास्तव में मंत्री हाउस आफ कामन्स द्वारा ही नियुक्त होते हैं क्योंकि प्रधान मंत्री को नियुक्त करते समय राजा को ऐसा व्यक्ति छाँटना पड़ता है जो कामन्स में बहुमत प्राप्त कर सके। बहुमत वही पायेगा जो कामन्स का विश्वास पात्र होगा अर्थात जिसको कामन्स के अधिक व्यक्ति चाहते हों। मंत्री राजा के मंत्री कहलाते हैं पर व्यवहार में वे लोग राजा को उत्तरदायी न होकर कामन्स को उत्तरदायी होते हैं अर्थात जनता के प्रतिनिधियों को। यदि कोई राजा अपनी मर्जी से किसी मंत्रिमण्डल को हटावे तो उसका यह काम विधान-विरुद्ध समझा जायगा। वैदेशिक मामलों में भी यद्यपि ब्रिटिश राजदूतों को राजा ही सम्मानित करके भेजता है और विदेशी राजदूतों का स्वागत करता है पर वास्तव में ब्रिटिश राजदूतों की नियुक्ति मंत्रिमण्डल द्वारा ही होती है। महारानी विक्टोरिया व एडवर्ड सप्तम के राज्यकाल में वैदेशिक नीति में राजा का बड़ा प्रभाव था और ये लोग महत्वपूर्ण मामलों को समय समय पर हस्तक्षेप कर विदेशी राज्यों से सम्बन्ध स्थापित करने के बारे में अपना बड़ा प्रभाव डालते थे पर उनका ऐसा करना कानूनी अधिकार से न होकर उनकी वैयक्तिक योग्यता के कारण होता था।

क्राउन और किंग का भेद—अब तक हमने सुविधा के लिये क्राउन (Crown) और किंग (King) दोनों के लिये ही राजा शब्द का ही उपयोग किया है। पर इन दोनों शब्दों में अन्तर है और ब्रिटिश विधान के इतिहास के विद्यार्थी को इस अन्तर को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। 'क्राउन' एक संस्था है जो कभी विलीन नहीं होती, 'किंग' एक व्यक्ति है जो उस संस्था का स्वामी होता है और जो मृत्यु से या किसी और प्रकार से किंग नहीं रहता। क्राउन साम्राज्य की एकता का प्रतीक है, यह वह स्वर्ण-शृंखला है जो ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न भागों को जोड़ कर रखती है, प्रजा की भक्ति क्राउन के प्रति मानी जाती है। व्यक्ति-रूप से राजा (किंग) को समाज में बड़ा ऊँचा स्थान दिया जाता है। किंग को बहुत सी बातों का

पता भी नहीं चलता जो क्राउन के नाम से की जाती हैं। क्राउन सर्वोच्च कार्यकारिणी सत्ता है और उसके अधिकारों का उपभोग किंग अपने मंत्रियों की सलाह से करता है। क्राउन की ख्याति और प्रभाव एक ऐसे रहस्यमय वैभव से लिपटे हुये हैं जो इसके लम्बे इतिहास और परम्परा में बसा हुआ है। इसकी स्थिति इसे शक्ति प्रदान करती है। ऐसी शक्ति जिसे वही व्यक्ति दबा सकता है जो बड़े सुदृढ़ चरित्र वाला हो। नम्र स्वभाव वाला निर्बल भावुक व्यक्ति स्वयं ही उसके प्रभाव में आजायगा। क्राउन की स्थिति और प्रभाव को संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है: क्राउन को यह अधिकार है कि उसे देश के भीतर व बाहर की राजनीतिक स्थिति से परिचित रखा जाय, इसीलिये सभी कानूनों और बहुत से सरकारी पत्रों पर उसके हस्ताक्षर की आवश्यकता रहती है। यह आपत्ति या प्रतिवाद कर सकता है, सुझाव दे सकता है पर शासन प्रबन्ध में रुकावट नहीं डाल सकता। पहिले मंत्री राजा को सलाह देते थे अब परिस्थिति बदल गई प्रतीत होती है क्योंकि अब राजा मंत्रियों को सलाह देता है और शक्तिशाली राजा कभी कभी यह काम बड़ी अच्छी तरह करता भी है।

मंत्रिपरिषद्

असली कार्यकारिणी तो इंगलैंड में मंत्रिपरिषद् है जिसके ऊपर ब्रिटेन और उसके साम्राज्य के शासन-प्रबन्ध का भारी बोझ रहता है। सरकार बराबर रहनी चाहिये इसलिये जब एक मंत्रिपरिषद् पदत्याग कर देती है उसके स्थान पर दूसरी बना दी जाती है। आचार्य डायसी ने मंत्रि-परिषद के बारे में यह कहा है "यद्यपि राष्ट्र का प्रत्येक कार्य राजा के नाम से होता है पर वास्तविक कार्यकारिणी सरकार मंत्रिपरिषद है, हाँ यह कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि एक ऐसा अस्पष्ट घेरा भी है जिसके भीतर विधान के अन्तर्गत साम्राज्ञी की वैयक्तिक इच्छा का बड़ा प्रभाव रहता है"। दूसरी राज्यसंस्थाओं से तुलना करते हुये ग्लैडस्टोन (Gladstone) ने मंत्रिपरिषद के बारे में यह कहा था:

"मंत्रिपरिषद् तीन मोड़ वाला वह कब्ज़ा है जो ब्रिटिश विधान के तीन अंगों को अर्थात् राजा या रानी, लार्ड्स और कामन्स को मिला कर कार्य में प्रवृत्त करता है। धक्का सम्भालने वाले यंत्र की स्प्रिंग के समान यह सब धक्कों को अपने ऊपर लेता है और इसके भीतर उस धक्के के पारस्परिक विरोधी तत्व लड़ भिड़ कर ठंडे हो जाते हैं। आधुनिक समय में राजनैतिक

संसार में यह एक अनुपम रचना है। इसकी अनुपमता इसके गौरव के कारण नहीं पर इसकी सूक्ष्मता, लचीलापन और बहुमुखी शक्ति की विविधिता के कारण है जो राजा, पार्लियामेंट, राष्ट्र या सदस्यों के आपस के सम्बन्ध या अपने प्रधान से इसका सम्बन्ध निश्चित करती हो ऐसी लिखित विधान की एक लकीर भी नहीं है पर केवल पारस्परिक समझ के आधार पर यह जीवित है और अपना काम कर रही है।"

क्राउन की तीन कौंसिलें—मंत्रिपरिषद अंगरेजी प्रथा, रीतरिवाज और प्रचलित नियमों से उत्पन्न हुई एक बड़ी अनुपम संस्था है। इस समय क्राउन अर्थात् राजा की तीन कौंसिलों में से यह एक है, दूसरी दो में से एक हाउस आफ लार्ड्स है और एक प्रिवी कौंसिल। हाउस आफ लार्ड्स की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में पहिले ही वर्णन हो चुका है। वर्तमान मंत्रिपरिषद के कर्तव्यों को भली भाँति समझने के लिये यहां आवश्यक है कि इसमें और प्रिवी कौंसिल में जो भेद है वह स्पष्ट कर दिया जाय।

क्यूरिया का प्रारम्भिक इतिहास—नार्मन काल में राजा के परामर्श-दाताओं की एक स्थायी समिति थी जो न्याय सम्बन्धी, अर्थ सम्बन्धी, शासन सम्बन्धी व दूसरे परामर्श देने वाले कार्य करती थी। इस समिति का नाम क्यूरिया (Curia) था। जैसे जैसे समय बीतता गया और इस समिति का काम बढ़ा, इस का न्याय सम्बन्धी काम किंग्स बैंच और कामन प्लीज नामक दो न्याय संस्थाओं में बांट दिया गया और अर्थसम्बन्धी (Financial) काम अर्थ विभाग या राजकोष विभाग (Exchequer) को सौंप दिया गया। बचे हुये काम जो सामान्य शासन और राजा को परामर्श देने से सम्बन्धित थे वे कंटीन्यूअल कौंसिल (Continual council) करने लगी। यह कंटीन्यूअल कौंसिल (Continual council) हैनरी सप्तम के समय में बड़ी प्रख्यात हुई। इसके सदस्य प्रतिवर्ष चुने जाते थे, उनको वेतन दिया जाता था और उन्हें कौंसिल की बैठकों में उपस्थित होना पड़ता था। इसके कर्तव्य वे सब थे जो कार्यकारिणी के हुआ करते हैं और इसलिये सरकार की यह कार्यकारिणी परिषद बन गई। एडवर्ड षष्टम के समय में यह प्रिवी कौंसिल के नाम से पुकारी जाने लगी। उसके पश्चात ट्यूडर काल में यह छोटी छोटी समितियों में विभक्त होकर काम करने लगी थी। इसके सदस्यों की संख्या बदलती रही, सन् १५०९ में यह संख्या ११, १५४७ में २५, मेरी (Mary) के समय में ४६ पर एलिज़ाबेथ के समय में केवल १३ थी। जनता के प्रतिनिधि (हाउस आफ कामन्स) इस पर इसके सदस्यों के विरुद्ध अभियोग लगा कर

इसका नियंत्रण किया करते थे। सन् १८३३ में एक एक्ट से प्रिवी कौंसिल की न्याय-समिति (Judicial Committee) बना दी गई। इसी प्रकार समय समय पर और भी समितियाँ और बोर्ड इसमें से बन कर अलग हो गये जैसे, बोर्ड आफ एजूकेशन (शिक्षा बोर्ड), स्थानीय शासन बोर्ड इत्यादि।

मंत्रिपरिषद् (Cabinet)—षष्ठम एडवर्ड के समय में प्रिवी कौंसिल की एक समिति को कुछ महत्वपूर्ण कार्यों के करने का भार सौंप दिया गया था और इसलिये उसको 'कमिटी आफ स्टेट' (Committee of State) कह कर पुकारा जाता था। चार्ल्स द्वितीय ने कुछ विश्वसनीय मंत्रियों की एक समिति बनाई जिसका नाम 'कैबल' (Cabal) रखा और जिसका काम राजा को परामर्श देना था। इसी समिति का बाद में कैबिनैट (Cabinet) नाम पड़ा। यही कैबिनेट शासन नीति निश्चित करती थी जिसे प्रिवी कौंसिल राजा की ओर से स्वीकार कर लेती थी और जिसके अनुसार विभिन्न शासन विभाग अपना काम करते थे। विलियम तृतीय के समय में कैबल के द्वारा काम करने की प्रणाली का विरोध होने लगा, इसलिये एक्ट आफ सैटिलमेंट (Act of Settlement) में यह निश्चय कर दिया गया कि प्रिवी कौंसिल स्वयं ही सब विषयों में निर्णय किया करे और अन्तिम निर्णय पर सब उपस्थित सदस्य अपने हस्ताक्षर किया करें। इस एक्ट ने यह भी निश्चित कर दिया कि सरकारी वेतन भोगी व्यक्ति पार्लियामेंट के सदस्य नहीं हो सकते, पर रानी ऐने के समय में इन प्रावधानों को रद्द कर दिया गया।

हैनोवर राजवंश के समय की कैबिनैट अर्थात-मंत्रिपरिषद्—जार्ज प्रथम के राजसिंहासनारूढ़ होने पर मंत्रिपरिषद् की बनावट और कार्य-पद्धति में बड़ा परिवर्तन हुआ। जार्ज प्रथम जर्मनी में स्थित हैनोवर प्रदेश का जागीरदार था। इंगलैंड के राजसिंहासन पर हैनोवर वंश के राजाओं में वह प्रथम था। वह अंगरेजी भाषा से परिचित न था। उसने अपनी मंत्रिपरिषद् में व्हिग दल के मुख्य नेता रखे पर अंगरेजी भाषा से अनभिज्ञ रहने के कारण वह मंत्रिपरिषद् की बैठकों में शामिल न होता था और इस प्रकार शासन कार्य व उसकी नीति स्थिर करने में उसका हाथ न रहा। इस बात में उसका स्थान प्रधान मंत्री ने ले लिया। जार्ज द्वितीय के समय में सर राबर्ट वालपोल ने मंत्रिपरिषद्-प्रणाली को अच्छी तरह स्थापित कर सञ्चालित कर दिया और उस प्रणाली को व्यवस्थित रूप दे दिया। जार्ज तृतीय को यह प्रणाली पसन्द न थी इसलिये टोरियों की सहायता से उसने इसे नष्ट

करना चाहा। पर अमरीकन उपनिवेशों के हाथ से निकल जाने से राजा का वैयक्तिक शासन समाप्त हो गया और टोरी दल भी मंत्रिपरिषद व दल-प्रणाली का उतना ही भक्त हो गया जितना व्हिग दल था। रानी विक्टोरिया ने भी कुछ दुविधा के बाद इस प्रणाली को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार राजा के ऊपर पूरा लोकनियंत्रण हो गया।

मंत्रिपरिषद आजकल शासन की प्रेरणात्मक शक्ति है। यह इस सिद्धान्त पर बराबर बनी रहती है कि राजा की सरकार चलनी ही चाहिये। इसलिये जब एक मंत्रिमण्डल पदच्युत हो जाता है तो दूसरा तुरन्त बन जाता है मंत्रिमण्डल बनाने के लिये राजा पार्लियामेंट के राजनीतिक दलों में से उस दल के नेता को बुला भेजता है जो पार्लियामेंट में अपनी ओर बहुमत को कर सके (पार्लियामेंट से यहाँ हाउस आफ कामन्स ही समझना चाहिये) और उस नेता को राजा अपना प्रधानमंत्री नियुक्त कर देता है। उसके पश्चात् प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद बनाता है। साधारण स्थिति में प्रधान मंत्री अपने दल के बड़े बड़े व्यक्तियों से सलाह लेता है और सलाह लेने के पश्चात् अपनी मंत्रिपरिषद के मंत्रियों के नाम राजा के सामने प्रस्तुत कर देता है जो विधिपूर्वक स्वीकृत हो जाते हैं और मंत्रिपरिषद के सदस्यों के नाम गजट में छाप दिये जाते हैं। असाधारण स्थिति में मिली जुली (Coalition) मंत्रिपरिषद बनाई जाती है जिसमें सब राजनीतिक दलों के प्रमुख व्यक्ति रखे जाते हैं। यद्यपि प्रधानमंत्री अपने साथी मंत्रियों को चुनने में स्वतंत्र है पर राजा तीन प्रकार से इस काम में अपना प्रभाव डाल सकता है। (१) किसी विशेष राजनीतिज्ञ के नाम का सुझाव देकर (२) प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तावित किसी राजनीतिज्ञ को स्वीकार करने से इन्कार कर और (३) किसी पसन्द किये हुये राजनीतिज्ञ की अयोग्यता की कटु आलोचना कर। पर यह सब प्रभाव बलपूर्वक बाध्य करने के रूप में न होकर केवल समझाने के रूप में डाला जाता है।

कैबिनेट अर्थात् मंत्रिपरिषद की रचना—मंत्रिपरिषद के बनाने का काम प्रधानमंत्री के लिये बड़ा महत्वपूर्ण है। अधिकतर वह ऐसे व्यक्तियों को ही चुनता है जो योग्य व प्रभावशाली होते हैं पर कभी कभी इस काम में यह भी देखना पड़ जाता है कि अधिक से अधिक सुविधा जनक पसन्द कौनसी होगी। अनुभवी व्यक्तियों के अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति भी छांट लिये जाते हैं जिनकी केवल यही योग्यता है कि वे प्रधानमंत्री के मित्र रह चुके हैं। मिनिस्टर्स

आफ दी क्राउन एक्ट (Ministers of the Crown Act) के पास हो जाने के बाद यह नियम हो गया है कि हाउस आफ लार्ड्स से भी कम से कम तीन कैबिनैट मंत्री और तीन पार्लियामेंटरी उपसचिव लेने चाहिये। इस एक्ट के अनुसार कैबिनैट मंत्री ये कहे जाते हैं—प्रधानमंत्री, अर्थमंत्री, कोष-मंत्री, गृहमंत्री, उपनिवेश मंत्री, विदेश मंत्री, डोमिनियन (Dominion) मंत्री, युद्ध मंत्री, वायुसेना मंत्री, भारत मंत्री, (अब यह पद टूट गया है क्योंकि भारत अब स्वतंत्र है) स्काटलैंड का मंत्री, नौसेना मंत्री, व्यापार-बोर्ड का अध्यक्ष, कृषि मंत्री, शिक्षा-बोर्ड का अध्यक्ष, स्वास्थ्य मंत्री, श्रम-मंत्री, यातायात मंत्री, नियामक (Coordination) मंत्री, कौंसिल का लार्ड प्रेसीडेंट, लार्ड प्रिवी सील, पोस्टमास्टर जनरल, निर्माण विभाग का प्रथम कमिश्नर और पेंशन मंत्री। इनके वेतन एक्ट द्वारा निश्चित रहते हैं, क्योंकि हाउस आफ कामन्स में ही विभिन्न दलों का राजनीतिक संघर्ष चलता है, वहीं मंत्रि-मण्डल बनते और बिगड़ते हैं और जनता के प्रतिनिधियों के सामने सरकार को वहीं अपनी नीति के बारे में लगाये हुये अभियोगों का प्रतिवाद कर उसका औचित्य दिखलाना पड़ता है, इसलिये अधिकतर मंत्री और पार्लियामेंटरी उपसचिव हाउस आफ कामन्स के सदस्यों में से ही लिये जाते हैं।

मंत्रिपरिषद् के व्यक्तियों की नियुक्ति स्थायी नहीं होती क्योंकि समय समय पर प्रधान मंत्री पुराने सदस्यों के स्थान पर नये मंत्री नियुक्त करता रहता है। प्रधानमंत्री को परिषद् बनाने का ही अधिकार नहीं वरन उसमें समय समय पर परिवर्तन कर उसे पुनर्संङ्गठित करने का भी अधिकार है, यदि ऐसा करना उसके विचार में वांछनीय हो। यह तभी होता है जब या तो कोई मंत्री किसी विशेष विपत्तिजनक परिस्थिति के कारण या साधारण रूप से पदत्याग करदे या किसी सामान्य निर्वाचन में सफल होने के पश्चात् कोई प्रधानमंत्री अपनी परिषद् का पुनर्संङ्गठन करना चाहे या जब प्रधानमंत्री परिषद् को अधिक प्रभावपूर्ण बनाना चाहे। ऐसा करते समय प्रधान मंत्री केवल अपने दल के नेताओं से ही सलाह नहीं लेता वरन् उन मित्रियों और व्यक्तियों की सलाह भी लेता है जिन पर इस पुनर्संङ्गठन का असर पड़ता हो।

प्रधान मंत्री—किसी मंत्रिपरिषद् की शासन नीति क्या होगी और वह कितनी सफलीभूत सिद्ध होगी, यह प्रधान मंत्री के पौरुष, व्यक्तित्व और उसकी योग्यता पर निर्भर रहता है। एक राजनीतिज्ञ ने कहा है कि कैबिनैट राज्यपोत का परिचालन करने वाला पहिया है और प्रधान मंत्री उसका परि-

चालक है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि यद्यपि अंगरेजी शासन विधान वाली पुस्तकों में प्रधान मंत्री के नाम व पद का इतना वर्णन पाया जाता है पर १६०५ तक यह नाम या पद मान्य न हुआ था और सन् १६१७ में ही जाकर कहीं कानून में इसका समावेश हुआ। सन् १६३७ के वेतन सम्बन्धी एक्ट में प्रधान मत्री और प्रथम राजकोष मंत्री के वेतन का वर्णन पाया जाता है। जब कोई राजनीतिज्ञ राजा से चुना जाकर मंत्रिमण्डल बनाने का कार्य-भार स्वीकार कर लेता है तो वह प्रधान मंत्री बन जाता है। मंत्रि परिषद का वह प्रमुख व्यक्ति होता है। उसका मुख्य कार्य मंत्रि परिषद को बनाना, बुलाना, स्थगित करना और उसके अध्यक्ष का काम करना है। वह मंत्रियों को नियुक्त करता है और बरखास्त करता है, और अपने साथी मंत्रियों की सलाह से शासन नीति को रूप रेखा निश्चित करता है। वह राजा को पार्लियामेंट के विलयन करने और सामान्य निर्वाचन करने की आज्ञा देने की सलाह देता है। यद्यपि कानून के अनुसार प्रधान मंत्री की विलयन सम्बन्धी प्रार्थना का राजा विरोध कर सकता है पर वह केवल प्रधान मंत्री को विलयन के विरुद्ध समझाने बुझाने तक ही अपने प्रभाव का उपयोग करता है। मंत्रि-मण्डल और राजा के बीच में प्रधान मंत्री ही बात चीत का एक साधन है। उपाधि-वितरण में उसका ही निर्णायक मत माना जाता है। शासन नीति सम्बन्धित विषयों पर पार्लियामेंट में उसकी ही बात अन्तिम निर्णय करने वाली समझी जाती है। इसलिये वही हाउस आफ कामन्स का सर्वमान्य नेता होता है। प्रधान मंत्री ही सरकार की शासन नीति की जनता के सम्मुख घोषणा करता है और वही पत्रकारों के प्रतिनिधियों से मिलता है। वैदेशिक नीति का उत्तरदायित्व प्रमुखतया उसी के ऊपर रहता है चाहे वह वैदेशिक मामलों के विभाग का अध्यक्ष न हो पर फिर भी वैदेशिक नीति व वैदेशिक सम्बन्धों की रूप रेखा निश्चित करने में वह सक्रिय भाग ले सकता है। उदाहरणार्थ चैम्बरलेन ने हिटलर से बात चीत कर म्यूनिक के समझौते पर दस्तखत किये हालांकि विदेश मंत्री लार्ड हैलीफैक्स थे। राजकोष के प्रथम लार्ड (First Lord of the Treasury) के पद के अतिरिक्त प्रधान मंत्री और भी जो काम करना चाहे उसका भार अपने ऊपर ले सकता है।

मंत्रिपरिषद का भीतरी संगठन—मंत्रिपरिषद का भीतरी संगठन क्रमिक विकास के फलस्वरूप हो पाया है। पहिले तो राजा ही मंत्रिपरिषद की बैठकों में अध्यक्ष का पद लेता था। जार्ज प्रथम के समय से यह प्रथा जाती

रही और सब शक्ति प्रधानमंत्री के हाथ में आ गई और वही अध्यक्ष का पद लेने लगा। मंत्रिपरिषद् की बैठकों में शासन-सम्बन्धी मामलों पर विचार होता है। मंत्रिपरिषद् की बैठक बुलाना प्रधान मंत्री की इच्छा पर रहता है। कोई भी मंत्री बैठक बुलाने के लिये प्रार्थना कर सकता है पर प्रधान मंत्री ऐसी प्रार्थना को मानने या न मानने में बिलकुल स्वतंत्र रहता है। बैठकों के होने का समय व दिन प्रधान मंत्री ही निश्चय करता है पर परिषद् की बैठक में क्या कार्यवाही होगी उसका ब्यौरा नहीं दिया जाता हालांकि सब मंत्री जानते हैं कि किन विषयों पर विचार किया जावेगा। परिषद् की बैठकें प्रायः शाम के समय हुआ करती हैं। काम के बढ़ जाने से पहिले की अपेक्षा युद्धोत्तर काल में बैठकों की संख्या बहुत बढ़ गई है। युद्ध के समय में तो प्रतिदिन बैठक होती थी।

परिषद् की बैठकों में उपस्थिति—परिषद् की बैठक के लिये कोई गणपूरक संख्या निश्चित नहीं है। प्रधान मंत्री या और कोई मंत्री अस्वस्थ होने पर अनुपस्थित रह सकते हैं। अनुपस्थित मंत्री चाहे तो किसी विचाराधीन विषय पर अपना मत प्रधान मंत्री को पत्र के रूप में भेज सकता है। जब प्रधान मंत्री अनुपस्थित रहता है तो अध्यक्ष का काम वह मंत्री करता है जो पुराना राजनीतिज्ञ हो या और किसी दूसरी प्रकार से प्रभावशाली हो। जब बैठक होती है तो मंत्रियों के बैठने का कोई निश्चित क्रम नहीं है पर प्रभावशाली मंत्री प्रधान मंत्री के पास बैठते हैं।

परिषद् में किन विषयों पर विचार होता है—परिषद् सब महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करती है। प्रत्येक मंत्री अपने अपने विभाग के विषयों को परिषद् के विचारार्थ उपस्थित करता है क्योंकि सारी परिषद् शासन-नीति को निश्चित करती है। "जो विषय परिषद् के सम्मुख रखे जाते हैं वे साधारणतया तत्कालीन राजनैतिक घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं। परिषद् के सदस्य छोटी छोटी बातों पर ध्यान न देकर अपनी बुद्धि व ध्यान उन बातों के सुलझाने पर केन्द्रित करते हैं जो उनके सम्मुख बड़ा महत्व रखती हैं।"* बजट और राजा का भाषण ये बड़े महत्वपूर्ण विषयों में गिने जाते हैं, उसके बाद वैदेशिक नीति महत्वपूर्ण समझी जाती है। परिषद् के निर्णय किसी आलेख में नहीं लिखे जाते, हां निर्णयों की टिप्पणियां बनाली जाती हैं जो राजा को परामर्श देने, आगे होने वाले दूसरे मंत्रिपरिषद् की सूचना के लिये और गलती

---

* यूः दी इंगलिश कैबिनैट सिस्टम, पृ० २४१

व भ्रान्ति का निवारण करने के लिये काम देती है। मंत्रियों को परिषद् में टिप्पणियां बनाना मना है, केवल प्रधान मंत्री ही टिप्पणियां लिख सकता है क्योंकि उसे अपने व अपने साथी मंत्रियों के विचार राजा को बतलाने में इनकी आवश्यकता रहती है। प्रायः निर्णय मताधिक्य के द्वारा होता है पर प्रधान मंत्री के विचारों को बड़ा महत्व दिया जाता है क्योंकि वही एक ऐसा व्यक्ति है जो शासन नीति का निर्देश करता है। परिषद् की कार्यवाही गुप्त रखी जाती है।

परिषद् सचिवालय का काम—परिषद् के साथ एक सचिवालय भी रहता है। इस सचिवालय के कर्तव्यों की सूची संक्षिप्त रूप से सन् १९१७ की युद्ध-परिषद् की रिपोर्ट में इस प्रकार दी है (१) युद्ध-परिषद् की कार्यवाही का विवरण रखना, (२) युद्ध-परिषद् के निर्णयों को उन विभागों को बतलाना जिन्हें उन निर्णयों को कार्यान्वित करना है या जो और किसी प्रकार उनसे सम्बन्धित हैं। (३) कार्यक्रम तैयार करना, मंत्रियों व दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति का इंतजाम करना जो उस कार्यक्रम से सम्बन्धित हों और विचाराधीन विषयों पर आवश्यक सूचना एकत्रित कर सब मंत्रियों के पास भेजना (४) युद्ध-परिषद् के काम से सम्बन्धित पत्र व्यवहार करना और (५) पूर्व धारा में वर्णित रिपोर्ट तैयार करना।" *

मंत्रिपरिषद् की समितियां—परिषद् के सम्मुख जब कोई विशेष प्रकार के मामले विचार के लिये आते हैं तो परिषद् उनको भली प्रकार निबटाने के लिये छोटी छोटी समितियों में बंट जाती है। इन समितियों में एक महत्वपूर्ण समिति साम्राज्य-सुरक्षा समिति (Committee of Imperial Defence) है जिसमें नौसेना मंत्री (Frist Lord of the Admiralty) युद्ध मंत्री और वायु सेना मंत्री के अतिरिक्त वे परिषद् के बाहर के व्यक्ति सदस्य हैं जिनको उनकी विशेषज्ञता के कारण प्रधान मंत्री नियुक्त कर देता है। दूसरी समिति गृह-विषयों की है जो देश के भीतरी शासन प्रबन्ध के मामलों पर विचार करती है। कुछ एतदर्थ समितियां (Adhoc Committees) भी होती हैं जो विशेष मामलों पर विचार करतीं और उन से सम्बन्धित विधेयकों को पार्लियामेंट में उपस्थित करने के लिये तैयार करती हैं।

अंतरीय परिषद् (Inner Cabinet)—इतने बड़े साम्राज्य पर शासन करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि शासन नीति का निर्माण-कार्य व उससे सम्बन्ध रखने वाले निर्णय गुप्त रखे जायं। पर ऐसा करना २३

---

* यूः दी इंगलिश कैबिनेट सिस्टम, पृ० २५८

सदस्यों वाली बड़ी सस्था में सम्भव नहीं हो सकता। इसलिये प्रायः उन मामलों के लिये जिनका गुप्त रखना बहुत आवश्यक है एक अंतरीय परिषद् होती है जिनमें कुछ प्रभावशाली मंत्री होते हैं जिनकी राय लेने के बाद प्रधान मंत्री मामलों को बड़ी परिषद् के विचारार्थ उपस्थित करता है। इसमें एक सुगमता यह भी होती है कि जब मंत्रिपरिषद् में वाद-विवाद होता है तो प्रधान मंत्री के मत को दृढ़ समर्थन प्राप्त हो जाता है।

युद्ध-परिषद् (१६१६-१६)—अंतरीय परिषद् की आवश्यकता प्रथम महायुद्ध के समय में प्रतीत हुई जब युद्ध सम्बन्धी मामलों में तुरन्त निर्णय और परिषद् की कार्यवाही को गुप्त रखना अनिवार्य हो गया। लायर्ड जार्ज ने प्रथम यह अंतरीय परिषद् सन् १६१६ के दिसम्बर मास में बनाई जब मिस्टर एस्क्विथ ने लायड जार्ज से मत भेद होने के कारण पदत्याग किया। इस अन्तरीय परिषद् में जो युद्ध परिषद् के नाम से प्रसिद्ध हुई, प्रधान मन्त्री लायड जार्ज के अतिरिक्त लार्ड कर्जन (प्रैसीडेन्ट आफ दी कौंसिल), लार्ड मिलनर, मिस्टर आर्थर हैण्डरसन और मिस्टर बौनरला (अर्थ मन्त्री) थे। कुछ समय के पश्चात् जनरल स्मट्स भी इसमें शामिल कर लिये गये जिससे युद्ध में साम्राज्य की दृढ़ एकता दिखला दी गई। इस प्रकार कार्यकारी शक्ति और उत्तरदायित्व २३ सदस्यों की मन्त्रि-परिषद् में न होकर ६ व्यक्तियों की एक छोटी युद्ध-परिषद् में केन्द्रित हो गई।

सन् १६३६ की युद्ध परिषद—सन् १६३६ में जब इंगलैंड ने जर्मनी से युद्ध करने की घोषणा की तो मिस्टर चैम्बरलेन ने अपनी युद्ध-परिषद् बनाई जिसमें ६ सदस्य थे : चैम्बरलेन, लार्ड हैलीफैक्स, होर-बैलीशा, चर्चिल, सर चार्ल्स किंग्सले वुड, लार्ड चैटफील्ड, सर जौन साइमन, सर सैमुअल होर, लार्ड सांके। एन्थौनी ईडिन को यद्यपि उसका सदस्य नहीं बनाया गया पर उन्हें बैठकों में बुलाया जाता था। पर इस छोटी परिषद् की भी विरोधी दल ने कटु आलोचना की और कहा कि युद्ध का अच्छी प्रकार संचालन करने के लिये यह बहुत विशाल संस्था है।

मंत्रिपरिषद् और मंत्रिमण्डल में भेद—मंत्रिपरिषद् १७ सदस्यों की छोटी संस्था है पर मंत्रिमण्डल में इन १७ व्यक्तियों के अतिरिक्त १५ अन्य मंत्री जिनका केबिनेट में स्थान नहीं और कई पदाधिकारी और पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी होते हैं। सन् १६१४ के युद्ध से पूर्व मंत्रिमण्डल में ६० से ७० व्यक्ति तक होते थे। पर युद्धोत्तर काल में सरकारी काम के बढ़

जाने से नये विभाग व नयी जगहें बनानी पड़ी। नये मंत्रिमण्डल में श्रम मंत्री और पेंशन मंत्री व खाद्य नोपरिवहण (shipping) कन्ट्रोलर भी शामिल हो गये। एक वायुयान बोर्ड भी बनाया गया और उसके पश्चात् राष्ट्रीय सेवा (National Service), पुनर्निर्माण (Reconstruction) यातायात और एकीकरण विभाग भी खुले। इन सब के खुल जाने के फलस्वरूप मंत्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या १०० से अधिक हो गई। मंत्रिमंडल की संख्या किसी कानून से निश्चित नहीं होती पर यह केवल प्रधानमंत्री से की हुई व्यवस्था पर निर्भर रहती है। जब मंत्रिपरिषद पदत्याग करती है तो मंत्रिमण्डल के सब पार्लियामेंटरी सेक्रटरी और दूसरे राजकर्मचारी जो मंत्रिपरिषद के आने पर नियुक्त हुये थे त्याग-पत्र दे देते हैं।

सर सिडनी लो ने, अन्तरीय मंत्रिपरिषद और मंत्रिमंडल की रचना में जो भारी परिवर्तन हुआ है, उस पर लिखते हुये कहा है "शासन प्रबन्ध करने वाली पार्लियामेंट को उत्तरदायी, पार्लियामेंट के सदस्यों में से चुन कर बनाई, हाउस आफ कामन्स से निकट सम्बन्ध रखने वाली, दलप्रणाली पर संगठित हुई और गुप्तरूप से मंत्रणा करने वाली मंत्रिपरिषद के स्थान पर अब हमारे यहां ऐसी परिषद है जो मंत्रिमण्डल नहीं कही जा सकती और ऐसा मंत्रिमण्डल है जिसे मंत्रिपरिषद नहीं कह सकते। अब परिषद् (Inner cabinet) केवल निर्देश करती है, शासन नहीं करती, और मंत्रिमण्डल ने सामूहिक उत्तरदायित्व के स्थान पर वैयक्तिक उत्तरदायित्व का भार ले लिया है। अब अन्तरीय परिषद् व हाउस आफ कामन्स का सम्बन्ध बड़ा दूरवर्ती हो गया है और किन्हीं बातों में तो परिषद् हाउस से बिकुल स्वतंत्र होकर कार्य करती है क्योंकि यह परिषद् दलबन्दी के प्रतिबन्धों से दूर रहती है और अपनी गुप्त मंत्रणाओं में देश के तथा साम्राज्य के उपराष्ट्रों के प्रतिनिधियों को भी बुलाती है।.....और दूसरी अनेकों क्रांतियों के समान यह क्राँति भी एक लम्बे क्रमिक विकास के फलस्वरूप हुई है। अंतरीय परिषद तो पहिले से ही थी हालांकि उसका अस्तित्व मान्य नहीं हुआ था। मिस्टर एस्क्विथ ने उसको व्यवस्थित रूप देकर मान्य कर दिया। उन्होंने इसके अमान्य गुप्त रूप को तोड़ने में एक कदम और आगे बढ़ाया और इस परिषद का एक मंत्री (सेक्रेटरी) भी नियुक्त कर दिया।"

मंत्रिपरिषद का शासन प्रणाली में स्थान—ब्रिटिश शासन प्रणाली में जो स्थान व शक्ति मंत्रिपरिषद को प्राप्त है उसे देखकर विदेशी राजीनीतिज्ञों को आश्चर्य होता है और वे उसकी प्रशंसा भी करते हैं। यद्यपि सिद्धान्ततः

मंत्रिपरिषद् पार्लियामेंट की सेवक है क्योंकि वह पार्लियामेंट (वस्तुतः हाउस आफ कामन्स) की निश्चित की हुई नीति को कार्यान्वित करती है और उसी समय तक अपने स्थान पर आरूढ़ रहती है जब तक हाउस आफ कामन्स का उसमें विश्वास रहता है, पर व्यवहार में मंत्रिपरिषद् सेवक न रह कर हाउस की स्वामिनी बन जाती है और अनेकों प्रकार से उसका नियंत्रण करती है। मंत्रिपरिषद् में बहुमत वाले दल के व्यक्ति ही होते हैं और प्रधानमंत्री उन सबका नेता होता है। दल की नियम-निष्ठा के अनुसार दल के छोटे बड़े सब व्यक्ति हाउस में मंत्रिपरिषद् की नीति का समर्थन करते हैं। मंत्रिपरिषद् ही दल के नियामकों (Whips) को यह बतलाती है कि दल के सदस्य किसी योजना पर किसकी ओर अपना मत दें। इसके अतिरिक्त बहुमत वाला दल स्वयं भी उत्सुक रहता है कि उसकी परिषद् ही अधिक से अधिक समय तक पदासीन रहे इसलिये दल के व्यक्ति स्वय भी दलनियामकों (Party-whips) की आज्ञाओं का अक्षरशः बिना हिचकिचाये पालन करते हैं। ऐसा होने से दल के सदस्यों की वैयक्तिक स्वतंत्रता जाती रहती है। विशेषकर मंत्रिपरिषद् की नीति की आलोचना करने के लिये तो वे बिलकुल मुंह खोल ही नहीं सकते। मंत्रिपरिषद् ही यह निर्णय करती है कि किस दिन गैर सरकारी विधेयकों पर विचार किया जा सकता है। हाउस का अधिकतर समय तो परिषद् से प्रस्तुत की हुई साधारण तथा अर्थसम्बन्धी योजनाओं पर विचार करने में ही लगा रहता है। विरोधी दल वाले चाहें तो परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव हाउस में रख सकते हैं पर मंत्रि परिषद् यह जानती है कि उसके पक्ष के व्यक्ति तो आंख बन्द करके उसका समर्थन करेंगे और इस समर्थन के बल पर वह विरोधी दल की आलोचना और दोषारोपणों को हंस कर टाल सकती है। यदि किसी गैर सरकारी सदस्य को अपनी योजना हाउस में पास करानी हो तो उसे मंत्रिपरिषद् को अपनी ओर झुकाना पड़ेगा वरना उसे अपनी योजना को स्वीकृत कराने की किञ्चित भी आशा न करनी चाहिये। इस प्रकार मंत्रिपरिषद् हाउस का नियंत्रण करती है। इस नियंत्रण को प्रायः मंत्रिपरिषद् की निरंकुश सत्ता कह कर पुकारा जाता है। इसमें संदेह नहीं कि इस समय हाउस मंत्रिपरिषद् की इच्छा पर अपनी मुहर भर लगा देता है, यद्यपि कभी कभी परिषद् को अपनी नीति की कटु आलोचना भी सुननी पड़ जाती है।

पाठ्य पुस्तकें

Anson, W. R.—Law and Custom of the Constitution, chs. on King, Cabinet and Ministers.

Bagehot, W.—English Constitution, chs. I, VI, VIII, IX.

Courtney,—Working Constitutions of the United Kingdom, chs. XII—XIII.

Dicey, A. V.—Law of the Constitution (1939 edition) pp. XCVII, CXV—CXX, CXIII—IV, 156, 463–466.

Emden, Cecil. S.—Select Speeches on the Consti tution, (World Classics) Vol. I pp. 1–96.

Finer, H.—Theory & Practice of Modern Governments, pp. 953–94 and 1110–28.

Greaves, H. R. G.—The British Constitution chs. IV and V

Laski,H. J.—Parliamentary Government in England, chs, V and VIII

Marriot, J. A. R.—English Political Institutions chs. III & V

Muir, Ramsay—How Britain is Governed, chs. III

Yu Wengteh—The English Cabinet System (1939 edition)

आठवां अध्याय

'जितनी राजनैतिक परम्परायें इंगलैण्ड में वर्तमान हैं उनमें जो कम से कम विदित हैं पर जो सबसे अधिक जानने योग्य हैं वह परम्परा है जिससे विशेषज्ञ और अनाड़ी का सम्बन्ध स्थिर होता है।'
(प्रैसीडेन्ट लावेल)

'दृष्टिकोण, शक्ति, बुद्धि की तत्परता, मनुष्यों से निबटने की कुशलता, किसी कार्य को प्रारम्भ करने और उसकी जिम्मेदारी लेने को हर समय तत्पर रहना ये सब गुण तभी विकसित होते हैं जब राजकीय कर्मचारी को अपने कार्य की पृष्ठभूमि में वह ज्ञान होता है जिससे उसका मस्तिष्क विकसित हुआ है।' (लार्ड हल्देन)

दी व्हाइट हाल

(The White Hall)

व्हाइट हाल क्या है—यदि नं० १० डाउनिंग स्ट्रीट में, जो ब्रिटिश प्रधान मन्त्री की राजकीय निवास स्थान है और जहाँ मन्त्रि परिषद् की बैठकें प्रायः हुआ करती है, शासन नीति की रूपरेखा निश्चित होती है और वह नीति पार्लियामेन्ट में स्वीकृत होती है तो व्हाइट हाल में उस नीति के अनुसार राज कर्मचारियों और शासन विशेषज्ञों द्वारा शासन प्रबन्ध परिचालित होता है। व्हाइट हाल के अफसर अपने काम में लगे रहते हैं चाहे पार्लियामेन्ट में कैसा ही राजनैतिक संघर्ष क्यों न हो रहा हो और चाहे मन्त्रि-परिषद में कैसी ही गुप्त मंत्रणा क्यों न हो रही हो। कोई मन्त्रि-परिषद जाये या रहे और शासन विभागों के अध्यक्ष अपने स्थान पर रहें या अलग हो जांय पर स्थायी शासन विशेषज्ञ अपने शासन-प्रबन्ध कार्य बराबर करते रहते हैं।

शासन नीति का निश्चय करना मन्त्रि-परिषद का काम है, उसको कार्यान्वित करना और उसके सम्बन्ध में दिन प्रतिदिन की कार्यवाही करना विविध प्रशासन विभागों पर छोड़ दिया जाता है।

प्रशासन-विभागों के अध्यक्ष—प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होता है जो मन्त्रिमण्डल सदस्य होता है। वही उस विभाग के कार्य अकार्य का

का उत्तरदायी हुआ करता है। प्रत्येक विभाग में एक उप सचिव भी रहता है। प्रायः इन दोनों व्यक्तियों में से एक हाउस आफ़ लार्ड्स से और एक हाउस आफ़ कामन्स से नियुक्त किया जाता है जिससे प्रत्येक आगार में ऐसा एक व्यक्ति रहे जो उस विभाग के कार्य के सम्बन्ध में प्रश्नों का उत्तर दे सके।

इन विभाग-अध्यक्षों के अतिरिक्त, जो पार्लियामेन्ट के सदस्य होते हैं, एक बड़ी संख्या स्थायी राज्य कर्मचारियों की होती है। प्रायः पार्लियामेन्ट के विभाग-अध्यक्षों को प्रशासन विभाग के कार्य संचालन की जानकारी व अनुभव नहीं होता इसलिये ऐसे स्थायी अफ़सरों का होना बड़ा आवश्यक है जिनके ऊपर विभागाध्यक्ष विश्वास कर सकें और जो प्रत्येक विभाग के कार्य का क्रम बनाये रहें। वास्तव में ये ही लोग अधिकतर शासन प्रबन्ध चलाते हैं। ये लोग अपने काम के लिये सचिव या उपसचिव को उत्तरदायी रहते हैं पर पार्लियामेन्ट को उत्तरदायी सचिव या उपसचिव को ही रहना पड़ता है।

वर्तमान प्रशासन-विभागों का धीरे धीरे विकास हुआ है। आरम्भ में जिन्हें हम अब सिविल सर्वेन्ट कहते हैं वे लोग कर वसूल करने वाले राजा के कोषमुन्शी या राजा का संदेश प्रजा तक पहुँचाने वाले सेक्रेटरी होते थे। पर अब इन लोगों का वेतन राजा की आय से न दिया जाकर पार्लियामेन्ट में प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा मंजूर होता है। सन् १८४८ के बाद से ही विभागों के आगणन (Estimate) पार्लियामेन्ट के सामने रखे जाने लगे हैं। इन विभागों के कर्तव्य तो बहुत प्राचीन हैं केवल उनका आधार पहिले से भिन्न है।

पार्लियामेन्ट ही साधारणतया विविध विभागों के कर्तव्यों को निश्चित कर देती है। पार्लियामेन्ट के सदस्य और साधारण जनता प्रायः यह भूल जाती है कि जब कोई नयी सरकारी योजना तैयार होती है तो उसको कार्यन्वित करने के लिये किसी न किसी को नियुक्त करना पड़ता है। शासन नीति या योजना तो पार्लियामेन्ट के एक्ट के रूप में आगयी पर वह एक्ट स्वसंचालनशील तो होती नहीं। कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का संगठन उसे कार्यरूप देता है। जब पार्लियामेन्ट किसी एक्ट के पास करती है तो प्रायः यह भी निश्चित कर देती है कि किस विभाग में इसका संचालन किया जावेगा। कभी कभी एक नया विभाग ही खोलना पड़ जाता है।

इस समय निम्नलिखित प्रशासन-विभाग वर्तमान हैं जिनमें उनके सामने लिखा हुआ काम होता है:—

होम आफिस (गृह-विभाग)—पुलिस, जेल, घरेलू शान्ति व सुव्यवस्था, कारखानों में श्रमिकों को काम की सुविधायें।

फौरिन आफिस (वैदेशिक विभाग)—विदेशी राज्यों से सम्बन्ध।

डोमिनियन आफिस—डोमिनियनों से सम्बन्ध, इम्पीरियल कान्फ्रेंस का काम।

कोलोनियल आफिस (उपनिवेश विभाग)—उपनिवेशों का शासन प्रबन्ध।

वार आफिस (युद्ध विभाग)—सेना का प्रबन्ध।

एयर मिनिस्ट्री (वायु विभाग)—वायु सेना का प्रबन्ध तथा वायुयानों से यातायात सम्बन्धी शासन।

इण्डिया आफिस—भारतवर्ष का शासन (अब यह विभाग तोड़ दिया गया है।)

बर्मा आफिस—ब्रह्मा का शासन (यह भी ब्रह्मा की स्वतंत्रता के पश्चात् तोड़ दिया गया है)।

एडमिरैलटी—(नौसेना विभाग)—नौसेना सम्बन्धी प्रशासन।

मिनिस्ट्री फार दी कौरडीनेशन आफ डिफेन्स—सुरक्षा सम्बन्धी विभागों का संयोजन।

बोर्ड आफ ट्रेड—(व्यापार विभाग)–व्यापारिक व औद्योगिक उन्नति।

मिनिस्ट्री आफ सप्लाई—युद्ध विभाग के लिये सामिग्री जुटाना।

मिनिस्ट्री आफ हैल्थ—(स्वास्थ्य विभाग)–स्थानीय प्रशासन, स्वास्थ्य, घर-निर्माण और नगर-निर्माण।

मिनिस्ट्री आफ ट्रांसपोर्ट—(यातायात विभाग)–यातायात के साधनों का प्रबन्ध, सड़कें तार इत्यादि।

बोर्ड आफ एज्यूकेशन—(शिक्षा विभाग)–शिक्षा प्रबन्ध।

मिनिस्ट्री आफ लेबर—(श्रम विभाग) बेकारी और रोजगार, श्रमिकों के झगड़े।

मिनिस्ट्री आफ पेंशन्स—पेंशनों का प्रबन्ध।

मिनिस्ट्री आफ एग्रीकल्चर एण्ड फिशरीज—(कृषि व मत्स्य विभाग)–कृषि व मछली पैदा कराने का प्रबन्ध, बाजार सम्बन्धी योजनाओं का प्रबन्ध।

ट्रैजरी—(अर्थ विभाग)–आय-व्यय का प्रबन्ध।

स्काटलैंड विभाग—स्काटलैंड सम्बन्धित सब विभागों का प्रबन्ध।

आफिस आफ वर्क्स—सरकारी इमारतों, प्राचीन स्मृति-आगार, शाही बाग आदि का प्रबन्ध।

कुछ दिनों से यह भावना बढ़ती जा रही है कि विभागों की संख्या बढ़ने से शासन-प्रबन्ध में अक्षमता (inefficiency) आती जाती है इसलिये इस संख्या को कम करने के लिये विभागों का पुनर्संगठन हो। इस सम्बन्ध में कई सुझाव रखे गये हैं पर अभी कोई कार्यान्वित नहीं हो पाया है।

अर्थविभाग को छोड़ कर जो सब विभागों का एक प्रकार से नियंत्रण करता है, बचे हुये विभागों को चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है। प्रथम, वे विभाग हैं जो सरकार के मुख्य काम करते हैं जैसे सुरक्षा व शान्ति का प्रबन्ध। इस श्रेणी में युद्ध विभाग, नौसेना विभाग, वायुसेना विभाग, गृह विभाग व स्काटलैंड विभाग; दूसरी श्रेणी में वैदेशिक मामलों से सम्बन्ध रखने वाले, वैदेशिक विभाग, स्काटलैंड के सेक्रेटरी का आफिस, इण्डिया आफिस व कौलोनियल आफिस (उपनिवेश विभाग) रखे जा सकते हैं। तीसरी श्रेणी में व्यापारिक विभाग (बोर्ड आफ ट्रेड), श्रम विभाग, कृषि विभाग व यातायात विभाग और चौथी में शिक्षा विभाग व स्वास्थ्य विभाग। पोस्टमास्टर जनरल का दफ्तर तीसरी श्रेणी में रखा जा सकता है हालाँकि उस का काम अर्थ-विभाग से सम्बन्धित है।

इन विभागों का संगठन विविध प्रकार का है। कुछ के ऊपर एक सचिव होता है जैसे गृह विभाग, वायु, वैदेशिक, युद्ध, स्काटलैंड, डोमिनियन, भारतवर्ष, उपनिवेश विभाग, दूसरे बोर्डों के रूप में संगठित हैं हालाँकि उन पर एक ही व्यक्ति का नियंत्रण रहता है जैसे अर्थ विभाग, शिक्षा विभाग, व्यापार विभाग, नौसेना विभाग। इनके अतिरिक्त कुछ के अध्यक्ष मंत्री होते हैं जैसे कृषि, स्वास्थ्य, यातायात, पेंशन विभाग। प्रत्येक विभाग एक पृथक इकाई है पर उन विषयों के लिये जो एक से अधिक विभागों से सम्बन्धित हैं मिली जुली समितियाँ हैं जो उन विषयों पर विचार करती हैं और प्रबन्ध में एकरूपता लाती हैं। हाल ही में एकीकरण कराने वाला संगठन बहुत बढ़ गया है।

इस पुस्तक में सब विभागों के संगठन और कर्तव्यों का विस्तृत विवरण नहीं दिया जा सकता इसलिये मुख्य मुख्य विभागों का विवरण ही दिया जायगा।

अर्थ विभाग (The Exchequer)—यह सब से पुराना विभाग है।

यह वह कीली है जिस पर इंगलैंड का सारा आर्थिक संगठन घूमता है। नार्मन काल में यह केवल राजा के करों को उगाहने का काम करता था पर समय बीतने पर यह राज्य के कर उगाहने का काम करने लगा, तब भी उस पर नियंत्रण स्वयं राजा का ही रहा। सन् १६८६ मे ही जाकर इस पर पार्लियामेंट का नियंत्रण आरम्भ हुआ। पार्लियामेंट का नियंत्रण इस रूप में रहता है कि बिना पार्लियामेंट की अनुमति के न तो राजकोष में कोई धन आ सकता है न बाहर जा सकता है। चाहे मुद्रा कर लगाने के फलस्वरुप आवे या ऋण के द्वारा, सब राजकोष में पहिले जमा किया जाता है। इस राशि में से एक पैनी भी बाहर नहीं दी जा सकती जब तक कि पार्लियामेंट की उसके लिये अनुमति न हो। कभी कभी पार्लियामेंट एक बार यह निश्चय कर देती है कि अमुक २ खर्चा कोष में से बराबर दे दिया जाया करे पर अधिकतर खर्चा प्रति वर्ष पार्लियामेंट मंजूर करती है।

इस विभाग का अध्यक्ष अर्थमंत्री, जिसे चान्सलर आफ दी एक्सचैकर कह कर पुकारते हैं, होता है, वह मंत्रिपरिषद का एक प्रमुख सदस्य होता है। विदेश-सचिव को छोड़ कर वही मंत्रिपरिषद में सब से महत्वपूर्ण विभाग का अध्यक्ष होता है। यह आवश्यक नहीं है कि इस विभाग का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति हो जो मुद्रा सम्बन्धी मामलों का विशेषज्ञ हो क्योंकि उसको परामर्श देने के लिये कई विशेषज्ञ इस विभाग में रहते हैं जो प्रत्येक पेचीदा विषय में उचित सलाह दे सकते हैं। फिर भी चाँसलर को संख्याओं से प्रेम, उनको समझने और याद रखने की शक्ति और छोटी छोटी बातों में रुचि होना आवश्यक है। पर सब से बड़ी बात जो अर्थमंत्री में होना चाहिये वह है विचार करने में तत्परता और अपने विचार को भली भांति प्रकट करने की योग्यता। हाउस आफ कामन्स में सब ओर से प्रश्न पर प्रश्न किये जाते हैं और उसमें उन सब का उत्तर थोड़े से शब्दों में ऐसे देने की योग्यता होनी चाहिये जिससे उत्तर का अभिप्राय सुगमता से समझ में आजाय। क्योंकि प्रायः प्रश्न इसलिये नहीं किये जाते कि उस को परेशान किया जाय बल्कि इसलिये कि साधारण पार्लियामेंट के सदस्य बहुत सी बातों को समझने नहीं पाते और प्रश्न के द्वारा समझने का प्रयास करते हैं। बहुत से व्यक्तियों में थोड़े से शब्दों में किसी बात को समझाने की योग्यता नहीं होती। वे समझाते समय उल्टा समझने वाले को और अधिक चक्कर में डाल देते हैं।

चांसलर आफ दी एक्सचैकर इस प्राचीन विभाग का ही परम्परागत अध्यक्ष नहीं, वह तो ट्रैजरी अर्थात् राजकोष विभाग का भी वास्तविक अध्यक्ष

होता है, यहां अर्थ विभाग और राजकोष विभाग इन दोनों नामों से समझने में कुछ गड़बड़ हो सकती हैं। संयुक्तराष्ट्र अमरीका में ट्रैजरी नाम से पुकारा जाने वाला एक विभाग वाशिंगटन में है। उस विभाग का अध्यक्ष सेक्रेटरी आफ दी ट्रेजरी कहलाता है जो प्रेसीडेंट की मंत्रिपरिषद का सदस्य होता है वही संयुक्त राष्ट्र अमरीका का अर्थमंत्री (Finance Minister) होता है। पर इंगलैंड में राजकोष एक बोर्ड या समिति के आधीन है और उस समिति का अध्यक्ष फर्स्ट लार्ड आफ दी ट्रैजरी (First Lord of the Treasury) होता है। यह पद प्रायः प्रधान मंत्री ग्रहण करता है पर वास्तव में वह राजकोष का अध्यक्ष नहीं होता। यह बोर्ड केवल नाममात्र का बोर्ड है। इस बोर्ड तथा इसके अध्यक्ष का सारा काम चान्सलर आफ दी एक्सचैकर अर्थात् अर्थमंत्री ही करता है। अर्थमंत्री ही यह देखता है कि खर्चे को पूरा करने के लिये आवश्यक मुद्रा कर आदि साधनों से एकत्रित हो और उसके लिये आवश्यक कानून आदि की योजना हो। सरकार की आय-व्यय सम्बन्धी नीति की उपयुक्तता को सिद्ध करने के लिये वही कामन्स में उस नीति पर दोषारोपणों का उचित उत्तर देता है। उस के आय-व्यय सम्बन्धी प्रस्ताव केवल अर्थ विभाग के बनाये हुये प्रस्ताव ही नहीं होते, वे सारे मंत्रिमण्डल की ओर से स्थिर किये हुये प्रस्ताव होते हैं। मंत्रिपरिषद के सदस्य के नाते ऐसे प्रस्तावों को वह पहिले परिषद के सम्मुख उपस्थित करता है और वहाँ ऐसा हो सकता है कि वह अपने मित्रों के अनुरोध पर उन प्रस्तावों में परिवर्तन कर दे विशेषकर यदि ऐसा करना किसी महत्वपूर्ण विषय में आवश्यक हो, पर प्रायः मंत्रिपरिषद अर्थमंत्री के प्रस्ताव का उचित आदर करती है। ऐसा करना अनिवार्य भी हो जाता है क्योंकि वे प्रस्ताव अर्थ विभाग के विशेषज्ञों द्वारा व अर्थ मंत्री के बड़े विचार-पूर्वक अनुमान के फलस्वरूप बनाये हुये होते हैं इसलिये उन सब को जितना अर्थ मंत्री समझता है, दूसरे मंत्री उनकी पेचीदगी को उतना नहीं समझ सकते।

गृह विभाग—गृह-विभाग या होम आफिस एक छोटा सा विभाग है जिसमें कई छोटे छोटे काम होते हैं। इसका अध्यक्ष होम सेक्रेटरी कहलाता है जो मंत्रिपरिषद का सदस्य हुआ करता है। उसके आधीन एक उप-सेक्रेटरी, बन्दीगृह-कमिश्नर, एक पुलिस कमिश्नर, चीफ इन्सपैक्टर आफ फैक्टरीज आदि अफसर होते हैं। केवल होम सेक्रेटरी और उप-सेक्रेटरी ही पार्लियामेंट के सदस्य होते हैं जो मंत्रिपरिषद के पदत्याग करने पर अपने पद से हट

जाते हैं। दूसरे अफसर स्थायी अफसर होते हैं। वे मंत्रिमण्डल के बदलने पर नहीं बदलते।

गृह विभाग का साधारण काम देश में शान्ति और सुव्यवस्था की रक्षा करना है। इस काम में पुलिस, पुलिस-न्यायालय, बन्दीगृह, क्षमाप्रदान, विदेशी व्यक्तियों को जानपद बनाना, अपराधियों का उदर्पण (Extradition) आदि विषयों से इस विभाग का सम्बन्ध रहता है। इसके अतिरिक्त यह विभाग कारखानों की देख भाल भी करता है और कारखानों से सम्बन्धित कानूनों को कार्यान्वित करता है। यह अनोखी सी बात है कि यह औद्योगिक कार्य भार गृह-विभाग पर डाला गया है, पर इसका एक ऐतिहासिक कारण है। एक शताब्दी पूर्व सन् १८३३ में जब पहिले पहिल फैक्टरी सम्बन्धी कानून पास हुए तो इनकी देख भाल करने वाले राजकर्मचारी गृह-विभाग के आधीन कर दिये गये क्योंकि और किसी विभाग के आधीन करना सुकर न दिखाई पड़ता था। उस समय इन कारखानों के कानूनों के अन्तर्गत देख-भाल करने का काम पुलिस के काम जैसा समझा जाता था। आजकल इस काम का अधिक व्यापक उद्देश्य है और शान्ति व सुव्यवस्था से कोई उसका सरोकार नहीं पर फिर भी वह काम पहिले की तरह अभी उसी विभाग में होता चला आ रहा है। यूरोप के राष्ट्रों की तरह गृह विभाग का इंगलैंड में स्थानिक शासन से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह तो केवल वहाँ की पुलिस की देख भाल ही करता है।

वैदेशिक विभाग—वैदेशिक विभाग का अध्यक्ष सैक्रेटरी आफ स्टेट फौर फौरिन एफेअर्ज़ (Secretary of State for Foreign Affairs) या वैदेशिक मंत्री कहलाता है। वह सर्वदा मंत्रिपरिषद का सदस्य होता है। कभी कभी इस पद का भार प्रधानमंत्री भी अपने ऊपर ले लेता है। वैदेशिक मंत्री को सहायता देने के लिये एक पार्लियामेंटरी उपसेक्रेटरी, एक स्थायी उपसेक्रेटरी, कुछ परामर्शदाता आदि होते हैं। इनके अतिरिक्त एक बहुत बड़ी संख्या राजकर्मचारियों की होती है जो इस विभाग में काम करते हैं। इस विभाग का काम संसार के प्रत्येक भाग से सम्बन्ध रखना है। काम के प्रकार पर आधारित न रह कर इस विभाग के काम का विभाजन देशों के आधार पर होता है अर्थात् इस विभाग का एक भाग अफ्रीका, दूसरा जापान, तीसरा अमरीका आदि से सम्बन्धित पत्र-व्यवहार आदि के काम को निबटाता है। युद्ध के समय में इस विभाग का महत्व बहुत बढ़ जाता है, यहां तक कि सब प्रशासन विभागों में सबसे अधिक महत्व इसी विभाग का हो जाता है।

इस विभाग में सब देशों के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित होकर उसका निरीक्षण किया जाता है। उस निरीक्षण के आधार पर इस विभाग से विदेश स्थित अंगरेजी राजदूतों को आवश्यक आदेश भेजे जाते हैं। इंगलैंड स्थित विदेशों के राजदूतों से भी यही विभाग सम्पर्क रखता है। विदेशी राज्यों से संधि करना, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में इंगलैंड के प्रतिनिधि नियुक्त करके भेजना आदि काम भी इसी विभाग में होते हैं। कुछ समय पहिले इंगलैंड के व्यापारिक प्रतिनिधियों की देख भाल भी इसी विभाग से होती थी पर इन प्रतिनिधियों का प्रमुख काम यानी विदेशी व्यापार की उन्नति और व्यापार सम्बन्धी सन्धियों की बात चीत करना अब बोर्ड आफ ट्रेड के विदेशी व्यापार विभाग द्वारा होता है। वैदेशिक विभाग केवल इंगलैंड सम्बन्धी विषयों से नहीं बर्तता बल्कि सारे ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल की ओर से कार्यवाही करता है।

श्रम-विभाग—यह नया विभाग है जो सन् १९१७ में स्थापित हुआ। आरम्भ से ही इस विभाग का अध्यक्ष श्रम मंत्री मंत्रिपरिषद का सदस्य होता चला आ रहा है। इस विभाग के कर्तव्य बिलकुल नये नहीं हैं उनमें से बहुत से पहिले बोर्ड आफ ट्रेड विभाग में निबटाये जाते थे। साधारणतः उद्योग सम्बन्धी मामलों से, जैसे श्रमिकों के सम्बन्ध में उठने वाले या कच्चे माल को जुटाने वाले प्रश्नों से, यह विभाग सम्पर्क रखता है। श्रमिकों और उद्योगपतियों के बीच झगड़ों को निबटाना, एम्प्लोयमेंट एक्सचेन्ज, बेकारी का बीमा, व्यावसायिक समितियों और श्रमियों की संख्या एकत्रित करना आदि बातों से इस विभाग का सम्बन्ध रहता है। संक्षेप में यह विभाग उद्योगों में काम करने वालों की समस्याओं के सुलझाने ही का काम करता है, उत्पादन, उसकी बिक्री या पूंजी आदि से इस विभाग का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उद्योगी-न्यायालय सम्बन्धी सन् १९१९ के एक्ट के अन्तर्गत यही विभाग कार्यवाही करता है, उद्योग समितियों से भी इसका सम्बन्ध रहता है। ये समितियाँ इस विभाग के आश्रय में बनाई जाती हैं और इनमें उद्योगपतियों, श्रमिकों व साधारण जनता के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं। जब यह समिति किसी उद्योग के लिये न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर देती है तो श्रम विभाग यह आज्ञा निकाल देता है कि प्रत्येक उद्योगपति को वह मजदूरी अपने काम करने वालों को अवश्य देनी होगी। एम्प्लोयमेंट एक्सचेन्ज सबसे पहिले सन् १९०९ में बनी थीं। युद्ध के पश्चात् इनकी संख्या बहुत बढ़ गई और अब सारे देश में इनका जाल बिछा हुआ है। इनका काम मजदूरों को काम दिलाना और काम के लिये मजदूरों की व्यवस्था करना है। सन् १९२० में बेकारी बीमा एक्ट पास हो जाने से इस विभाग का काम और खर्चा और अधिक बढ़ गया है।

बेकारी आधुनिक सामाजिक व आर्थिक संगठन का अपरिहार्य परिणाम है। बेकारी से पीड़ित व्यक्ति समाज की औद्योगिक सेना के सिपाही की तरह हैं जिनकी देखभाल करना राज्य का कर्तव्य हो जाता है। इसलिये बीमा के लिये एकत्रित धन इस संरक्षित औद्योगिक सेना को ठीक प्रकार से रखने में व्यय किया जाता है। यह संरक्षित औद्योगिक सेना किसी विशेष उद्योग के लिये ही नहीं रहती पर सारे समाज के हित के लिये ही सरकार इसका पालन-पोषण करती रहती है।

सब बातों के देखते हुये यह कहा जा सकता है कि श्रमिक-विभाग काम दिलवाने और उद्योगपतियों व श्रमिकों के पारस्परिक सम्बन्ध को सहयोग-पूर्ण बनाने का काम करता है। कुछ सीमा तक इन सम्बन्धों पर यह विभाग अपना नियंत्रण भी रखता है पर अधिकतर प्रवृत्ति यह रहती है कि सरकारी नियंत्रण न रह कर स्वतः ही उद्योगपतियों व श्रमिकों की सहयोग-समितियां आदि बनें जिनमें वे स्वयं आपस के मामलों को प्रेमपूर्वक निबटा लें।

स्वास्थ्य विभाग—यह विभाग सन् १९१९ में स्थापित हुआ। इसका काम स्वास्थ्य सम्बन्धी काम का निर्देशन करना है पर वास्तव में स्वास्थ्य-सम्बन्धी काम की मात्रा बहुत थोड़ी है, प्रमुखतः तो यह विभाग स्थानीय शासन से सम्पर्क रखता है। जो काम पहिले स्थानीय-शासन बोर्ड करता था वह इस विभाग ने ले लिया और इसको नेशनल इन्श्यौरेंस कमिश्नरों के काम से मिला दिया। दूसरे शासन-विभागों से भी कुछ काम हट कर इस विभाग में आ गया, उदाहरणार्थ, शिक्षा विभाग से विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की देखभाल का काम व गृह-विभाग से पागलों आदि के सम्बन्ध का काम। दूसरी ओर स्थानीय-शासन का सब काम इस विभाग में न आ कर दूसरे विभागों में भी बाँट दिया गया जैसे ट्राम गाड़ियों का काम यातायात विभाग में कर दिया गया।

साधारणतया इस विभाग में निम्नलिखित काम होता है:—स्थानीय शासन संस्थाओं के हिसाब की जाँच, छूतरोग सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाना, संक्रामक बीमारियों के रोकने का प्रबन्ध करना व दूसरी नगर व ग्राम की शासन-संस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाली बातों की देख भाल करना।

इस विभाग के आधीन चार परामर्श दात्री समितियाँ स्थापित की गई हैं जो स्थानीय स्वास्थ्य-प्रबन्ध, चिकित्सा तथा औषधि सम्बन्धी काम, मान्य-समितियों की कार्यवाही की देखभाल और सामान्य स्वास्थ्य के प्रश्नों से सम्पर्क

रखती हैं। वृद्धावस्था की पेंशन का प्रबन्ध भी इसी विभाग में होता है। अन्धों की देखभाल के लिये भी आयोजन है। वासस्थान (Housing) का प्रबन्ध इसका एक मुख्य काम है। अन्वेषण का आरम्भ व उसके लिये आवश्यक सहायता देने का अधिकार भी इस विभाग को दिया गया है। इस विभाग के मन्त्री को सहायता देने के लिये एक पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी और अनेक चिकित्सा अफसर होते हैं।

सन् १६१४ के युद्ध काल में कई नये विभाग खोले गये थे पर उनमें से अधिकतर युद्ध के समाप्त होने पर तोड़ दिये गये। जो बचे, उनमें पेंशन विभाग व यातायात विभाग मुख्य थे जो स्थायी रूप से स्थापित हो गये। पेंशन विभाग सन् १६१६ में पार्लियामेन्ट के एक एक्ट द्वारा स्थापित हुआ और इसको पेंशन सम्बन्धी सारा काम युद्ध-विभाग, नौसेना विभाग व चैलसिया-कमिश्नरों से हटा कर सौंप दिया गया। एक दूसरा युद्धोत्तर विभाग जो बड़े महत्व का है वह वैज्ञानिक व औद्योगिक अन्वेषण विभाग है। सन् १६१५ में इसके लिये एक समिति नियुक्त कर दी गई। इस समिति को यह काम दिया गया कि वह पार्लियामेन्ट से मंजूर किये हुये अनुदानों को अर्थ विभाग के आदेशानुसार वैज्ञानिक व औद्योगिक अन्वेषण के काम में व्यय करे। इस समिति का अध्यक्ष कौंसिल का लार्ड प्रेसीडेन्ट होता है। दूसरे सदस्यों में उपनिवेश मन्त्री, अर्थ मन्त्री, स्काटलैण्ड-मन्त्री, आयरलैंड का प्रधान सचिव, व्यापार बोर्ड व शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष और पाँच दूसरे व्यक्ति होते हैं। इस समिति की स्थापना के साथ ही साथ एक परामर्श देने वाली समिति व एक पृथक विभाग भी स्थापित किया गया जिनको अन्वेषण सम्बन्धी सब प्रार्थना-पत्र भेजे जाते थे। विभाग के आश्रय में मुख्य मुख्य विषयों पर अन्वेषण करने के लिये विशेष बोर्ड भी नियुक्त किये गये जैसे ईंधन-अन्वेषण बोर्ड (Fuel Research Board) आदि।

इन विभागों के अतिरिक्त कई दूसरे विभाग भी हैं जैसे व्यापार विभाग या बोर्ड आफ ट्रेड (जिसके दो भाग हैं (१) नौकरियों का प्रबन्ध व (२) व्यापार और उद्योग), कृषि-विभाग, शिक्षा विभाग, पोस्टमास्टर जनरल, कमिश्नर आफ वर्क्स इत्यादि। ये विभाग अपने अपने नाम के अनुसार काम करते हैं। प्रथम महायुद्ध के समय यह प्रथा चल गई कि किसी बड़े राजनीतिज्ञ को मन्त्रि-परिषद् का मन्त्री बना दिया जाता था पर उसके आधीन किसी शासन विभाग का प्रबन्ध न होता था। यह प्रथा द्वितीय महायुद्ध में भी चालू रही।

इण्डिया आफिस—सन् १९४७ के अगस्त मास तक इण्डिया आफिस सेक्रेटरी आफ स्टेट फौर इण्डिया का कार्यालय था। सेक्रेटरी आफ स्टेट फौर इण्डिया की गिनती प्रमुख पाँच सेक्रेटरियों में होती थी। इसके कार्यालय से ही भारतवर्ष के शासन प्रबन्ध का नियन्त्रण होता था। इसके आधीन दो उप-सेक्रेटरी, एक पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी और एक स्थायी सेक्रेटरी होता था। पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी पार्लियामेन्ट का सदस्य होता था पर मन्त्रि परिषद् का सदस्य न बनाया जाता था। एक परामर्श देने वाली समिति भी थी जिसमें कम से कम तीन और अधिक से अधिक छः व्यक्ति होते थे जिनको सेक्रेटरी आफ स्टेट पाँच वर्ष के लिये नियुक्त करता था। यह समिति सेक्रेटरी को अपने काम को अच्छी प्रकार सम्पादित करने में सलाह दिया करती थी। भारतवर्ष के सब मामलों में सेक्रेटरी आफ स्टेट सम्राट का वैधानिक सलाहकार था और वह गवर्नर-जनरल व गवर्नरों के काम की देख भाल रखता तथा उनको आदेश देता था। वही इण्डियन सिविल सर्विस, सिंचाई आदि की नौकरियों के लिये भर्ती करता था। वह ही और मन्त्रियों के समान भारतीय मामलों में पार्लियामेन्ट को उत्तरदायी था।

सिविल सर्विस

सिवल सर्विस कार्यकारिणी के हाथ व पैर हैं, जो कार्यशील बना, उसके उद्देश्य को सफल बनाने में सहायक होते हैं। सिवल सर्विस अपनी कार्य-पटुता के लिये प्रसिद्ध है। इस सिविल सर्विस का प्राचीन इतिहास बड़ा रोचक है। सोलहवीं शताब्दी से पूर्व ऐसे व्यक्ति देश के दूरवर्ती भागों में शासन प्रबन्ध करते थे जो राजा के दरबारियों में मनोनीत हुए होते थे। उस समय की प्रबन्ध प्रणाली बड़ी दोष पूर्ण व असफल थी। शासन कर्मचारियों का काम सोलहवीं शताब्दी के बीच से १८वीं शताब्दी के अन्त तक इतना खराब था कि केन्द्रीय शक्ति को बार-बार नये कानून बनाने पड़ते थे जिनकी प्रस्तावना में शिकायतें, झिड़कियाँ व धमकियाँ भरी रहता थीं। स्थानीय अफसरों के काम की देख भाल करने वाले केन्द्रीय शासन के अफसर न होने से राज्य करों में बड़ा घाटा पड़ता था और प्रजा पर अनाचार तथा अत्याचार भी होता था। राज्य के कानून प्रायः ऐसे व्यक्तियों के द्वारा कार्यान्वित होते थे जो इस कार्य में कुशल न होते थे और जिनको इस काम के लिये सरकार की ओर से कोई वेतन न मिलता था। उस समय न्यायकारी तथा कार्यकारी कर्तव्यों का पृथक विभाजन न हुआ था।

स्थानीय शासन पर केन्द्रीय नियंत्रण १६वीं शताब्दी से आरम्भ होने लग गया था। यह नियंत्रण अकाल पीड़ित व्यक्तियों के कष्ट को दूर करने के लिये पूअर लौ, अर्थात् निर्धनों के कानून को अच्छी तरह कार्यान्वित करने के लिये विशेषरूप से आरम्भ किया गया। सन् १६३१ में निर्धन-सहाय सम्बन्धी सूचना एकत्रित करने के लिये तथा न्याय-प्रबन्ध को सुधारने के लिये आदेश पुस्तक (Book of Orders) में तत्सम्बन्धी आदेश तथा निर्देश प्रकाशित किये गये। गृह-युद्ध के छिड़ जाने से इस केन्द्रीयकरण की गति रुक गई। १७वीं व १८वीं शताब्दी में पार्लियामेंट का ध्यान उपनिवेश-सम्बन्धी विषयों में लगा रहा। जब वैधानिक सुधार का समय आया तभी शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी सुधार हुए क्योंकि पहिले के बिना दूसरे में सुधार करना असम्भव था और दोनों ही बड़े दोषपूर्ण हो चुके थे। उस समय वेतन-भोगी राजकर्मचारियों की न कोई लिखा पढ़ी थी न हिसाब किताब। इसलिये केन्द्रीय शासन का उन पर नियंत्रण भी कैसे हो सकता था। बहुत से वेतन पाने वाले राजकर्मचारी अमरीकन उपनिवेशों में जाकर मौज उड़ाया करते थे।

सन् १८५५ में वर्तमान सिविल सर्विस का श्रीगणेश हुआ। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मैकौले ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आधीन भारतीय सिविल सर्विस की भरती के लिये जो योजना बनाई उसी के अनुरूप ब्रिटिश सिवल सर्विस को भी बनाकर सुधार करने की योजना बनाई गई। लार्ड जान रसल (Lord John Russel) प्रधान मंत्री व सर चार्ल्स वुड अर्थमंत्री ने शासन प्रबन्ध के विभिन्न विभागों में पूछताछ करने का काम सर चार्ल्स ट्रैविल्यान व सर स्टेफार्ड नार्थकोट को सौंपा। उनकी रिपोर्ट सन् १८५३ में प्रकाशित हुई और इनकी योजना का बड़ा स्वागत हुआ। शासन की विभिन्न नौकरियों में भर्ती के लिये एक विशेष परीक्षा का आयोजन किय गया। उन्होंने यह सिफारिश भी की कि प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं के लिये सामान्य शिक्षा न कि विशेष शिक्षा का माप रखा जाय। इन परीक्षाओं का प्रबन्ध करने के लिये सन् १८५५ में एक सिवल सर्विस कमीशन की नियुक्ति कर दी गई। कमीशन को प्रतियोगियों की योग्यता, आयु, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा साधारण जानकारी आदि को निश्चय करने का भार सौंप दिया गया। पर कमीशन की परीक्षा में सफलता केवल अनुमतिदायक थी, वह सिवल सर्विस के लिये अनिवार्य न की गई थी क्योंकि बिना कमीशन के प्रमाणपत्र पाये हुए व्यक्ति यदि परिपक्व आयु के होते थे तो भी वे नौकरियों में भर्ती किये जा सकते थे।

सन् १८७० में कहीं जाकर नौकरियों में नियुक्ति करने की प्रणाली की ठीक व्यवस्था हो पाई जब (१) नौकरियों में भर्ती होने से पूर्व प्रतियोगितात्मक परीक्षा अनिवार्य कर दी गई (२) व्यवसायी पदों के कर्मचारियों के लिये इस परीक्षा के बन्धन हटाने का अधिकार कमीशन को दे दिया गया (३) कुछ कर्मचारियों की नियुक्ति सीधे राजा द्वारा होने का आयोजन कर दिया गया (४) विभागाध्यक्षों को यह अधिकार दे दिया गया कि कमीशन की सम्मति से वे कुछ पदों के लिये परीक्षा का प्रतिबन्ध हटा सकें और (५) अर्थ विभाग को विभागों के संगठन करने का अधिकार दे दिया गया। इस के पश्चात् भी कई कमीशन नियुक्त किये गये जिन्होंने नौकरियों के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक नियमावली आदि बनाकर सिविल सर्विस को बिलकुल व्यवस्थित रुप दे दिया।

वर्तमान सिविल सर्विस प्रणाली ने, जिसका मूलसिद्धान्त खुली प्रतियोगिता है, विभिन्नश्रेणियों के कुशल राजकर्मचारी प्रदान किये हैं। इस समय लगभग ५ लाख या इससे भी अधिक व्यक्ति विभिन्न शासन विभागों में काम करते हैं। प्रबन्धकर्ता अफसर नौकरियों के लिये वही काम करते हैं जो काम शरीर में मस्तिष्क करता है और ये लोग अधिकतर आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाये हुये होते हैं।

राजकर्मचारियों को किसी राजनीतिक दल में शामिल होने की अनुमति नहीं होती। स्थायी नौकर होने के कारण उनका काम यही है कि मंत्रियों व विभागाध्यक्षों की नीति और आज्ञाओं को उनके आदेशानुसार कार्यान्वित करें।

पाठ्य पुस्तकें

Allen, C. K.—Bureaucracy Triumphant (1931).

Allen, C. K.—Law in Making.

Allen, C. K.—The Development of Civil Service (1922).

Cripps, Sir Stafford—Democracy up to date (1939).

Finer, H. —Theory and Practice of Modern Government, pp. 1163–1514.

Greaves, H. R G.—The British Constitution ch. VII.

Laski J. H.—Parliamentary Government in England (1938) pp. 309–359.

Low, Sir Sidney.—Governance in England pp. 199–217.

Gretton,—The King's Government.

Marriot—English Political Institution ch. V.

अध्याय ६

अंगरेजी न्यायमण्डल

"पार्लियामेंट में एक्ट स्वयं-परिचालित नहीं होते; उन्हें प्रयोग में लाना पड़ता है। प्रयोग क्रिया के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा उनकी व्याख्या का भी समावेश किया जाता है क्योंकि ब्रिटिश शासन-विधान का यह सिद्धान्त है कि केवल स्पष्ट व संदेह रहित शब्द ही—और स्यात् वे भी नहीं—किसी व्यक्ति का यह अधिकार छीन सकते हैं कि वह धारा सभा के अभिप्राय को न्यायालय द्वारा स्थिर करा सकता है"

(एच० जे० लास्की)

"जहां न्यायाधीशों की दृष्टि के सामने ही न्याय का अन्याय से व सत्य का असत्य से हनन होता हो और न्यायाधीश किंकर्तव्य-विमूढ़ की तरह यह सब देखते रहते हों वहां न्यायाधीशों को मरा हुआ ही समझना चाहिये। न्याय के हनन से हनन करने वाले का नाश हो जायगा। न्याय की रक्षा से रक्षक की रक्षा होगी"

(स्वामी दयानन्द)

ब्रिटेन की न्याय-प्रणाली परम्परागत नीति नियमों पर आधारित है जिसका मूलभूत सिद्धान्त है न्याय शासन (Rule of Law)। इस न्याय संगठन में वे संस्थायें और न्यायालय हैं जो समय समय पर प्राचीन काल में बिना किसी पूर्वनिश्चित युक्ति के स्थापित होते गये। इसीलिये इनका भूल-भुलैयाँ जैसा रूप हो गया था जिसको ठीक करने के लिये सन् १८६० के पश्चात् इस में बड़ा सुधार करना पड़ा।

निर्बन्ध-शासन

(Rule of Law)

अंगरेजी न्याय-संगठन तब तक अच्छी तरह बुद्धि गम्य नहीं हो सकता जब तक हमें रूल आफ लौ अर्थात् निर्बन्ध-शासनके इस मूलभूत सिद्धान्त* के

---

* प्रोफ़ेसर डायसी द्वारा समझाये हुए तीन सिद्धान्तों को पिछले पृष्ठों पर देखिये।

सब अनुमानों को स्पष्टतया न समझ लें। इस सिद्धान्त से स्वेच्छाचार के स्थान पर विधिपूर्वक बनाये हुये कानून को प्रतिष्ठापित कर दिया गया है। इसने कानून की दृष्टि में सब श्रेणियों व वर्गों के व्यक्तियों की समानता मान्य कर दी है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि शासन-विधान को भी इसने साधारण कानून की नींव पर ही खड़ा किया है।

निर्बन्ध-शासन के अपवाद—निर्बन्ध-शासन में कुछ अपवाद भी मान लिये गये हैं। इन अपवादों में राजा प्रथम है। 'राजा कोई गलती नहीं करता' इस कानूनी सिद्धान्त के अनुसार राजा पर कोई माल या फौजदारी का अभियोग नहीं लगाया जा सकता। यदि राजा कोई अपराध करता है तो उसे किसी न्यायालय में उपस्थित होने के लिये आदेश नहीं दिया जा सकता। उसे पागल करार देकर डाक्टरों की देख रेख में रखा जा सकता है पर किसी भी कानून से उस पर उसी के न्यायालयों में मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता। इसी प्रकार सम्पत्ति-सम्बन्धी मामलों में या प्रजा के किसी व्यक्ति की राजा द्वारा हानि हो जाये तो वह केवल राजा से प्रार्थना कर सकता है और राजा चाहे तो अपनी कृपा दृष्टि से, न कि प्रार्थी के अधिकार की रक्षा के लिये, उस क्षति को पूरा कर दे। इसके सिवाय और कोई दूसरा उपाय नहीं है। दूसरे अपवाद में राज्य के अफसर आते हैं। अपने सरकारी काम में यदि वे कोई काम करते हैं जिससे किसी कानून का उल्लंघन होता है तो वैयक्तिक रूप से उन पर कोई मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता। उनके ऐसे सब कामों के लिये राज्य ही जिम्मेदार समझा जाता है। तीसरे, यदि न्यायाधीश अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर भी अनजाने कोई अपराध कर दें तो वे भी वैयक्तिक रूप से अपराधी नहीं ठहराये जा सकते। छोटे मजिस्ट्रेट (Justices of the Peace) भी यदि द्वेषपूर्ण व्यवहार न करें तो अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी राजकीय कार्यवाही के लिये अपराधी नहीं ठहराये जा सकते।

निर्बन्ध-शासन से अनुमानित नागरिक अधिकार—यह कहा जाता है कि इंगलैण्ड में नागरिक अधिकारों की घोषणा के अभाव की पूर्ति निर्बन्ध-शासन द्वारा होती है। इस निर्बन्ध-शासन के सिद्धान्त से कुछ नागरिक अधिकार अनुमान द्वारा मान्य हो गये हैं जिनको न्यायालय निर्णय देते समय शिरोधार्य करते हैं। ये अधिकार हैं:—(१) दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार (२) वाक्-स्वातन्त्र्य का अधिकार (३) सार्वजनिक सभा करने का अधिकार। दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार के कारण कोई भी व्यक्ति बिना किसी कानून-भंग का अपराधी हुये बन्दी नहीं बनाया जा सकता। और उसका अपराध साधारण

न्यायलय द्वारा निर्णित होगा। कोई भी न्यायालय किसी व्यक्ति को दण्ड देने की आज्ञा नहीं दे सकता जब तक उस व्यक्ति का अपराध सिद्ध न हो जाय। प्रत्येक न्यायालय अपराध सिद्ध करने में उस व्यक्ति को अपने बचाव का पूरा अवसर देगा। यदि कोई राजकर्मचारी किसी नागरिक को पकड़ कर जेल में बन्द कर दे तो वह नागरिक हैबियस कोरपस की लिखित आज्ञा के लिये न्यायालय से प्रार्थना कर सकता है जिससे उसे न्यायालय के सम्मुख उपस्थित करना पड़ेगा। इसके पश्चात् उसके अपराध की परीक्षा आरम्भ होगी। निर्बन्ध शासन के अनुसार व्यक्ति अपनी रक्षा के लिये बल प्रयोग करने का अधिकारी भी है। अपने ऊपर किये हुये आक्रमण से बचने के लिये यदि वह बल प्रयोग करे तो वह उसका अपराधी नहीं समझा जायगा।

वाक्स्वातंत्र्य का अधिकार इंगलैण्ड में निर्बन्ध-शासन द्वारा ही प्राप्त है जब कि फ्राँस बेलजियम आदि देशों में इसका उल्लेख शासन-विधान में कर दिया गया है। इंगलैण्ड में प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह जो चाहे सो कह सकता है और किसी के बारे में जो चाहे सो लिख सकता है, प्रतिबन्ध केवल यही है कि यदि वह कोई ऐसी बात कहे या लिखकर प्रकाशित करे जिसके कहने या प्रकाशित करने का उसे कानून से अधिकार प्राप्त न हो तो वह दण्डनीय समझा जायगा। उदाहरण के लिये कोई ऐसी बात नहीं कही जा सकती जो किसी व्यक्ति की निन्दा करती हो, झगड़ा फिसाद फैलाती हो या धर्म के विरुद्ध हो। इंगलैण्ड में समाचार पत्रों पर कोई विशेष नियंत्रण नहीं लगाये गये हैं, वे साधारण कानूनों से ही प्रतिबन्धित हैं।

जब दैहिक स्वतन्त्रता और वाक्स्वातंत्र्य का अधिकार मान्य है तो सार्वजनिक सभा करने का अधिकार अपने आप ही सिद्ध है। दूसरे देशों में यह अधिकार शासन-विधान द्वारा दिया जाता है। इसलिये जब तक शान्ति भंग होने का भय न हो (केवल संदेह ही न हो), तब तक किसी भी सम्मेलन या सभा को होने दिया जाता है और उसे अवैध घोषित नहीं किया जाता यदि उस सभा या सम्मेलन का उद्देश्य वैध है और सभा करने वालों का अभिप्राय ऐसा है जो किसी कानून के विरुद्ध नहीं है।

सब व्यक्ति एक ही कानून व एक प्रकार के न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में रहते हैं। सरकारी कर्मचारियों के लिये पृथक न्यायालय नहीं बने हुये हैं। इन सब न्यायालयों में साधारण कानून के अनुसार ही अपराध की परीक्षा की जाती है। इसलिये साधारण नागरिक को यदि किसी राज-कर्मचारी से हानि

पहुँचे तो वह किसी भी न्यायालय में उस कर्मचारीके विरुद्ध अभियोग लगा सकता है। इस प्रथा के विपरीत यूरोप के देशों में सरकारी कर्मचारियों पर लगाये हुये अभियोगों की सुनवाई के लिये प्रशासन-न्यायालय हैं जिनमें प्रशासन-न्याय (Administrative Law) के अनुसार, न कि साधारण कानून के अनुसार, अपराध की परीक्षा होती है।

निर्बन्ध-शासन प्रमुख अब कुछ समय से घटता जा रहा है। उसके कई कारण हैं। पहिला तो यह कि हाल ही में पार्लियामेंट ने कुछ ऐसे एक्ट पास कर दिये हैं जिनसे राजकर्मचारियों को न्याय करने के अधिकार दे दिये गये हैं। फैक्टरी एक्ट, एज्यूकेशन एक्ट के अन्तर्गत मामले न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के बाहर रख दिये गये है। उन मामलों में उन विभागों के अफसर अपना निर्णय देकर तय करते हैं। दूसरे मजदूर संघों की यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है कि वे अपने आन्तरिक संगठन में न्यायालयों का हस्तक्षेप सहन नहीं करना चाहते चाहे संगठन के नियमों से किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता कितनी ही प्रतिबन्धित होती हो। तीसरे कुछ व्यक्ति यह कह कहते हैं कि उनके कार्य समाज के हितकारक हैं हालांकि कानून की दृष्टि से वे हेय हैं। वे कानून का इसलिये विरोध करते है। चौथे नियमावली बनाने, अस्थाई आदेश, आर्डर्स-इन-कौंसिल आदि निकालने के अधिकार भी अधिकाधिक बढ़ते जा रहे हैं। ये बहुत कुछ कानून के समान ही लागू होते हैं पर कोई न्यायालय इनके कार्यरूप करने में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

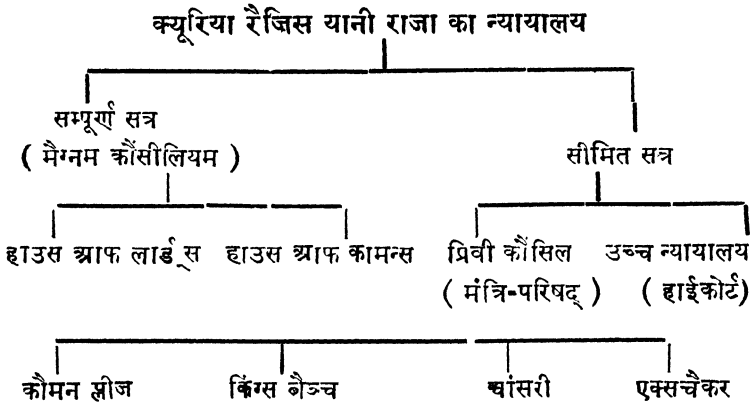
अंगरेजी न्यायमण्डल के दूसरे सिद्धान्त—न्यायशासन के सिद्धाँत के अतिरिक्त अंगरेजी न्याय-प्रणाली के कुछ दूसरे सिद्धान्त भी हैं जो दूसरी किसी न्याय-प्रणाली में नहीं मिलते। सारा न्याय संगठन इस प्रकार संगठित है कि सब व्यक्ति उस तक आसानी से पहुँच सकते हैं। न्यायालय दो प्रकार के हैं माल व फौजदारी (व्यवहारी व दण्ड-न्यायालय) और इन दोनो की कई श्रेणियाँ हैं, सब से छोटे न्यायालय, पुनर्विचार न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय। इन न्यायालयों के न्यायाधीश स्वतंत्र व निरपेक्ष रहते हैं उन पर कार्यकारिणी का किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रहता न उनके काम में वह हस्तक्षेप कर सकती है। परिणामस्वरूप सब के साथ एक सा न्याय बरता जाता है। यह इसलिये सम्भव है क्योंकि न्यायाधीशों को तब तक उनके पद से हटाया नहीं जा सकता जब तक उन के विरुद्ध पक्की तरह से अपराध सिद्ध न हो गया हो। जब तक वे अपने पद पर रहते हैं उनके वेतन में कमी नहीं की जा सकती। पार्लियामेंट के दोनों आगारों की प्रार्थना पर ही वे राजा

द्वारा हटाये जा सकते हैं। इंगलैंड के न्याय मण्डल के इतिहास में ऐक्ट आफ सैटिलमेंट से अब तक सिवाय लार्ड मैक्लसफील्ड के किसी भी न्यायाधीश की सत्यतत्परता पर संदेह नहीं हुआ और पार्लियामेंट में न्यायाधीशों के पक्षपात-व्यवहार के सम्बन्ध में वाद-विवाद के बहुत कम अवसर प्राप्त हुये हैं। न्यायाधीश अयोग्य भले ही रहे हों पर बेईमान नहीं रहे।

इंगलैंड में जूरी (पञ्च) प्रणाली—अंगरेजी न्यायामण्डल की एक और विशेषता है। वह है जूरी या पञ्चप्रणाली। इस पञ्चप्रणाली का जन्म १२ वीं शताब्दी में हुआ। अब की तरह पहिले पञ्च गवाही सुन कर निर्णय न दिया करते थे, वे अपनी जानकारी के आधार पर ही या परम्परा का सहारा लेकर निर्णय दिया करते थे। बाद में गवाह की हैसियत को छोड़ कर वे केवल वास्तविकता का निर्णय करने वाले रह गये। १६ वीं शताब्दी में पञ्चों को असत्य निर्णय देने पर दण्ड भी दिया जाता था पर १६७० में इस प्रकार के दण्ड से मुक्ति कर दी गई। पञ्च प्रणाली अब दोनों माल व फौजदारी मुकदमों में प्रचलित है। पञ्च समुदाय में १२ व्यक्ति होते हैं जिनका यह कर्तव्य होता है कि वे वास्तविकता का पता लगावें और न्यायालय को निर्णय देकर सहायता करें। पञ्च समुदाय सारे मुकदमे को सुनता है और सुनने के बाद यह बतलाता है कि वह व्यक्ति जिस पर अभियोग लगाया गया है, वह अपराधी है या नहीं है।

न्यायमण्डल का संक्षिप्त इतिहास—सैक्सन-काल में राजा की निर्बलता के कारण गावों में, नगरों में व जिलों में न्यायप्रबन्ध राजा के नियंत्रण से परे रहता था और राजा की इन स्थानों के न्यायालय तक पहुंच न थी। जब नौर्मन-विजय के पश्चात् नौर्मन राजाओं ने शान्ति स्थापित कर अपने आप को अच्छी तरह प्रतिष्ठित कर लिया तब से राजा की शक्ति का प्रभाव राज्य के कोने कोने में जमने लगा। पहिले पहिले तो राजा ने जहाँ तहाँ न्यायालयों के काम में हस्तक्षेप करना आरम्भ किया। धीरे धीरे यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि हैनरी प्रथम जब गद्दी पर बैठा तो उसने न्याय प्रबन्ध को केन्द्रस्थ व सुव्यवस्थित करने का काम अपने हाथ में लिया। इस ओर कदम बढ़ाने में सब से पहिला काम जो किया गया वह यह था कि भ्रमणशील न्यायाधीशों को घूम घूम कर अभियोगों की सुनवाई करने के लिये और उनका निबटारा करने के लिये चारों ओर भेजना आरम्भ किया। प्रायः ये न्यायाधीश क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) के सदस्य होते थे और राजा

इनसे देश की परिस्थिति के बारे में जानकारी भी प्राप्त कर लेता था। जब इन न्यायाधीशों का काम बढ़ा और क्यूरिया रेजिस को यह कठिनाई होने लगी कि राजकीय शासन प्रबन्ध में राजा की सहायता के साथ साथ न्याय-सम्बन्धी यह काम भी भली प्रकार करे तो इस काम को पहिले दो, फिर तीन शाखाओं में बाँट दिया गया और प्रत्येक शाखा का काम पृथक पृथक व्यक्तियों को सौंप दिया गया। पर मैग्नम कौंसिलियम (Magnum Concilium) सब मामलों, न्याय-सम्बन्धी व दूसरे शासन-सम्बन्धी, में सर्वोच्च सत्ता बनी रही। जब यह पार्लियामेंट के रूप में परिणत हो गई तब भी इसके न्यायसम्बन्धी कर्तव्य ज्यों के त्यों बने रहे। इस प्रकार पार्लियामेंट के अतिरिक्त कई न्याय संस्थाऐं स्थापित हो गईं जिनमें विभिन्न प्रकार के मुकद्दमों की सुनवाई होती थी। इस विकास को एक रेखा चित्र से आसानी से समझा जा सकता है।



हाउस आफ लार्डस् और हाउस आफ कामन्स के इतिहास का वर्णन हम पहिले ही कर चुके हैं।

एक्सचैकर क्यूरिया रैजिस का आर्थिक अङ्ग था और उन मुकद्दमों को निबटाता था जो राजकीय कर आदि से सम्बन्ध रखते थे।

किंग्स बैञ्च को हैनरी द्वितीय ने सन् ११७८ में पृथकरूप से स्थायी न्यायालय स्थापित किया। इसमें क्यूरिया के सदस्यों में से पांच व्यक्ति न्यायाधीश नियुक्त होते थे और इसके निबटाये हुए मुकद्दमों की अपील सीधी राजा के पास हो सकती थी।

मैग्ना कार्टा ने कौमन प्लीज के न्यायालयों की स्थापना का प्रबन्ध करा दिया था। इनमें समय-समय पर प्रजा के लोगों के पारस्परिक झगड़ों का निबटारा होता था।

उपर्युक्त तीनों न्यायालय क्यूरिया रैजिस से ही उत्पन्न हुए थे। हैनरी तृतीय के समय में इन तीनों में अलग-अलग न्यायाधीश नियुक्त कर दिये गये, पर इनके केन्द्रीकरण में केवल इसी बात की कमी थी कि संगठन में समानता न थी और इनका अधिकार क्षेत्र स्पष्टरूप से निर्धारित न किया गया था। इस कमी को दूर करने के लिये पार्लियामेंट ने सन् १८७३ का जुडीकेचर एक्ट पास किया जिससे और सुधारों के साथ-साथ ये तीनों न्यायालय मिलाकर एक न्यायालय के रूप में कर दिये गये। सन् १८८१ के एक दूसरे एक्ट से ये हाईकोर्ट उच्च न्यायालय के एक विभाग में मिला दिये गये।

कोर्ट आफ चांसरी तेरहवीं शताब्दी के अन्त में स्थापित हुई। कॉमन लौ (Common Law) न्यायालयों के निर्णयों से लोगों का संतोष न होता था तो वे राजा से अपील करते थे और राजा उनकी अपीलों को चांसलर के पास भेज दिया करता था। इस प्रकार कुछ दिनों में चांसलर भी एक पृथक न्याय संस्था बन गई। सन् १८७३ के एक्ट ने कोर्ट आफ चांसरी को उच्च न्यायालय यानी हाईकोर्ट का ही एक विभाग बना दिया।

यद्यपि उपर्युक्त सब न्यायालय क्यूरिया रैजिस से ही उत्पन्न हुये पर फिर भी क्यूरिया न्यायकार्य बराबर करती रही और बड़े मुकद्दमों को निबटाती थी। जब हैनरी सप्तम सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसने कौंसिल की एक समिति बनाई जिसको देश में शान्ति स्थापित करने के हेतु बड़े बड़े न्यायकारी व दण्ड देने वाले अधिकार दे दिये। यह समिति कोर्ट आफ स्टार चैम्बर के नाम से प्रसिद्ध हुई और इसकी स्थापना के पीछे जो उद्देश्य था वह राजनैतिक था न कि प्रशासनीय। बाद में इसका नाम हाई कमीशन कोर्ट पड़ा, पर इस ने बड़े कठोर दण्ड दिये जिससे यह बड़ी अप्रिय हो गई जिसके कारण पार्लियामेंट ने सन् १६४१ में इसे तोड़ दिया। पर इससे राजा का अधिकार जिससे वह अपनी प्रजा की प्रार्थना सुन सकता था नहीं छीना गया विशेष कर इंगलैंड से बाहर रहने वाली प्रजा की प्रार्थना सुनने का। इसलिये प्रिवी

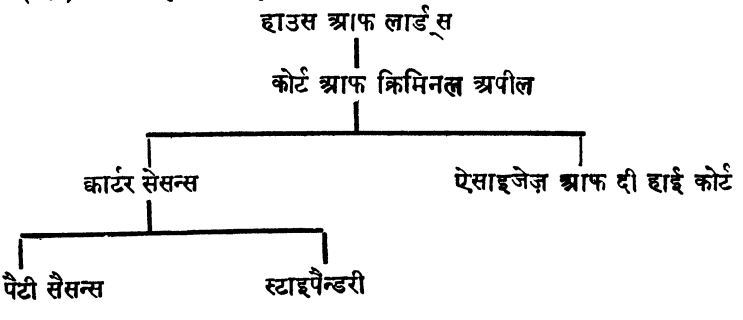
कौंसिल की जुडिशियल कमैटी की स्थापना हुई जो ब्रिटिश साम्राज्य की सब से ऊँची अदालत है।

इन न्यायालयों के अतिरिक्त कुछ दूसरे न्यायालय भी स्थापित हुये जैसे कोर्ट आफ एडमिरल्टी, जिसमें समुद्र में किये हुये अपराधों के दण्ड की व्यवस्था होती थी, और धर्म न्यायालय जिनमें राजकीय धर्मसंघ के अधिकार क्षेत्र में आने वाले मामले निबटाये जाते थे।

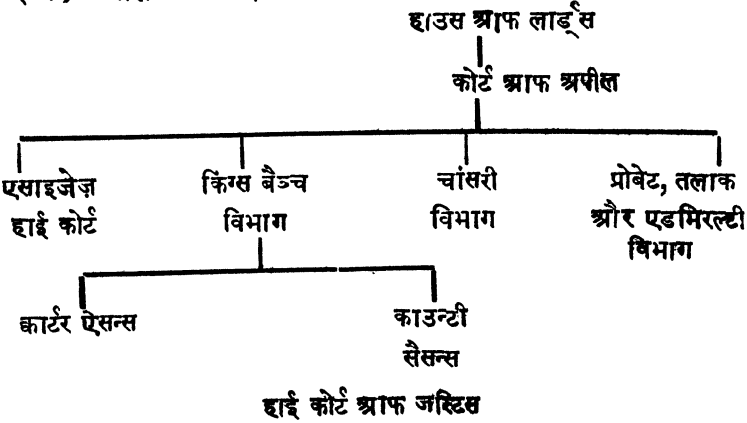
इन सारी न्याय संस्थाओं को एक सूत्र में बाँधने के लिये व इनके संगठन और कार्य पद्धति में समानता लाने के लिये ही पार्लियामेंट ने सन् १८७३ और १८७६ के बीच में न्यायमण्डल का पुनर्संङ्गठन किया।

वर्तमान न्यायमण्डल का संगठन नीचे दिये हुये रेखाचित्र से भली प्रकार समझ में आजायगा।

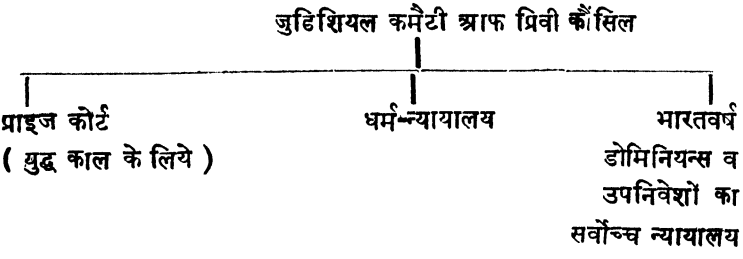
(१) फौजदारी या दण्ड-न्यायालयः—



(२) माल या व्यवहार न्यायालयः—



(३) विशेष मुकदमों के न्यायालयः—



इंगलैंड मे हाउस आफ लार्ड्स ही सर्वोच्च न्याय-संस्था है जहां माल व फौजदारी के मुकदमों की अन्तिम सुनवाई होती है। जब हाउस इस काम के लिये बैठता है तो लार्ड चांसलर प्रधान का पद ग्रहण करता है और लार्ड्स-आफ-अपील-इन आर्डिनरी व पीयर जो न्यायाधीशों का पद प्राप्त किये हुये होते हैं या कर चुके होते हैं उनकी उपस्थिति से ही आगार की बैठक समझ ली जाती है चाहे और दूसरे पीयर उपस्थित हों या न हों। प्रिवी कौंसिल की जुडिशियल कमैटी में उपनिवेशों और डोमिनियनों के मुकदमों की अन्तिम अपील होती है। इस कमैटी का लार्ड चांसलर भी सदस्य होता है और उसके अतिरिक्त वे लार्ड्स आफ अपील इन आर्डिनरी भी होते हैं जो हाउस आफ लार्ड्स में जब वह आगार अपील सुनने के लिये बैठता है, उपस्थित रहते हैं। इस कमैटी में साम्राज्य के जिस देश से मुकदमा आता है वहां का भी एक न्यायाधीश बैठता है।

कोर्ट आफ अपील में एक मास्टर आफ रौल्स और पांच लार्ड न्यायाधीश होते हैं। इस न्यायालय में कानून की व्याख्या-सम्बन्धी पुनर्विचार ही नहीं होता बल्कि घटना सम्बन्धी प्रश्नों पर भी पुनर्विचार होता है।

चांसरी विभाग में पाँच न्यायाधीश होते हैं और चांसलर अध्यक्ष होता है। किंग्स बैञ्च विभाग में १५ न्यायाधीश होते हैं और प्रोबेट कोर्ट में दो। इस प्रकार हाईकोर्ट २३ न्यायाधीशों से बनती है। काम की सुविधा के लिये इसके तीन विभाग कर दिये गये हैं जिनमें अपने अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत मुकदमों की सुनवाई होती है। प्रायः एक ही न्यायाधीश एक मुकदमे को सुनता है इसलिये हाईकोर्ट २३ न्यायालयों जितना काम करती है।

न्यायमण्डल में लार्ड चांसलर सबसे महत्वशाली व्यक्ति है क्योंकि बहुत से न्यायालयों का वह अपने पद के कारण ही अध्यक्ष रहता है। इसके अति-

रिक्त वह मंत्रिपरिषद का सदस्य भी होता है। उसका कानूनी ज्ञान बड़े ऊँचे दर्जे का होता है। उसको न्यायमंत्री कहा जा सकता है क्योंकि वह परिषद के साथ ही साथ अपना पद ग्रहण और पद-त्याग करता है। वह अपने दल का सदस्य बना रहता है पर न्याय के मामलों में कानून का पक्का समर्थक बना रहता है।

काउन्टी कोर्टों में ५० पौंड तक के मुकद्दमों का निबटारा होता है, किन्हीं किन्हीं में १०० पौंड तक के मुकद्दमे भी सुने जाते हैं। जिन मुकद्दमों में २० पौंड से अधिक का प्रश्न हो उनकी अपील हाई कोर्ट में हो सकती है पर ५० पौंड से अधिक वाले मुकद्दमों की प्रथम सुनवाई हाईकोर्ट में ही होती है।

एसाइज़ेज़ (Assizes) वे भ्रमणशील न्यायालय है जिनके न्यायाधीश वर्ष में तीन या चार बार निश्चित नगरों में जाकर माल व फौजदारी के मुकद्दमे सुनते और तय करते हैं। इस काम के लिये काउन्टी को आठ जिलों या सरकिटों (Circuits) में बांट दिया जाता है। ये न्यायालय बड़े बड़े अपराधों के मुकद्दमों की परीक्षा करते हैं। दूसरे छोटे मुकद्दमे क्वार्टर सैसन्स (Quarter Sessions) कहाने वाले न्यायालयों में सुने जाते हैं। इनमें उस काउन्टी के दो या दो से अधिक मजिस्ट्रेट न्याय करते हैं।

जैसे हमारे देश में कुछ उच्च व्यक्ति अपने नगर या जिले में अवैतनिक मजिस्ट्रेट (Honorary Magistrate) बनाये जाते हैं ऐसे ही इंगलैंड में जस्टिस आफ दी पीस (Justices of the Peace) नियुक्त किये जाते हैं। वे कोई वेतन नहीं पाते और प्रायः जीवन भर इस पद को ग्रहण किये रहते हैं। वे अपने नगर के छोटे मुकद्दमे सुनते और अपनी बुद्धि व सद्भावना के सहारे उनको तय करते हैं।

सब फौजदारी मुकद्दमों में पञ्च-प्रणाली अपनायी जाती हैं। माल के मुकद्दमों में भी पञ्चों की सहायता ली जा सकती है। पर छोटे-छोटे मुकद्दमों में ऐसा नहीं किया जाता। प्रायः २० पौंड से अधिक के मुकद्दमों में पांच पञ्चों की सहायता ली जाती है। न्यायाधीश जन्म भर के लिये नियुक्त किये जाते हैं और वे अपने काम में स्वतंत्र व सुरक्षित रहते हैं। इन सब बातों के कारण अंगरेजी न्यायमंडल राजनैतिक प्रभावों से परे और स्वतंत्र है।

पाठ्य पुस्तकें

Blackstone—Commentaries

Carter, A. T.—History of the English Courts
(1935 edition)

Dicey, A. V.—Law of English Constitution
(1939 edition)

Finer, H.—Theory and Practice of Modern
Governments, (Selected portions)

Greaves, H. R. G.—The British Constitution
pp. 211—221

Holdsworth—History of English Law

Laski H. J.—Parliamentary Government, in
England, ch. VII

Marriot, J. A. R.—English Political Institutions. ch. XII

Mcllain, C. H—High Court of Parliament and its
Supremacy (1910)

Potter,H.—Historical Introduction to English Law and
its Background (1932)

Poole, A. L.—English Constitutional History
(9th edition) pp. 130-161, 726-743.)

दसवां अध्याय

अङ्गरेजी स्थानीय शासन

"स्वतंत्र राष्ट्रों की शक्ति उनके नागरिकों की स्थानीय सभाओं में रहती है। विज्ञान के लिये जो काम प्राथमिक शिक्षालय करते हैं वही काम नगर सभायें स्वतन्त्रता के लिये करतीहैं। ये सभायें स्वतंत्रता को जनता तक पहुँचाती हैं, वे मनुष्यों को यह सिखाती हैं कि इस स्वतंत्रता का किस प्रकार प्रयोग व भोग किया जाय। कोई राष्ट्र स्वतंत्र सरकार भले ही स्थापित कर ले पर स्थानीय शासन संस्थाओं के बिना उसमें स्वतंत्रता की भावना नहीं रह सकती" (टौकविलि)

स्थानीय शासन का प्रयोजन—स्थानीय शासन स्वतंत्रता उन्नति और सामाजिक नियंत्रण के बीच समझौता-स्वरूप है। "जिस श्रेणी में संघ-शासन, अनुपाती प्रतिनिधित्व आदि की युक्तियां आती हैं उसी में इसकी भी गिनती है। सामूहिक अभेदकारी उस व्यवहार के अत्याचार से इसके द्वारा ही बचत हो सकती है जिसमें व्यक्तियों की मौलिकता पर नाक भौंह सिकोड़े जाते हैं और उसको एकसा बनाने वाली प्रथाओं से कुचल कर नष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है"। *

स्थानीय शासन के बिना जनता में नागरिक भावना जाग्रत नहीं हो सकती और राष्ट्र की वही प्राकृतिक स्थिति होगी जिसका वर्णन हौब्स ने किया है। यह बात अब सब मानने लग गये हैं कि स्थानीय शासन नगर में हो या ग्राम में, जिले में हो या प्रान्त में, जितना ही अच्छा होगा उतने ही वहाँ के निवासी सुखी व सम्पन्न रहेंगे। इसी लिये ससार के सब सभ्य देशों में (भारतवर्ष को छोड़ कर) शासन का बहुत बड़ा भाग राजधानियों में बैठी हुई सरकार द्वारा न होकर सारे देश में फैली हुई स्थानीय शासन संस्थाओं द्वारा सम्पादित होता है।

अंगरेजी स्थानीय शासन का इतिहास—स्थानीय स्वायत्त शासन इंगलैंड में सबसे प्राचीन है यहां तक कि संसार भर के स्थानीय लोकतंत्र की यही प्रणाली जन्मदात्री है। इस प्रणाली का सब से अधिक लम्बा और

---

* हरमन फाइनरः इंगलिश लोकल गवर्नमेंट (१९३३), पृ० ४

क्रमिक इतिहास है। यह बड़े लम्बे ऐतिहासिक विकास के परिणाम का फल है। सैक्सन काल में शायर, हन्ड्रेड, नगर (Township) व बौरो थे। नार्मन-विजय के पश्चात् शायर काउन्टी में, नगर मैनरों में और बौरो सनद प्राप्त म्यूनिसिपैलिटियों अर्थात् नगर पालिकाओं में परिणत हो गये। दी हन्ड्रेड तो समाप्त हो हो गये। इसी बीच में पैरिश का जन्म हुआ और उसने नगरों (Townships) का स्थान ले लिया, यद्यपि प्रारम्भ में इसकी स्थापना का अभिप्राय धर्म संघ के मामलों की देख भाल करना भर था। १८ वीं शताब्दी के अन्त तक केवल काउन्टी (County), बौरो (Borough) और पैरिश (Parish) ही जीवित रह पाये। काउन्टी का शासन जस्टिस आफ दी पीस (Justice of the Peace) करते थे और बौरो का शासन उसका फ्रीमेन (Freeman) करता था। बौरो और पैरिश का शासन-संगठन लोकतंत्रात्मक था और लोग अपने अफसरों को स्वयं ही चुनते थे। ट्यूडर और स्टूआर्ट राजाओं की निरंकुशता का इस पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ा। पर १७ वीं शताब्दी के अन्त में औद्योगिक क्रान्ति ने सारी परिस्थिति को बदल डाला, गावों के रहने वाले शहरों में जाकर रहने लगे जहाँ पर शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा, निर्धनों की देख भाल आदि की समस्यायें पेचीदा होने लगी। सरकार ने पुरानी सस्थाओं को तो न मिटाया पर नई सस्थायें बना दीं जैसे स्थानीय सुधारक जिले जो स्वास्थ्य आदि सार्वजनिक सुविधाओं की देख भाल करते थे और पूअर लौ यूनियन (Poor Law Union) आदि। इसका परिणाम यह हुआ कि इन स्थानीय सस्थाओं की संख्या सन् १८८३ में बढ़ कर २७००० हो चुकी थी और उनका अधिकार क्षेत्र पृथक पृथक न होकर एक दूसरे से मिले रहने से बड़ी अंधा धुंधी चल रही थी।

१६ वीं शताब्दी में स्थानीय शासन का सुधार—इन कठिनाइयों के कारण पर विशेषकर उदार आन्दोलन (Liberal Movement) के उठने से पार्लियामेंट ने स्थानीय शासन-संस्थाओं को नया रूप देकर उनमें सुधार करने का काम अपने हाथ में लिया। सब से पहले सन् १८८५ का कोर-पोरेशन एक्ट पास हुआ जिससे बौरों (नगरों) को स्थानीय शासन सम्बन्धी वह प्रणाली मिली जो अब तक बिना परिवर्तन के ज्यों की त्यों चलती आरही है। सन् १८८८ के लोकल गवर्नमेंट एक्ट से काउन्टी के शासन का पुनर्संगठन किया गया और उसको वे अधिकार सौंप दिये गये जो तब से पहिले जस्टस आफ दी पीस (Justices of the Peace) को प्राप्त थे। उसके पश्चात्

सन् १८९४ के डिस्ट्रिक्ट एण्ड पैरिश कौंसिल्स एक्ट से उस समय तक जो छोटे छोटे विशेष जिले चलते आ रहे थे उनको तोड़ दिया।

इस प्रकार यह प्रकट है कि वर्तमान प्रणाली क्रमिक विकास का फल है। यह किसी क्रान्ति के फलस्वरूप प्राप्त नहीं हुआ है। इसकी स्थापना पार्लियामेंट के किसी एक एक्ट से न होकर कई एक्टों के बाद इसका वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। परन्तु यह सब होते हुये भी हम देखेंगे कि इस विषय में बहुत प्राचीन काल से यही प्रवृत्ति रही कि शासन क्षेत्र में स्थानीय स्वतन्त्रता की रक्षा व अधिकाधिक वृद्धि की जाय। यूरोप में इसके विपरीत यह प्रयत्न रहा कि जहाँ तक हो सके शासन का केन्द्रीय-करण किया जाय। अमरीका की तरह इंगलैण्ड में स्थानीय शासन-कर्मचारियों पर अविश्वास रखकर कानून की सहायता से शासन के दोष मिटाने की प्रवृत्ति नहीं रही परन्तु इसके विपरीत नागरिकों के प्रतिनिधियों पर जनमत का दबाव डाल कर दोषों को सुधारने का प्रयत्न किया गया।

स्थानीय शासन के वर्तमान क्षेत्र—इस समय स्थानीय शासन के पाँच मुख्य क्षेत्र हैं: पैरिश (Parish), रूरल डिस्ट्रिक्ट (Rural District), अरबन डिस्ट्रिक्ट (Urban District), बोरो (Borough), और काउन्टी (County)। अँगरेजी स्थानीय शासन के सम्बन्ध में यह जानने योग्य बात है कि कोई भी स्थानीय शासन सस्था या अधिकारी व्यक्ति कानूनी अधिकार के बिना कोई कार्य नहीं कर सकता। उसकी इच्छा कानून की सीमासे प्रतिबन्धित रहती है। दूसरे, स्थानीय शासन स्वतंत्र है, श्रेणी बद्ध नहीं। प्रत्येक इकाई को अपने अधिकार क्षेत्र में इच्छानुसार काम करने की स्वतत्रता है, केवल शर्त यह है कि उसकी सब कार्यवाही सद्भावना से होनी चाहिये।

रूरल पैरिश (Rural Parish)—पैरिश कई प्रकार के हैं: जानपद (civil) पैरिश, धर्म पुजारियों के पैरिश और भूमिकर पैरिश। स्थानीय शासन में हमारा अभिप्राय केवल जानपद पैरिश से ही हैं। जानपद पैरिश के भी दो विभिन्न रूप है, एक ग्रामीण दूसरा नागरिक। दूसरा तो अरबन डिस्ट्रिक्ट के शासन में मिलकर विलीन हो गया पर पहिला अभी तक चलता चला आ रहा है। इसका शासन संगठन निजी है। ग्रामीण पैरिश छोटे बड़े कई प्रकार के हैं। जिस ग्रामीण पैरिश में १०० निवासी से अधिक हैं वहाँ साधारणतया एक पैरिश कौंसिल रहती हैं, जहाँ १०० से कम लोग रहते हैं ऐसे एकसे अधिक पैरिशों को मिलाकर उनके लिये एक पैरिश कौंसिल बना दी जाती है। कौंसिल में ५से कम व १०से अधिक सदस्य नहीं होते। इसकी अवधि

एक वर्ष होती है और सदस्यों का निर्वाचन मार्च में पैरिश के वार्षिक सम्मेलन में होता है। वोट हाथ उठा कर दिये जाते हैं। कौंसिल की कम से कम तीन बैठकें एक वर्ष में होनी चाहिये। पैरिश कौंसिल के अधिकार विभिन्न प्रकार के और बहुत कुछ विस्तृत हैं पर उन पर डिस्ट्रिक्ट कौंसिल और काउन्टी कौंसिल, इन दो उच्चाधिकारी संस्थाओं का नियंत्रण रहता है। वे पैरिश सभाभवन, पुस्तकों आदि का इन्तजाम कर सकती हैं। शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण उद्यान आदि का प्रबन्ध भी कर सकती हैं। पैरिश में कर लगाने का भी अधिकार उन्हें रहता हैं पर कर एक पौंड में ३ पैंस से अधिक न होना चाहिये। पैरिश के हिसाब किताब की जाँच स्वास्थ्य-विभाग के डिस्ट्रिक्ट आडीटर करते हैं।

रूरल डिस्ट्रिक्ट (Rural District)—जितने ग्राम-पैरिश हैं वे सब रूरल डिस्ट्रिक्ट अर्थात् ग्राम-जिलों में संगठित हैं। इन ग्राम-जिलों की अपनी अपनी प्रतिनिधिक कौंसिलें हैं। इन कौंसिलों में ३०० निवासियों वाले पैरिश का एक प्रतिनिधि होता है। इन प्रतिनिधियों का निर्वाचन तीन साल के लिये होता है और सब प्रतिनिधियों में से एक-तिहाई प्रति वर्ष अपने पद से हट जाते हैं और उनके स्थान पर नये प्रतिनिधियों का चुनाव हो जाता है। चुनाव निर्वाचन-पत्र द्वारा होता है, हाथ उठाकर नहीं। कौंसिल का सभापति जस्टिस आफ दी पीस भी होता है। कौंसिल के सदस्य अपने में से किसी व्यक्ति को या बाहर के व्यक्ति को सभापति चुनते हैं। कौंसिल की एक महाने में एक बैठक अवश्य होती है। अधिकतर काम कौंसिल की समितियाँ करती हैं। सफाई, जल, जनस्वास्थ्य आदि का प्रबन्ध, छोटी सड़कों की देख-भाल व मरम्मत, कुछ लाइसेंसों (अनुज्ञापत्र) का देना आदि काम ये कौंसिलें करती हैं। उद्योग के बढ़ने से इन संस्थाओं के कर्तव्य और महिमा कम होती जा रही है। यदि कौंसिलें अपनी कम से कम कार्यवाही को पूरा करने में बेपरवाही दिखाती हैं तो केन्द्रीय सरकार उन्हें भला बुरा कहकर उनके हिसाब की जाँच करा कर या कानून के द्वारा, उनके काम में हस्तक्षेप कर सकती है।

अरबन डिस्ट्रिक्ट (Urban District)—नगर-जिलों की कौंसिल बनावट में व अधिकार में लगभग ग्रामीण जिलों की कौंसिल से मिलती जुलती है। किन्तु ग्राम जिलों का क्षेत्रफल नगर-जिले के क्षेत्रफल से बहुत अधिक होता है। नगर में जितने पैरिश (मौहल्ले) होते हैं उनका एक प्रति-

निधि कम से कम अवश्य नगर-जिले की कौंसिल का सदस्य होता है। कौंसिल को छोटी सड़कों, मकानों, सफाई, जनस्वास्थ्य और लाइसेंस देने आदि के सम्बन्ध में स्थानीय अधिकार होते हैं। नगर-जिले व बौरों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता केवल म्यूनिसिपल कोरपोरेशन एक्ट के अन्तर्गत उसे बौरो का रूप नहीं दिया होता। प्रत्येक बौरो नगर-जिला अवश्य होता है। बौरो और नगर-जिले की कौंसिल का ढांचा एक समान ही होता है।

काउन्टी (County)—सब ग्राम व नगर-जिलों को मिला कर एक काउन्टी बनती है। स्थानीय शासन की यह सब से बड़ी इकाई है। यह दो प्रकार की होती है—ऐतिहासिक काउन्टी (Historical Countys) की सीमा प्राचीन काल से निश्चित् है। ये न्याय-प्रबन्ध की इकाई है। ऐसी ५२ काउन्टी इस समय वर्तमान हैं। पार्लियामेंट के चुनाव के लिये ये ही निर्वाचन-क्षेत्र का काम देती है। ऐसी काउन्टी के लिये एक लार्ड लेफ्टिनेंट और एक शैरिफ होता है जिनका कोई काम नहीं होता। वे केवल दिखावे के अफसर हैं। उन्हें कोई वेतन भी नहीं मिलता। इन काउन्टियों मे काई कौंसिल या और कोई ऐसा अफसर नहीं होता जो इनका प्रबन्ध करे। प्रशासन काउन्टी (Administrative County) की एक कौंसिल होती है जिसमें सभापति, एल्डरमैन (Aldrmen) और कौंसिलर्स होते हैं। कौंसिलर्स का चुनाव करने के लिये सारी काउन्टी को निर्वाचन क्षेत्रों में बांट दिया जाता है और प्रत्येक क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। इसलिये जनसंख्या के अनुसार प्रत्येक काउन्टी के कौंसिलर्स की संख्या भिन्न भिन्न है। ये कौंसिलर्स अपनी संख्या के छटवें हिस्से के बराबर अपने में से ही एल्डरमैन चुन लेते हैं। ये एल्डरमैन बाहर के व्यक्ति भी चुने जा सकते हैं। कौंसिलर्स ३ साल तक और एल्डरमैन ६ साल तक अपने पद पर रहते हैं। परन्तु दोनों को मत देने का अधिकार एक समान है। दोनों मिल कर अपने में से किसी एक को या बाहरी व्यक्ति को अपना सभापति चुनते हैं। काउन्टी कौंसिल साल में कम से कम चार बार अपनी सभा करती है। इसके अधिकार विस्तृत हैं और विभिन्न प्रकार के काम इसको करने पड़ते हैं। यह ग्राम-जिलों को कौंसिलों के काम की देख भाल करती है। बड़ी सड़कों की मरम्मत, पुलों की मरम्मत, आश्रमों, बाल-अपराधियों के चरित्र सुधारने के स्कूल व औद्योगिक स्कूलों का खोलना, पुलिस का इंतजाम करना, काउन्टी के भवनों की देख रेख रखना आदि काम इस कौंसिल को करने पड़ते हैं। शिक्षा का काम केवल इसी को करना पड़ता है, वृद्धावस्था की पेंशन का

काम भी यही करती है। यह कर लगा सकती है। इसका सब काम समितियों द्वारा होता है। प्रत्येक सेवा के लिये एक स्थायी समिति होती है जो विस्तार पूर्वक सब बातों की छान बीन करती है और प्रबन्ध योजना बनाती है। इन समितियों के अतिरिक्त स्थायी कर्मचारियों द्वारा भी काम होता है, ये कर्मचारी दलपद्धति के आधार पर नियुक्त नहीं होते। कौंसिल इन को स्वयं नियुक्त करती है परन्तु ये सिविल सर्विस के अन्तर्गत नहीं गिने जाते। कौंसिल स्वास्थ्य अफसर को छोड़ कर इन में से किसी को अपने पद से हटा सकती है। अमरीका की तरह इंगलैंड में स्थानीय शासन कर्मचारियों को अपने पदों पर बने रहने के लिये प्रति वर्ष राजनीति के पचड़े में पड़ने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उनकी नियुक्ति योग्यता के आधार पर होती है और वे स्थायी रुप से अपने पद पर सुरक्षित रहते हैं। इसीलिये इंगलैंड का स्थनीय शासन प्रबन्ध बहुत उत्तम है और अमरीका की अपेक्षा बहुत अधिक अच्छा है।

नगर बोरो (Urban Boroughs)—नगरों में बौरो सब से अधिक महत्वशाली है। प्रत्येक बौरो एक चार्टर से स्थापित हुआ होता है। यह चार्टर बड़ी पेचदार लम्बी कार्यवाही के पश्चात् प्रदान किया जाता है। चार्टर लेने के लिये निम्नलिखित बातें पूरी करनी पड़ती है।

(१) जिस नगर-जिला को यह चार्टर लेना हो वहां के निवासी या वहां की कौंसिल स्वयं इसके लिये एक प्रार्थना-पत्र भेजती है।

(२) इस प्रार्थना का नोटिस जनता की जानकारी के लिये लंदन गजट में छाप दिया जाता है।

(३) उस प्रार्थना के विरोध में यदि किसी को कुछ कहना होता है तो उसके लिये एक मास का समय दिया जाता है।

(४) एक कमिश्नर तब जांच करता है और अपनी रिपोर्ट देता है।

(५) यह रिपोर्ट स्वास्थ्य मिनिस्ट्री के पास आलोचना और सलाह के लिये भेज दी जाती है।

(६) चार्टर का मसविदा, विस्तृत योजना और एक मानचित्र तैयार किया जाता है।

(७) तब प्रिवी कौंसिल से उन्हें स्वीकृत कराया जाता है।

(८) यदि चार्टर की प्रार्थना का किसी ने विरोध किया

हो तो चार्टर देने के निर्णय का पार्लियामेंट से समर्थन कराने की भी आवश्यकता पड़ती है।

चार्टर इसलिये मांगा जाता है क्योंकि बौरो को चार्टर के मिल जाने से कई सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं। बौरो नगर की कोर्पोरेशन है जिसका शाश्वत उत्तराधिकार (perpetual succession), निजी मुद्रा (seal), नगर-भवन, विशिष्ट चिन्ह और दूसरा परिचायक विभूतियां होती है। नगर-जिले की अपेक्षा बौरो को यह विशेष सुविधा प्राप्त रहती हैं कि वह 'अच्छे शासन' के हित में दिये हुए सामान्य अधिकार के बल पर उपनिर्बन्ध बना सकता है। बौरो को स्थानीय शासन संस्थाओं में बड़ा ऊंचा स्थान प्राप्त रहता है। यह कहा जाता है कि जब किसी नगर के निवासी बौरो के रूप में संगठित हो जाते हैं तो वे स्थानीय शासन में अधिक दिलचस्पी लेते हैं। बोरो में कौंसिल अधिक बड़ी होती है इसलिए अधिक व्यक्ति शासन में भाग ले सकते हैं।

बौरो का शासन—बौरो का प्रबन्ध एक कौंसिल की सहायता से होता है। बौरो के अधिकार कामन लौ, कोर्पोरेशन एक्टों और पार्लियामेंट के स्थानीय शासन सम्बन्धी या वैयक्तिक कानूनों से प्राप्त रहते हैं। कुछ अधिकार केन्द्रीय सरकार के विभिन्न शासन विभागों के आदेश से भी मिल जाते हैं। पार्लियामेंट इन विभागों को इन आदेशों के देने की अनुमति दे चुकी होती है। इनके कारण नगरपालिकाओं (Municipalities) के अधिकारों में समानता न रह कर विभिन्नता आ जाती है। बौरो कौंसिल के सदस्य तीन वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं। निर्वाचन के लिये बौरो को वार्डों में बांट दिया जाता है और गूढ़शलाका द्वारा निर्वाचन होता है। मित्रमण्डल प्रणाली (Party system) पर यह निर्वाचन होने वाला नहीं समझा जाता फिर भी दलबन्दी का असर आये बिना नहीं रहता। कौंसिल के सदस्यों का निर्वाचन हो जाने के पश्चात् ये सदस्य आपस में से या बाहर से अपनी संख्या के छठे भाग के बराबर संख्या में व्यक्तियों को चुनते हैं जो एल्डरमैन (Aldrmen) कहलाते हैं। ये छः साल के लिये चुने जाते हैं और उनमें से आधे तीन वर्ष बाद हट जाते हैं। कौंसिलर्स और एल्डरमैन दोनों के समान अधिकार हैं परन्तु अधिक अनुभवी होने के कारण नीति-निर्णय में एल्डरमैन का अधिक प्रभाव रहता है। एल्डरमैन और कौंसिलर्स मिलकर एक व्यक्ति को चुनते हैं जो मेयर (Mayor) कहलाता है। उसका निर्वाचन एक साल के लिये होता है पर एक ही व्यक्ति पुनर्निर्वाचन

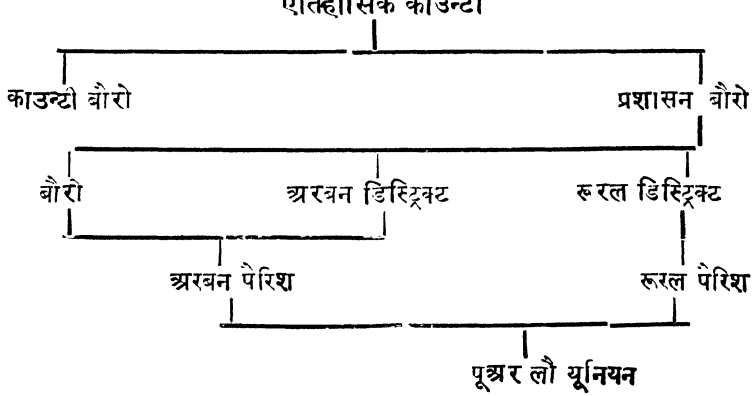
के लिये फिर खड़ा हो सकता है। प्रायः प्रति वर्ष एक नया व्यक्ति ही चुना जाता है क्योंकि यह पद प्रतिष्ठा व सम्मान का है। मेयर नाम-मात्र के लिये नगर का अध्यक्ष रहता है। वह कार्यकारी प्रधानाधिकारी नहीं होता। वह किसी नयी नीति को कार्यान्वित करने के लिये, किसी दल प्रतिनिधित्व करने के लिये निर्वाचित नहीं किया जाता है। कौंसिल पर न वह अपना प्रभुत्व जमा सकता है न उसकी बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करता है। वह बोरो के अफसरों या कर्मचारियों की नियुक्ति भी नहीं करता। केवल एक आडीटर (Auditor) अर्थात् अंकेक्षण और अस्थायी नगर-लेखक की नियुक्ति ही वह कर सकता है। वह आय-व्यय का लेखा (budget) बनाने में कोई काम नहीं करता। कौंसिल अपना काम स्थायी समितियों द्वारा करती है। प्रत्येक नगर में १ से १२ तक समितियां हो सकती हैं। कानून से इनके सदस्यों की संख्या निर्धारित नहीं होती पर स्थायी आदेशों से यह संख्या प्रतिबन्धित है। विशेष विषयों पर विचार करने के लिये भी अलग समितियां बना दी जाती हैं। बोरा कौंसिल और काउन्टी कौंसिल की मिली जुली समितियां भी होती हैं। ये समितियां बड़ा काम करती हैं, हालांकि इनको अन्तिम निर्णय का अधिकार नहीं होता, वे परामर्श ही दे सकती हैं। समितियों में आपस में मतभेद होने पर कौंसिल अपने निर्णय से मतभेद को मिटाती है।

कौंसिल के अधिकार—कौंसिल को उप-निर्बन्ध (bye-laws) बनाने का अधिकार रहता है जिनमें से कुछ के लिये केन्द्रीय सरकार के किसी विभाग की स्वीकृति लेनी पड़ती है। अर्थसम्बन्धी मामलों में कौंसिल ही प्रमुखतः अधिकारी है। बोरो के फंडों की यही कौंसिल रक्षक है। कुछ खर्चे के लिये कौंसिल को केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य-विभाग की अनुमति लेनी पड़ती है और कुछ मामलों के लिये कौंसिल को अनिवार्य रूप से खर्चा करना पड़ता है। यदि बोरो के पास पर्याप्त फंड नहीं होता जिनसे उपर्युक्त खर्चा हो सके तो उसे स्थानीय टैक्स लगाने का अधिकार रहता है। प्रति वर्ष सब विभिन्न समितियां पदाधिकारियों से परामर्श कर अपने वार्षिक व्यय का तखमीना तैयार करती हैं। तब आर्थिक-समिति उस तखमीने की परीक्षा कर आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन करती है और उसे बजट का रूप देती है जो कौंसिल के सामने रखा जाता है और साधारण बहुमत से स्वीकृत हो जाता है। यद्यपि कर्ज़ लेने का अधिकार पार्लियामेंट पृथक पृथक बोरो की योग्यतानुसार प्रदान करती है किन्तु फिर भी केन्द्रीय सरकार इस कार्य के लिये कुछ

नियम बना देती है। कौंसिल के प्रबन्ध-कार्य के अन्तर्गत सड़कों का बनवाना, पानी का इंतजाम, सार्वजनिक स्वास्थ्य, मनोविनोद की सुविधायें देना, उद्यान शिक्षणालयों व दूसरे सार्वजनिक भवनों का बनवाना, लाइसेंसों का देना, निर्धनों की देख भाल करना आदि काम आते हैं। पुलिस, शिक्षा तथा मद्य लाइसेंसों पर कौंसिल का अधिकार नहीं होता। सफाई के सम्बन्ध में कौंसिल ही स्थानीय अधिकारी सस्था है। यह श्रमिकों के लिये मकान बनवाती और उनकी मरम्मत आदि की देखभाल करती है। यह बाज़ारों का नियमन करती है और उचाधिकारियों की नियुक्ति करती है।

प्रशासन काउन्टी (Administrative County)—जब कोई बौरो बहुत बड़ा हो जाता है और उसकी जन संख्या बढ़ जाती है तो उसे काउन्टी से पृथक कर दिया जाता है और वह स्वयं ही एक प्रशासन काउन्टी बन जाता है। तब इसको काउन्टी बौरो के रूप में संगठित कर दिया जाता है। उसकी कौंसिल के लगभग वही कर्तव्य व अधिकार होते हैं जो बौरो-कौंसिल के होते हैं।

उपर्युक्त वर्णन से यह प्रकट हो जायगा कि इंगलैंड में स्थानीय शासन संस्थाओं का गोरखधंधा सा बना हुआ है। परन्तु इंगलैंड में इन संस्थाओं के राजकर्मचारियों को एक श्रेणी के नियंत्रण में नहीं रहना पड़ता जैसा फ्रांस में होता है। उदाहरण के लिये पेरिश (Parish) को कई छोटे बड़े राजपदाधिकारियों के अत्याचार का कष्ट नहीं उठाना पड़ता वरन् उसका सम्बन्ध सीधे केन्द्रीय सरकार से रहता है। इंगलैंड की पेचीदा स्थानीय शासन प्रणाली को निम्नलिखित रेखाचित्र से सुगमता से समझाया जा सकता है।



इंगलैण्ड में केन्द्रीय सरकार सामान्य नियंत्रण रखती है पर शासन प्रबन्ध स्थानीय शासन संस्थाओं पर छोड़ दिया जाता है। स्थानीय संस्थाओं के शासन प्रबन्ध की देख भाल केन्द्रीय सरकार के विभिन्न शासन-विभाग करते हैं। इससे यह भ्रम न होना चाहिये कि केन्द्रीय सरकार और स्थानीय शासन संस्थाओं के कर्तव्यों या उद्देश्यों में भिन्नता है। उन दोनों का एक ही उद्देश्य है और वह यह है कि देश पर अच्छे से अच्छे ढंग से शासन किया जाय और जनता को अधिक से अधिक सुख पहुंचाया जाय। इसलिये वे दोनों बड़े प्रेम व मित्रता से सब काम करते हैं।

इंगलैंड में स्थानीय शासन संस्थाओं पर केन्द्रीय नियंत्रण— इंगलैंड में स्थानीय शासन संस्थाओं पर केन्द्रीय नियंत्रण न तो यूरोप के समान कड़ा है न अमरीका की तरह बिलकुल ढीला है। यूरोप की नगर-पालिकाओं (Municipalities) जैसा अंगरेजी नगरपालिकाओं पर धारा सभा का नियंत्रण नहीं रहता परन्तु उनके काम में प्रशासन सम्बन्धी केन्द्रीय सरकार का हस्तक्षेप अधिक रहा करता है। अँगरेजी बोरो को बहुत से विस्तृत अधिकार सौंपे हुये रहते हैं परन्तु उन अधिकारों को कार्यरूप देने में व्हाइट हाल में स्थित किसी न किसी केन्द्रीय सरकारी विभाग का उस पर नियंत्रण रहता है। वह बोरो उन अधिकारों को स्वेच्छानुसार नहीं भोग सकता। यह हम पहिले ही बतला चुके हैं कि अंगरेजी शासन संस्थायें श्रेणी-बद्ध (Hierarchical) नहीं है। फ्रांस में स्थिति इसके बिलकुल विरुद्ध है। उदाहरणार्थ फ्रांस में कई अधिकारी, लगभग हिन्दू देवताओं की श्रेणी के समान, छोटी से छोटी स्थानीय शासन की इकाई कम्यून पर अपना नियत्रण रखते हैं। इंगलैंड में सब से प्रथम इस बात की सफलता प्राप्त हुई थी कि स्थानीय शासन की विकेन्द्रित प्रणाली के साथ स्थानीय शासन की उत्तमता व व्यवस्था भी हो। स्थानीय स्वायत्त-शासन प्रणाली दो प्रकार की कही जाती है, एक अंगरेजी, दूसरी यूरोपीय। अंगरेजी प्रणाली में स्थानीय संस्थायें स्वयं अपनी नीति निर्धारित करती हैं, केवल उन पर केन्द्रीय सरकार का सामान्य नियंत्रण रहता है। योग्यता के नियमों के अनुसार अपने कर्मचारियों को वे स्वयं ही नियुक्त करती हैं और खर्चे का अधिकतर भाग वे स्वयं ही टैक्स लगा कर पूरा करती हैं। असल में उनका एक पृथक शासन संगठन और शासन प्रणाली ही है। वे केन्द्रीय सरकार की कोरी आधीन सस्थायें ही नहीं हैं। यूरोपीय स्थानीय शासन प्रणाली में इसके विपरीत, स्थानीय शासन का प्रमुख अधिकारी जनता के चुने हुये प्रतिनिधियों का सेवक नहीं होता वरन् वह

केन्द्रीय सरकार का अफसर ही होता है जिसे अमुक स्थान पर केन्द्रीय सरकार के आदेशों को कार्यान्वित करने के लिये नियुक्त कर दिया जाता है। इसलिये यूरोप में स्थानीय शासन में केन्द्रीय सरकार की ही प्रेरक शक्ति काम करती है न कि जनता की।

अमरीका में जहाँ इंगलैंड जैसा अलिखित एकात्मक शासन-विधान न होकर लिखित व संघात्मक शासन-विधान है, वहाँ स्थानीय शासन संस्थाओं को अधिक स्वतंत्रता मिली हुई है। वहां नगरपालिकाओं पर केन्द्रीय अर्थात् संघ-सरकार की धारा सभा का अधिक आधिपत्य रहता है परन्तु निश्चित् प्रशासन-मर्यादा के भीतर वे स्वेच्छानुसार कार्य करने को स्वतंत्र रहती हैं। यदि हम उसे स्थानीय शासन की अराजकता कहें तो अनुचित न होगा। परन्तु अमरीकन स्थानीय-शासन प्रणाली अन्तर्वर्ती युग से गुजर रही है। नित नयी योजनायें बनायी जाती हैं और ठुकरा दी जाती हैं। इंगलैंड और अमरीका की प्रणालियों में भेद का कारण यह है कि अमरीका में जनता अपनी सरकार का विश्वास नहीं करती और उसके अधिकारों को बहुत सीमित कर देती है। इंगलैंड में सरकार जनता पर विश्वास नहीं करती और लोक-सत्ता के क्षेत्र को बढ़ाने से हिचकती है।

इंगलैंड में स्थानीय शासन संस्थाओं के ऊपर जितना नियंत्रण स्वास्थ्य विभाग का है उतना किसी दूसरे विभाग का नहीं है पर फिर भी यह नियंत्रण फ्रांस के गृह-विभाग का सा कठोर नहीं है। मुनरो (Munro) के कथनानुसार यह स्वास्थ्य विभाग स्थानीय शासन के इञ्जन का काम नहीं करता केवल संतुलन-चक्र का काम ही करता है। स्वास्थ्य-विभाग का काम यह नहीं है कि शासन-संगठन की रूप-रेखा निश्चित करे पर उसका इतना ही काम है कि वह यह देखता रहे कि नगर कौंसिल या दूसरी अधिकारी संस्थायें उस शासन पत्र को अच्छी तरह परिचालित करती हैं या नहीं। स्वास्थ्य-विभाग को यह अधिकार है कि वह सार्वजनिक स्वास्थ्य, निर्धन-निर्बन्ध (Poor Law), सफाई, सीमायें और दूसरी नई शासन संस्थाओं के बारे में कानून बनावे। यह विभाग पार्लियामेंट के एजेंट की तरह काम करता है और पार्लियामेंट ही इस विभाग के अधिकारों को छीन सकती है। शासन संस्थाओं के उप-निर्बन्धों को स्वास्थ्य-विभाग रद्द कर सकता है परन्तु प्रायः वही उप-निर्बन्ध अस्वीकृत होते हैं जो राष्ट्रीय निर्बन्धों के प्रतिकूल पड़ते हैं। यह विभाग पार्लियामेंट व स्थानीय संस्थाओं, दोनों को शासन व अर्थ सम्बन्धी मामलों में सलाह देता है। यह इन संस्थाओं के विरुद्ध व्यक्तियों की प्रार्थनाओं पर विचार कर

निर्णय भी देता है। इस विभाग को अर्थ-सम्बन्धी बड़े विस्तृत अधिकार हैं। इसको ऋण की स्वीकृति देने का अधिकार प्राप्त है। यातायात विभाग के अतिरिक्त और जिन जिन सेवाओं के लिये ऋण की संस्थाओं को आवश्यकता होती है उसे मंजूर करने का अधिकार स्वास्थ्य-विभाग को होता है। इस विभाग को यह भी अधिकार है कि प्रत्येक बोरो से निश्चित उसके खर्चे का ब्यौरा मंगा कर देखे। स्वास्थ्य विभाग के अतिरिक्त बोर्ड आफ ट्रेड इन संस्थाओं के व्यापार और उद्योग की उन्नति में सहायता देता है। माप तौल व गैस और बिजली के ऊपर भी इस विभाग का सामान्य नियंत्रण रहता है। यातायात विभाग बिजली की गाड़ियों, रेल, बिजली प्रकाश, आदि से सम्बन्ध रखता है। होम आफिस पेंशन, तरुण अपराधियों के न्यायालयों, उत्पादि-बलि (Excise), पुलिस, रजिस्ट्रेशन, आचार, निर्वाचन, कारखाने और खानों से सम्बन्ध रखता है। पुलिस का प्रबन्ध करना इस विभाग का मुख्य काम है। केन्द्रीय सरकार के दूसरे विभाग स्थानीय शासन की दूसरी शाखाओं का नियंत्रण करते हैं।

पार्लियामेंट का नियंत्रण—पार्लियामेंट स्थानीय-शासन-इकाइयों पर अधिक आधिपत्य रखती है। जिस जिस सेवा की योजना की जाती है उसके लिये पार्लियामेंट कानून से तत्सम्बन्धी एक केन्द्रीय शासन विभाग स्थापित कर देती है। इस कानून की आदेशों द्वारा व नियम-उपनियमों द्वारा वह शासन विभाग कार्यान्वित करता है। प्रत्येक केन्द्रीय शासन विभाग में अफसरों की एक बड़ी भारी संख्या होती है जिसका यही काम है कि वह अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों से स्थानीय शासन संस्थाओं की सहायता करे। पार्लियामेंट ही प्रोविंसियल तथा स्पेशल आर्डर्स से या प्राइवेट विधेयकों से स्थानीय शासन संस्थाओं को बहुत से अधिकार प्रदान करती है। स्थानीय संस्थाओं के क्षेत्रों में परिवर्तन करने के लिये, उप-निर्बन्धों के बनाने और नयी शासन प्रणालियों की स्थापना करने के लिये केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति आवश्यक है। स्थानीय शासनाधिकारियों की योग्यता व अवधि को हाउस आफ कामन्स ही निश्चित करता है क्योंकि इस सम्बन्ध में लोग स्थानीय संस्थाओं का विश्वास नहीं करते। जब कोई शासन-संस्था अपने कर्तव्य को पूरा नहीं करती तो पार्लियामेंट हाईकोर्ट के आदेश से उस संस्था का प्रबन्ध न्यायालय के आधीन रख सकती है। केंद्रीय सरकार कानून के तोड़ने या उसकी ठीक व्याख्या करने के प्रश्नों में अपना निर्णय देती है। केंद्रीय सरकार स्थानीय मामलों की छान-बीन करा सकती है और रिपोर्ट प्रकाशित करती है। उनके आय-व्यय की

जांच कराना और संस्थाओं के लिये ऋण देना भी केंद्रीय सरकार का ही काम है। केंद्रीय सरकार का नियंत्रण इसलिये और अधिकाधिक बढ़ता जाता है क्योंकि राष्ट्रीय कोष से अब इन संस्थाओं को सहायक अनुदान देने की रीति चल पड़ी है। जब सरकार इनको धन से सहायता करती है तो उनके ऊपर अपनी शर्तें लादने का अधिकार भी प्राप्त कर लेती है।

पर केंद्रीय सरकार अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करती और प्रायः इन संस्थाओं की स्वतंत्रता का समुचित आदर करती है। उसकी यही इच्छा रहती है कि ये संस्थायें इस स्वतंत्रता का बिना हस्तक्षेप के सदुपयोग करें। जब तक बौरो कौंसिल अपने वैध-अधिकारों की सीमा के भीतर काम करती है तब तक केंद्रीय हस्तक्षेप से बची रहती है, जब इस सीमा का उल्लंघन जाने या अनजाने करती है तो केंद्रीय हस्तक्षेप का स्वागत ही करना चाहिये न कि उसके प्रति विरोध। फिर भी अंगरेजी जनता इस हस्तक्षेप को पसंद नहीं करती और उसका विरोध करती है। प्रायः यह कहा जाता है कि स्थानीय संस्थाओं में जो स्थानीय व्यक्ति हैं वे स्थानीय मामलों को हाउस आफ कामन्स के सदस्यों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझते हैं। पिछले चालीस वर्षों में विकेंद्रीकरण की मात्रा बढ़ाने के लिये समय समय पर प्रयत्न किये गये परंतु कोई विशेष परिवर्तन अभी तक नहीं हो पाया है। सन् १८९८ में काउन्टी कौंसिलों को कुछ विषयों के सौंपने का प्रस्ताव काउन्टी कौंसिल एसोसियेशन ने किया था। सन् १९२० की डिवोल्यूशन कान्फ्रेंस के द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया कि पार्लियामेंट के ढंग पर स्थानीय धारा सभायें स्थापित की जायें। तीसरी, मैकडोनैल्ड की योजना थी जिसमें यह कहा गया कि प्रदेशीय एकागारिक (Regioned Unicameral) धारा सभायें बनाई जायं जिनमें पार्लियामेंट के चुने हुये व्यक्ति सदस्य हों।

लन्दन का शासन प्रबन्ध

लन्दन का स्थानीय-शासन उसके ऐतिहासिक विकास, उसके आकार और कुछ दूसरे विशेष कारणों से अपने ढंग का अनुपम है। शासन प्रबन्ध के लिये लन्दन तीन भागों में बटा हुआ है। ये भाग जनसंख्या व क्षेत्रफल में एक दूसरे से बहुत ही भिन्न है और उनका शासन संगठन भी एक दूसरे से भिन्न है। इन तीनों भागों को सिटी आफ लन्दन, काउन्टी आफ लन्दन और लन्दन मैट्रोपोलिटन डिस्ट्रिक्ट कहते हैं।

सिटी आफ लन्दन—सिटी आफ लन्दन एक कौर्पोरेशन है जिसमें नगर के फ्रीमेन (Freemen) हैं। उसका शासन प्रबन्ध लार्ड मेयर और तीन समितियों द्वारा होता है। इन तीनों समितियों को कोर्ट आफ एल्डरमैन, कोर्ट आफ कामन कौंसिल और कोर्ट आफ कामन हौल कहते हैं। कोर्ट आफ एल्डरमैन में लार्ड मेयर (Lord Mayor) और २० आजीवन-एल्डरमैन होते हैं। इसके अधिकार नहीं के बराबर हैं। यह शहर के आलेखों को सुरक्षित रखती है। काउन्टी कामन कौंसिल सिटी की मुख्य शासन-संस्था है। इसमें २०६ कौंसिलर्स होते हैं जिनका सालाना चुनाव होता है और २६ वही एल्डरमैन होते हैं जो कोर्ट आफ एल्डरमैन में होते हैं। यह संस्था नगर के लिये उप-निर्बन्ध (Bye Laws) बनाती है और अग्नि-रक्षा, नालियों, पानी, सार्व-जनिक स्वास्थ्य और शहर की रेलों को छोड़ कर सब काम करती है। प्रत्येक सेवा के लिये पृथक पृथक समिति बनी हुई है और उसके स्थायी कर्मचारी हैं जिनको कौंसिल नियुक्त करती है, केवल शैरिफ को कौंसिल नियुक्त नहीं करती है। कोर्ट आफ कामन हाल में लार्ड मेयर, एल्डरमैन, शैरिफ और लन्दन के सब लाइवरीमैन (Liverymen) होते हैं। साल में एक बार इसकी बैठक होती है जब यह अपने दो ज्येष्ठ एल्डरमैनों का नाम कोर्ट आफ एल्डरमैन के पास लार्ड मेयर के पद के लिये प्रस्ताव करके भेजती है। कोर्ट आफ एल्डर-मैन इन दोनों में से एक को लार्ड मेयर चुनती है। लार्ड मेयर को कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं मिले हुये हैं। उसका पद अवैतनिक है। वह केवल सम्मान-सूचक है। वह नगर के किसी पदाधिकारी की नियुक्ति नहीं करता और न कोई दूसरा कार्यकारी कर्तव्य करता है। वह तीनों कौंसिलों की बैठकों में केवल अध्यक्ष का काम करता है और उत्सवों में नगर का प्रतिनिधित्व करता है।

काउण्टी आफ लन्दन—लन्दन की प्रशासन काउन्टी का शासन एक काउन्टी कौंसिल करती है जिसमें १२८ निर्वाचित सदस्य व २० एल्डर-मैन होते हैं। कौंसिल के सदस्य तीन वर्ष के लिये चुने जाते हैं और चुने जाने के बाद वे अपने में से या बाहर से एल्डरमैन चुनते हैं जो ६ वर्ष तक अपने पद पर बने रहते हैं, केवल प्रति तीन वर्ष बाद उनमें से आधे हट जाते हैं। कौंसिल के निर्वाचित सदस्य और एल्डरमैन मिलकर अपने में से या बाहर से किसी व्यक्ति को सभापति चुनते हैं। कौंसिलर्स और एल्डरमैनों को समान अधिकार मिले होते हैं केवल शिष्टाचार की दृष्टि से ही उनमें भेद होता है। कौंसिल में तीन दल हैं : म्यूनिसिपल रिफौर्म्स (Municipal Reforms),

प्रोग्रेसिव्ज (Pogressives) और लेबर (Labour)। कौंसिल स्वयं शासनाधिकारिणी संस्था है और स्वयं अपने कर्मचारियों की नियुक्ति करती है। कौंसिल का अधिक समय सामान्य शासन सिद्धांतों को निश्चित् करने में ही व्यतीत हो जाता है। उनको कार्यान्वित करने का भार समितियों पर छोड़ दिया जाता है। इसके लिये १८ स्थायी समितियां बनी हुई हैं और एक कार्याकारिणी समिति भी है। इस कार्यकारिणी समिति में १८ स्थायी समितियों के सभापति रहते हैं। इन समितियों के सभापति व उपसभापतियों को कौंसिल चुनती है। अधिकतर समितियां अपनी उपसमितियां बना देती हैं जिनमें से कुछ को शासन सम्बन्धी अन्तिम निर्णय करने का अधिकार भी रहता है। ये समितियां केवल परामर्श देने वाली संस्थायें हैं, उनको ऋण आदि लेने का अधिकार नहीं होता। कौंसिल का कार्यक्रम पार्लियामेंट्री ढंग पर चलता है।

लन्दन काउन्टी कौंसिल के कर्तव्य—काउन्टी कौंसिल के अधिकार में राजधानी सम्बन्धी सब सड़कें रहती हैं। नालियों व कूड़े आदि का प्रबन्ध भी इसी के हाथ में रहता है। सुरगों, नाव के पुलों व दूसरे पुलों, अग्नि रक्षा, सफाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य, गृह-निर्माण, म्यूनिसिपल-गृह, शिक्षा, मनोविनोद के उद्यान, मेले आदि का इंतजाम भी ये कौंसिल ही करती है। यह ट्रामवे चलाती हैं पर मोटरों और भूमि के नीचे चलने वाली रेल गाड़ियों पर इसका आधिपत्य नहीं है। अपने सब कामों में यह बिलकुल तंत्रहीन नहीं रहती क्योंकि केन्द्रीय सरकार का इस पर नियंत्रण रहता है। फिर भी इसने बड़े बड़े काम किये हैं और लन्दन के शासन सम्बन्धी कई कानूनों के बनने में इसने बड़ी सहायता दी है।

लन्दन मैट्रोपोलिटन बौरो—सन् १८९९ के लन्दन गवर्नमेंट एक्ट के अनुसार लन्दन को २८ मैट्रोपोलिटन बौरों में बाँट दिया गया है। प्रत्येक बौरो में एक कौंसिल है जिसमें मेयर एल्डरमैन और दूसरे सदस्य होते है। दूसरे बौरो-कौंसिलों की अपेक्षा इनके अधिकार अधिक सीमित है। कौंसिल मुख्य मुख्य सड़कों को बनवाती हैं व उनकी सफाई, मरम्मत व उनपर प्रकाश आदि का प्रबन्ध भी कराती है। सार्वजनिक स्नानागृहों, वाचनालयों, श्रमिकों के रहने के मकानों और स्थानीय समाधिक्षेत्रों का भार इसी के ऊपर रहता है।

इन तीन शासन संस्थाओं के अतिरिक्त कई स्वतंत्र बोर्ड भी हैं जैसे पानी-बोर्ड, मैट्रोपोलिटन आश्रम बोर्ड आदि। जिस शासन में इतनी पृथक पृथक

स्वतंत्र संस्थायें हों वह स्वभावतः संतोषजनक नहीं हो सकता। इसको अधिक उत्तम बनाने के लिये सारे संगठन को अधिक सीधा-सादा बनाने की आवश्यकता है। लन्दन का शासन प्रशासन-काउंटी के शासन से कहीं अधिक विशाल हो गया है इसलिये ग्रेटर लन्दन (Greater London) शासन-संस्थाओं का एक गोरखधन्धा बन गया है जिसको समझने में राजधानी के शासन के अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को बड़ी असुविधा पड़ती है।

संक्षेप में इंगलैण्ड में वर्तमान स्थानीय शासन एक लम्बे क्रमिक विकास के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। एंग्लो सैक्सन काल से अब तक यह विकास इतना आकस्मिक ढंग से हुआ है कि बहुत सी अनौखी समय-भ्रम-कारक बातें अब भी पाई जाती हैं। इन स्थानीय संस्थाओं में अब भी इतनी स्वतन्त्रता पाई जाती है कि लोग अपने मत व असुविधाओं को खुलकर प्रकट कर सकते हैं। इन संस्थाओं पर केन्द्रीय नियन्त्रण न कठोर है और न बहुत ढीला। लन्दन का शासन संगठन इंगलैंड में ही नहीं वरन् संसार में अनुपम है। कुछ समय से समाजवादी प्रवृत्ति के कारण स्थानीय शासन संगठन में सुधार करने की माँग की जाने लगी है। इंगलैंड में स्थानीय जीवन का स्तर इतना नीचा हो गया है कि इसके बड़े उत्साही समर्थक भी इसकी टीका-टिप्पणी करने लगे हैं और इस शासन की खुले ढंग से बुराई करते हैं।

पाठ्य पुस्तकें

Bagehot, W.—The English Constitution.

Finer, Herman—Theory & Practice of Modern Government (Portion dealing with Local Government in Great Britpain)

Harris, G. Montagu—Municipal Self-government in Britain (1939 Ed.)

Harris, P. A.—London and its Government (1933)

Laski, H. J.—A Century of Municipal Progress (1935)

Low, LL, A.L.—Government of England,

Maud, J. P. R.—Local Government in England (1932)

Muir, Ramsay—How Britain is Governed (Constable London) Ch. on Local Government

Munro, W. B.—Government of Europe
(1930) (Macmillan) pp. 316–335
Munro, W. B.—Government of European cities
(Macmillan) Chs. on Local Government
Ogg, F. A.—Government of Europe (Macmillan)
chs. on Local Government
Robson, R. A.—The Development of Local
Government (1931)
Sidney Low—Government of England, chs. on
Local Government

ग्यारहवाँ अध्याय

डोमिनियन स्टेटस

(Dominion Status)

"वह समाज जिसमें थोड़ी सी भी राष्ट्रीयता की भावना वर्तमान है दूसरे राष्ट्र की आधीनता में सम्भवतः अधिक हठी और अपने कार्यों के लिये कम जिम्मेदार सिद्ध होगा, उस स्थिति की अपेक्षा जब कि अपनी समस्याओं के सुलझाने का भार पूर्णरूप से उस ही के ऊपर हो।" (राइट ऑनरेबिल जे० जी, लैथम)

"आप कुछ भी कहें पर स्वराज्य सब प्रकार से सब से उत्तम है। विदेशी सरकार पूर्णतया धार्मिक पक्षपात से रहित हो, देशी व विदेशी व्यक्तियों के प्रति समान व्यवहार करती हो, प्रजा के लिये माता पिता के समान दयालु, हितैषी और न्याय प्रिय हो पर फिर भी वह उसको पूर्णरूप से सुखी नहीं बना सकती।" (स्वामी दयानन्द)

ब्रिटिश साम्राज्य—क्षेत्रफल, जनसंख्या, निवासियों की भाषा, रीति-रिवाज, रहन सहन, आर्थिक व सांस्कृतिक विभिन्नता आदि को दृष्टि में रखते हुये ब्रिटिश साम्राज्य संसार के राजनैतिक इतिहास में सब से आश्चर्य-जनक घटना है। इसका क्षेत्रफल १३,२६०,००० वर्ग मील है जो कुल स्थलभूमि का पाँचवां भाग है। इसकी जन संख्या ४८७० लाख है जो संसार की जन संख्या का पाँचवां भाग है। ब्रिटिश साम्राज्य का आधुनिक नाम ब्रिटिश कौमनवैल्थ आफ नेशन्स (British Commonwealth of Nations) हो गया है। इस कौमनवैल्थ अर्थात् राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत ये देश हैं : (१) यूनाइटेड किंगडम आफ ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आइरलैंड (२) स्वायत्त शासन करने वाले उपराष्ट्र (Dominion) जैसे, कनाडा आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिणी अफ्रीका, आइर (दक्षिणी आइरलैंड), (३) भारतवर्ष और ब्रह्मा (४) उपनिवेश-साम्राज्य जिसमें क्राउन कौलोनीज़ (Crown Colonies), प्रौटैक्टरेट्स (Protectorates) व मैन्डेटैड प्रदेश (Mandated territories) गिने जाते हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् कामन वैल्थ की रचना में बड़ा परिवर्तन हो चुका है। भारतवर्ष को स्वतंत्रता मिलने के साथ साथ एक नये उपराष्ट्र (Dominion) का

जन्म हुआ जिसे पाकिस्तान कह कर पुकारा जाता है। ब्रह्मा व लंका भी स्वतंत्र घोषित कर दिये गये हैं। न्यूफाउण्डलैंड ने कनाडा में शामिल होने का निश्चय कर लिया है जिससे वह अब कामनवैल्थ का पृथक सदस्य न रह कर कनाडा का ही एक प्रान्त बन जायगा। आइर (Eire) अर्थात् दक्षिणी आइरलैंड ने अपने आपको लोकतंत्र-गणराज्य (Republic) घोषित कर कौमनवैल्थ से पृथक रहने का निश्चय कर लिया है। भारतवर्ष ने भी अपने आप को लोकतंत्र गणराज्य के रूप में सगठित करने की इच्छा घोषित करदी है। साम्राज्य के पूर्व-सदस्यों को स्वतत्रता मिलने के पश्चात् कोमनवैल्थ की रचना में जो परिवर्तन हुये उन पर विचार करने के लिये अप्रैल सन् १९४९ ई० में लन्दन में कामनवैल्थ के प्रधान मंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में प्रमुखतः इस प्रश्न पर विचार हुआ कि भारतवर्ष को गण-राज्य के रूप में रह कर कामनवैल्थ में स्थान मिल सकता है या नहीं। सम्मेलन के अन्त में २९ अप्रैल को जो घोषणा की गई उसके अनुसार उसमें यह कहा गया कि इंगलैंड का राजा (Crown) कामनवैल्थ में स्वेच्छा से रहने वाले राष्ट्रों के संसर्ग भर का प्रतीक है। इस घोषणा से कामनवैल्थ के बंधन को बहुत अधिक ढाला और व्यापक बना दिया जिससे इसमें उन राष्ट्रों को भी रहने की सुविधा प्रदान कर दी गई जो लोक तंत्र राष्ट्र के रूप में रहना चाहते हैं और ब्रिटेन के राजा की सत्ता स्वीकार नहीं करना चाहते।

ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का संगठन ऐसा अपूर्व है कि उसको राजनीति-शास्त्र के किसी पूर्व परिचित नाम से नहीं पुकारा जा सकता। "न यह राष्ट्र है न संघ-शासन। इसका कोई लिखित शासन-विधान नहीं, न कोई पार्लियामेंट, न कोई निजी सामूहिक सरकार न निजी संरक्षक सेना या कार्यकारिणी सत्ता। इसकी उत्पति ऐतिहासिक घटनाओं और क्रमिक विकास के फलस्वरूप हुई है न कि किसी पूर्व निश्चित रचना शैली के अनुसार। अब भी इसके सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध का विकास क्रम बराबर चल रहा है।"

साम्राज्य की स्थापना के आधारभूत अभिप्राय—अँगरेजों ने पिछली तीन शताब्दियों में अनेकों अभिप्रायों की सिद्धि के लिये इस साम्राज्य की स्थापना की थी। संक्षेप में हम इन्हें व्यापार-वृद्धि, बढ़ती हुई जन-संख्या के लिये स्थान, अपराधियों को दूर बसाने के लिये स्थान और जल, वायु तथा स्थल सेनाओं को रखने के लिये सामरिक स्थान प्राप्त करना ही कह सकते हैं। इस लम्बे समय में ब्रिटिश उपनिवेश नीति में कई परिवर्तन हुए।

समुद्रपार स्थित साम्राज्य से इंगलैंड को लाभ—इगलैंड को अपने समुद्रपार साम्राज्य से बड़ा महत्व व आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ। प्रथम लाभ यह था कि उपनिवेशों से कर के रूप में इंगलैण्ड को बहुत सा धन मिलता था। प्रारम्भ में ब्रिटेन ने उपनिवेशों पर कर न लगाया था पर बाद में क्रांति के फलस्वरूप जो युद्ध हुये उनसे ब्रिटेन की आर्थिक अवस्था ऐसी गिर गई कि उसे उत्तरी अमरीका के उपनिवेशों पर कर लगाना पड़ा। इस का परिणाम यह हुआ कि उत्तरी अमरीका के उपनिवेश ब्रिटेन का विरोध करने लगे और अन्त में अमरीकन स्वतंत्रता-युद्ध हुआ जिससे अमरीका ब्रिटेन के आधिपत्य से निकल गया। दूसरे इन उपनिवेशों में ब्रिटेन ने अपनी नाविक व स्थल-सेना के अड्डे बना रखे थे जिससे ब्रिटेन के व्यापार मार्गों की रक्षा होती थी। जिब्राल्टर माल्टा आदि अब भी ब्रिटिश साम्राज्य के सैनिक अड्डे हैं। तीसरे, ब्रिटेन को इन उपनिवेशों से व्यापार करने में सुविधा रहती थी। यूरोप के आधुनिक राष्ट्रों को जब यह प्रतीत हुआ कि उपनिवेशों से कर उगाहना सम्भव नहीं है तो उन्होंने उन्हें व्यापार व उद्योग की उन्नति का साधन बनाने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये कई प्रकार की चालें चली गईं। आधीन उपनिवेशों से, स्वामी-राष्ट्र ने, दूसरे राष्ट्रों के जलयानों के व्यापार करने पर रोक लगा दी। उपनिवेशों पर यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि वे स्वामी-राष्ट्र से ही व्यापार कर सकते हैं संसार के और किसी देश से नहीं कर सकते। औपनिवैशिक एकाधिकार की नीति का जिस कड़ाई के साथ स्पेन ने पालन किया उतना दूसरे किसी यूरोपियन राष्ट्र ने नहीं किया पर फिर भी ब्रिटेन की नीति अधिक उन्नत नहीं थी। बाइन एडवर्ड ने अपनी 'वैस्ट इन्डीज का इतिहास' नामक पुस्तक में लिखा है कि यूरोप के सब सामुद्रिक राष्ट्रों (जिसमें इंगलैंड भी शामिल है) की औपनिवेशिक नीति का मूलमंत्र व्यापारिक एकाधिकार था। यह एकाधिकार बड़ा व्यापक था। इसके अन्तर्गत उपनिवेश को सब प्रकार की वस्तुओं को देना, उनके कच्चे माल को खरीदना और उससे पक्के माल का बनाना आदि सब बातें आती थीं। उपनिवेशों के निवासी अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को दूसरे देशों से न मंगा सकते थे, उन्हें अपनी मुख्य उपज स्वामी-राष्ट्र को ही बेचनी पड़ती थी और उन्हें पक्का माल बनाने का अधिकार न था, केवल स्वामी-राष्ट्र ही उनके कच्चे माल को अपने कारखानों में पक्का करके उससे लाभ उठा सकता था। यह अन्तिम नीति इतनी कड़ाई के साथ बर्ती गई कि अर्ल चैथम को पार्लियामेंट में एक बार यह शिकायत करने पर बाध्य होना पड़ा कि उत्तरी अमरीका के उपनिवेशों के निवासियों को घोड़े की नाल में

लगने वाली कील भी बनाने का अधिकार नहीं है। इन उपनिवेशों से एक लाभ यह भी था कि स्वामी-राष्ट्र की बढ़ती हुई आवश्यकता से अधिक जन-संख्या को बाहर जाकर बसने का अवसर व सुविधा मिली। इन उपनिवेशों से यह भी सुविधा थी कि स्वामी-राष्ट्र के अपराधी इनमें भेज दिये जाते थे। इंगलैंड अपने अपराधियों को आस्ट्रेलिया भेजा करता था। इन सब लाभों के अतिरिक्त साम्राज्य से गौरव की प्राप्ति भी होती थी।

परन्तु यह नीति जिससे उपनिवेशों को इंगलैंड के स्वार्थ-साधन का ही क्षेत्र माना जाता था न कि उपनिवेश के निवासियों का कल्याण-साधन, बहुत दिन न चली। इस नीति में बड़ा परिवर्तन हुआ। उपनिवेशों की प्राकृतिक समृद्धि का जो उपयोग हुआ उससे उनकी आर्थिक स्थिति सुधरने लगी। साथ साथ सामाजिक विकास भी हुआ। उपनिवेशों के निवासी स्वामी-राष्ट्र के अनुचित हस्तक्षेप का विरोध करने लगे। सब से बड़ी झगड़े की जड़ उपनिवेश-निवासियों की यह मांग थी जिससे वे अपनी मातृभूमि इंगलैंड की लोकतंत्रात्मक संस्थाओं को अपने यहां स्थापित करना चाहते थे और इंगलैंड इस मांग का विरोध करता था। जार्ज तृतीय के मन्त्रियों ने उपनिवेशों पर पार्लियामेंट का प्रभुत्व सुरक्षित रखने की चिन्ता में अमरीका के १३ उपनिवेशों पर नये कर लगाये। उपनिवेश-निवासियों को बहुत बुरा लगा। उन्होंने ने अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता पर किये गये इस आघात का विरोध किया और "बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं" इस ब्रिटिश प्रजातंत्र के प्रथम सिद्धांत को दुहाई देना आरम्भ किया। ब्रिटिश पार्लियामेंट में दूरदर्शी राजनीतिज्ञ मौजूद थे जिनको उपनिवेशों पर बिना उन्हें प्रतिनिधित्व दिये कर लगाने की बुराइयों का आभास मिल चुका था। उदाहरणार्थ लार्ड कैमडन (Lord Camden) ने इस विषय पर बोलते हुये पार्लियामेंट में कहा था ..."किसी मनुष्य की वस्तु पूर्णतया उस ही की है, दूसरे किसी मनुष्य को उस वस्तु को उससे बिना उसकी सम्मति के लेने का अधिकार नहीं है, वह सम्मति चाहे स्पष्ट हो या अस्पष्ट। जो कोई भी ऐसा करने का प्रयत्न करता है वह हानि पहुंचाता है, जो कोई ऐसा करता है वह डाका डालता है, वह स्वाधीनता व पराधीनता के भेद को फेंक कर चूर चूर करता है। कर लगाना और प्रति-निधित्व देना इस शासन विधान के लिये अत्यावश्यक है और विधान के साथ ही साथ उसका जन्म भी हुआ है।.....माई लार्ड्स, मैं चुनौती देता हूं कि कोई भी ऐसा समय बतलावे जब पार्लियामेंट ने किसी व्यक्ति पर बिना

उस व्यक्ति का पार्लियामेंट में प्रतिनिधित्व हुये कर लगाया हो।"* आठ वर्ष बाद हाउस आफ कामन्स में एक प्रस्ताव रखा गया जिससे विरोधी दल ने अमरीकन चाय कर एक्ट को रद्द करना चाहा। यह प्रस्ताव बहुमत से गिर गया और पास न हो सका। एडमण्ड बर्क ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुये सरकार की नीति की इन शब्दों में कटु आलोचना की "महोदय, दूसरी ओर बैठे हुये महानुभाव अपनी योग्यता को सामने लायें और उनमें से जो सबसे अधिक कुशल व्यक्ति हो, खड़ा होकर मुझे बतलाये कि अमरीकनों के पास स्वतंत्रता की कौनसा चिन्ह है और परतंत्रता का कौनसा कलंक उस पर नहीं है, यदि व्यापार पर जितनी भी रुकावटें हो सकती हैं उनको लगा कर उन उद्योग शील निर्धनों को बांध कर रखा जाय और साथ साथ बिना उनको प्रतिनिधित्व दिये आपकी स्वेच्छा से लादे हुये करों का ढोने वाला टट्टू भी बनाया जाय। .....अमरीका में बसने वाला अंगरेज यह समझेगा कि यह दासता है, यह दासता कानूनी है, ऐसा समझने से उसके मन व मस्तिष्क पर पड़े अघात की क्षतिपूर्ति न होगी"[१] पर उस समय की सरकार ने दूसरी ही नीति को अपनाना ठीक समझा जिससे स्थिति संकटपूर्ण होगई। अन्ततोगत्वा अमरीकी स्वतंत्रता का युद्ध छिड़ा जिससे इंगलैंड को उन १३ उपनिवेशों से हाथ धोना पड़ा।

डरहम की रिपोर्ट और औपनिवेशिक नीति में परिवर्तन— इस महंगे अनुभव ने ब्रिटेन की १९वीं शताब्दी की औपनिवेशिक नीति में बड़ा भारी परिवर्तन कर उसका बिलकुल रूप ही बदल दिया। इस नीति परिवर्तन का सूत्रपात लार्ड डरहम की उस रिपोर्ट से हुआ जो उन्होंने कनाडा की राजनैतिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये ब्रिटिश सरकार के सम्मुख उपस्थित की। इस महत्वशाली रिपोर्ट के अन्तिम शब्द ये थे: "यदि उस विवेक के विधान में जिससे इस जगत का नियमन होता है, यह लिखा हुआ है कि ये देश सर्वदा ब्रिटिश साम्राज्य के अंग नहीं रहेंगे तो हमें अपने सम्मान की रक्षा के लिये ऐसा कदम उठाना उचित है जिससे जब ये देश हम से अलग हों तो अमरीका महाद्वीप में ये ही ऐसे देश न रह जायें जिनमें अपने शासन भार संभालने की योग्यता न हो। इस प्रकार लार्ड डरहम ने उपनिवेशों के शासन की उस उत्तम नीति का

---

* Speech in the House of Lords; 24th Feb, 1766
" " " 19th April 1774

समर्थन किया जिससे ये उपनिवेश कुछ समय के बाद अपना शासन भार अपने ऊपर लेने के योग्य हो जायें। सर सी० पी० लूकस ने इस कथन की आलोचना करते हुए कहा कि "ये शब्द कनाडा व अमरीका के बाहर भी लागू होते हैं। इनके भीतर छिपी हुई भावना किसी देश-प्रदेश की सीमा से बंधी हुई नहीं है। यह ब्रिटिश साम्राज्य की जीती जागती शक्ति है। इन शब्दों में एक अंगरेज ने अपनी जाति वालों को यह सन्देश दिया है कि हमारे लिये सब से आवश्यक बात यह है कि हम अपने पीछे वह वसीयत छोड़ जायं जो सब समय और सब तरह से महान् और उत्तम हो।"* सन् १८४० ई० में ब्रिटेन ने कनाडा के लिये ऐसे शासन-विधान की व्यवस्था की, जिससे आगे चलकर सन् १८६७ ई० में कनाडा ने संघ-शासन प्रणाली अपनाई और वह एक स्वशासित डोमिनियन बन गया। इस में संशय नहीं कि १९वीं शताब्दी के आरम्भ में औपनिवेशिक नीति में बड़ा परिवर्तन हुआ पर फिर भी बहुत से उपनिवेशों की स्थिति में कोई अधिक सुधार नहीं हुआ।

१९वीं शताब्दी के दूसरे अर्ध-भाग में औपनिवेशिक नीति—ग्रेट ब्रिटेन के २,०००,००० निवासियों ने बाहर जाकर इन उपनिवेशों को बसाया था और कुछ अंगरेजों को यह विश्वास होने लगा था कि ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति बड़ी दोषपूर्ण है। इसलिये इस ओर जनता का ध्यान आकर्षित होने लगा। यह विश्वास दृढ़ होने लगा कि इन उपनिवेशों की शासन-प्रणाली में वे सब दोष हैं जो स्वेच्छाचारी शासन में हुआ करते हैं क्योंकि शासन-सूत्र ऐसे व्यक्तियों के हाथ में था जिनको शासित व्यक्तियों की समृद्धि व सुख में तनिक भी रुचि नहीं थी, जो उन से दूर रहते थे, जिन्हें उनकी दशा का आंखों देखा अनुभव न था और जिन्हें दूसरों की बताई हुई बातों पर भरोसा करना पड़ता था, जो एक-तरफा हुआ करती थी और जिनके ऊपर उन सब बुरी बातों का प्रभाव था जो स्वतंत्रता और लोक प्रकाशन के अभाव में फैल जाया करती हैं। शासन करने वाले ये व्यक्ति अपनी शासन शक्ति का उस दोषपूर्ण ढंग से उपयोग करते थे जिस प्रकार स्वेच्छाचारी निरंकुश शक्ति का उपयोग दूरस्थित निवासियों पर हुआ करता है। परन्तु १९वीं शताब्दी के दूसरे अर्ध-भाग में उपनिवेशों की शासन नीति में सुधार करने का प्रयत्न किया गया।

---

* Sir C. P. Lucas in his Introduction to Lord Durham's Report.

ग्लैडस्टोन जो उदारदल का प्रसिद्ध प्रधानमंत्री था उसने २६ अप्रैल सन्१८७० को हाउस आफ कामन्स में सरकार की औपनिवेशिक नीति का इन शब्दों में स्पष्टीकरण किया था:—

"हमें यूरोपियन देशों द्वारा उनके उपनिवेशों पर लगाई हुई प्रतिबन्धों वाली नीति का अनुभव हो चुका था। पूर्वकाल का यह अनुभव ही हमारा पथप्रदर्शक न था परन्तु हमें बहुत भारी चेतावनी भी मिल चुकी थी विशेषकर कनाडा के सम्बन्ध में। इसलिये हमारे समय के इतिहास में यह एक गौरवपूर्ण अध्याय है कि हमारे राजनीतिज्ञों का, बिना दलबन्दी का विचार किये, यह सतत प्रयत्न रहा है कि ऐसी नीति कार्यान्वित की जाय जिससे जब कभी भी ये उपनिवेश पृथक हों तो उस विपत्ति और कलंक से बचाव हो जाये जो हिंसा और रक्त प्रवाह द्वारा पृथक होने पर उत्पन्न होता है। यही नीति अब भी अपनाई जा रही है। यह जैसा समझा जाता है कोई नई नीति नहीं है किन्तु उन्हीं पुराने सिद्धान्तों को फिर से लागू करना है जिनको विभिन्न राजनीति के समर्थक सत्ताधारियों ने स्वीकार कर स्थापित किया है और जो सर्वसम्मति से मान्य हो चुके हैं। यही बात उस नीति के बारे में सत्य है जो हमने अपनाई है। इस नीति से मातृभूमि व उपनिवेशों के पारस्परिक सम्बन्ध ढीले न पड़ कर इसके विपरीत ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि जब कभी पृथक होने का समय आवे उस समय शांति पूर्वक पृथकीकरण हो सकता है और साथ ही साथ इस बात का सबसे अधिक अवसर रहता है कि पृथक होने के पश्चात् अनिश्चित काल तक उन उपनिवेशों से स्वतंत्रतापूर्वक सम्बन्ध चलता रहे। इसी आधार पर हमने अपने पूर्वगामियों के समान अपनी औपनिवेशिक नीति को स्थिर किया है। स्वतंत्रता और स्वेच्छा हमारे पारस्परिक सम्बन्ध के मुख्य चिन्ह हैं और हमारी नीति से यह न समझना चाहिये कि हम छिपे ढंग से उपनिवेशों को दूर करने के पूर्वनिश्चित उद्देश्य को पूरा करना चाहते हैं वरन् यह नीति यदि अद्वितीय न भी हो तब भी वह सबसे उत्तम व सच्चा साधन हैं जिससे हम उनके प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा कर सकते हैं।"

ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति में इस परिवर्तन के हो जाने से ब्रिटेन और उसके समुद्रपार स्थित उपनिवेशों में सहयोग की सम्भावना बढ़ गई। इसलिए रानी विक्टोरिया की जयन्ती के अवसर पर पहिली उपनिवेश-सम्बन्धी कान्फ्रेंस बुलाई गई। यह सम्मेलन ब्रिटेन और उपनिवेशों के समान हित वाले

मामलों पर विचार करने के लिए बुलाया गया था। सब उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया और इस अवसर पर बहुत सी बातों में ब्रिटिश मंत्रिमण्डल से बातचीत कर लाभ उठाया। इसके दस वर्ष बाद सन् १८९७ में दूसरा उपनिवेश-सम्बन्धी सम्मेलन बुलाया गया जिसमें कनाडा, न्यूसाउथवेल्स, विक्टोरिया, न्यूज़ीलैंड, क्वीन्सलैंड, केप कौलोनी, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, न्यूफाउंडलैंड, टसमानिया, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और नैटाल के प्रधानमंत्री उपस्थित हुए। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य उपनिवेशों के प्रतिनिधियों से विचार-विनिमय करना था न कि किन्हीं ऐसे निर्णयों पर पहुँचना जो उपनिवेशों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाते हों और जिन्हें कार्यान्वित करने के लिये वे उपनिवेश इच्छुक न हों। इस विचार-विनिमय का एक परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य-संघ शासन (Imperial federation का विचार निश्चित ढंग से ठुकरा दिया गया। परन्तु सुरक्षा, व्यापार व विदेश वास सम्बन्धी विषयों में पारस्परिक सहयोग के कई अच्छे सुझाव रखे गये।

सन् १९०२ में जब सप्तम एडवर्ड के राजतिलक का उत्सव मनाया गया तब तीसरा सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में यह निर्णय किया गया कि सहयोग की भावना को बराबर जाग्रत रखने के लिये एक स्थायी परामर्श देने वाली समिति की स्थापना की जाय। इस समय तक ये उपनिवेश स्वायत्त-शासन की बाल्यावस्था को पार कर चुके थे और ब्रिटिश पार्लियामेंट से प्रदत्त प्रजातंत्रात्मक संस्थाओं को ये सफलतापूर्वक चला चुके थे। इसलिये ब्रिटेन को अब इन पूर्ण विकसित पर साम्राज्य के भीतर रहने वाले राष्ट्रों से मुकाबिला करना पड़ता था। इस सम्मेलन के पश्चात् सन् १९०७ में एक और सम्मेलन हुआ जो बड़ा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इसने इस बात पर ज़ोर दिया कि साम्राज्य की उन्नति जितनी राजनैतिक संगठन पर अवलम्बित है उतनी ही आर्थिक सहयोग पर भी। साम्राज्य के इतिहास में इस सम्मेलन ने एक नये युग का आरम्भ किया क्योंकि इसने अपने आप को इम्पीरियल कान्फ्रेन्स अर्थात् साम्राज्य-सम्मेलन के रूप में परिवर्तित कर लिया और स्वायत्त शासन करने वाले उपनिवेशों को डोमिनियन (Dominion) अर्थात् उपराष्ट्र की उपाधि दे दी जिससे उनके उन्नत पद का समुचित आदर कर दिया गया''* इस सम्मेलन में यह भी निर्णय हुआ कि साम्राज्य-सम्मेलन प्रति चार वर्ष बाद

---

*कीथः कान्स्टीट्यूशन, एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड लौ आफ दी एम्पायर, पृ० १०३

हुआ करे। सन् १६११ में द्वितीय-साम्राज्य-सम्मेलन हुआ पर युद्ध के कारण १६१५ में होने वाला सम्मेलन न हो सका।

सन् १६१७ का साम्राज्य-सम्मेलन—सन् १६१४–१८ के महायुद्ध के पूर्व कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और दक्षिणी अफ्रीका पार्लियामेंट के विभिन्न एक्टों के अनुसार स्वायत्त-शासन वाले डोमिनियन हो चुके थे जिनमें उत्तरदायी सरकारें शासन करती थीं। युद्ध में जिस स्वेच्छाकृत अनुराग और भक्ति का इन डोमिनियनों ने प्रदर्शन किया उससे ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को उस बुद्धिमानी का पर्याप्त परिचय मिल गया जिसके द्वारा उन्होंने लार्ड डरहम की रिपोर्ट में सुझाई गई उत्तरदायी स्वायत्त-शासन देने की नीति को कार्यान्वित किया। सन् १६१७ के सम्मेलन में यह निर्णय हुआ कि इंगलैण्ड और डोमिनियनों के बीच यदि कोई शासन-विधान सम्बन्धी परिवर्तन हो तो घरेलू मामलों में पूर्ण अधिकार व स्वायत्त शासन के साथ साथ इस आधार पर आगे बढ़ा जाय कि डोमिनियम इम्पीरियल कामनवैल्थ (Imperial Commonwealth) के स्वतंत्र देश हैं, इस परिवर्तन से यह भी स्वीकार कर लिया जाना चाहिये कि वैदेशिक नीति और विदेशी सम्बन्धों बारे में उन्हें भी अपनी राय देने का अधिकार है। इसके साथ साथ ऐसा भी आयोजन होना चाहिये जिससे साम्राज्य के समान हित वाले मामलों में बराबर पारस्परिक परामर्श सम्भव हो सके और उस परामर्श से फल-स्वरूप ऐसी सम्मिलित कार्यवाही हो सके जिस का निर्णय विभिन्न सरकारें करें।

सन् १६२१ में फिर एक सम्मेलन हुआ हालांकि सन् १६१७ व १६१८ की युद्ध-परिषद बराबर डोमिनियन प्रधान मंत्रियों से युद्ध-सम्बन्धी महत्वपूर्ण विषयों पर परामर्श करती रहीं थीं। सन् १६२६ के सम्मेलन ने एक नया कदम उठाया और लार्ड बालफोर की अध्यक्षता में एक समिति की स्थापना की जिसको अन्तर्साम्राज्य सम्बन्धों के बारे में छान बीन करने का काम सौंपा गया। पूर्ण सत्ताधारी डोमिनियनों का साम्राज्य में क्या स्थान हो, इस विषय पर इस समिति ने एक बहुत महत्वपूर्ण निर्णय किया जिसको बालफोर-घोषणा (Balfour Declaration) के नाम से पुकारा जाता है। इस समिति ने डोमिनियनों के पद की यह व्याख्या की:—"ये ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतंत्र समाज हैं जो पद में एक दूसरे के बराबर है, अपने घरेलू व वैदेशिक मामलों में किसी प्रकार भी एक दूसरे के आधीन नहीं हैं यद्यपि राजमुकुट के प्रति एक समान भक्तिभाव रखने से वे एक दूसरे से मिले हुये हैं और ब्रिटिश कौमनवैल्थ आफ नेशन्स (British Commonwealth of

Nations) अर्थात् ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल के स्वेच्छा से बने हुये सदस्य हैं।" इस समिति ने साथ ही साथ यह मत प्रकट किया कि उस समय (१६२६ में) जो प्रबन्ध चल रहा था वह इस घोषणा में वर्णित स्थिति के अनुसार न था। कुछ ऐसे प्रतिबन्ध उस समय मौजूद थे जिनमें महत्वपूर्ण परिवर्तन करना था, विशेषकर राजसी उपाधियों और गवर्नर जनरल के पद के सम्बन्ध में। इस समिति के सुझाव पर सम्मेलन ने एक समिति बनाने की सिफारिश की जिसमें ब्रिटेन और डोमिनियनों के प्रतिनिधि हों और जो इस प्रश्न पर विचार करे और अपनी रिपोर्ट उपस्थित करें। तदनुसार लन्दन में सन् १६२६ में एक कान्फ्रेंस डोमिनियनों के कानूनों और व्यापार-पोतों से सम्बन्धित कानून (Merchant Shipping Legislation) के कार्यान्वित होने की परीक्षा करने के लिये एकत्रित हुई। इसने अपनी रिपोर्ट तैयार की जो सन् १६३० के साम्राज्य-सम्मेलन में विचारार्थ उपस्थित की गई। इस सम्मेलन ने इस रिपोर्ट में की गई अधिकतर सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और यह सुझाव सामने रक्खा कि पार्लियामेंट समानता के पद को, जो बालफोर-घोषणा में दिया हुआ था, कानून द्वारा अङ्गीकार करे और उन वैधानिक प्रतिबन्धों को हटावे जिससे डोमिनियन इस पद को प्राप्त कर सकें।

१६३१ की वैस्टमिंस्टर व्यवस्था (Statute of Westminster of 1931)—तदनुसार पार्लियामेंट ने वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था स्वीकार की जिस पर राजा ने सम्मति सूचक हस्ताक्षर सन् १६३१ में किये। इस व्यवस्था के पास हो जाने से, जो ब्रिटिश शासन-विधान के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी, डोमिनियनें ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (Britsh Commonweakth of Nations) में ग्रेट ब्रिटेन के बराबरी के पद पर स्थित हो गईं। यह समानता का पद घरेलू व आन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही विषयों में इनको प्राप्त हो गया।

सन् १८६७ के कनाडा के शासन-सम्बन्धी एक (British North America Act) से लेकर सन् १६०६ तक जब दक्षिणी अफ्रीका को उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई बराबर डोमिनियन सरकारों के अधिकारों व शक्तियों पर कुछ कानूनी प्रतिबन्ध लगे हुये थे। ये प्रतिबन्ध व्यवस्था सम्बन्धी, प्रशासन व न्याय-सम्बन्धी थे। जितने कानून पास होते थे उन पर राजा की स्वीकृति लेना आवश्यक होता था। गवर्नर जनरल राजा का प्रतिनिधि होता था इसलिये राजा के नाम से डोमिनियन धारासभा द्वारा पास किये कानून पर अपनी स्वीकृति रोक सकता था। दूसरे गवर्नर-जनरल राजा के

नाम से डोमिनियन मंत्रिमण्डल की इच्छा का निरादर कर दिया करता था, इंगलैण्ड की पार्लियामेंट द्वारा बनाये हुए कानूनके विरुद्ध डोमिनियन पार्लियामेंट कोई कानून न बना सकती थी, न डोमिनियन पार्लियामेंट १८९४ ई० के व्यापार-पोत एक्ट (Merchant Shipping Act) के विरुद्ध या कौलोनियल लौज़ वैलिडिटी एक्ट (Colonial Laws Validity Act of 1865) के विरुद्ध कोई कानून बना सकती थी। न्याय-क्षेत्र में यह प्रतिबन्ध था कि डोमिनियन न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल की न्याय-समिति में अपील हो सकती थी। कनाडा की पार्लियामेंट ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट १९३७ (British North America Act 1867) में संशोधन न कर सकती थी, ऐसा करने के लिये ब्रिटिश पार्लियामेंट का मुंह देखना पड़ता था। वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था ने कई महत्वपूर्ण कानूनी परिवर्तन किये। इस व्यवस्था के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् किसी भी डोमिनियन पार्लियामेंट के बनाये हुये कानून के लिये १८६५ का कौलोनियल लाज़ वैलिडिटी एक्ट (Colonial Laws Validity Act) लागू न हो सकता था। न किसी डोमिनियन का कानून इसलिये रद्द समझा जा सकता था क्योंकि वह किसी वर्तमान या भविष्य में बनने वाले इंगलैंड के कानून के विरुद्ध है। डोमिनियन पार्लियामेंट को यह अधिकार भी दे दिया गया कि वह अपने यहां लागू इंगलैंड की पार्लियामेंट द्वारा बनाये हुये कानून में यदि चाहे तो संशोधन कर सकती है या उसे रद्द कर सकती हैं। इस व्यवस्था के पश्चात् इंगलैण्ड की पार्लियामेंट का कोई भी कानून डोमिनियन में लागू न हो सकता था जब तक कि अमुक डोमिनियम ने इसके हेतु प्रार्थना न की हो और अपने यहां उस कानून को लागू करने के लिये सहमत न हो। इस प्रकार वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था (Statute of Westminster) ने डोमिनियन व्यवस्थापन कार्य के ऊपर से वे सब प्रतिबन्ध हटा लिए जो कौलोनियल लाज़ वैलिडिटी एक्ट से लगे हुये थे। संक्षेपमें इस व्यवस्था ने अपना शासन अपने आप करने वाली डोमिनियनों के पद की व्याख्या कर दी और निश्चित कर दिया कि ये डोमिनियन अर्थात् कनाडा आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी आयरलैंड, न्यूज़ीलैंड व न्यूफ़ाउन्डलैंड ब्रिटिश राष्ट्रमंडल (British Commonwealth of Nations) में ब्रिटेन के बराबरी के पद वाली हैं। सन् १७७३ की उपनिवेश-सम्बन्धी नीति और १९३१ की इस वैस्टमिंस्टर व्यवस्था में कितना भारी अन्तर हो गया।

डोमिनियनों में राजा का स्थान—वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था की प्रस्तावना में यह घोषणा की गई थी कि इंगलैंड का राजमुकुट (Crown) ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल के सदस्यों के स्वेच्छाकृत सम्मिलन का परिचायक चिन्ह है और क्योंकि ये सब सदस्य समान राज्यभक्ति के कारण एक दूसरे से संयुक्त हैं इसलिए राजसिंहासन सम्बन्धी उत्तराधिकार व राजकीय पदवियों आदि के बारे में यदि कोई वर्तमान कानून में परिवर्तन हो तो उस पर इंगलैंड की पार्लियामेंट की सम्मति के साथ साथ डोमिनियनों की पार्लियामेंटों की भी सम्मिति ली जाया करे। डोमिनियनों में राजा के स्थान का एक नवीन अर्थ हो गया। वह अब प्रत्येक डोमिनियन का राजा समझा जाने लगा। उदाहरणार्थ कनाडा में जो राजा का अधिकार हैं वे कनाडा के राजा के रूप में हैं न कि इंगलैंड के राजा के रूप में। इसलिये कनाडा का राजा कनाडा के मंत्रियों की सलाह से कनाडा के शासस सम्बन्धी मामलों में कार्य करता है। सन् १९३२ में जब राजा ने लंदन में स्थित कुछ नये दक्षिणी अफ्रीका के सरकारी भवनों का उद्घाटन किया उस समय राजा के पार्श्व में इंगलैंड का गृहमन्त्री न था वरन् दक्षिण अफ्रीका की सरकार का प्रतिनिधि था। इसी प्रकार जब सम्राट १९३९ में कनाडा गया तो उसने स्वयं सब राजसी कार्य किये। वह कनाडा की पार्लियामेंट में स्वयं उपस्थित हुआ, विधेयकों का प्रवर्तन किया और कनाडा भेजे हुए अमरीकी राजदूत के अधिकार-पत्रों को ग्रहण किया। उसने कनाडा की प्रिवीकौंसिल की बैठक में भाग लिया। यह सब उसने कनाडा के राजा की हैसियत से किया न कि इंगलैंड के राजा की हैसियत से।

डोमिनियनों की वाह्य संज्ञा—वैसे तो सन् १९३१ से पूर्व भी डोमिनियन वैदेशिक मामलों में पूर्णसत्ताधारी की तरह ही व्यवहार करती थी पर वैस्टमिंस्टर की व्यवस्थासे इसको वैध रूप देदिया गया। उनकी इस स्वतंत्रताका परिचय उस समय मिला जब वे स्वतंत्ररुप से लीग आफ नेशन्स (League of Nations)अर्थात् राष्ट्र-संघ की सदस्य हुई और उनको लीग की कौंसिल में निर्वाचित कर स्थान दिया गया। सन् १९३६ में जब राजत्याग एक्ट पास हुआ तो डोमिनियों की सम्मति पहिले से ही मंत्री परिषद ने प्राप्त कर ली थी क्योंकि इस एक्ट से राजतंत्र में एक महत्वपूर्ण वैधानिक परिवर्तन किया गया था। जब सन् १९३९ में युद्ध की घोषणा हुई तो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की दृष्टि से डोमिनियनों की वैधानिक स्थिति की परीक्षा का समय आया। इंगलैंड ने न कि डौमिनियनों ने ३ सितम्बर सन् १९३९ को युद्ध की घोषणा की। आस्ट्रेलिया ने ५

सितम्बर को घोषणा की। दक्षिण अफ्रिका में जनरल हर्टज़ोग के मंत्रिमण्डल ने पार्लियामेंट में तटस्थ रहने का प्रस्ताव उपस्थित किया जो अस्वीकृत हो गया। प्रस्ताव के अनुकूल ६७ मत थे और ८० विरुद्ध थे। मंत्रीमण्डल ने त्याग पत्र दे दिया और जनरल स्मट्स ने नया मन्त्रिमण्डल बनाया। उसके पश्चात् ६ सितम्बर को दक्षिण अफ्रिका ने युद्ध की घोषणा की। कनाडा की पार्लियामेंट ने युद्ध में भाग लेने के प्रश्न पर विचार किया और ६ सितम्बर को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा का अनुमोदन किया। आयरलैंड की पार्लियामेंट ने अपनी तटस्थता की घोषणा की। ये सब निर्णय डोमिनियनों ने स्वयं किये, ब्रिटेन का इस सम्बन्ध में उनके ऊपर कोई दबाव न डाला गया था।

कई डोमिनियन विदेशों में अपने निजि राजदूत रखती हैं। व्यापारिक तथा दूसरे सम्बन्धित विषयों में उन्होंने विदेशी राष्ट्रों से स्वतन्त्र समझौते किये हैं। कुछ राजनीतिज्ञों का तो यहां तक कहना है कि वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था से डोमिनियनों को ब्रिटिश राष्ट्र-संगठन से पृथक होने का अधिकार भी प्राप्त हो गया है। दक्षिणी अफ्रिका में इस ओर कुछ बात चीत चली थी पर यह सम्भव नहीं मालूम होता कि कोई डौमिनियन पृथक होने का निश्चय करेगी और संगठन की सुरक्षा सम्बन्धी सहायता को खोयेगी।

डोमिनियन गवर्नर जनरल—वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था पास हो जाने के पश्चात् डोमिनियन गवर्नर-जनरल के पद का महत्व बढ़ गया है। वह अब इंगलैण्ड के राजा का नहीं वरन् कनाडा के राजा का प्रतिनिधित्व करता है। गवर्नर-जनरल की नियुक्ति राजा द्वारा होती है पर उसके चुनने में उसी डोमिनियन से मन्त्रियों से वह परामर्श लेता है जिसके गवर्नर जनरल को नियुक्त करना हो। सन् १९३० के साम्राज्य-सम्मेलन (Imperial Conference) ने डोमिनियनों को यह अधिकार दे दिया था कि वे अपने गवर्नर जनरल का स्वयं चुनाव कर लें। इसके बाद ही आस्ट्रेलिया में सर आइज़क आइज़क्स (Sir Issac Issacs) व कनाडा में लार्ड बैसबौरो (Lord Bessborough) आस्ट्रेलिया व कनाडा के मंत्रियों की सलाह से गवर्नर-जनरल नियुक्त किये गये। डोमिनियन गवर्नर-जनरल को अब सेक्रेटरी आफ स्टेट (Secretary of State) की मध्यस्थता से छुट्टी नहीं मिलती, डोमिनियन प्रधानमंत्री ही यह कार्य करता है। इस प्रकार डोमिनियन के राजा का प्रतिनिधित्व करने वाला गवर्नर-जनरल उसी प्रकार केवल विधानीय अध्यक्ष है जो अपने मंत्रि-मण्डल की सलाह से कार्य करता है, जैसे इंगलैण्ड का राजा ब्रिटिश मंत्रि-परिषद् की सलाह से काम करता है।

ब्रिटिश शासन पद्धति इतनी लचीली है कि इसके अन्तर्गत महत्वपूर्ण वैधानिक परिवर्तन भी स्थिति के अनुकूल स्थान पा लेते हैं। १५ अगस्त १९४७ को भारत और पाकिस्तान के दो डोमिनियन भी वेस्टमिंस्टर की व्यवस्था के अनुसार कामनवेल्थ में सम्मिलित हो गये, उधर लंका (Ceylon) ने भी डोमिनियन पद प्राप्त कर लिया। परन्तु जब भारत के विधान परिषद (Constituent Assembly) ने भारत को लोकतंत्र (Republic) बनाने का निश्चय कर लिया तो अप्रैल १९४९ में लंदन में डोमिनियनों और इंगलैण्ड के प्रधान मंत्रियों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के समाप्त होने पर यह महत्वपूर्ण घोषणा की गई कि भारत के लोकतंत्र (Republic) होने पर भी भारत को कामनवेल्थ (Comnonwealth) का पूर्ण सदस्य माना जायगा। केवल ब्रिटिश राजा को कामनवेल्थ के एक्य का चिन्ह भारत समझेगा, इससे अधिक नहीं। दिसम्बर १९४९ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक कानून बनाकर घोषित किया कि भारतवासियों को (भारत के प्रजातंत्र घोषित होने के पश्चात् भी) ब्रिटेन में वे ही अधिकार और स्वत्व प्राप्त रहेंगे जो पहले थे। २६ जनवरी १९५० को भारत, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से लोकतंत्र बन गया, फिर भी वह कामनवेल्थ का वैसा ही सदस्य है जैसे आस्ट्रेलिया व कनाडा।

पाठ्य पुस्तकें

Borden, R. L.—Canada and the Common wealth, (Oxford 1929)

Dawson, R. M.—Constitutional Issues in Canada (Oxford 1933)

Emden, C. S.—Selected Speeches on the Constitution (Oxford 1919)

Evatt, H. V.—The King and his Dominion Governors (Oxford 1939)

Hughes, H.—National Sovereignty and Judicial Autonomy in the Britsh Common-wealth (P. S. King 1931)

Keith A. B.—Letters on Imperial Relations etc. (Macmillan 1929)

Keith, A. B.—Sovereignty of the British Dominions (Macmillan 1935)

Keith, A. B.—Constitutional Law of the British Dominions (Macmillan 1933)

Keith, A. B.—The Dominions as Sovereign States (Macmillan 1938)

Palmer, G. E. H.—Consultation and Cooperation in the British Common wealth (Oxford 1934)

Whoare, K. C.—The Statute of Westminster (Oxford 2 nd Edition)

बारहवाँ अध्याय

कनाडा का शासन विधान

"संघ-शासन की विशेषता यह है कि इस से एक ऐसी शासन-पद्धति प्राप्त हो गई जिससे फ्रांसीसी अपना पृथक राष्ट्रीय जीवन सुरक्षित रखते हुए इस योग्य बने रहें कि वे अंगरेजों के साथ मिल कर रह सकें और कनाडा की विशेष राष्ट्रीयता में उनके हिस्सेदार बन कर उस राजभक्ति व अनुराग का परिचय दें जो जाति व समूह की सीमा को लांघ कर सारी डोमिनियम के प्रति दृढ़ हो जावे।"

(अलैक्जैन्डर ब्रैडी)

कनाडा ब्रिटिश साम्राज्य में वह सब से पहिला उपनिवेश था जिस को डोमिनियन का रूप प्राप्त हुआ और जहां संघ-शासन स्थापित हुआ। इसके शासन विधान में इसी लिए कुछ नवीन बातें भी मिलेंगी। इस नवीनता का एक विशेष कारण यह है कि कनाडा में फ्रांसीसी लोगों की संख्या अधिक है। ये लोग क्विबेक के प्रान्त में बहुत अधिक संख्या में रहते हैं जिससे वहां इनका बहुमत है।

शासन-विधान का इतिहास

कनाडा के उपनिवेश को फ्रांसीसियों ने ही सन् १६०६ में बसाया था। प्रारम्भ में इसका शासन फ्रांस के एक सूबे की तरह फ्रांस के राजा द्वारा होता था। पर जब यूरोप में फ्रांसीसियों और अंगरेजों में सप्तवर्षीय युद्ध छिड़ा तो कनाडा में इन दोनों जातियों के लोगों में लड़ाई आरम्भ होगई। जनरल वुल्फे ने १७५९ में क्विबैक पर आक्रमण किया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। एक वर्ष बाद मौन्ट्रीयल भी अंगरेजों के हाथ लग गया। सन् १७६३ की पैरिस की संधि से फ्रांस ने इंगलैंड के राजा को कनाडा सौंप दिया परन्तु साथ ही साथ यह समझौता भी हुआ कि कनाडा के लोगों को कैथोलिक सम्प्रदाय में रहने की स्वतंत्रता रहे। इस के पश्चात् कनाडा का एक गवर्नर नियुक्त कर दिया गया और उसकी सहायता करने के लिये एक कौंसिल व एक असैम्बली भी बना दी गई। परन्तु इस के बाद अंगरेज एक बड़ी संख्या में कनाडा में आकर बस गये। जिससे

राजनैतिक समस्या अधिक पेचीदा हो गई। न बहुसंख्यक फ्रांसीसी शासन पद्धति से सन्तुष्ट थे और न अल्प-संख्यक अंगरेज। सन् १७७४ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने क्विबैक एक्ट (Quebec Act) पास किया जिससे रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के अनुयायियों की बहुत सी शिकायतों को दूर कर दिया गया। जब अमरीकी स्वतंत्रता युद्ध हुआ तो कनाडा की राजनीति में और भी परिवर्तन हुआ क्योंकि अमरीका से बहुत से ब्रिटिश राजभक्ति रखने वाले अंगरेज़ कनाडा में आकर बस गये थे। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् १७९१ में फिर एक शासन-विधान एक्ट पास किया। इस एक्ट से कनाडा को दो प्रान्तों में विभाजित कर दिया गया, एक ऊपरी कनाडा जिसमें अंगरेज बहुसंख्यक निवासी थे और दूसरा निचला कनाडा जिसमें फ्रांसीसी बहुसंख्या में रहते थे। प्रत्येक प्रान्त में एक निर्वाचित असैम्बली और पैतृक कौंसिल बनाने की योजना कर दी गई। गवर्नर को स्वतंत्र अधिकार दे दिया गया क्योंकि वह बिना धारासभा की अनुमति की प्रतीक्षा किये खर्चे के लिये मालगुजारी और सेना-अनुदानों को ले सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि कनाडा की कार्यकारिणी (Executive) स्वतंत्र और अनुत्तरदायी बना दी गई और वह उस कौलोनियल आफिस से निर्देश प्राप्त करती थी जो सहस्रों मील दूर स्थित होने से वास्तविक स्थिति से पूर्ण अनभिज्ञ रहता था। निचले कनाडा में अंगरेजों की प्रधानता कौंसिल में थी और फ्रांसीसियों की असैम्बली में। इसलिये ये दोनों आगार एक दूसरे से अधिक अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते थे। इसके फलस्वरूप प्रायः प्रतिनिधिक असैम्बली और अनुत्तरदायी कार्यकारिणी में ऐसी मुठभेड़ हो जाती थी कि कार्यवाही आगे चलने से रुक जाती थी। अंगरेज-फ्रांसीसी विरोध निचले कनाडा में भयंकर रूप धारण करने लगा और फ्रांसीसियों के नेता व असैम्बली के निर्वाचित स्पीकर पैपीनाऊ (Papineau) ने विद्रोह खड़ा कर दिया। यह विद्रोह दबा दिया गया। पैपीनाऊ भाग गया पर असंतोष की आग सुलगती रही, वह न बुझ पाई। ऊपरी कनाडा में भी असन्तोष था और वहां भी बहुसंख्यक अंगरेज़ शासन में लोकाधिकार प्राप्त करने के लिये आवाज उठा रहे थे।*

लार्ड डरहम की रिपोर्ट—इस जटिल समस्या का सामना करने के लिये कनाडा के शासन-विधान का स्थगन कर दिया और लार्ड डरहम

---

* शर्मा : फेडरल पौलिटी, पृ० ८६

को समस्त शासनाधिकारों से सुसज्जित कर कनाडा भेजा। अपनी नियुक्ति से दो वर्ष के भीतर लार्ड डरहम ने सारी स्थिति का अध्ययन किया और उसके पश्चात् ब्रिटिश सरकार को अपनी प्रसिद्ध रिपोर्ट भेजी जिससे ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। लार्ड डरहम ने अपनी रिपोर्ट में सेना के बुरे संगठन व अंगरेजों और फ्रांसीसियों के बीच बैरभाव के कारण न्याय के पथ-भ्रष्ट होने की शिकायत की। रिपोर्ट में यह भी बतलाया गया कि गवर्नर किस प्रकार कौलोनियल आफिस (Colonial office) पर निर्भर रहता था और कार्यकारिणी किस प्रकार अनुत्तरदायी और स्वेच्छाचारी थी। इन सब बुराइयों को दूर करने के लिये रिपोर्ट में यह सुझाव रखा गया कि चाहे प्रारम्भ में एक दो गलती भी हो जायँ परन्तु इस उपनिवेश को ऐसी शासन प्रणाली दी जाय जिससे उत्तरदायी सरकार बन सके। लार्ड डरहम को यह आशा थी कि ऐसी उत्तरदायी सरकार बनने से ही अंगरेज और फ्रांसीसी एक दूसरे के विचारों और भावनाओं का आदर करना सीखेंगे।

लार्ड डरहम की रिपोर्ट में दिये हुये सब सुझावों को यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार न किया परन्तु पार्लियामेंट ने सन् १८४० में एक एक्ट पास किया जिससे ऊपरी और निचले कनाडा को फिर से संयुक्त कर दिया। इस एक्ट की प्रस्तावना से यह स्पष्ट था कि उस समय ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास हो चला था कि दोनों प्रान्तों के मिलाने से कनाडा की राजनैतिक स्थिति सुधर जायगी और शान्ति स्थापित हो जायगी। लगभग बीस वर्ष तक इस नई व्यवस्था को चालू रखा गया। परन्तु दोनों भागों की जनसंख्या की बनावट में जो भेद था और उन दोनों के हितों में जो विभिन्नता थी उससे यह योजना सफल न हो सकी और नई नई समस्यायें खड़ी हो गईं। कनाडा के निवासी इससे संतुष्ट न हुये और उनको यह आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि अमरीका स्थित सब उपनिवेशों को एक संघ-शासन प्रणाली के द्वारा संगठित किया जाय।

क्विबैक का प्रस्ताव व उसके पश्चात्—यातायात के मार्गों के खुलने और पश्चिम की ओर कृषि के बढ़ने से उपनिवेश-निवासी एक दूसरे के अधिक पास आ गये। सन् १८६० में इन सब उपनिवेशों को मिलाने के लिये प्रकट-रूप से आन्दोलन होने लगा। सन् १८६४ में सब बड़े बड़े उपनिवेशों के प्रतिनिधि २४ अक्टूबर के दिन क्विबैक में एकत्रित हुये और उन्होंने मिलकर प्रसिद्ध क्विबैक प्रस्ताव पास किये जिनमें संयुक्त और एक वृहत् कनाडा के संघात्मक शासन विधान के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों को बतला दिया गया।

मुख्य मुख्य उपनिवेशों के प्रतिनिधि इसके पश्चात् इंगलैण्ड गये जिससे वे ब्रिटिश सरकार के साथ अपनी शासन-विधान सम्बन्धी समस्याओं पर बात चीत कर सकें। इस बात चीत का फल यह हुआ कि पार्लियामेंट ने सन् १८६७ में ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट (British North America Act) पास करके कनाडा के लिये ऐसा शासन विधान बनाया जिससे संघ शासन स्थापित हो। "सन् १८६७ का एक्ट ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति में एक नवीन सिद्धान्त का प्रवर्तक था। इससे यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् ने अमरीकन राज्यक्रांति से एक सबक सीखने में चूक नहीं की। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सम्राट के प्रति निष्ठा रखते हुये भी उपनिवेश ऐसी शासन प्रणाली का विकास कर सकते थे जिसमें उन्हें अपनी आकांक्षायें पूरी करने का पर्याप्त अवसर मिले। कनाडा की संघ-शासन योजना से साम्राज्य के दूसरे उपनिवेशों के लिये भी उदाहरण उपस्थित हो गया और जल्दी ही इसके अनुकूल उन्होंने कार्यवाही की"

सन् १८६७ का शासन-विधान

शासन-विधान के सिद्धान्त—जैसा पहिले कहा जा चुका है १८६७ का ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट सन् १८६४ के प्रसिद्ध क्विबैक-प्रस्तावों के आधार पर बनाया गया था। तीसरा प्रस्ताव इस प्रकार था: "सामान्य शासन के विधान बनाने में यह सम्मेलन मातृभूमि से (इंगलैण्ड) से सर्वदा के लिये सम्बन्ध स्थापित करने के अभिप्राय को दृष्टि में रखते हुये इन प्रान्तों के हितों की साधना के लिये जहाँ तक सम्भव है ब्रिटिश शासन विधान का अनुकरण करना चाहता है।"* उपनिवेशों की इस इच्छा को एक्ट की प्रस्तावना में भी अन्तर्निवेश कर दिया गया था। इस प्रकार ब्रिटिश शासन विधान का अनुकरण करने वाला कनाडा का शासन-विधान बहुत सी ब्रिटिश परम्परागत बातों को भी मानता है। शासन-विधान की मुख्य २ विशेषतायें ये हैं:—

(१) यह संसदात्मक कार्य-कारिणी की स्थापना करता है न कि अध्यक्षात्मक की जैसी कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में पाई जाती है।

(२) संघ संसद (Parliament) के ऊपरी आगार में वे सीनेटर सदस्य होते हैं जिनको गवर्नरजनरल उनके जीवन भर के लिये नियुक्त करता है। "पार्लियामेंट" शब्द इंगलैण्ड से ही लिया गया है और सीनेट की आजीवन-सदस्यता से यह प्रयत्न किया गया है कि उसको किसी सीमा तक हाउस आफ लार्ड्स के समान रखा जाय।

---

*फैडरल पौलिटी : पृष्ठ ६०

(३) संघ सरकार के अधिकार इकाइयों के अधिकारों से अधिक हैं। इन इकाइयों का नाम प्रान्त (Province) रखा गया है न कि स्टेट (State) क्योंकि पहिले नाम से यह बोध सा होता हैं कि वे केन्द्रीय सरकार के आधीन हैं। सब अवशिष्ट अधिकार केन्द्रीय सरकार को सौंपे गये हैं।

(४) ब्रिटिश शासन-विधान का जहां तक सम्भव हो अनुकरण किया जाय, इस उद्देश्य से एक्ट में यह व्यवस्था की गई है कि कनाडा की एक प्रिवी कौंसिल बनाई जाय जो ब्रिटिश प्रिवी कौंसिल के समान हो। कनाडा के शासन विधान की यह विशेषता दूसरी डोमिनियनों के शासन-विधान में नहीं पाई जाती।

(५) शासन-विधान का संशोधन सिद्धान्ततः ब्रिटिश पार्लियामेंट ही कर सकती है। इस बात में भी यह विधान दूसरे शासन-विधानों से भिन्न है।

(६) कनाडा के न्यायमण्डल के अधिकार भी आस्ट्रेलिया के न्याय-मण्डल के अधिकारों से कम हैं हालांकि वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था के बाद सिद्धान्त व व्यवहार में बहुत कुछ अन्तर हो गया है।

ब्रिटिश साम्राज्य में कनाडा पहिला देश था जिसमें संघ-शासन स्थापित हुआ। इसलिये सन् १८६७ में उत्पन्न होने वाली ब्रिटिश संघ-शासन प्रणाली में कुछ अद्वितीय बातें देखने को मिलती हैं। सबसे प्रथम बात तो यह है कि कनाडा ने पार्लियामेंटरी ढंग की सरकार पसन्द की। दूसरे, ब्रिटिश सम्राट कार्यकारिणी का अध्यक्ष रखा गया है। निर्बन्धकारी शक्ति भी ब्रिटिश सम्राट और डोमिनियन धारासभा में निहित कर दी गई है।

सन् १८६७ के संघ-शासन विधान से क्विबेक प्रान्त के निवासी फ्रांसीसियों को अपना शासन भार स्वयं संभालने का अवसर मिला। परन्तु समय के बीतने से कनाडा के ब्रिटिश और फ्रांसीसी निवासियों के पारस्परिक जातीय भेद बहुत कुछ मिट गये। यहां तक कि निचले कनाडा अर्थात् क्विबेक प्रान्त के निवासी फ्रांसीसी अब अपने आप को फ्रांसीसी न कहकर कनाडा निवासी कहते हैं। जहां तक उनके फ्रांस के नाते की बात है वे १८ वीं शताब्दी के फ्रांस का अपने आप को समझते हैं न कि बीसवीं शताब्दी का। सन् १७८९ की फ्रांस की क्रांति के समय से और विशेषकर उस समय से जब फ्रांस में वर्तमान प्रजातंत्र स्थापित हुआ, उनके ऊपर फ्रांसीसी राजनैतिक संस्थाओं या विचारों का बहुत कम प्रभाव पड़ा है क्योंकि यद्यपि शिक्षित व्यक्ति अब भी फ्रांसीसी पुस्तकों को पढ़ते हैं परन्तु पिछले चालीस वर्षों से

शासन करने वाले प्रजातन्त्रवादियों के पादरी-विरोधी रुख ने उनके मन में फ्रांस के प्रति उदासीनता उत्पन्न कर दी है।* यह सच है कि कनाडा की ये दोनों जातियां मिलकर एक नहीं हुई न यह सम्भव है कि वे मिल जायं फिर भी १८४० के पहिले का वैरभाव अब लगभग लुप्त हो चुका है। इस सब का श्रेय १८६७ के शासस विधान को है जिससे उन्हें अलग रहने और साथ साथ एक ही डोमिनियन सरकार में समान हिस्सेदार रहने का अवसर मिला है।

संघ सरकार

जैसा पहिले बतला चुके हैं संघ सरकार की शक्तियां प्रांतीय सरकार की शक्तियों से अधिक हैं जितने विस्तृत अधिकार कनाडा में संघ सरकार को मिले हुये हैं, वैसे बहुत कम संघ-शासन-विधान केन्द्रीय सत्ता को देते हैं।[१] विधान के १९वें अनुच्छेद के अनुसार निम्नलिखित विषयों में संघ सरकार को ही अनन्य रूप से पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं: (१) राज्य ऋण और जायदाद (२) व्यपार का नियमन (३) किसी भी रीति से कर वसूल कर मुद्रा एकत्रित करना (४) राज्य के मानके आधार पर ऋण उधार लेना (५ डाक सेवायें, (६) जनगणना और सांख्यिकी (Statistics) (७) स्थल व जल सेना व सुरक्षा, (८) कनाडा की सरकार के कर्मचारियों के वेतन निश्चित करना और उसके दिये जाने का प्रबन्ध करना, (९) विपदसूचक संकेतों, आकाश द्वीपों, तैरते हुये निशानों का प्रबन्ध करना,(१०) नौतरण व नौपरिवहन (११) छूत की बीमारियों वाले पोत से सम्पर्ग निषेध और नाविक चिकित्सालयों की स्थापना, (१२) सागर तट व देश के भीतर की मछलियां, (१३) किसी प्रांत और दूसरे ब्रिटिश देश या विदेश के बीच या दो प्रांतों के बीच नाव से पार जाने की व्यवस्था, (१४) चलार्थ (Currency) व मुद्रा, (१५) बैंकें और नोटों का निकालना, (१६)सेविंग बैंकें, (१७) भार व माप, (१८) प्रतिज्ञा अर्थपत्र व हुंडी, (१९) ब्याज, (२०) ऋण चुकाने की कानूनी वस्तु, (२१) दिवालियापन, (२२) अन्वेषणों के सुरक्षित प्रयोगाधिकार, (२३) प्रतिलिप्याधिकार, (२४) मूल निवासी और उनके लिये सुरक्षित भूमि, (२५) जानपद बनाना और अन्यदेशीय निवासी, (२६) विवाह और तलाक, (२७) केवल, दण्ड देने वाले न्यायालयों की स्थापना छोड़ कर परन्तु दण्ड-विषयों में कार्य-

---

* ब्राइसः मौडर्न डैमौक्रेसीज़, प्रथम पुस्तक, पृ० ५२१

[१] डौसनः कंस्टीट्यूशनल इश्यूज़ इन कनाडा १९०९–१९३१, पृ० ४३१

प्रणाली के निश्चित करने के काम को शामिल कर दण्डविधि, (२८) शोधनालयाओं की स्थापना व उनकी देखभाल करना, और (२९) वे विषय जो स्पष्टतया प्रांतों को दिये हुये विषयों में से निकाल कर एक्ट में डाला दिये गये हैं। इनके अतिरिक्त वे विषय जो उपर्युक्त विषयों के अन्तर्गत आते हों वे स्थानीय विषयों की उस श्रेणी में नहीं समझे जायेंगे जो प्रांतों को ही केवल सौंप दिये गये हैं।*

प्रान्तों पर संघ-सरकार का नियंत्रण—संघ सरकार प्रांतों की सरकार के ऊपर इस बात से नियंत्रण रखती है कि वही प्रांतों के गवर्नरों की नियुक्त करती है। यह नियंत्रण गवर्नर जनरल-इन-कौंसिल (Governor-Genral-in-Council) के द्वारा किया जाता है। गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल गवर्नरों को हटा सकता है और प्रांतीय धारा सभा द्वारा बनाये हुये कानून को रद्द कर सकता है। अभी तक गवर्नर-जनरल ने केवल दो गवर्नरों को ही उनके पदों से अलग किया है। परन्तु संघ शासन स्थापित होने से तीस वर्ष तक कानूनों के रद्द करने के अधिकार का खुले तौर पर प्रयोग किया गया और उस समय यह समझा जाने लगा कि प्रांतीय स्थानीय स्वतंत्रता के लिये यह अधिकार बड़ा आघात करने वाला है। यद्यपि इस अधिकार में कानूनी ढंग से कोई कमी नहीं आई है परन्तु पिछली शताब्दी के अन्त होने के बाद इसका अधिक प्रयोग नहीं किया गया है। हाल ही में डोमिनियन सरकार प्रांतीय सरकारों के ऊपर एक नया नियंत्रण रखने लग गई है जिस नियंत्रण के लिये विधान ने कोई विचार न किया था। डोमिनियन सरकार प्रांतीय सरकारों की सहायता के लिये अनुदान देती हैं और ऐसे अनुदान देते समय संघ सरकार प्रांतीय क्षेत्र वाले विषयों में प्रांतीय सरकार पर प्रतिबन्ध लगा देती हैं जिसे प्रांतीय सरकारें मान लेती हैं क्योंकि ऐसा न करने से उन्हें अनुदान नहीं मिलता और वे नई योजनायें कार्यान्वित नहीं कर सकतीं।

संघ व्यवस्थापक मण्डल—कनाडा में निर्बन्धकारी सत्ता राजा और पार्लियामेंट में विहित है।

संघ (डोमिनियन) व्यवस्थापक मण्डल कनाडा में द्विआगारिक है और लगभग ब्रिटिश ढंग पर संगठित है। दोनों आगारों में से एक को हाउस आफ कामन्स (House of Commons) कहकर पुकारा जाता है और दूसरे को सीनेट (Senate)। पहला निचला आगार है और दूसरा

---

* डौसनः इश्यूज़ इन कनाडा, पृ० ४३२

ऊपरी आगार है। दोनों आगारों को मिलाकर पार्लियामेंट कहा जाता है। पार्लियामेंट की व्यवस्था सम्बन्धी शक्तियोंका पहिलेही वर्णन किया जा चुका है।

निचले आगार में प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त—सन् १९४७ के प्रतिनिधित्व एक्ट के अनुसार इस समय कनाडा के हाउस में २५५ प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया, जिनमें ८३ ओन्टैरियो के, ७३ क्विबैक के, २० सस्कैचुवान के, १६ मैनीटोवा के, १७ एलबर्टा के, १८ ब्रिटिश कोलम्बिया के, नोवास्कोशिया के १३, न्यू ब्रुन्सविक के १०, प्रिंस एडवर्ड द्वीप के ४, और यूकन का १ प्रतिनिधि होता है। अभी हाल ही में १ मार्च १९४९ को यह निश्चय हुआ कि न्यूफाउंडलैण्ड द्वीप भी कनाडा में मिलाकर उसका एक प्रान्त बना दिया जाय और इस प्रकार उसके भी आठ प्रतिनिधि हाउस में बैठने लगी हैं जिससे कुल प्रतिनिधियों की संख्या भी बढ़कर २६३ हो गई है। प्रारम्भ में (विधान की ३७ वीं धारा के अनुसार) हाउस से सदस्यों की संख्या १८१ ही रखी गयी थी परन्तु ५१वीं धारा में यह आयोजन कर दिया गया है कि कनाडा की पार्लियामेंट प्रति दस वर्षीय जनगणना के पश्चात् प्रतिनिधियों की संख्या को आगे बतलाये हुये नियमों के अनुसार घटा बढ़ा सकती है। ये नियम ये हैं कि क्विबैक के प्रतिनिधियों की संख्या ६५ में कोई परिवर्तन न होगा। दूसरे प्रान्तोंमें प्रतिनिधि जनसंख्या के उसी अनुपात से होंगे जो अनुपात क्विबैक की जन-संख्या और ६५ में होगा। इस घटती बढ़ती में किसी भी प्रान्त के प्रतिनिधियों की संख्या तब तक न घटाई जायेगी जब तक कि जन-संख्या ५ प्रतिशत या उससे अधिक न घटी हो, परन्तु क्विबैक के प्रतिनिधियों की संख्या किसी दशामें भी ६५ से कम न की जायगी। कथितार्थ यह निकला कि हाउस में प्रतिनिधियों की संख्या मालूम करने लिये कनाडा की जनसंख्या में उस संख्या से भाग देना पड़ेगा जो हमें क्विबैक की जन-संख्या में ६५ से भाग देने से लब्धि के रूप में प्राप्त होती है। इसको हम अधिक स्पष्ट करने के लिये इस प्रकार भी बतला सकते हैं:—

$$\text{हाउस के सदस्यों की संख्या} = \frac{\text{कनाडा की जन-संख्या}}{\frac{\text{क्विबैक की जन-संख्या}}{६५}}$$

इस प्रकार गणित करने से यह मालूम होता है कि इस समय कनाडा के हाउस में प्रत्येक प्रतिनिधि ३६००० व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक दशवर्षीय जनगणना में जनगणना की प्राकृतिक वृद्धि से व नये प्रान्तों के संघ शासन में आने से हाउस में प्रतिनिधियों की सख्या बढ़ती

रही है और इस समय यह संख्या २४५ है, हाउस की बैठक में गणपूरक संख्या २० है। हाउस अपना स्पीकर अर्थात् सभापति स्वयं ही चुनता है। हाउस की अवधि पांच वर्ष है परन्तु इसके पहिले ही इसका विलयन हो सकता है यदि गवर्नर जनरल प्रधान मन्त्री की इस सम्बन्ध में सलाह मान ले। हाउस के निर्णय बहुमत से होते हैं। स्पीकर को मत देने का तभी अधिकार है जब किसी प्रश्न के अनुकूल व उसके विरोध में बराबर मत हो, अन्यथा नहीं। हाउस के प्रतिनिधियों का निर्वाचन प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर होता है। सन् १९२० के डोमिनियन एक्ट (Dominion Act) के अनुसार प्रत्येक प्रौढ़ पुरुष व स्त्री को मत देने का अधिकार है यदि वह अपने आप को ब्रिटिश जानपद मानता हो और यदि वह कनाडा में दो वर्ष व अपने निर्वाचन क्षेत्र में दो मास से वास करता हो।

सीनेट का संगठन—सीनेट या ऊपरले आगार में इस समय १०२ सदस्य हैं जो इस प्रकार वितरित हैं, ओन्टैरियो २४, क्विबैक २४, समुद्री प्रान्त २४ (नोवास्कोशिया १०, न्यू ब्रंसविक १०, प्रिंस एडवर्ड द्वीप ४), चौथा प्रान्त समूह २४ (प्रत्येक के ६) और न्यूफाउन्डलैंड के ६ प्रतिनिधि। कनाडा निवासी सीनेट को ब्रिटिश हाउस आफ लार्ड्स के ढंग पर बनाना चाहते थे परन्तु हाउस आफ लार्ड्स की पैतृक सदस्यता के अभाव में सीनेट के सदस्यों को गवर्नर जनरल उनको जीवन भर के लिये नियुक्त करता है। सीनेट के सदस्यों की नियुक्ति मंत्रिमण्डल की सिफारिश पर ही की जाती है। इसलिये यदि कोई स्थान रिक्त होता है तो वह उन्हीं व्यक्तियों को मिलता है जिन्होंने पदारूढ़ पार्टी अर्थात् दल की पूर्वकाल में किसी प्रकार सेवा की हो। यही कारण है कि सीनेट को मंत्रिमण्डल का रिश्वती फंड कहा जाता है।

सीनेट के सदस्य की योग्यतायें—सीनेट का सदस्य बनने के लिये व्यक्ति में उच्च योग्यतायें होनी चाहिये। ये योग्यतायें विधान की २३ वीं धारा में वर्णित हैं। सीनेट का सदस्य ३० वर्ष की आयु का होना चाहिये। वह या तो जन्म से ही ब्रिटिश जानपद हो या ब्रिटिश पार्लियामेंट या कनाडा की किसी धारा सभा के किसी कानून से जानपद बन गया हो। वह उस प्रांत का निवासी होना चाहिये जिसका वह प्रतिनिधि चुना गया हो। क्विबैक के प्रतिनिधि को उस निर्वाचन क्षेत्र का निवासी भी होना आवश्यक है जिसके प्रतिनिधित्व के लिये वह नियुक्त हुआ हो।

गवर्नर-जनरल के मनोनीत सदस्य—मृत्यु या त्यागपत्र के कारण यदि सीनेट में कोई स्थान रिक्त होता है तो गवर्नर-जनरल उस रिक्त स्थान को

भरने के लिये कार्यवाही आरम्भ करता है। इसके अतिरिक्त जब दोनों आगारों में ऐसी मुठभेड़ हो जाय कि कार्य संचालन रुक जाय उस समय गवर्नर-जनरल सम्राट की ओर से चार से लेकर ८ तक सीनेट में नये सदस्यों की नियुक्ति कर सकता है जिससे कार्यावरोध की अवस्था मिट जाये और आगे कार्यवाही चल सके। यदि सीनेट का कोई सदस्य दो लगातार सत्रों में अनुपस्थित रहे, यदि वह किसी दूसरी सत्ता के प्रति अपनी निष्ठा रखना आरम्भ कर दे, यदि वह देशद्रोही या अपराधी हो जाय, यदि वह दिवालिया घोषित हो जाय या यदि वह जायदाद-सम्बन्धी योग्यता रखना बन्द कर दे तो वह सीनेट का सदस्य नहीं रहता।

सीनेट के स्पीकर की नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा होती है। सीनेट में गणपूरक संख्या १५ है। स्पीकर को एक मत देने का अधिकार होता है पर यदि किसी प्रश्न पर अनुकूल और विरुद्ध मत बराबर होते हैं तो निर्णय विरोध में समझा जाता है। सीनेट केवल संशोधनार्थ दोहराने वाला आगार है, यह प्रान्तीय हितों की देखभाल करने का काम नहीं करता।

सीनेट का संगठन और उसकी कार्यपद्धति—कनाडा की पार्लियामेंट की कार्यप्रणाली के नियम ब्रिटिश पार्लियामेंट के वैसे ही नियमों से बहुत मिलते जुलते हैं। दोनों देशों में निचले आगार में ही वास्तव में राजनैतिक संघर्ष चलता है और वही मंत्रिमण्डल के भाग्य का निर्णय होता है। 'कनाडा में हाउस आफ कामन्स ही सबसे अधिक कार्यशील वैधानिक चित्रों का चितेरा है और स्यात् ही कोई ऐसा सत्र होता हो जिसमें राजनीति-शास्त्र की चित्रशाला के लिये कोई नया चित्र न बना हो। कभी गवर्नर जनरल के पद को नया रूप दिया जाता है, दूसरे समय सिविल सर्विस के सुधार के सम्बन्ध में पुराने विचारों पर नया रंग कर दिया जाता है और कभी साम्राज्य के वैदेशिक सम्बन्धों के बारे में सदस्यों की कल्पना को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार चित्रशाला की दीवारें जल्दी भरती जा रही हैं।"* हाउस आफ कामन्स और सीनेट को समान अधिकार हैं परन्तु मुद्रा-विधेयक हाउस आफ कामन्स में ही प्रारम्भ होते हैं। जब कोई विधेयक दोनों आगारों में स्वीकार हो जाता है तो कानून बनने से पूर्व गवर्नर-जनरल की सम्मति उसे प्राप्त होना आवश्यक है। व्यवहार में यह सम्मति कभी रोकी नहीं जाती और कनाडा की पार्लियामेंट को कनाडा के लिये व्यवस्था करने का पूर्ण अधिकार है।

---

* कन्स्टीट्यूशनल इश्यूज़ इन कनाडा, पृ० २३६

संघ-कार्यकारिणी

कार्यकारिणी और राजा—ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट की ९ वीं धारा यह है "कनाडा की और कनाडा में कार्यकारिणी सत्ता व अधिकार रानी में विहित बने रहने की घोषणा की जाती है।" जब यह एक्ट पास हुआ था उस समय ब्रिटिश राजा इस सत्ता के उपभोग का अधिकारी समझा गया था। परन्तु जब कनाडा के अन्तर्राष्ट्रीय या यों कहिये कि साम्राज्य-सम्बन्धी पद में परिवर्तन हुआ तो राजा से अभिप्राय सम्राट न समझा जाकर कनाडा का राजा समझा जाने लगा। असल में सरकार के कार्यकारी विभाग के समान दूसरे सभी विभागों में विधान की लिखित धराओं से प्रचलित वैधानिक-पद्धति का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इंगलैंड की तरह कनाडा में भी बहुत सी वैधानिक प्रथायें हैं जिनका अध्ययन किये बिना वास्तविक शासन-पद्धति समझ में नहीं आ सकती।

कनाडा की प्रिवी कौंसिल—विधान की ११ वीं धारा के अनुसार "कनाडा की सरकार को सहायता देने व परामर्श देने के लिये एक कौंसिल होगी जिसका 'नाम कनाडा के लिये रानी की प्रिवी कौंसिल' नाम होगा और जो व्यक्ति इस कौंसिल के सदस्य होने जा रहे हों वे समय समय पर गवर्नर जनरल द्वारा चुने जाकर बुलाये जायेंगे और उन्हें प्रिवी कौंसिल के सदस्य बनने की शपथ लेनी पड़ेगी और इस कौंसिल के सदस्य समय समय पर गवर्नर-जनरल द्वारा हटाये जा सकेंगे"। ब्रिटिश शासन-विधान के ढांचे का जितना अनुकरण कनाडा ने प्रिवी कौंसिल की स्थापना करने में किया है उतना किसी और दूसरी बात में नहीं किया। पर कनाडा की प्रिवी कौंसिल न्याय-सम्बन्धी कार्य नहीं करती।

मंत्रीमण्डल ही वास्तविक कार्यकारिणी है—व्यवहार में गवर्नर-जनरल केवल वैधानिक कार्यकारी अध्यक्ष है। असल में कार्य करने वाली तो कार्यकारिणी समिति है जिसको डोमिनियन कैबिनेट कहते हैं, जिसमें कनाडा के राजा के मंत्री सदस्य होते हैं और प्रधान मंत्री अध्यक्ष होता है। मंत्री-परिषद् (कैबिनेट) हाउस आफ कामन्स में बहुमत रखने वाले दल के नेताओं को मंत्री नियुक्त कर के बनाई जाती है। जैसे ब्रिटेन में राजा प्रधान मंत्री की नियुक्ति करता है उसी प्रकार कनाडा में गवर्नर-जनरल कनाडा के प्रधान मंत्री को नियुक्त करता है। नियुक्त हो जाने के पश्चात् प्रधान मंत्री अपने मित्रों का चुनाव इस प्रकार करता है कि प्रत्येक प्रान्त का एक प्रतिनिधि मंत्रिमण्डल

में अवश्य हो। हालांकि इस सिद्धान्त का कड़ाई के साथ पालन करने में योग्य व्यक्ति परिषद में नहीं आ पाते परन्तु परिषद को संघात्मक रूप देने से यह पक्का हो जाता है कि परिषद को हाउस के बहुमत का समर्थन प्राप्त होता रहता है। परिषद हाउस को उत्तरदायी है, इसलिये यदि हाउस इसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे या इसकी नीति का समर्थन न करे तो इसे पदत्याग कर देना पड़ता है। परन्तु प्रधान मंत्री ऐसा होने से पूर्व गवर्नर-जनरल से यह प्रार्थना कर सकता है कि वह हाउस का विलयन कर दे और नया सामान्य निर्वाचन करे जिससे जनता का मत मालूम हो जाय। पहिले तो ऐसी प्रार्थनाएं प्रायः अस्वीकार कर दी जाती थीं जैसा कि सन् १८५८ व १८६० में किया गया। क्षमादान के विशेषाधिकार का उपयोग करने में भी गवर्नर-जनरल ने प्रधान मंत्री की सलाह मानने से इन्कार कर दिया था। परन्तु समय के बीतने से सब बातें बदल गई हैं और अब गवर्नर-जनरल व मंत्रीपरिषद् के सम्बन्धों में बराबर उन्नति होती चली आ रही है। "ब्रिटेन में जैसे राजा है उसी प्रकार कनाडा में गवर्नर-जनरल सरकार की सब से महत्वशाली मूर्ति है। अपने मूल आदर्श अर्थात् ब्रिटिश सम्राट के समान उसका इतिहास भी निरंकुशता से धीरे धीरे, बिना प्रदर्शन हुये व अनचाहे घटते घटते बिलकुल शक्तिहीन होने की कहानी से भरा हुआ है।"* इस परिवर्तन से विधान के लेख पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि वह वैसा ही अब भी वर्तमान है जैसा १८६७ में था, केवल शासन-व्यवहार ही उससे प्रभावित हुआ है। "गवर्नर को जो निश्चित अधिकार दिये गये थे या जो शक्तियां रीत्यानुसार उसकी समझी जाती थीं वे या तो विधिपूर्वक बदल दी गयीं या अधिकतर चुपचाप त्याग दी गयीं। पूर्ववर्ती उदाहरण छूटते गये और उनके स्थान पर नये उदाहरणों की संख्या बढ़ने लगी। इन सबके पीछे जो प्रेरक शक्ति थी वह कनाडा निवासियों का यह आग्रह कि स्वायत्त शासन की अधिकाधिक मात्रा बढ़े। गवर्नर जनरल की स्थिति पर इस इच्छा ने दो प्रकार से आघात किया। सरकार पर अधिक प्रजातंत्रात्मक नियंत्रण की इच्छा के बलवती होने से उसका महत्व कम होने लगा क्यं कि वही सरकार-संगठन की जंजीर में केवल तंत्रहीन कड़ी के समान था। दूसरे राष्ट्रीय स्वतंत्रता के विकास के कारण उसके साम्राज्य सम्बन्धी कार्य बहुत कम हो गये"।[१] इस प्रकार वास्तविक कार्यकारिणी सत्ता अब एक उत्तरदायी मंत्रीपरिषद् के हाथ में आगई। यह परिषद् धारा सभा को

---

* कंस्टीट्यूशनल इश्यूज इन कनाडा, पृ० ६५

[१] " " " पृ० ६६

मार्ग दिखलाती, देश पर शासन करती और दूसरी बातों में वही स्थान ग्रहण किये हुये हैं जो ब्रिटेन में ब्रिटिश मंत्रीपरिषद् को प्राप्त हैं। गवर्नर जनरल की नियुक्ति भी सम्राट अब कनाडा की मंत्रीपरिषद् का सलाह से करता है जिसके साथ उसे वैधानिक-अध्यक्ष के समान बर्तना पड़ता है। इस प्रकार वह अब ब्रिटिश सरकार का मातहत कर्मचारी नहीं रह गया है।

मंत्रिपरिषद् की बनावट—मंत्रिपरिषद् ही इसलिये कनाडा में वास्तविक शासन करती है। इस में इस समय १७ मंत्री हैं जो इस प्रकार हैं : प्रधान मंत्री, (कौंसिल का सभापति), खान मंत्री, न्याय मंत्री, सार्वजनिक निर्माण मंत्री, अर्थ मंत्री, पोस्टमास्टर जनरल, व्यापार मंत्री, सेक्रेटरी आफ स्टेट, सार्वजनिक सुरक्षा व स्वास्थ्य मंत्री, पेंशन मंत्री, माल मंत्री, मात्स्य मंत्री, श्रम मंत्री, यातायात मंत्री, कृषि मंत्री, और दो अतिरिक्त मंत्री। प्रधान मंत्री को १५,००० पौंड प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। दूसरे साधारण मंत्रियों को १०००० पौंड प्रतिवर्ष मिलता है। अतिरिक्त मन्त्रियों को जिनके पास कोई शासन विभाग नहीं होता, कोई वेतन नहीं मिलता। मन्त्रियों के अतिरिक्त उप-सचिव भी होते हैं। मंत्रिपरिषद संगठित रूप में कार्य करती है और हाउस में संयुक्त रूप में उत्तरदायी रहती है हालांकि मंत्री व्यक्तिगत जिम्मेदारी से छूटे नहीं रहते। ब्रिटेन की तरह मंत्रिपरिषद् दल प्रणाली के अनुसार कार्य करती है।

सिविल सर्विस—यदि परिषद सरकार की सामान्य शासन नीति का निर्देश करती है तो उसके कार्यान्वित करने का काम सिविल सर्विस के अफसरों पर छोड़ दिया जाता है। कनाडा में सिविल सर्विस कमिश्नरों की एक स्वतंत्र संस्था है, वे अपने पद से दोनों आगारों के निर्णय से ही हटाये जा सकते हैं। उनको परीक्षा सम्बन्धी विस्तृत अधिकार मिले हुये हैं और उन्नति देना आदि सब सिद्धान्ततः उन्हीं के हाथों में रहता है हालांकि विभाग के उपाध्यक्ष को अपनी राय देने का अवसर दिया जाता है। यह प्रणाली दोष-रहित नहीं कही जा सकती, विशेषकर इसलिये क्योंकि मंत्रिमण्डल को यह सुविधा नहीं रहती कि अयोग्य व्यक्तियों को उनके पद से सरलता से हटा सके। सन् १९१९ से पूर्व सामान्य निर्वाचन के पश्चात् एक बड़ी संख्या में अफसरों को उनके पद से हटाया जाया करता था। अब कमीशन की नियुक्ति के पश्चात् नौकरी की निर्विघ्नता सुरक्षित कर दी गई है।

कनाडा का न्यायमण्डल

जब ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट पास हुआ तो उसके बाद कुछ दिनों तक न्यायमण्डल शासन संगठन की पृथक शाखा न थी जैसा इसे होना

चाहिये था। "न्यायाधीश राजनीति में खुल कर भाग लेते थे और उपनिवेशों के शासन करने वाले गुट्ट के समर्थक रहते थे।" वे कानून बनाने व शासन का संचालन करने में भाग लेते थे। ऐसी स्थिति में स्वभावतः इस प्रणाली में बड़े दोष थे इसलिये जब उत्तरदायी शासन की मांग की गई तो उसमें यह भी कहा गया कि ब्रिटिश ढंग का न्यायमण्डल बने। लार्ड डरहम ने भी अपनी रिपोर्ट में यह शिकायत की कि फ्रांसीसी और अंगरेज बसने वालों के जातीय वैरभाव के कारण न्याय की दुर्गति होती है। "इसी कारण से न्याय का मार्ग रुक जाता है, किसी भी राजनैतिक मुकदमे में ठीक ठीक निर्णय की आशा नहीं की जाती, न्यायालय भी दोनों जातियों के विचार से दो प्रतिकूल दलों में विभाजित है जिनमें से किसी से भी प्रतिकूल दल के साधारण व्यक्ति न्याय की आशा नहीं रखते।"* जब लार्ड डरहम ने यह बात लिखी तब से स्थिति बिलकुल बदल गई है। कानून के द्वारा व प्रथा के बल पर न्याय-सम्बन्धी निष्पक्षता व स्वतंत्रता की परम्परा सुरक्षित व विकसित होती चली आरही है। इस मामले में भी ब्रिटिश परम्परा ने कनाडा के इतिहास पर बड़ा प्रभाव डाला है।

इस समय कनाडा में न्यायालयों की चार श्रेणियाँ है। सबसे ऊपर कनाडा का सर्वोच्च न्यायालय है जिसके न्यायाधीशों को गवर्नर जनरल नियुक्त करता है और वे सद्व्यवहार करते समय तक अपने पदों पर बने रहते हैं। उनको दोनों आगारों के प्रस्ताव पर ही हटाया जा सकता है। दूसरे न्यायालय को एक्सचैकर (Exchequer) न्यायालय कहते हैं, वह भी केन्द्रीय सरकार के आधीन है। इनके अतिरिक्त प्रान्तों में प्रान्तीय उच्च न्यायालय हैं और उनके नीचे जिले की कचहरियाँ हैं। ये सब भी न्यायाधीशों की नियुक्ति, वेतन या पदच्युत करने का जहां तक सम्बन्ध है, केन्द्रीय सरकार के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। बचे हुये विषयों में वे प्रान्तीय सरकार के अधिकार क्षेत्र में हैं। सीढ़ी के अन्तिम डण्डे पर छोटे छोटे प्रान्तीय न्यायालय हैं जो पूरी तरह से प्रान्तीय नियंत्रण में हैं। सर्वोच्च-न्यायालय कनाडा का अन्तिम पुनर्विचारक न्यायालय है परन्तु प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध सीधे सम्राट की प्रिवी कौंसिल को न्याय-समिति में अपील हो सकती है। जैसे जैसे कनाडा में राष्ट्रीय भावना जाग्रत होती जाती है इस प्रकार की अपीलों की संख्या कम होती जा रही है। परन्तु यह अधिकार अब भी वर्तमान है और इसके कारण यह लाभ भी हुआ कि प्रिवी कौंसिल की न्याय समिति कनाडा में न्याय सम्बन्धी

* लार्ड डरहम की रिपोर्ट से

एकरूपता स्थापित करने के योग्य बनी रही है। जब प्रिवी कौंसिल में ये अपीलें सुनी जाती हैं तो उस समय और न्यायाधीशों के साथ कनाडा का एक न्यायाधीश भी बैठता है।

प्रान्तीय सरकारें

कनाडा में नीचे लिखे प्रान्त हैं :—

प्रान्त	कुल क्षेत्रफल, वर्ग मीलों में, भूमि व जल	सन् १९४१ की जन-संख्या
प्रिंस एडवर्ड द्वीप	२,१८४	९५,०४७
नोवा स्कोशिया	२१,०६४	५,७७,९६२
न्यू बुन्सविक	२७,९८५	४,५७,४०१
क्विबैक	५,९४,५३४	३,३३१,८८२
ओन्टैरियो	४,१२,५८२	३७,८७,६५५
मैनीटोबा	२,४६,५१२	७,२९,७४४
ब्रिटिश कोलम्बिया	३,६६,२५५	८१,७६,८६१
एलबर्टा	१,५५,२८५	७,९६,१६९
ससकैचुवान	२,५१,७००	८,९५,९९२
यूकन	२,०७,०७६	४,९१४
उत्तर-पश्चिमी प्रदेश (केन्द्रीय नियंत्रण में)	१,३०९,६८२	१२,०२८
न्यू फाउंडलैंड	४२,७३४	२,२१,१७१
कुल योग	३७,३३,१४४	१,१८,२७,८२६

उनकी शक्तियां—प्रान्तीय शासन-विधानों का क्या रूप होगा यह सामान्यतया ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट में निश्चित है। इसके अतिरिक्त प्रान्तों को विशेष शक्तियाँ भी दी हुई हैं। एक्ट की ९२ वीं धारा के अनुसार प्रान्तीय धारा सभाओं को निम्नलिखित विषयों के अन्तर्गत आने वाले मामलों के सम्बन्ध में कानून बनाने के अनन्य अधिकार हैं।

(१) लैफ्टीनेन्ट गवर्नर के पद को छोड़कर प्रान्तीय शासन विधान में समय समय पर संशोधन करना।

(२) प्रान्तीय आवश्यकताओं के लिये प्रान्त में प्रत्यक्ष कर लगाना।

(३) प्रान्त की धन सम्पत्ति के आधार पर ऋण लेना।

(४) प्रान्तीय सरकारी पदों की स्थापना करना और उन पर अफसरों को नियुक्त कर उन्हें वेतन देना।

(५) प्रान्तीय भूमि व उस पर उगे हुये वन व लकड़ी की देखभाल करना और बेचना।

(६) प्रान्त में बन्दीगृहों की स्थापना करना व उनकी देखभाल करना।

(७) प्रान्त में अस्पतालों, आश्रमों आदि की स्थापना, प्रबन्ध व देख-भाल रखना।

(८) नगर पालिकायें।

(९) दुकानों, सरायों, भोजनालयों आदि के लाइसेन्स देना जिससे प्रान्तीय, स्थानीय व नागरिक कामों के लिये धन इकट्ठा हो सके।

(१०) स्थानीय निर्माण व योजनायें, निम्नलिखित को छोड़ कर :—

(क) जलपोत, रेल, नहर, तार या और दूसरी योजनायें जो प्रान्त के बाहर तक जाती हों या एक प्रान्त को दूसरे प्रान्त से मिलाती हों

(ख) जलपोत जो किसी ब्रिटिश या अन्य देश के बीच चलते हों,

(ग) वे योजनायें जो यद्यपि प्रान्त में ही स्थित हों पर उनके पूरी होने से पूर्व या बाद जिनको कनाडा की सरकार ने सारे कनाडा या एक से अधिक प्रान्त के हितार्थ घोषित कर दिया हो।

(११) प्रान्तीय लाभ के लिये कम्पनियों को संगठित करना।

(१२) विवाहों को मान्य करना।

(१३) प्रान्त में जायदाद सम्बन्धी व नागरिक संबन्धी अधिकार।

(१४) प्रान्त में न्याय का प्रबन्ध करना और उसके लिये न्याया-लयों को स्थापित कर उनका प्रबन्ध करना व उनमें कार्य-प्रणाली को निश्चित करना। ये न्यायालय व्यवहार व अपराध संबन्धी दोनों प्रकार के हो सकते हैं।

(१५) इस धारा में गिनाये हुए विषयों के अन्तर्गत आने वाले मामलों के सम्बन्ध में किसी प्रान्तीय कानून को लागू करने के लिये जुर्माना करके व कारावास करके दण्ड देना।

(१६) सामान्यतया वे सब मामले जो प्रान्त में स्थानीय या वैयक्तिक प्रकार के हों।

इन उपर्युक्त शक्तियों को बर्तने के अतिरिक्त कुछ शर्तों के साथ, जिनसे प्रान्तीय सरकार का अधिकार कम हो जाता है, प्रान्तीय धारा सभा

प्रान्त के भीतर शिक्षा सम्बन्धी कानून बना सकती है। नोवास्कोशिया, ओन्टेरियो और न्यू ब्रुंसविक प्रान्तों में केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह जायदाद व व्यावहारिक अधिकारों के सम्बन्ध में एक समान कानून बना सकती है, प्रान्तीय धारा सभा कृषि व विदेशियों के बसने के संबन्ध में कानून बना सकती है। इससे यह प्रकट है कि समवर्ती शक्तियों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है।

प्रान्तीय धारा सभायें—प्रत्येक प्रान्त की अपनी धारा सभा या व्यवस्थापक मण्डल है जिसमें एक या दो आगार और लेफ्टिनेंट गवर्नर होता है। इस व्यवस्थापक मण्डल की रचना व उसकी शक्तियों के संबन्ध में शासन विधान में विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

गवर्नर जनरल को यह अधिकार है कि वह किसी प्रान्तीय कानून के लिये अपनी अनुमति न दे। ऐसा होने पर उस कानून को लागू नहीं किया जा सकता। केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय निर्बन्धों को रद्द करने का अधिकार मिलने से प्रांतीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के बहुत कुछ आधीन हो जाती हैं।

प्रान्तीय अध्यक्ष—प्रांतीय सरकार का अध्यक्ष लैफ्टिनेंट गवर्नर होता है जिसकी नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट नहीं करता वरन् गवर्नर जनरल मंत्रि परिषद् की सलाह से करता है। गवर्नर जनरल किसी भी लैफ्टिनेंट गवर्नर को उसके पद से हटा सकता है, जिससे प्रांतों का मान और भी नीची श्रेणी का हो जाता है। प्रान्तीय गवर्नर केवल वैधानिक अध्यक्ष है। वास्तविक शासन-शक्ति प्रान्तीय मंत्रि-परिषद् के हाथ में रहती है जो प्रान्तीय धारा सभा को उत्तरदायी होती है।

प्रत्येक प्रान्त में उच्च जिले के न्यायालय हैं जो कुछ मामलों में, जैसे न्यायाधीशों की नियुक्ति, उनका पद से हटाया जाना व उनका वेतन, केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में रहते हैं। इनके अतिरिक्त छोटे प्रान्तीय न्यायालय हैं जो पूरी तरह से प्रान्तीय सरकार के नियंत्रण में हैं।

संक्षेप में यह कहना चाहिये कि कनाडा में प्रान्तीय सरकारों का सत्ता इतनी प्रतिबन्धित है जितनी संघात्मक शासन विधान में न होनी चाहिये थी। केन्द्रीय सरकार को विस्तृत व्यवस्थापन अधिकारों के अतिरिक्त अवशिष्ट शक्तियां भी सौंपी हुई हैं। केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय कानूनों को रद्द कर सकती है। यह प्रान्तीय गवर्नरों की नियुक्ति करती है और उन्हें उनके पद से हटा सकती है, यह माना कि अभी तक केवल दो बार ही ऐसा हुआ

है। प्रांतीय न्यायमण्डल की उच्च श्रेणियों पर भी इसका नियंत्रण रहता है। आगम के प्राप्त कराने वाले अधिकार दोनों सरकारों में इस प्रकार बांटे गये हैं कि प्रांतीय सरकार को प्रायः केन्द्रीय सरकार का मुँह देखना पड़ता है और उसके दिये हुए धन से ही अपनी योजनायें पूरी करनी पड़ती हैं। सर्वोच्च-न्यायालय के निर्णयों ने तो प्रांतीय सरकारों की शक्तियों को और भी अधिक सीमित कर दिया है।

शासन-विधान का संशोधन

जैसा पहिले कहा जा चुका है प्रान्तों के हितों में विभेद होने के कारण ही कनाडा का शासन विधान संघात्मक बनाया गया था। अंगरेज और फ्रांसीसी प्रवासियों के संघर्ष को मिटाने का उद्देश्य ही वह मुख्य कारण था जिससे चार प्रान्तों को संघीभूत किया गया, दूसरे प्रान्तों के मिलने में यही कारण वर्तमान न था। इसलिये ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट ने न तो डोमिनियन पार्लियामेंट को न किसी प्रान्तीय धारा सभा को यह शक्ति दी कि वह शासन विधान में परिवर्तन कर सके। क्योंकि डर यह था कि ऐसी शक्ति के उपयोग से किसी प्रान्त के हितों की हानि करने का प्रयत्न किया जा सकता था। एक्ट में यह निश्चित कर दिया गया है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट ही विधान में संशोधन कर सकती है। संघ में यदि कोई नया प्रांत आना चाहे तो कनाडा की पार्लियामेंट इसके लिये प्रार्थना करेगी और ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक्ट से ही इसकी अनुमति मिलेगी। हालांकि संशोधन करने में ब्रिटिश पार्लियामेंट कनाडा की पार्लियामेंट व विभिन्न प्रांतीय धारा सभाओं में प्रकट किये गये कनाडा निवासियों के दृष्टिकोण व विचारों का समुचित आदर करती है पर सिद्धान्ततः शासन-विधान में संशोधन करने का अधिकार डोमिनियन को नहीं दिया गया है। वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था से दूसरी डोमिनियन पार्लियामेंटों की निर्बन्धकारी सत्ता अधिक विस्तृत कर दी गई है और उन पर पूर्व समय से चले आने वाले कुछ प्रतिबन्ध हटा लिये गये हैं, परन्तु कनाडा के सम्बन्धमें फिर भी कुछ विशेष बन्धन ज्यों के त्यों रखे हैं। व्यवस्था की ७ वी धारा से यह प्रकट हो जायगा कि यद्यपि कनाडा की पार्लियामेंट ब्रिटिश पार्लियामेंट के किसी एक्ट के विरुद्ध भी कानून बना सकती है जहां तक उस एक्ट का कनाडा से सम्बन्ध है, परन्तु सन् १८६७ व १९३० के बीच में कनाडा के शासन विधान को निश्चित करने वाले या उसमें संशोधन करने वाले जो एक्ट पास हुए हों उनको बदलने का अधिकार कनाडा की पार्लियामेंट को नहीं दिया गया है।

पर आश्चर्य की बात तो यह है कि दूसरे खण्ड से प्रांतीय धारासभाओं को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे अपने अधिकार क्षेत्र में कोई भी कानून बना सकती हैं चाहे वह ब्रिटिश पार्लियामेंट के किसी कानून के विरुद्ध ही क्यों न हो। प्रांतीय धारा सभायें अपने शासन-विधान को बदल सकती हैं केवल लेफ्टिनैन्ट गवर्नर के पद के सम्बन्ध में वे कुछ नहीं कर सकतीं। इससे प्रांतीय धारासभाओं के अधिकार प्रांतीय क्षेत्र में बढ़ा दिये गये। यद्यपि १८६७ के विधान ने केन्द्रीय पार्लियामेंट को अधिक शक्तिशाली बनाया था और अवशिष्ट शक्तियाँ भी उसी को दे दी थीं पर वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था ने केन्द्रीय पार्लियामेंट को कम अधिकार और प्रांतीय धारा सभाओं को अधिक अधिकार दे दिये। बहुत सम्भव है क्विबैक के प्रांत को संतुष्ट करने के लिये ही ऐसा किया हो।

राजनीतिक दल

जैसा ब्रिटेन में है "कनाडा के लिखित विधान में राजनीतिक दलों का कोई वर्णन नहीं है इसलिये उनका संगठन व कार्यवाहियां कानून के अतिरिक्त हैं। कनाडा में संयुक्त-राज्य अमरीका की तरह दलों की कार्यवाहियों को कानून से नियंत्रित करने की आवश्यकता अभी नहीं पड़ी है क्योंकि यद्यपि इन दलों में बहुत सी बुराइयां है पर वे इतनी कष्टदायक सिद्ध नहीं हुई हैं जितनी संयुक्त-राज्य अमरीका में। फिर भी यह कहना होगा कि ये अनियंत्रित अनुत्तरदायी अर्धगुप्त संस्थायें ही बहुत सी बातों में वास्तव में शासन करती हैं। सरकार की प्रेरक शक्ति बहुमत वाले दल के संगठन व उसके नेताओं में बसती है। ये लोग ही पिस्टन (Piston), कारब्युरेटर (Carburettor) और स्पार्क-प्लग (Spark plug) ही क्या, सभी कुछ हैं जो सुन्दर मोटर के इञ्जन के ढक्कन के नीचे ढके रहते हैं और मोटर गाड़ी को चलाते हैं, और जिनकी परिचालन-क्रिया को वे ही चतुर मिस्त्री समझ सकते हैं जो इस काम में अपना जीवन भर बिता देते हैं।"* इन शब्दों में आचार्य डौसन ने कनाडा की की शासन प्रणाली में दलों की महत्ता का वर्णन किया है।

संघ शासन के प्रारम्भिक काल में ही कनाडा के राजनीतिज्ञों ने ब्रिटेन की दल-प्रणाली को अपने यहां अपना लिया था यहां तक कि उनका नाम भी ब्रिटेन की तरह अनुदारदल (Conservative Party) और उदार-दल (Liberal Party.) रखा। कनाडा निवासियों को ऐसी

* कंस्टीट्यूशनल इश्यूज़ इन कनाडा" पृ० ३५,

पार्लियामेंट्री प्रणाली के अन्तर्गत काम करना पड़ा कि जिसमें निश्चित कार्यक्रम वाले राजनीतिक दलों के बनाने की आवश्यकता रही। पर दलों के कार्यक्रम में जो बातें रखी गईं वे केवल अनायास ही उसमें स्थान पा गईं। अनुदारदल संरक्षणवादी हुये और उदारदल ने उसका विरोध किया। कनाडा की पक्ष-प्रणाली में ध्यान में रखने वाली बात यह है कि एक ही दल बड़े लम्बे समय तक सत्ता का भोग करता रहता है अर्थात् एक ही दल की मंत्रीपरिषद् बहुत समय तक पदासीन रहती है।

केवल पिछले बीस वर्षों में ही ऐसा हुआ है कि राजनीतिक दल अधिक प्रख्यात हुये हैं, कुछ तो श्रमिक दल के संगठन हो जाने से और कुछ इस कारण से कि कृषक-वर्ग निश्चित उद्देश्यों के साथ एक राजनीतिक संस्था में संगठित होगया है।

कृषक दल—इस दल के प्रारम्भिक उद्देश्य ये थे: संसार में स्थायी शान्ति का प्रयत्न, साम्राज्य के नियंत्रण का विरोध, कोमनवैल्थ में बराबरी पर ज़ोर, प्राकृतिक साधन व समृद्धि का विकास, विशेषकर कृषि का विकास, सब वस्तुओं पर लगे हुये करों में घटती, राज्य की मालगुज़ारी को उस जमीन पर कर लगा कर बढ़ाना जिसका मूल्य बिना उसमें कुछ किये बढ़ गया हो, घटता-बढ़ता व्यक्तिगत कर लगाना, पैतृक सम्पत्ति व व्यापार के लाभ पर कर लगाना, केन्द्रीय, प्रांतीय व स्थानीय योजनाओं द्वारा बेकारी को कम करना, कृषि सम्बन्धी सहकारी योजनायें बनाना, युद्ध-समय के निर्वाचन एक्ट को रद्द कर अधिक स्वतंत्रता देना, उपाधि देना बन्द करना, सीनेट का सुधार करना, आश्रय देना बंद करना, निर्वाचन में किये हुये खर्चे को प्रकाशित करवाना, समाचार पत्रों की स्वतंत्रता, अनुपाती प्रतिनिधित्व, लोकनिर्णय (Referendum) निर्बन्ध-उपक्रम (Initiative) व प्रत्याहरण (Recall) प्रचलित करना, स्त्रियों को पार्लियामेंट में निर्वाचित होने का अधिकार देना। इन सब में से कुछ बातें स्वीकृत होकर प्रचलित होगई हैं फिर भी भविष्य में कृषक दल को बहुत सी बातों के लिये लड़ना है।

श्रमिक दल—यह दल अपने नाम को सार्थक करने के लिये जैसा संसार में और जगह वैसे ही कनाडा में सम्पत्ति अधिकारों को मानव-अधिकारों से गौढ़ मानती है। इस दल का कहना है कि प्राकृतिक साधनों का राष्ट्रीय-करण किया जाय, उसी प्रकार बड़े बड़े उद्योगों वा बैंकों का भी राष्ट्रीयकरण किया जाय, बेकारों के लिये काम और बेकारी के समय जीवन-यापन के लिये

धन मिलना चाहिये, युद्ध से लौटे हुये सिपाहियों के जीवन-निर्वाह के लिये कुछ व्यवस्था होनी चाहिये, बिना धर्मविभेद, वर्गविभेद आदि के सबको बराबर सामाजिक अधिकार मिलने चाहिये, समाचार पत्रों की स्वतंत्रता, बोलने की स्वतंत्रता, सम्मेलन करने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिये, प्रवास सम्बन्धी एक्ट को रद्द कर देना चाहिये, श्रमिकों का संगठित होने का अधिकार रहना चाहिये, जमीन को बढ़ी हुई कीमतों पर कर लगाना, थोड़ी आय पर घटाना और जीवन की आवश्यक वस्तुओं पर से कर हटाना चाहिये। वे अनुपाती-प्रतिनिधि-प्रणाली के समर्थक है, सीनेट को तोड़ना चाहते हैं, राष्ट्रीय सेना संगठन के विरुद्ध और जनता की प्रजातंत्रात्मक लीग स्थापित करने के समर्थक हैं।

उदारदल व अनुदार दल—इन दोनों दलों के कार्यक्रम अप्रगतिशील हैं। इन दोनों के कार्यक्रमों में बहुत कुछ समानता है पर मतभेद करों के सम्बन्ध में, श्रमिक वर्ग के प्रति नीति के सम्बन्ध में और कुछ दूसरी छोटी बातों में है। वास्तव में इन दोनों दलों में मतभेद यही है कि अनुदार दल यह चाहता है कि भारी कर लगा कर देश के उद्योग-धन्धों की रक्षा की जाय और इसके विरुद्ध उदार दल वाले बिना किसी रोक टोक के या कर लगाये माल के आयात-निर्यात के पक्ष में हैं।

दलों के नेता अपने अपने दल पर पर्याप्त नियंत्रण रखते हैं और प्रचलित पार्लियामेंट्री प्रथा के अनुसार चलने का पूरा प्रयत्न करते हैं।

पाठ्य पुस्तकें

Borden, R. L.—Canadian Constitutional Studies
(Masfleet Lectures Oxford, 1921)

Baurinot, John—Canada (T. Fisher & Unwin, 1917)

Bradley, A. G.—Canada (Williams & Norgate London

Bryce, Viscount—Modern Democracies Vol. I
chs. XXIII-XXVII

Clement, W. H. P.—The Law of the Canadian
Constitution (London)

Dawson, R. M.—Constitutional Issues in Canada
(Oxford 1933)

Durham, Lord—Report on the Affairs of British North America

Egerton, H E.—Federation of Unions in the British Empire pp. 17-39 and 121-161

Sharma, B. M.—Federal Polity, chs. II, III IV (Lucknow 1931)

Keith, A. B—The Constitutional Law of the British Dominions (Macmillan 1933)

तेरहवां अध्याय

आस्ट्रेलिया का संघ-शासन

"प्रस्तावना के प्रारम्भिक शब्दों में यह कहा है कि आस्ट्रेलिया का शासन-विधान की इच्छा की नींव पर बनाया गया है। ग्रेट ब्रिटेन व आयरलैंड की पार्लियामेंट द्वारा बनाये हुए ऐक्ट से इसको कानून का बाना पहिनाया गया है।" (क्रिक और गारन)

शासन विधान का इतिहास

फैलाव व जनसंख्या—आस्ट्रेलिया एक ऐसा द्वीप प्रदेश है जिस को पूर्णतया विदेशियों ने ही आकर बसाया है। यह सब महाद्वीपों में सब से छोटा है। इसका क्षेत्रफल २,९७४,५९१ वर्ग मील और ३१ दिसंबर सन् १९३७ में इसकी जनसंख्या का अनुमान ६,८६६,५९३ था। दूसरी कई बातों में भी यह दूसरे महाद्वीपों से भिन्न है। इसके निवासी अधिकतर अंगरेज ही हैं। उनकी संख्या ९८ प्रतिशत है। इसमें एक बड़ा मैदान है जो न तो कृषि के लिये अधिक उपजाऊ है न उसमें खनिज पदार्थ आदि ही पाये जाते हैं।

महाद्वीप की खोज और उसमें बाहर के लोगों का बसना—इस महाद्वीप को कैप्टेन कुक एक अंगरेज नाविक ने खोज निकाला था और सन् १८७८ में न्यू साउथ वेल्ज़ (New South Wales) का उपनिवेश सब से प्रथम स्थापित हुआ जहां अंगरेज आकर बसने लगे। समुद्री किनारे के मैदान में ही इन लोगों ने कृषि करना आरंभ किया पर इनके बाद सोने और चांदी की खानों के मिलने से ब्रिटेन से एक बड़ी संख्या में लोग आकर्षित हुए और आकर बसने लगे।

बहुत समय तक तो लोग इसी समुद्र तट के मैदान में ही रहे और तब तक सब बस्तियां सिडनी (Sydney) में स्थित एक केन्द्रीय शासन में रही। बाद में लोग महाद्वीप के भीतर भी घुसने लगे। जनसंख्या बढ़ने लगी। जिससे सन् १८२५ में टसमानिया द्वीप को पृथक करना पड़ा। कुछ समय के पश्चात् न्यू साउथ वेल्स से विक्टोरिया (Victoria) उपनिवेश भी पृथक

हो गया। जब सन् १८४८ ई० में विक्टोरिया का पृथकीकरण स्वीकृत हुआ उस समय उपनिवेश मंत्री अर्ल ग्रे (Earl Grey) ने जो शब्द कहे वे आस्ट्रेलिया के भविष्य सूचक थे। उन्होंने कहा:—"स्थानीय मामलों के प्रबन्ध के लिये आयोजन करते समय यह आवश्यक है कि हम उन सब बातों का जो स्थानीय न होकर सब के हितों से सम्बन्ध रखती हैं, प्रबन्ध करना न भूल जायं..... कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो सामूहिक रूप से आस्ट्रेलिया में स्थानीय कहे जा सकते हैं पर किसी एक उपनिवेश के लिये वे स्थानीय नहीं कहे जा सकते हालांकि उस सामूहिक हित में सब का हिस्सा हो" ऐसे मामलों को हाथ में लेने के लिये उन्होंने यह दिखलाया कि एक केन्द्रीय शासन की आस्ट्रेलिया में आवश्यकता है।

आस्ट्रेलिया की संस्थायें इंगलैंड से लाई गईं—उपनिवेश-वासी पहिले अपने देश में श्रमिक वर्ग के मध्य व उच्च श्रेणी के लोगों में से थे। इसलिये अपनी मेहनत और साहस से उन्होंने देश की प्राकृतिक समृद्धि का विकास किया। यद्यपि वे ऐसे लोग न थे जो पहिले ही से पार्लियामेंट्री शासन-प्रणाली में कुशल हों पर ब्रिटिश परम्परागत भावनाओं व विचारों को अवश्य अपने साथ लाये थे। जब ब्रिटेन ने आस्ट्रेलियन उपनिवेशों को प्रतिनिधिक स्वायत्त शासन वाली संस्थायें प्रदान कीं तो इन लोगों ने उन्हें अपनी विशेष परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिये उनमें थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया जिससे वे ब्रिटिश नमूने से बहुत कुछ फिर भी मिलती रहीं। न्यू साउथ वेल्स (New South Wales), विक्टोरिया (Victoria), टसमानिया (Tasmania) व दक्षिणी आस्ट्रेलिया (South Australia) १८५५-५६ में स्वतंत्र उपनिवेश बन गये। क्वीन्सलैंड सन् १८५९-६० में और पश्चिमी आस्ट्रेलिया सन् १८९० ई० में स्वतंत्र हुये। विविध उपनिवेशों की कौंसिलों ने जो शासन विधान का ढांचा अपने अपने लिये तैयार किया या उसके विशेष लक्षणों का समावेश प्रत्येक उपनिवेश को शासन विधान देने वाले पार्लियामेंट के एक्ट में कर दिया गया था, जिससे निवासियों को अपने ही ढांचे को संचालित करने का काम करना पड़ा। वाइकाउन्ट ब्राइस ने आस्ट्रेलिया के प्रजातंत्र का इन शब्दों में वर्णन किया है: "आदर्श लोकतंत्र जैसी कोई वस्तु नहीं है क्योंकि हर एक देश में उसकी प्राकृतिक बनावट व स्थिति तथा परम्परागत संस्थायें उस देश व राष्ट्र के राजनीतिक विकास पर ऐसा प्रभाव डालती हैं कि उसकी शासन प्रणाली अपने ढंग की अनुपम होती है। परन्तु यदि ऐसे देश व उसकी सरकार को चुना जाय जिसमें हमें यह देखने को

मिल सके कि स्वाधीन निवासी बाहरी प्रभावों से अप्रभावित रह कर और परम्परा प्राप्त विचारों से अबाधित रहते हुए किस मार्ग का अवलम्बन कर आगे बढ़ते हैं, तो वह देश आस्ट्रेलिया होगा। लोकतंत्र देशों में यह सब से नया है। यह उस मार्ग पर सब से तेज़ व सब से आगे चल चुका है जिससे लोकसमूह के अमर्यादित शासन की प्राप्ति होती है। और जगह की अपेक्षा यहां हमें उन प्रवृत्तियों के अध्ययन की अधिक सामिग्री मिलेगी जो ऐसे अमर्यादित शासन के नित्यप्रति के व्यवहार में प्रकट हुआ करती हैं।"*

संघ शासन के विचार का आरम्भ—हालांकि आस्ट्रेलिया के लोकतंत्र की प्रवृत्ति आरम्भ में एक केन्द्रात्मक (Unitary) बनने की ओर थी क्योंकि प्रत्येक उपनिवेश की पृथक सरकार थी पर कुछ घटनाओं के कारण यह आवश्यकता हुई कि इन उपनिवेशों में इनके भविष्य की रक्षा के हेतु कुछ पारस्परिक सहयोग होना चाहिये। घटनायें ये थीं कि जर्मनी ने न्यूगिनी द्वीप पर अधिकार जमा लिया, न्यूकैलैडोनिया से फ्रांसीसी अपराधी भाग कर आस्ट्रेलिया में आगये और फ्रांस ने न्यू हैब्रैडीज़ द्वीप समूह में अपना शासन चाहा। इन सब बातों ने आस्ट्रेलिया निवासियों को भयभीत बना दिया। इन लोगों के सम्मुख कनाडा का उदाहरण उपस्थित था जहां सन् १८६७ के एक्ट से उपनिवेशों को संघात्मक इकाई में संगठित किया जा चुका था। इसके अतिरिक्त संयुक्त-राज्य अमरीका का भी उदाहरण था। न्यू साउथ वेल्स के फ्री ट्रेड (Free Trade) दल के नेता सर हैनरी पार्क्स ने आस्ट्रेलिया-संघ निर्माण का कार्य पक्की तरह से अपने हाथ में लिया। सन् १८८३ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने फैडरल कौंसिल आफ आस्ट्रेलेशिया एक्ट (Federal Council of Australasia Act) पास किया जिससे आस्ट्रेलिया के उपनिवेशों की एक फैडरल कौंसिल (Federal Council) अर्थात् सघ-समिति बना दी गई।

संघ-समिति के कर्तव्य व शक्तियां—इस समिति को आस्ट्रेलिया व प्रशांत महासागर के द्वीप समूहों के बीच सम्बन्धों, अपराधियों के निवेश, आस्ट्रेलिया के सागर में मछली मारना (प्रदेश सीमा के बाहर), उपनिवेश की सीमा के बाहर न्यायालयों की आज्ञा व निर्णयों को कार्यान्वित करना, इन सब बातों में कानून व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया। इस समिति को सुरक्षा, प्रत्याधिकार पेटेन्ट, हुण्डी, विवाह व तलाक, जानपद बनाना और

---

* मौडर्न डैमोक्रेसीज़, पुस्तक II, पृ० १८१

दूसरे मामलो में भी व्युत्पन्न अधिकार था जिनको दो या अधिक उपनिवेश इसे सौंपना चाहें। आशा यह थी कि इस एक्ट को कुछ वर्ष तक कार्यान्वित करने से आस्ट्रेलिया-संघ स्थापित करने का मार्ग खुल जायगा। परन्तु इस संघ समिति से वह आशा पूरी नहीं हुई। न्यूसाउथ वेल्स व दक्षिणी आस्ट्रेलिया की उदासीनता, जिसके कारण उन्होंने इस समिति में भाग न लिया इस असफलता का कारण थी ही पर उसके अतिरिक्त और भी कई असफलता के कारण थे। इस समिति में कई दोष थे, इसके सदस्य उपनिवेशों की सरकारों से मनोनीत होते थे, यह समिति न तो सेना भर्ता कर सकती थी न कोई सेना रख सकती थी। यह कानून बना सकती थी पर उनका पालन कराना इसके हाथ में न था। इसकी सदस्यता उपनिवेशों की इच्छा पर छोड़ दी गई थी।

परन्तु कुछ वर्ष पश्चात् सन् १८८९ में मेजर जनरल बीवन एडवार्ड्स (Beven Edwards) की रिपोर्ट प्रकाशित होने से आस्ट्रेलिया-संघ निर्माण करने का फिर प्रयत्न आरम्भ हुआ। बीवन एडवार्ड्स को ब्रिटिश सरकार ने आस्ट्रेलिया की सुरक्षा के सम्बन्ध में रिपोर्ट तैयार करने को नियुक्त किया था। इन्होंने आस्ट्रेलिया के सब उपनिवेशों के लिये एक संयुक्त सेना बनाने की सिफारिश की थी। सन हैनरी पार्क्स ने फिर संघ सम्बन्धी प्रश्न को उठाया और सब उपनिवेशों के प्रधान मंत्रियों को एक तार भेजा जिसमें एक संयुक्त सेवा के संगठन पर, उपनिवेशों के मध्य आयात-निर्यात करों को कम करने और कुछ मामलों में सब उपनिवेशों में एक समान कानून होने पर जोर दिया गया। सर हैनरी पार्क्स की प्रार्थना पर उपनिवेशों के मंत्री मैलबोर्न (Melbourne) में एकत्रित हुये और वहाँ परामर्श करने के पश्चात् सिडनी में एक सम्मेलन किया। इस सम्मेलन की अन्तिम बैठक में कौमनवैल्थ बिल (Commonwealth Bill) का ढांचा तैयार हुआ परन्तु लोक समर्थन प्राप्त न होने के कारण आगे कुछ और न हो सका और यह प्रश्न वहीं ठण्डा हो गया। लोकमत को अनुकूल बनाने के लिये इसके पश्चात् एक फैडरल लीग (Federal League) अर्थात् संघ-सम्मेलन बनाया गया जिसने सारे महाद्वीप में संघ-शासन स्थापित करने के विचार का प्रचार किया। सन् १८९३ में आस्ट्रेलिया को आर्थिक विपत्ति का सामना करना पड़ा पर वह विपत्ति लाभकर ही सिद्ध हुई क्योंकि उससे यह पूरी तरह प्रकट हो गया कि जल्दी ही उपनिवेशों के मध्य कोई निकट सम्बन्ध स्थापित होना आवश्यक है। उपनिवेशों के प्रधान मंत्री इस स्थिति पर परामर्श करने

के लिये होबार्ट नगर में एकत्रित हुये (१८९७) और अन्त में उन्होंने एक अपील निकाली जिसमें उपनिवेशों की सरकारों से प्रार्थना की गई कि वे विधान-सम्मेलन के लिये अपने अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजें। इस प्रार्थना को सब उपनिवेशों ने स्वीकार किया और सम्मेलन एडिलेड नगर में हुआ जिसमें मुख्तया १८९१ के मसविदे के आधार पर एक शासन विधान का ढाँचा तैयार किया गया। यह भी निश्चय वहीं हुआ कि इस नये मसविदे को लोक निर्णय के लिये उपस्थित किया जाये और यदि प्रत्येक उपनिवेश में कुछ निश्चित कम से कम मत उस के पक्ष में हों तो उपनिवेश उस मसविदे को मानने को बाध्य समझे जायें। इस लोक निर्णय में यद्यपि बहुमत सब उपनिवेशों में मसविदे के पक्ष में था न्यू साउथ वेल्ज (New South Wales) में कम से कम संख्या ८०००० मत की प्राप्त न हो सकी क्योंकि कुल ७१९६५ मत ही उसके पक्ष में प्राप्त हुये। एक बार फिर प्रयत्न किया गया जिससे न्यू साउथ वेल्ज के प्रधान मंत्री श्री रीड का समर्थन प्राप्त हो। मसविदे में कुछ साधारण संशोधन कर दिये गये। यह संशोधित मसविदा फिर १० जून १८९९ को लोक निर्णय के लिये रखा गया और सब उपनिवेशों में बहुत अधिक मतों से स्वीकार हो गया। इस प्रकार सब उपनिवेशों को एक कर लिया। अब वह समय आ गया था जब दस वर्ष के इस सारे प्रयत्न को सफलीभूत किया जाय।

उपनिवेशों की सरकारों के प्रतिनिधि इंगलैंड गये और वहां ब्रिटिश सरकार को इस बात में राजी करने में सफल हुए कि उनके मसविदे को लगभग जैसा का तैसा स्वीकार कर संघ शासन स्थापित करने की उनकी इच्छा को पूरा किया जाय। उपनिवेश मंत्री श्री चेम्बरलेन ने १४ मार्च १९०० को पार्लियामेंट में कौमनवेल्थ आफ आस्ट्रेलिया बिल (Commonwealth of Australia Bill) पेश किया। आस्ट्रेलिया के संघ की विशेषताओं का उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया—"यह विधेयक जो आस्ट्रेलिया के सब से योग्य राजनीतिज्ञों के परिश्रम का फल है उस महाद्वीप को अंगरेजी भाषा बोलने वाले राष्ट्रों की गिनती में आने योग्य बना देगा। अब वह ऐसे राज्यों का ढेर न रहेगा जो एक दूसरे से पृथक और पूर्णतया स्वतंत्र हों जिस अवस्था में यह कोई भी अस्वीकार न करेगा, आपस की प्रतिस्पर्धा से एक बड़ी विपत्ति आ सकती थी या कम से कम पारस्परिक विरोध के कारण वे सब निर्बल हो सकते थे।"* विधेयक में

* न्यूटन—फैडरल एण्ड यूनीफाइड कस्टीट्यूशन, पृ० ३११-१२

अपनाई गई संपूर्ण आस्ट्रेलिया के लिये केवल एक नीति की विवेचना करने के पश्चात् उन्होंने कहा "हमें विश्वास है कि यह आस्ट्रेलिया के हित में ही होगी और हमारे लिये यही सब से बड़ी बात रहीं है। परन्तु हम इसे अस्वीकार नहीं कर सकते कि यह हमारे हित में भी रहेगी। हमको विश्वास है कि उन उपनिवेशों व हमारे बीच जो भविष्य में संबन्ध रहेंगे वे अधिक सीधे सादे हो जायेंगे, उनकी आवृत्ति बढ़ जायेगी और रुकावटें दूर हो जायेंगी, और वे संबन्ध उस समय अधिक मैत्रीपूर्ण होंगे जब हम पृथक पृथक छः स्वतंत्र सरकारों से परामर्श करने के स्थान पर एक केन्द्रीय सरकार से व्यवहार करेंगे। जो आस्ट्रेलिया के हित में है वह सारे ब्रिटिश साम्राज्य के लिये भी हितकारी है।"* विधेयक को स्वीकार करने की आवश्यकता बतलाते हुए उन्होंने कहा "यह विधेयक बिना हम से पूछे तैयार किया गया है। मुख्य मुख्य बातों में अधिकतर इसमें आस्ट्रेलिया के निवासियों की इच्छा का समावेश है..... हम मानते हैं कि अपने मामलों में वे ही सर्वोत्तम निर्णय कर सकते हैं और हम इस बात से संतुष्ट है कि उनके प्रतिनिधियों के विचारों को इन मामलों में सर्वोपरि स्वीकार कर लेना चाहिए और जिस विधेयक को मैं आगार में रखने जा रहा हूं वह ९९ प्रतिशत उन विचारों का ही फल है। मैं समझता हूँ मैं यह कह सकता हूं कि इस विधेयक का अधिकतर भाग $\frac{९९९}{१०००}$ वही है जो आस्ट्रेलिया में लोक निर्णय से स्वीकार हुआ है।"[१] और थोड़े से परिवर्तनों के साथ ब्रिटिश पार्लियामेंट ने उस विधेयक को पास कर "कोमनवैल्थ आफ आस्ट्रेलिया एक्ट' के नाम से घोषित किया। इसी एक्ट में आस्ट्रेलिया का वर्तमान संघ-शासन विधान दिया हुआ है।

सन् १९०० का शासन-विधान

इस विधान के रचने वाले के सम्मुख संसार में प्रचलित तीन सघ-शासन-विधान थे, संयुक्त राज्य अमरीका का, स्विट्ज़रलैंड का व कनाडा का, और अपनी वैधानिक कठिनाइयों पर जीत पाने के लिये उन्होंने इन देशों के अनुभव से लाभ उठाया। संयुक्त राज्य अमरीका की तरह पर कनाडा व स्विट्ज़रलैंड व कनाडा के विपरीत आस्ट्रेलिया में भाषा, जाति या धर्म विभेदों की समस्या न सुलझानी थी। परिश्रमशील व साहसी लोग होने के कारण उनकी राजनीति में आर्थिक हित को ही सर्वोपरि स्थान प्राप्त

---

* फैडरल एण्ड यूनिफाइड कंस्टीट्युशन्स पृ० ३१२

१ ,, ,, ,, पृ० ३१६–३१७

था। आस्ट्रेलिया में "श्रमिक वर्ग ने कानून से स्थापित सरकार को अपने हाथ में पहिले कर लिया फिर अपनी शासन कुशलता का परिचय दिया। राज्य ने कानून से काम के घंटे व मज़दूरी निश्चित कर सारे उद्योग-धन्धों पर अपना प्रभुत्व बढ़ाने का प्रयत्न किया। मध्य श्रेणी के लोगों का बाहुल्य होने से और आदिवासियों की कोई बड़ी समस्या न होने से उन्होंने ऐसे शासन-विधान के बनाने में सफलता पाई जो वास्तव में अपनी अच्छाई के कारण "समय की सब से अर्वाचीन उत्पत्ति" कह कर पुकारा जाता है।

शासन-विधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि "न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, क्वीन्सलैंड और टसमानिया ईश्वर की दया का भरोसा लेकर ब्रिटिश राजछत्र के नीचे अविलयनशील संघ शासन में संगठित होने पर सहमत हुये हैं"। इससे प्रकट है कि यद्यपि शासन-विधान पार्लियामेंट के एक्ट से बना है, इसको अपनी सारी शक्ति व अधिकार संघ में आने वाले उपनिवेशों की जनता से ही प्राप्त हैं। कामनवैल्थ (Commonwealth) की स्थापना की है जिस शब्द से एक ऐसे राज्य संगठन का बोध होता है जो संघ शासन की अपेक्षा अधिक लोकसत्तात्मक है। संघ को अविलयनशील भी घोषित कर दिया गया है जिससे संघ से सम्बन्धोच्छेद कर पृथक होने के प्रश्न को सदा के लिये समाप्त कर दिया है।* पश्चिमी आस्ट्रेलिया संघ शासन में आने को उत्सुक न था इसी लिये एक्ट की प्रस्तावना में इसका नाम नहीं है पर एक्ट में नये सदस्यों के बनने का आयोजन कर दिया गया था (धारा १२१-१२४ देखो)। परन्तु एक्ट के पास हो जाने के पश्चात् पश्चिमी आस्ट्रेलिया में भी संघ शासन में आने के लिये कार्यवाही की गई। यह प्रश्न लोक निर्णय के लिये रखा गया और जनता ने २५१०६ के बहुमत से संघ में शामिल होने का निर्णय किया। इस के पश्चात सम्राज्ञी ने १७ सितम्बर १६०१ का दिन संघ-शासन-विधान के कार्यरूप देने का श्रीगणेश करने के लिये निश्चित किया। बीसवीं शताब्दी का यह पहिला दिवस था जो आस्ट्रेलिया की राष्ट्रीयता के जन्म के लिये विशेष अर्थपूर्ण व महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसी लिये यह वास्तव में "समय की सब से अर्वाचीन उत्पत्ति" है।

संघ-शासन में आने से पूर्व आस्ट्रेलिया के उपनिवेश-राज्य अपने आन्तरिक मामलों में एक दूसरे से स्वतंत्र थे। वे इस स्वतंत्रता को खोने के

* इसके विपरीत कुछ समय बाद पश्चिमी आस्ट्रेलिया की पृथक होने की मांग हुई।

लिये तैयार न होते थे। इसी लिये शक्ति-विभाग (Division of Powers) में उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका के शासन विधान का अनुकरण किया। केन्द्रीय सरकार को निश्चित शक्तियां सौंपी गईं।

आस्ट्रेलिया का शासन-विधान आधुनिक विधानों में सब से अधिक प्रजातंत्रात्मक है। इसमें जनता को बहुत सी बातों में पर्याप्त अधिकार दिये हुये हैं। उदाहरण के लिये सीनेट के लिये निर्वाचन, लोक निर्णय द्वारा विधान-संशोधन आदि।

संघ-सरकार

शासन विधान से एक केन्द्रीय संघ-सरकार की स्थापना कर उसको निश्चित निर्बन्धकारी, कार्यकारी व न्यायकारी सत्ता सौंप दी गई है। क्योंकि केन्द्रीय सरकार की सृष्टि उपराज्यों ने की है, शेष व अन्तिम शक्तियाँ उपराज्यों ने अपने पास ही रखी हैं। हालांकि ऐसा करना आस्ट्रेलिया की वैधानिक समस्याओं को सुलझाने के लिये उस समय सर्वोत्तम साधन समझा गया था परन्तु अनुभव ने संघ-सरकार पर अविश्वास रखने की उसी गलती को दिखला दिया है जो अमरीका में की गई थी। विधान के कार्य-भूत होने से यह स्पष्ट हो गया "कि साधारण से साधारण मन्तव्य यदि विधान की लिखावट के पेचीदा व सीमित शब्दों में रखा जाय" तो व्यर्थ हो जाता है। यह बात विशेषतया विधान से अभिप्रेत उपराज्यों की राज्यकर-विषयक व आर्थिक आधीनता के विषय में सिद्ध हुई।" *

संघ सरकार की शक्तियाँ—संघ-सरकार की शक्तियाँ आस्ट्रेलिया में वही हैं जो कनाडा में डोमिनियन सरकार को दी गई है। निम्नलिखित शक्तियाँ ऐसी हैं जो कनाडा में संघ-सरकार को स्पष्टतया नहीं सौंपी गई हैं: —

१—वस्तुओं के उत्पादन व निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिये सरकारी सहायता। ऐसी सहायता सब उपराष्ट्रों में एक समान होगी।

२—समुद्र तट प्रदेश की सीमा से बाहर मछली मारने का अधिकार

३—सरकारी बीमा

४—वृद्धावस्था व अशक्त व्यक्तियों को पेंशन

५—बाहरी मामले

६—एक उपराज्य की सीमा से बाहर तक फैले हुये औद्योगिक झगड़ों को निबटाने व रोकने के लिये पंचफैसला या राजीनामा आदि।

---

* सैलैक्ट कंस्टीट्यूशन्स आफ दी वर्ल्ड, पृ० ३५७

७—वे मामले जिनके संबन्ध में ब्रिटिश पार्लियामेंट या आस्ट्रेलिया की संघ-समिति विधान बनते समय कार्यवाही कर सकती थी, उनमें उन सब उपराज्यों की पार्लियामेंटों की प्रार्थना पर कार्यवाही करना जो उस कार्यवाही से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो।

८—विधान ने जो शक्ति पार्लियामेंट, संघ कार्यकारिणी या न्यायमण्डल को या किसी शासन-विभाग या अफसर को प्रदान की हो उसके उपभोग के संबन्ध में आवश्यक अधिकारों का प्रयोग करने की शक्ति संघ सरकार को है।

९—किसी भी उपराज्य से अपने अधिकार में रहने वाले काम के लिये उचित शर्तों पर जायदाद खरीदना, जैसे रेल इत्यादि

१०—सेना संबन्धी कामों में उपराज्यों की रेलों पर आवश्यक नियंत्रण रखना

कुछ अधिकार ऐसे भी हैं जो कनाडा की संघ सरकार को प्राप्त हैं परन्तु आस्ट्रेलिया की संघ सरकार को स्पष्टतया नहीं दिये गये हैं जैसेः—

१—नौतरण व नोपरिवहण

२—समुद्रतट व देश के भीतर मछली मारना

३—दण्ड-विधि (Criminal Law)

४—वे अधिकार जो उपराज्यों के अधिकारों की गिनती से बचे हों अर्थात् शेषाधिकार

संघ सरकार से शासित प्रदेश—संघ-सरकार कुछ प्रदेशों को अपने ही शासन में रखती है। दक्षिणी आस्ट्रेलिया ने अपने उत्तरी प्रदेश को पहिली जनवरी सन् १९११ को संघ सरकार के सुपुर्द कर दिया था, इस प्रदेश ५२३,६२० वर्ग मील है परन्तु इसमें केवल ५८१३ निवासी रहते हैं। पेपुआ (Papua) जो पहिले ब्रिटिश गाइना (British Guinea) के नाम से प्रसिद्ध था संघ सरकार के आधिपत्य में पैपुआ एक्ट (Papua Act) में दी हुई शर्तों पर सितम्बर १, सन् १९०६ को आया। पैपुआ की जन-संख्या २७६,४८८ और क्षेत्रफल ९०,५४० वर्ग मील है। न्यू गाइना (New Guinea) का कुछ भाग संघ सरकार को जर्मनी से वार्साई की सन्धि के अन्तर्गत संरक्षित प्रदेश की तरह प्राप्त हुआ। संघ-प्रदेश जिसमें संघ सरकार की राजधानी कैनबैरा है, न्यू साउथ वेल्स (New South Wales) से हाल ही में खरीद लिया गया था। इसका क्षेत्रफल ९४० वर्ग मील है और जन-संख्या १०,२४८ है। जिन प्रदेशों पर संघ सरकार का पूर्ण आधिपत्य है उनके शासन प्रबन्ध के लिये संघ सरकार ने पृथक पृथक प्रबन्ध कर दिया है।

संघ-सरकार की आर्थिक-शक्तियां—आर्थिक शक्तियों के विषय में आस्ट्रेलिया की संघ सरकार, संयुक्त सरकार संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार से अधिक शक्तिशाली है। इसकी कर लगाने की शक्ति असीमित है, जब तक यह कर प्रत्येक उपराज्य में एक समान हैं। आयात-निर्यात करों पर उसे पूरा अधिकार है। संघ बनने के समय उपाराज्यों के तत्कालीन ऋण का भार संघ सरकार ने अपने ऊपर ले लिया था परन्तु साथ ही साथ स्वयं रुपया उधार लेने की शक्ति भी प्राप्त कर ली थी। पर पहिले दश वर्ष तक आयात-निर्यात् कर से जो आमदनी हुई उसका एक चौथाई भाग ही संघ सरकार ने अपने पास रखा, बचा हुआ प्रतिमास उपराष्ट्रों को लौटा दिया जाता था। इस प्रकार अमरीका की अपेक्षा इसके आर्थिक अधिकार अधिक हैं पर कनाडा की सरकार की अपेक्षा कम हैं। यह भी सच है कि श्रमिक दल की सरकार बनने से केन्द्री-करण की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। ~~अमेरिका~~ में भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों ने केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बना दिया है जैसे अमरिका में अंगीभूत होने वाली इकाइयाँ उपराज्य (State) कहलाती है वैसा ही आस्ट्रेलिया में भी है जिससे कनाडा के प्रान्तों की अपेक्षा उनके ऊँचे पद का निर्देश होता है।

संघ धारा सभा

आस्ट्रेलिया की निर्बन्धकारी सत्ता पार्लियामेंट में विहित है। पार्लियामेंट में, राजा, प्रतिनिधि-आगार (House of Representatives) और सीनेट (Senate), इन तीनों की गिनती की जाती है। गवर्नर जनरल राजा का प्रतिनिधित्व करता है और वह उन अधिकारों का प्रयोग करता है जो सम्राट ने उसको सौंप दिये हों। गवर्नर जनरल पार्लियामेंट के सम्मिलित होने का समय निश्चित करता है और अपनी घोषणा के द्वारा उसका अवसान भी करता है। उसी प्रकार से वह प्रतिनिधि-आगार का विलयन भी करता है पार्लियामेंट साल में कम से कम एक बार अपनी बैठक अवश्य करती है।

सीनेट—सीनेट में जो संघ का ऊपरी आगार है, आरम्भ में ३६ सदस्य थे। प्रत्येक उपराज्य ६ सदस्यों को चुन कर भेजता था परन्तु १९४८ से यह संख्या ६० कर दी गई है और प्रत्येक उपराज्य के १० सदस्य हैं। इनकी नियुक्ति ६ साल के लिये होती है और आधे हर तीन साल बाद हट जाते हैं। इस प्रकार यह अविच्छिन्न संस्था है। सीनेट के सदस्यों के निर्वाचन के लिये प्रत्येक उपराज्य एक निर्वाचन क्षेत्र रहता है पर मतदाता एक

बार ही मतदान कर सकता है । यदि दोनों आगारों में मतभेद हो जाय तो सीनेट का विलयन हो सकता है। यह एक विशेषता है जो और राज्यसंगठनों में नहीं पाई जाती। इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया की सीनेट की और दूसरी विशेषता है जिनके कारण यह संसार की दूसरी संघ-सीनेटों की अपेक्षा अधिक लोकतंत्रात्मक है। सीनेट के निर्वाचन के लिये प्रत्येक प्रौढ़ नागरिक मतधारक है और कोई भी व्यक्ति जो प्रतिनिधि-आगार का सदस्य बनने योग्य है वह सीनेट के निर्वाचन के लिये खड़ा हो सकता है। कनाडा की सीनेट को उपेक्षा जिसमें गवर्नर जनरल से मनोनीत व्यक्ति अपनी सम्पत्ति की योग्यता के सहारे सदस्य होते हैं और अपने जीवन भर सदस्य बने रहते हैं, आस्ट्रेलिया की सीनेट अधिक लोकतंत्रात्मक हैं। उपराज्यों को सीनेट में बराबर संख्या में प्रतिनिधि भेजने का यह अर्थ लगाया गया कि उपराज्यों की अधिसत्ता (Sovereignty) सर्वमान्य है और साथ ही साथ उपराज्यों के अधिकारों की रक्षा प्रत्याभूत समझी गई।

क्या सीनेट उपराज्य-अधिसत्ता को जताती है—व्यवहार में स्थिति भिन्न है "सीनेट से जो आशा की जाती थी वह पूरी नहीं हुई। इसने उपराज्यों के हितों की रक्षा नहीं की है क्योंकि उन हितों पर कोई प्रश्न ही न उठा..... न यह ज्ञानी पुरुषों का आगार रहा क्योंकि कुशल राजनीतिज्ञ प्रतिनिधि-आगार में चले जाते हैं जहां संघर्ष के पश्चात् मंत्रिपद मिलता है। वैदेशिक नीति या उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति पर नियंत्रण जैसा कोई विशेष कर्तव्य न होने के कारण, जिनसे अमरीकन सीनेट को कुछ शक्ति प्राप्त है, आस्ट्रेलिया की सीनेट प्रतिनिधि-आगार की एक निम्न श्रेणी की प्रतिलिपि भर ही है।"*

सीनेट में आकस्मिक रिक्त स्थानों का भरना—आकस्मिक रिक्त स्थानों को भरने के लिये जिस उपराज्य के सदस्य का स्थान रिक्त हुआ हो उसके दोनों आगार मिली जुली बैठक में एक व्यक्ति को उस स्थान के बचे हुए समय तक के भरने के लिये चुन लेते हैं। यदि उपराज्य की पार्लियामेंट की बैठक न हो रही हो तो उपराज्य का गवर्नर अपनी कार्यकारिणी की सलाह से एक व्यक्ति को सीनेट का सदस्य नियुक्त कर सकता है और वह व्यक्ति पार्लियामेंट की अगली बैठक से १४ दिन बाद तक उसमें अपने उत्तराधिकारी के चुने जाने तक, जो कोई भी पहिले हो, अपने स्थान पर बना रहेगा। यदि कोई सीनेट का सदस्य लगातार दो सत्रों में उपस्थित न रहेगा तो वह सीनेट का सदस्य न रहेगा कोई भी सीनेट का सदस्य अपना त्याग पत्र सीनेट के

* माडर्न डैमोक्रेसीज़ पुस्तक II पृ० २०४

सभापति या उसकी अनुपस्थिति में गवर्नर जनरल को भेज कर अपने पद का त्याग कर सकता है।

गणपूरक और मतदान—सीनेट अपना सभापति स्वयं चुनती है। सब प्रश्न बहुमत से निर्णित होते हैं। प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार है। सभापति को भी एक मत देने का अधिकार है। परन्तु जब पक्ष व विपक्ष में मत बराबर होते हैं तो प्रस्ताव अस्वीकृत समझा जाता है।

प्रतिनिधि-आगार—प्रतिनिधि-आगार (House of Representatives) में सन् १९४८ के प्रतिनिधि कानून के अनुसार इस समय १२३ सदस्य हैं जो उपराज्यों में जनसंख्या के आधार पर वितरित हैं। न्यू साउथ वेल्ज़ के ४७, विक्टोरिया के ३३, क्वीन्सलैंड के १८, दक्षिणी आस्ट्रेलिया के १०, पश्चिमी आस्ट्रेलिया के ८ और टसमानिया के ५ प्रतिनिधि इस आगार के लिये चुने जाते हैं। सन् १९२२ के एक्ट के अनुसार उत्तरी प्रदेश के लिये तथा १९३२ से संघीय राजधानी का बिना मताधिकार वाला एक सदस्य बैठता है। आगार की अवधि तीन वर्ष है पर विधान के अन्तर्गत और प्रचलित प्रथा के अनुसार मंत्रिमण्डल की सलाह देने पर गवर्नर-जनरल इस अवधि से पूर्व ही आगार का विलयन कर सकता है। प्रतिनिधियों के चुनाव में प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति, पुरुष या स्त्री, मत दे सकता है। प्रतिनिधि बनने के लिये व्यक्ति की २१ वर्ष की आयु होनी चाहिये, उसे मतदान का अधिकार होना चाहिये और वह कामनवैल्थ का तीन वर्ष का निवासी होना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसे जन्मतः या करनून द्वारा बनाया हुआ ब्रिटिश जानपद होना चाहिये।

यह प्रतिनिधि सभा अपना सभापति स्वयं ही चुनती है। सभापति को साधारणतया मत देने का अधिकार नहीं होता पर जब पक्ष व विपक्ष में मत बराबर होते हैं तो उसे निर्णय देने का अधिकार है। सभा के सब निर्णय बहुमत से होते हैं और अपनी कार्यपद्धति के नियम सभा स्वयं बनाती है।

कोई भी व्यक्ति एक ही समय में सीनेट और प्रतिनिधि सभा या आगार का सदस्य नहीं हो सकता। सीनेट या प्रतिनिधि आगार का सदस्य अपनी सदस्यता खो बैठता है जब वह किसी परराष्ट्र का जानपद हो जाता है, दिवालिया घोषित हो जाता है, देशद्रोह का अपराधी सिद्ध होकर दण्डित हो जाता है या राज्य से किये हुये किसी ठेके में उसका कोई प्रत्यक्ष या

अप्रत्यक्ष हित बंध जाता है। अन्तिम शर्त में अपवाद यह है कि २५ सदस्यों से अधिक सदस्यों वाली कम्पनी के सदस्य के नाते यदि उसका राज्य के ठेके में कोई हित है तो वह अपनी सदस्यता न खोयेगा। सीनेट व प्रतिनिधि आगार का प्रत्येक सदस्य प्रतिमास १००० पौंड भत्ते के रूप में पाता है और जब तक वह सदस्य बना रहता है, सदस्यता के साधारण अधिकार, मुक्तियां व सुविधायें भोगता है।

व्यवस्थापक मण्डल की शक्तियाँ—दोनों आगारों को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं पर कर लगाने वाले व आगम से सम्बन्ध रखने वाले, अर्थात् मुद्रा-विधेयक, निचले आगार में प्रारम्भ होते हैं। कर लगाने वाले या राजकोष से साधारण वार्षिक सेवाओं के लिये धन का प्रयोग कराने वाले विधेयकों में सीनेट संशोधन नहीं कर सकती। सीनेट किसी भी विधेयक में ऐसा संशोधन नहीं कर सकती जो जनता पर प्रस्तावित आर्थिक भार को बढ़ा दे। "राजकीय जीवन में निचला आगार ही शक्ति-केन्द्र है पर इसकी शक्ति उस समय से घट गई जब श्रमिकों के गुप्त दल की स्थापना हुई क्योंकि इस गुप्त दल में सीनेट के श्रमिक-सदस्य व निचले आगार के श्रमिक सदस्य मिलकर नीति का निर्णय पहिले से ही कर लेते हैं और प्रतिनिधि आगार की कार्यवाही व्यर्थ सी रहती है।"* यह गुप्त दल ही शक्ति का केन्द्र बन गया है।

दोनों आगारों के मतभेद को सुलझाने का उपाय—जब दोनों आगारों की शक्तियां समान हैं तो सम्भव है कि उनमें कभी मतभेद हो जाये और उनमें से कोई भी अपना मत बदलने को तैयार न हो। ऐसे मतभेद का समाधान करने की रीति विधान की ५७ वीं धारा में दी हुई है। यदि निचला आगार किसी विधेयक को पास करे और सीनेट उसे पास न करे या रद्द कर दे या ऐसे संशोधनों से पास करे जो निचले आगार को स्वीकार न हों और यदि वह आगार तीन महीने बाद उसी सत्र में या दूसरे सत्र में उसी विधेयक को सीनेट के द्वारा किये हुये या सुझाये हुये संशोधनों सहित या उनके बिना पुनः पास कर दे और सीनेट उसे रद्द कर दे या पास न करे या ऐसे संशोधनों से पास करे जो निचले आगार को पसन्द न हों, तो गवर्नर-जनरल सीनेट और प्रतिनिधि-आगार दोनों का एक साथ विलयन कर दे। पर ऐसा विलयन निचले आगार की अवधि की साधारण समाप्ति के छः मास पूर्व वाले समय में नहीं हो सकता।

---

* मौडर्न डैमोक्रेसीज़ पुस्तक II पृ० २०६

यदि ऐसे विलयन के पश्चात् नये निर्वाचन के पश्चात् निचला आगार उस प्रस्तावित विधेयक को सीनेट से सुझाये हुये या सीनेट द्वारा स्वीकार्य या समावेश किये हुये संशोधनों के साथ या बिना उनके पास कर दे और सीनेट उसे पास न करे या रद्द कर दे या ऐसे संशोधनों से पास करे जो निचले आगार को स्वीकार्य न हों गवर्नर जनरल दोनों आगारों की संयुक्त बैठक बुलावे। ऐसी संयुक्त बैठक में सदस्य मिलकर विचार करेंगे और मिल कर ही मत देंगे। वे चाहें तो एक आगार के द्वारा किये हुये और दूसरे से अस्वीकार हुये संशोधनों पर विचार करें या न करें। सीनेट व प्रतिनिधि-आगार की कुल संख्या के परम बहुमत (absolute majority) से जो संशोधन स्वीकृत हो जायेंगे वे ही पास समझे जायेंगे। इससे यह स्पष्ट है कि आस्ट्रेलिया की सीनेट को कनाडा या अमरीका की सीनेट से अधिक शक्तियां मिली हुई हैं। सीनेट के सदस्यों की योग्यता व उनके निर्वाचन की प्रजा तंत्रात्मक विशेषता देखते हुये यही आशा की जाती थी।

गवर्नर जनरल की सम्मति—जब दोनों आगार किसी कानून को पास कर देते हैं तो लागू होने के पूर्व उसे गवर्नर जनरल की सम्मति प्राप्त होनी चाहिये। गवर्नर जनरल यदि चाहे तो अपनी सिफारशों के साथ उस कानून को पार्लियामेंट के पास वापिस भेज सकता है जिससे उस पर फिर विचार हो या वह उसे सम्राट की स्वीकृति के लिये, जो एक वर्ष के भीतर मिल जानी चाहिये, अपने पास रख सकता है। वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था के पास होने के पश्चात् आस्ट्रेलिया की पार्लियामेंट की व्यवस्था सम्बन्धी शक्तियों पर जो प्रतिबन्ध लगे हुए थे वे हट गये हैं।

संघ-कार्यकारिणी

संघ की कार्यकारिणी सत्ता राजा (इंगलैंड के क्राउन के रूप में नहीं वरन् कौमनवैल्थ के क्राउन के रूप में) में विहित है और इस सत्ता का भोग गवर्नर जनरल राजा का प्रतिनिधि होने के नाते करता है। गवर्नर जनरल नौसेना व स्थल सेना का सेनापति भी है।

कनाडा की तरह आस्ट्रेलिया के संघ-शासन विधान में भी शासन कार्य में गवर्नर जनरल को मंत्रणा देने के लिये एक कार्यकारिणी परिषद् का आयोजन हैं। इस परिषद् के सदस्यों को गवर्नर-जनरल आमंत्रित कर उन्हें कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य बनने की शपथ दिलाता है। ये सदस्य उसके अनुग्रह प्राप्त करते रहने तक अपने पद पर स्थित रहते हैं। यह तो विधान का आयोजन है पर व्यवहार में जो होता है वह यह है कि गवर्नर प्रतिनिधि

आगार में जो बहुमत प्राप्त पक्ष होता है उसके नेता को बुलाकर प्रधानमंत्री नियुक्त करता है और प्रधानमंत्री तब अपने पक्ष के लोगों को सलाह से अपने मित्र मंत्रियो को चुनता है जिन्हें गवर्नर-जनरल विधिवत् कार्यकारिणी के सलाहकार नियुक्त कर देता है। इस समय प्रधानमंत्री समेत कुल कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य ११ हैं। प्रधान मंत्री अपने लिये जो काम या शासन विभाग चाहता है रख लेता है। दूसरे मत्रियों में ये होते हैं; परिषद् का उपसभापति और सीनेट का नेता, व्यापार-मंत्री, एटॉर्नी-जनरल, उद्योग मंत्री, वैदेशिक कार्य मंत्री, पोस्टमास्टर जनरल, आयात निर्यात कर व व्यापार मंत्री, कोषाध्यक्ष व विकास और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अन्वेषण का प्रबन्ध करने वाला मंत्री, वायुयान व निर्माण मंत्री, सुरक्षा मंत्री, स्वास्थ्यमंत्री और गृह मंत्री। प्रधान मंत्री जिस प्रकार चाहता है इन कार्य विभागों को अपने साथी मंत्रियों में बाँटता है। वह परिषद् का अध्यक्ष रहता है और उसकी नीति निर्धारित करता है। उसे ४००० पौंड प्रति वर्ष वेतन मिलता हैं। कुछ मंत्री ऐसे भी नियुक्त किये जा सकते हैं जिनको किसी शासन विभाग का कार्य नहीं सौंपा जाता। वैधानिक प्रथा के अनुसार परिषद् प्रतिनिधि आगार को उत्तरदायी है और उसका विश्वास खोने पर पद त्याग कर देती है। परिषद ही सामान्य शासन नीति निश्चित करती है और सिविल सर्विस उस नीति को कार्यरूप देती हैं।

परिषद की रचना—परिषद के बनाने में प्रधान मंत्री उपराज्यों की इच्छा का समुचित आदर करता है और ऐसा प्रयत्न करता है कि प्रत्येक उपराज्य का कम से कम एक व्यक्ति मंत्री अवश्य हो। परिषद् सामुदायिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करती है पर यदि कोई मंत्री अपने मित्रों से कोई मौलिक मतभेद रखता है तो वह पद त्याग कर देता है। परिषद् स्वयं ही अपनी नीति निर्धारित करती है और व्यवस्थापक मण्डल के कार्य में उसके मार्ग प्रदर्शक का कार्य करती हैं। पर श्रमिक दल के मंत्रिमडल के पदारूढ़ होने पर यह नीति दल की गुप्त समिति द्वारा निर्धारित होने लगी है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि कौमनवैल्थ की वास्तविक कार्यकारिणी सत्ता मंत्रिपरिषद् में विहित है हालांकि सिद्धान्ततः यह गवर्नर-जनरल में विहित है। गवर्नर जनरल परिषद् की बैठक में उपस्थित नहीं

होता। वैधानिक प्रथानुसार परिषद् इतनी महत्व पूर्ण होती जा रही है कि गवर्नर-जनरल की नियुक्ति भी सम्राट उसकी सलाह से ही करता है।

संघ-न्यायमण्डल

संघ की न्यायकारी सत्ता आस्ट्रेलिया की हाईकोर्ट और दूसरे न्यायालयों में जिनको संघ पार्लियामेंट आवश्यक अधिकारों से शक्ति सम्पन्न बनाती है विहित है। संघ में हाईकोर्ट सर्वोच्च न्याय संस्था है। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश व छः और न्यायाधीश होते हैं। इन सब को गवर्नर जनरल नियुक्त करता है और ये न्यायाधीश जब तक सदाचार बर्तते हैं अपने पद पर सुरक्षित रहते हैं। यदि एक ही सत्र में दोनों आगार गवर्नर जनरल से प्रार्थना करें कि किसी न्यायाधीश को उसके सिद्ध हुये दुराचार या अयोग्यता के कारण पद से हटा दिया जाय तो गवर्नर जनरल मंत्रिमण्डल की सलाह से उसे हटा सकता है। जब तक न्यायाधीश अपने पद पर रहते हैं उनका वेतन कम नहीं किया जा सकता। इन सब शर्तों से न्यायमण्डल में स्वतंत्रता व निरपेक्षता बनी रहती है। हाईकोर्ट अपने निर्णयों की निरपेक्षता के लिये प्रख्यात हो गई है इसलिये अमरीकन उपराज्यों की तरह यहां इस बात का कोई पक्का प्रयत्न नहीं किया गया कि न्यायाधीशों की नियुक्ति निर्वाचन के द्वारा हो। हाईकोर्ट के प्रारम्भिक अधिकार का भोग करने वाले न्यायाधीशों के निर्णयों पर, उन छोटे न्यायालयों के निर्णयों पर जो संघ-अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करते हैं और उन मुकदमों पर जो उपराज्यों के सर्वोच्च न्यायालयों के पुनर्विचार करने के लिए भेजे गए हों, पुनर्विचार करने का हाईकोर्ट को अधिकार है और इस पुनर्विचार के पश्चात् हाईकोर्ट का निर्णय अन्तिम माना जाता है।

हाई कोर्ट की शक्तियां—यदि हाई कोर्ट स्वयं ही प्रमाण-पत्र द्वारा अनुमति दे तो उसके निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल की न्याय समिति में अपील की जा सकती है। पर राजा स्वयं भी प्रिवी कौंसिल में अपील करने की विशेष अनुमति दे सकता है। आगे कहे हुये विषयों में हाई कोर्ट प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है: जब किसी ऐसी संधि के अन्तर्गत कोई प्रश्न उठा हो जो वैदेशिक प्रतिनिधियों से सम्बन्ध रखता हो, या जिसमें संघ सरकार वा उसकी ओर से कोई व्यक्ति वादी या प्रतिवादी हो, जब दो उपराज्यों या उनके निवासियों या एक उपराज्य के किसी निवासी के बीच

झगड़ा हो, या जब किसी संघ सरकार के अफसर के विरुद्ध यह आज्ञापत्र मांगा जा रहा हो कि उस अफसर की आज्ञाओं का पालन न हो।

पार्लियामेंट कानून बनाकर किसी भी विषय में हाई कोर्ट को प्रारम्भिक-क्षेत्राधिकार दे सकती है यदि वह विषय शासन विधान के अन्तर्गत उठा हो या उसकी व्याख्या से सम्बन्धित हो, या नाबाधिकरण क्षेत्राधिकार तथा सामुद्रिक क्षेत्राधिकार सम्बन्धी पार्लियामेंट के किसी कानून के अन्तर्गत कोई प्रश्न उठा हो या जब उस विषय का सम्बन्ध ऐसे मामले से हो जो दो या अधिक उपराज्यों के कानून के भीतर आता हो।

इससे यह प्रकट है कि हालांकि हाईकोर्ट के निर्णयों के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील हो सकती हैं पर अधिकारक्षेत्र की दृष्टि से यह हाईकोर्ट बहुत कुछ अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय से मिलती जुलती है और इसकी शक्तियां कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय से निश्चय ही अधिक हैं। प्रायः प्रिवी कौंसिल में अपील करने की अनुमति देने से इन्कार कर हाईकोर्ट ने वह स्वतंत्रता व महत्ता प्राप्त करली हैं जो कनाडा की हाईकोर्ट को प्राप्त नहीं है।

विधान का संशोधन

विधान-संशोधन की रीति कनाडा की रीति से भिन्न और अमरीकन रीति से मिलती जुलती है। कनाडा के विधान में संशोधन ब्रिटिश पार्लियामेंट ही कर सकती है, कम से कम सिद्धांततः तो यही ठीक है। परन्तु आस्ट्रेलिया का शासन-विधान अधिक लोक तंत्रात्मक है, उसका सशोधन आगे दी हुई दो रीतियों में से किसी एक के अनुसार हो सकता है।

(१) प्रस्तावित संशोधन पहिले दोनों आगारों में परम मताधिक्य से पास होना चाहिये। उसके दो मास के बाद पर छः मास से पहिले यह सशोधन प्रत्येक उपराज्य के उन निर्वाचकों के सम्मुख रखा जाना चाहिये जो प्रतिनिधि आगार के सदस्यों को चुनते हैं।

(२) यदि प्रस्तावित संशोधन एक आगार में परम मताधिक्य से पास हो जाय पर दूसरा आगार उसे पास न करे, या रद्द कर दे या ऐसे परिवर्तन कर के पास करे जो पहिले आगार को पसन्द न हों, और यदि तीन मास बीतने पर पहिला अगार उस प्रस्तावित संशोधन को फिर परम मताधिक्य से पास कर दे (उसी सत्र में या अगले सत्र में) और यदि दूसरा आगार पूर्व अगार की पसन्द के अनसार उसे पास न करने पर अड़ा रहे, तो गवर्नर

जनरल पूर्व आगार से अन्तिम बार प्रस्तावित संशोधन को बिना उन परिवर्तनों के या उन परिवर्तनों के साथ जो बाद में दोनों आगारों ने मान लिये हों, उपराज्यों के निर्वाचकों के सम्मुख रख सकता है जो प्रतिनिधि-आगार के सदस्यों के चुनाव में भाग ले सकते हैं ।

संशोधन का प्रस्ताव निर्वाचकों के सम्मुख रखे जाने पर यदि बहुसंख्यक उपराज्यों के बहुसंख्यक मतदाता और सारे आस्ट्रेलिया संघ के मतदाताओं की अधिक संख्या उस संशोधन को स्वीकार कर ले तो वह प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है । इसके पश्चात् वह स्वीकृत प्रस्ताव सम्राट की ओर से सम्मति देने के लिये गवर्नर जनरल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है । यह सम्मति अब व्यवहार में रोकी नहीं जा सकती ।

विधान-संशोधन के सम्बन्ध में पार्लियामेंट पर प्रतिबन्ध— पार्लियामेंट विधान-संशोधन के द्वारा किसी भी केन्द्रीय आगार में किसी उपराज्य के अनुपाती प्रतिनिधित्व को या प्रतिनिधि-आगार में उसके प्रतिनिधियों की कम से कम संख्या को घटा नहीं सकती । न किसी उपराज्य की सीमा न विधान के वे प्रावधान जिनसे उपराज्य का पद स्थिर हुआ हो बदले जा सकते हैं, जब तक उस उपराज्य में मतदाताओं के बहुसँख्यकों ने उसे स्वीकार न कर लिया हो ।

उपराज्य और स्थानीय शासन

आस्ट्रेलिया-सँघ में छः उपराज्य हैं जिनकी राजधानी व जनसँख्या नीचे सारिणी में दी है:—

उपराज्य का नाम	राजधानी	क्षेत्रफल (वर्ग मीलों में)	जनसंख्या (३१-१२-४७ को अनुमानित
न्यू साउथ वेल्स	सिडनी	३०६,४३३	२६,८४,८३८
विक्टोरिया	मैलबौर्न	८७,८८४	२०,५४,७०१
क्वीन्सलैंड	ब्रिज़बेन	६७०,५००	११,०६,४१५
दक्षिणी आस्ट्रेलिया	ऐडिलेड	८८०,०७०	६,४६,०७३
पश्चिमी आस्ट्रेलिया	पर्थ	६७५,६२०	५,०२,४८०
टसमानिया	होबार्ट	२६,२१५	२,५७,०७३

संघ सरकार उत्तरी प्रदेश, संघ-राजधानी-प्रदेश, पैपुआ और संरक्षित प्रदेशों पर स्वयं शासन करती है ।

संघ स्थापित होने से पूर्व उपराज्य स्वतंत्र थे—कामनवैल्थ आफ आस्ट्रेलिया एक्ट जिससे आस्ट्रेलिया में संघ शासन की स्थापना हुई, उसके पास होने के पूर्व आस्ट्रेलिया के प्रांत एक दूसरे के परावलम्बी न थे। उनमें उत्तरदायी स्वायत्त-शासन होता था और वे ब्रिटिश पार्लियामेंट की आधीनता स्वीकार करते थे पर आपस में वे एक दूसरे के आधीन न थे। तात्पय यह है कि उनकी वही स्थिति थी जो संयुक्त राष्ट्र अमरीका के उपराज्यों की सन् १७७७ से पूर्व थी। यह हम पहिले ही बतला चुके हैं कि प्रत्येक प्रांत या राज्य की जनता की स्पष्ट इच्छा से ही संघ की स्थापना हुई। इसलिये संघ की स्थापना राज्यों की सम्मति से हुई और उन्होंने केवल वही अधिकार व शक्तियां केंद्रीय करकार को सुपुर्द किये जिनका उन्होंने देश के हित में आवश्यक समझा। सन् १६०० के एक्ट ने इसीलिये राज्यों के स्वतंत्र पद को मान्य स्वीकार कर यह निश्चय कर दिया कि उनका शासन विधान वही रहेगा जो संघ की स्थापना के समय या संघ में शामिल होने के समय वर्तमान था। यह शासन विधान उसी विधान में दी हुई पद्धति से बदला अवश्य जा सकता है।

उपराज्यों की शक्तियाँ—प्रत्येक राष्ट्र की वे शक्तियाँ सुरक्षित हैं जो सन् १६०० के शासन-विधान द्वारा संघ सरकार को नहीं दे दी गई हैं। ऐसी ही स्थिति संयुक्त-राष्ट्र अमरीका के उपराज्यों की है। इसके विपरीत कनाडा में शेष शक्तियां प्रांतों को न देकर डोमिनियन सरकार को दी गई हैं और प्रांतों को वे ही शक्तियाँ व अधिकार प्राप्त हैं जो ब्रिटिश नार्थ अमरीका एक्ट ने उनको दिये हैं। इस प्रकार अमरीकी संघ व आस्ट्रेलिया संघ की अङ्गीभूत इकाइयों का पद कनाडा के प्रांतों के पद से ऊँचा है। आस्ट्रेलिया व संयुक्त राष्ट्र अमरीका में उपराज्यों के बनाये हुये निर्बन्धों को संघ सरकार रद्द नहीं सकती पर कनाडा में गवर्नर-जनरल किसी भी प्रांतीय निर्बन्ध को रद्द कर सकता है।

गवर्नर—अमरीका में उपराजकीय शासन के अध्यक्ष को जो गवर्नर कहलाता है, जनता चुनती है और वह संयुक्त-राष्ट्र अमरीका के प्रेसीडेंट के किसी प्रकार भी आधीन नहीं होता। पर आस्ट्रेलिया में प्रत्येक उपराज्य में एक गवर्नर होता है जिसको सम्राट नियुक्त करता है और जो न तो उपराज्य की जनता को न गवर्नर जनरल को उत्तरदायी होता है, परन्तु कनाडा में प्रान्त का शासनाध्यक्ष लेफ्टिनेंट गवर्नर कहलाता है और गवर्नर-जनरल द्वारा ही

नियुक्त होता है व हटाया जाता है। इसलिये वह गवर्नर जनरल का मातहत ही है। उपराज्यों के न्यायमण्डल आस्ट्रेलिया व कनाडा के प्रांतों के न्याय-मण्डलों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र हैं, वे संघ न्यायमण्डल के उतने आधीन नहीं जितने कि कनाडा में हैं। संक्षेप में अमरीका के उपराज्यों को अधिक से अधिक अधिकार और स्वतंत्रता है, उनसे कम शक्तिशाली और स्वतंत्र आस्ट्रेलिया के उपराज्य हैं और सब से कम शक्तिशाली कनाडा के प्रांत हैं।

उपराज्यों की धारासभायें—आस्ट्रेलिया में प्रत्येक उपराज्य में द्विआगारिक व्यवस्थापक मण्डल है। ऊपरी आगार कौंसिल और निचला आगार असेम्बली के नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनों में से असेम्बली ही अधिक प्रभावशाली है। "यह आय-व्यय पर नियंत्रण रखती है और मंत्रिमण्डलों को बनाती बिगाड़ती है। इसलिये इसमें योग्य व सामर्थ्य-वान् व्यक्ति आने का प्रयत्न करते हैं। यद्यपि राष्ट्रीय संघ सरकार के बन जाने से उपराज्यों की असेम्बलियों का पहिला सा महत्व नहीं रहा पर अब भी उनका इतना महत्व है कि कम से कम बड़े उपराज्यों में वे व्यक्ति जो जनमत से शीघ्र प्रभावित होते हैं, जो व्यवहार-कुशल हैं और राजनीतिक युद्ध लड़ना जानते हैं, इनमें निर्वाचित होकर आते हैं"।* पर कौंसिलें, चाहे वे लम्बी अवधि वाली हों या थोड़ी अवधि वाली, शांत संस्थायें हैं। उनकी बैठक थोड़े समय के लिये ही होती है और मंत्रीमण्डल के बनने बिगड़ने से उनका सम्बन्ध न होने से वे अधिक महत्व नहीं रखती। जब दोनों आगारों में कार्यावरोधक मतभेद हो जाता है उस समय ही ये राजनीति में थोड़ा सा भाग लेती हैं सो भी बहुत साधारण सा। ये कौंसिल अमरीकन उपराज्यों की सीनेटों से बहुत कम मिलती जुलती हैं, न उनकी तुलना फ्रांस की सीनेट से की जा सकती है क्योंकि उनमें बहुत थोड़ी संख्या में ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं जो राजनीति में विख्यात् हों। पर फिर भी उन्होंने जो काम अब तक किया है वह उनके अस्तित्व के समर्थन में पर्याप्त है। उन्होंने जल्दबाज व्यवस्थापकों को बाध्य कर दिया है कि वे अपने प्रस्तावों पर पुनर्विचार कर संशोधन करें और उनका पुनर्निर्माण करें।

उपराज्यों के निर्बन्धकारी अधिकार—उपराज्यों के निर्बन्धकारी अधिकार कनाडा के प्रांतों के अधिकारों से अधिक हैं पर अमरीकन उप-राज्यों के अधिकारों से कम हैं। संघ-सरकार को जो मामले नहीं सौंपे गये हैं

---

* माडर्न डैमोक्रेसीज़, पुस्तक II, पृ० २०१–२

उन सब में उपराज्यों को कानून बनाने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ समवर्ती शक्तियां (Concurrent powers) भी हैं जिनका उपभोग वे संघ पार्लियामेंट के साथ साथ करती हैं। यदि उपराज्य का कानून संघ-कानून के विरुद्ध हो, तो उपराज्य का कानून जहाँ तक ऐसा विरोध है अमान्य हो जाता है। विधान की ११४ व ११५ वीं धारा के अनुसार उपराज्य कोई स्थल या जल सेना बिना पार्लियामेंट की सम्मति से न भर्ती करेगा न संगठन व पालन करेगा। न उपराज्य संघ सरकार को सम्पत्ति पर कोई कर लगायेगा। संघ सरकार भी उपराज्यों की सम्पत्ति पर कोई कर न लगायेगी। ११५ वीं धारा से उपराज्य के मुद्रा बनाने पर निषेध लगाया गया है। कोई उपराज्य सिवाय सोने और चांदी के सिक्कों के दूसरी किसी वस्तु को ऋण चुकाने का माध्यम न बनायेगा। विधान की ११६ वीं धारा के अनुसार कौमनवैल्थ ऐसा कोई कानून न पास करेगी जिससे किसी धर्मविशेष को मान्य ठहराया जाय या कोई धर्म व्यवहार लोगों पर लादा जाय या किसी धर्म के आचरण पर रोक लगाई जाय। एक दूसरी धारा के अनुसार संघ सरकार उपराज्य की कार्यकारिणी की प्रार्थना पर उपराज्य की बाहरी आक्रमण या भीतरी विद्रोह से रक्षा करेगी।

उपराज्य की कार्यकारिणी सत्ता गवर्नर में विहित है जो उपराज्य की मंत्रिपरिषद् की सिफारिश पर सीधे सम्राट द्वारा नियुक्त होता है। उपराज्य का निवासी उसी उपराज्य का गवर्नर नहीं बनाया जाता। पर गवर्नर केवल वैधानिक अध्यक्ष ही होता है वास्तव में तो मंत्रीपरिषद् ही सब काम करती है। यह परिषद् साधारण रीति से बनती है और असैम्बली को उत्तरदायी होती है।

प्रत्येक उपराज्य का अपना पृथक न्याय संगठन है जिसकी चोटी पर एक सर्वोच्च न्यायालय रहता है और इसके निर्णयों की अपील संघ-हाईकोर्ट में होती है।

संघ पार्लियामेंट संघ में नये उपराज्यों को शामिल कर सकती है और नये उपराज्य स्थापित कर सकती है।

हालांकि आस्ट्रेलिया के उपराज्यों की स्वतंत्रता की मात्रा बहुत है, इतना होते हुये भी पश्चिमी आस्ट्रेलिया ने विद्रोह करने की ठानी। वहां की धारा सभा ने सन् १६३२ में एक एक्ट पास किया जिसके अन्तर्गत संघ से पृथक होने के प्रश्न पर लोकनिर्णय लिया गया। इस लोक निर्णय में ६७८४७

मत पृथक होने के पक्ष में अपेक्षाकृत अधिक पड़े। जब मताधिक्य से इस प्रकार जनमत पृथकीकारण की ओर झुका हुआ सिद्ध हुआ तो उपराज्य की सरकार ने यह प्रश्न ब्रिटिश सरकार के सामने रखा पर ब्रिटिश सरकार ने सब बातों को विचार कर यह निर्णय किया कि उपराज्य का संघ से पृथक होना संघशासन-प्रणाली के विरुद्ध है और इसलिये पश्चिमी आस्ट्रेलिया की मांग अस्वीकृत कर दी। ब्रिटिश सरकार के इस निर्णय ने ब्रिटिश संघ प्रणाली पर बड़ा प्रभाव डाला है।

राजनीतिक दल

प्रारम्भ में दलों का अभाव—जब पृथक पृथक आस्ट्रेलिया के उपनिवेशों को उत्तरदायी स्वायत्त शासन का अधिकार मिला उस समय ब्रिटेन में जैसी शासन संस्थायें थी वैसी ही इन उपनिवेशों में भी बनाई गईं। इन शासन संस्थाओं का सचालन एक सुसंगठित पक्ष प्रणाली पर निर्भर करता है। जब एक संगठित दल की पदासीन सरकार का विरोध करने के लिये एक सुसंगठित अल्पसंख्यक दल रहता है तो निश्चय ही वाद-विवाद रुचि पूर्ण होता है और योजनाओं के गुण-दोष का विचार भी भली भांति होता है। पर प्रारम्भ में उपनिवेशों के बसने वालों में आपस के कोई विरोधी हित न थे। उन में अधिकतर क्या ९९ प्रतिशत अंगरेज थे इसलिये जाति, भाषा व संस्कृति का भेद न था। वे ऐसे देश में आकर बसे थे जो बिलकुल नया था और विस्तृत भूमि-प्रदेश उनके सामने खुला पड़ा था जिसे वे मन-चाहा काम में ला सकते थे। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने आपको राजनीतिक दलों में संगठित करने का समय या अवसर ही न था। "परिणाम यह हुआ कि कुछ समय तक बड़ी गड़बड़ चलती रही। मंत्रिमंडल बनते थे और बिगड़ते थे और किसी भी मंत्रिमण्डल को बहुत समय तक समर्थन पाने का भरोसा न रहता था।"* विक्टोरिया में सात वर्ष में आठ मंत्रिमण्डल बने और बिगड़े और दक्षिणी आस्ट्रेलिया में ४० वर्ष में ४१ मंत्रिमण्डल।

दलबन्दी के आधारभूत आर्थिक प्रश्न—उत्तरदायी शासन के प्रारम्भिक काल में प्रौढ़ मताधिकार के मिल जाने के कारण वैधानिक प्रश्नों का अस्तित्व ही न था। इसलिये जिन प्रश्नों पर राजनीतिज्ञों में भेद उत्पन्न हुआ, वे आर्थिक प्रश्न थे। संरक्षणवादियों व निःशुल्क व्यापारवादियों के

---

* वुड : कंस्टीट्यूशनल डेवलपमेंट आफ आस्ट्रेलिया, पृ० १६३

दो दल पहिले से ही चले आरहे थे। संरक्षणवादियों की न्यू साउथ वेल्स में प्रधानता थी और निःशुल्क व्यापारवादियों की विक्टोरिया में। केवल १६वीं शताब्दी के अन्त मे ही आस्ट्रेलिया की राजनीति में नये प्रश्नों का आविर्भाव हुआ। श्रमिकों के नेताओं ने अपना सगठन करना आरम्भ किया और ऐसे सब संगठनों की तरह उन्होने भी आठ घंटे के काम और अधिक मज़दूरी मिलने की मांग सामने रखी। "प्रत्येक उपनिवेश में छोटे-छोटे अनेक पूर्वस्थित संघों को मिलाकर व्यापार व श्रमिक समितियां बनने लगीं और उनके नेता इस प्रकार राजनीति में भाग लेने लगे जो पूर्व समय के मज़दूर संघियों को स्यात् पसन्द न था।"* ये श्रमिक संघ बड़े होने लगे और उन्होंने धारा सभाओं में कुछ स्थान प्राप्त करने में सफलता भी पाई। उनका संगठन बहुत दृढ़ होने के कारण मंत्रिमण्डलों को कभी-कभी उनकी मांगें स्वीकार करनी पड़ती थीं।

संघ पार्लियामेंट के लिये जब प्रथम निर्वाचन हुआ तो दोनों आगारों की १११ सीटों में से २४ श्रमिक-दल को मिलीं। दूसरे दल वही संरक्षणवादी और निःशुल्क व्यापारवादी थे। पर इन दोनों में से किसी की भी संख्या इतनी न थी जो उनके अतिरिक्त दलों की संख्या से अधिक होती। अर्थात् उनका परम मताधिक्य न होने से श्रमिक-दल के हाथ में ही शक्ति प्राप्त कराने की कुञ्जी थी। इसी लिये प्रारम्भ में मंत्रिमण्डल थोड़े समय तक ही अपने स्थान पर टिक पाते थे। श्रमिक दल के शक्तिशाली होते जाने के कारण दूसरे दो दलों ने मिल जाने में ही अपना श्रेय समझा। उनके मिल जाने का कारण उनके दृष्टिकोण की समानता न थी पर कारण यह था कि वे दोनों ही समाजवाद के विरोधी थे। सन् १६१० के निर्वाचन में श्रमिक-दल के प्रतिनिधियों का प्रतिनिधि-आगार में काम चलाऊ मताधिक्य था और सीनेट में यह बहुसंख्यक थे। इसलिये श्रमिक-दल का मंत्रिमण्डल बना। "इस प्रकार उस त्रिभुजाकार संघर्ष का अन्त हुआ जिसके कारण संघ शासन की स्थापना के पश्चात् दस वर्षों में छः बार मंत्रिमण्डल में परिवर्तन हुए जिसके कारण मंत्रिमण्डलों में अस्थिरता रहती थी व षड्यन्त्र आदि को प्रोत्साहन मिलता था। इसके पश्चात् पुराने दोनों दल मिलकर एक हो गये। और उन्होंने अपना नाम राष्ट्रीय दल रखा। उपराज्यों की धारासभाओं में भी ऐसी ही घटनायें हुईं जिसके फलस्वरूप केवल दो ही राजनीतिक दल, श्रमिक और राष्ट्रीय रह गये।

---

* मौडर्न डैमौक्रेसीज़, पुस्तक II, पृ० २२४

कुछ समय के बाद कृषकों ने श्रमिक-दल के कुछ सदस्यों को अपनी तरफ मिला कर अपना पृथक संगठन किया। राष्ट्रीय दल ने भी अपना नाम बदल कर यूनाइटेड आस्ट्रेलिया पार्टी (Uited Australia Party) रख लिया और ऐसा कार्यक्रम बनाया जो समाजवाद-विरोधी था। इस प्रकार अब आस्ट्रेलिया में तीन राजनीतिक दल हैं। श्रमिक-दल सबसे अधिक दृढ़ और सुसंगठित दल है इसीलिये इसकी सबसे अधिक ख्याति है। सारे देश के प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में इसकी एक ट्रेड यूनियन कौंसिल (Trade Union Council) और पोलिटिकल लेबर लीग (Political Labour League) है। इस कौंसिल के सदस्य को दल के कौंसिल के विधान पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं जिसके अनुसार सदस्य को कड़े अनुशासन में रहना पड़ता है। उपराज्यों की धारा सभाओं के निर्वाचन होने के पहिले ही इन कौंसिलों व लीगों के प्रतिनिधि मिलकर निर्वाचन का कार्यक्रम व सदेश विचार करने के बाद निश्चय करते हैं। जब एक बार यह कार्यक्रम बहुमत से स्वीकार हो जाता है तब सब को इसे मान कर काम करना पड़ता है। धारा सभा के उम्मेदवारों को एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं कि वे धारा सभा में दल की गुप्त समिति की आज्ञा का पालन करेंगे। यही नहीं वरन् धारा सभा पद त्याग करने वाले कोरे त्यागपत्र पर उनके हस्ताक्षर करा लिये जाते हैं। ये त्यागपत्र गुप्त समिति के पास रखे रहते हैं और भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर काम में लाये जाते हैं।

इसी प्रकार सब संघ पार्लियामेंट के लिये निर्वाचन होता है, हरएक उपराज्य में स्थित दल के केंद्रीय संगठन के छः प्रतिनिधि एक सम्मेलन में एकत्रित होते हैं और केंद्रीय निर्वाचनों के लिये अपना नीति सम्बन्धी एक घोषणा पत्र व कार्यक्रम तैयार करते हैं। जिन व्यक्तियों को उम्मेदवार चुना जाता है वे प्रतिज्ञापत्रों व त्याग-पत्रों पर हस्ताक्षर करते हैं, जैसा उपराज्यों के निर्वाचनों में होता है।

निर्वाचनों के समाप्त हो जाने पर संघ-धारासभाओं में व उपराज्यधारा सभाओं में श्रमिक दल के सब सदस्य संगठित रूप से कार्य करते हैं और कड़े अनुशासन में रहते हैं। वे सप्ताह में कम से कम एक बार बन्द कमरे में एकत्रित होकर धारा सभा में जो योजनायें विचाराधीन हों उन पर अपना क्या दृष्टिकोण हो, यह यह निश्चय करते हैं। जब श्रमिक दल का ही मंत्रिमण्डल होता है तब भी यह बैठकें होती हैं और यह गुप्त समिति ही न कि मंत्रिमण्डल सरकार की नीति का निर्णय करती है। मंत्रिपरषद् के बनाने में यह

समिति ही मंत्रियों को चुनती है। प्रधान मंत्री को अपने मित्र-मंत्रियों के चुनने की स्वतंत्रता नहीं रहती। प्रत्येक मंत्री अपने शासन प्रबन्ध के लिये समिति को उत्तरदायी रहता है न कि प्रधान मंत्री को। जब इस दल की धारा सभा में बहुत अधिक संख्या होती है तब तो इसके कड़े अनुशासन व दृढ़ संगठन के कारण विरोधी दल शक्तिहीन हो जाता है। हालांकि यह प्रणाली संसदात्मक शासन पद्धति की भावना पर कुठाराघात करती है पर इससे शासन में स्थिरता व शक्ति अवश्य आ जाती है।

यूनाइटेड आस्ट्रेलिया पार्टी ने भी श्रमिक-दल जैसा संगठन उपराज्यों में व संघ में बना रखा है। परन्तु आस्ट्रेलिया की जैसी वर्तमान स्थिति है उसमें श्रमिक दल का कार्यक्रम अधिक आकर्षक है जिससे जनमत उसके साथ है।

इन राजनैतिक दलों के कार्यक्रम ऐसे हैं कि उपराज्य अपने पृथक व्यक्तित्व को भूलते जा रहे हैं। प्रतिनिधि-आगार तथा सीनेट में अब मतभेद किसी उपराज्य विशेष के हित-अहित के आधार पर नहीं होता पर अधिक व्यापक विषयों पर होता है जो सारे संघ के हित से सम्बन्धित है। इससे आस्ट्रेलिया में संघ शासन प्रणाली पर महत्वशाली प्रभाव पड़ रहा है। उप-राज्यों की पृथकत्व-भावना के स्थान पर केंद्रीय सरकार की शक्ति अब बढ़ती जा रही है। इस सब का अधिक श्रेय विशेषकर श्रमिक-दल को है जिसकी नीति ही आस्ट्रेलिया को एक दृढ़ सम्बन्ध सूत्र में बांधना है।

पाठ्य पुस्तकें

Bryce, Viscount—Modern Democracies
Vol. II chs. XLVI—LII (Macmillan & Co. 1923)

Cramp. K. R.—The State and Federal Constitution of Australia (1914 Sydney)

Egerton, H. E.—Federation and Unions in the British Empire pp. 45-67, and 185-230 (Oxford)

Hunt, E. M—American Precedents in Australian Commonwealth (1930 Columbia)

Keith, A. B.—The Constitution, Administration & Laws of the Empire (Collins 1924)

Newton, A. P.—Federal and Unified Constitutions pp. 295-301, 311-358 and Introduction.

Portus G. V.—Studies in Australian Constitution (1933 London)

Quick & Garron—Annotated Constitution of Australian Commonwealth (London 1901)

Sharma, B. M.—Federal Polity Chs. II C (vi), III & IV (U. I. P. H. Lucknow 1931)

Whoare, K. C.—The Statute of Westminster (Oxford 1933)

Select Constitutions of the World pp. 309-352

चौदहवां अध्याय

दक्षिण अफ्रीका का संघ-शासन

"उपनिवेशों का यह संघ दक्षिण अफ्रीका में बसने वाली जातियों को मिलाकर एक करने के काम में बड़ी उन्नति का परिचायक है। दक्षिण अफ्रीका के निवासियों में कुछ अंगरेज़ हैं, कुछ डच हैं और कुछ फ्रांसीसी। इनके पूर्व पुरुषों ने इतिहास के लम्बे समय में बड़े बड़े कष्ट सहे और स्वतंत्रता के लिये संघर्ष किया। उन्होंने कारा-वास, निर्वासन व सम्पत्ति-हरण, यह सब सहा और युद्ध के मैदान में व फांसी के तख्ते पर चढ़ कर नागरिक व धार्मिक स्वतंत्रता के लिये प्राण त्याग किया" (दी अर्ल आफ क्रू)

शासन विधान का इतिहास

ब्रिटिश साम्राज्य के स्वायत्त-शासन वाले डोमिनियनों में दक्षिण अफ्रीका में सब से अन्त में संघ शासन की स्थापना हुई।

सन् १९०० तक—दक्षिण अफ्रीका का क्षेत्रफल ४७२,५५० वर्ग मील, और जनसंख्या ६,६००,००० है जिसमें से २,०००,००० यूरोपियन लोग है और बचे हुये वहां के मूल निवासी है। यूरोपियनों में ५८ प्रतिशत डच भाषा की अपभ्रंश भाषा जो अफ्रीकांस कहलाती है, बोलते हैं और शेष अंगरेजी भाषा बोलते हैं। दक्षिणी अफ्रीका में सबसे प्रथम डच लोग आकर बसे थे और उन्होंने केप कौलोनी (Cape Colony) की स्थापना की। सन् १८१४ में हालैंड ने इसे अंगरेजों को अर्पण कर दिया। बाद में अंग-रेजों के आने से केप कौलोनी में अंगरेज़ों की संख्या बढ़ गई और यहां उद्योग की बड़ी उन्नति हुई।

डच लोगों ने जब यह देखा कि केप कौलोनी में अंगरेजों के बहुसंख्यक होने से उनका भविष्य आशाजनक नहीं है तो वे उत्तर की ओर चलने लगे और एक दूसरे डच स्वतंत्र-राज्य की स्थापना की जिसका नाम ओरेञ्ज रिवर कौलोनी (Orange River Colony) रखा और जिसको अंगरेजों ने सन् १९०० में अपने उपनिवेशों में शामिल कर लिया। जब और भीतरी प्रदेश में सोने व चांदी की खानों का पता लगा तो

इन डच वासियों ने उत्तर की ओर बढ़ना आरम्भ किया और एक तीसरे डच स्वतंत्र राज्य की स्थापना की जिसे ट्रांसवाल (Transvaal) कहते हैं। इस राज्य को भी अंगरेजों ने अपने राज्य में सन् १६०० में मिला लिया। दक्षिण अफ्रीका के बोइर युद्ध (Boer War) में डचों को अंगरेजों ने हरा दिया जिसके फलस्वरुप ये उपनिवेश भी इंगलैंड के हाथ में आगये और वह दक्षिण अफ्रीका का स्वामी बन बैठा।

चार स्वावलम्बी उपनिवेश—दक्षिणी अफ्रीका के चारों उपनिवेशों (केप कौलोनी, औरेञ्ज रिवर कौलोनी, ट्रांसवाल व नैटाल) का शासन प्रबन्ध एक दूसरे से बहुत दिनों तक पृथक पृथक चलता रहा। ऐतिहासिक विकास के भेद के अतिरिक्त इन उपनिवेशों के बहुत से हितों में पारस्परिक विरोध था जिससे ये एक दूसरे से अधिकाधिक दूर हटते जाते थे। इनकी आर्थिक स्थिति एक समान न थी। ट्रांसवाल व्यापार में सब से आगे था और डेलगोआ खाड़ी से सब व्यापार करता था। नैटाल का व्यापार डरबन बन्दरगाह के द्वारा होता था और केप कौलोनी का केप टाउन द्वारा। इन उपनिवेशों की रेलों ने किरायों को घटा बढ़ा कर एक दूसरे को हानि पहुंचाना आरम्भ किया जिससे एक बड़े संघर्ष की सम्भावना होने लगी। इसके अतिरिक्त इसकी कर-सम्बन्धी नीति में मौलिक विभिन्नता थी। ट्रांसवाल निःशुल्क व्यापार के पक्ष में था पर नैटाल और केप कौलोनी संरक्षण चाहते थे, इसलिये नहीं कि उससे उनकी आय बढ़ती पर वे यह भी चाहते थे कि उनके समुद्रतट के नगरों में उद्योग की उन्नति हो। तीसरी बात यह थी कि मूलनिवासियों के प्रति इन तीनों उपनिवेशों की नीति में बड़ा भेद था। गोरे लोगों व मूलनिवासियों की संख्या में १ व ४ का अनुपात होने से यह बड़ा भय था कि चारों उपनिवेशों की विभिन्न नीति से देश के लिये कोई बड़ी विपत्ति न खड़ी हो जाय।

यूनियन बनाने के प्रयत्न का आरम्भ—जो बातें इन उपनिवेशों को एक दूसरे से पृथक करती जा रही थीं उन्हीं से यह भावना जाग्रत हुई कि सब का संघीकरण आवश्यक है। जब निराक्रम्य संघ (Customs Union) बनाने के सब प्रयत्न विफल हो गये तो इस निरन्तर फूट व अलगाव के परिणामों से सजग रहने वाली केप प्रांत की असैम्बली ने जून सन् १८७१ में एक प्रस्ताव पास किया जिसका आशय यह था कि ऐसी योजना बनाई जावे जिससे सारा दक्षिण अफ्रीका कुछ प्रांतों में बांट दिया जाय और उनके ऊपर केन्द्रीय संघ सरकार की स्थापना हो। जब संघ योजना को पर्याप्त समर्थन

प्राप्त हो गया हो तो ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक अनुमति-दायक एक्ट पास कर दिया (The South African Confederation Act 1877)। इस निर्बन्ध के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुये अर्ल कारनार्वन ने कहा था "प्रस्तुत विधेयक केवल ढांचे और सिद्धांत के रूप में है। इसमें आगामी संघ का ढांचा दिया हुआ है, शेष ब्यौरे की बातें ब्रिटिश सरकार और स्थानीय सरकार के बीच तय होने को छोड़ दी गई हैं। मुख्यतया यह अनुमतिदायक ही है, इससे उपनिवेशों पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जायगा पर साथ साथ उनको संघ बनाने का पूरा अवसर प्राप्त रहेगा। यदि वे ऐसा करना अपने लिये हितकारक समझें"। इस एक्ट में यह प्रावधान कर दिया गया था कि यदि इस एक्ट के पास होने के पांच वर्ष तक एक्ट के अनुसार संघ न बनावें तो एक्ट स्वंय ही समाप्त हो जायगा। और क्योंकि उपनिवेशों ने यह संघ नहीं बनाया यह एक्ट सन् १८८२ में समाप्त हो गया।

सन् १९०२ की उपनिवेशां की कांफ्रेंस—सन् १८८४ में अफ्रीकन्दर नेशनल पार्टी का संगठन हुआ जिसका उद्देश्य यह था कि सब यूरोपियनों को एक संघ सरकार की आधीनता में संगठित किया जाय। "पर डचों और अगरेजों में बढ़ते हुये विरोध से ऐसे संघ की स्थापना असम्भव हो गई"। इसी बीच में आर्थिक समस्या इतनी महत्वपूर्ण बन गई कि सन् १९०३ में निराक्रम्य-संघ कांफ्रेंस बुलाई गई। इसने निराक्रम्यसंघ स्थापित करने का प्रस्ताव पास किया, रेल के किराये के प्रश्न पर विचार करने के लिये एक समिति बनाई और मूलनिवासियों के प्रश्न पर सहमत होने का प्रयत्न किया। इस पर ब्रिटिश सरकार ने एक आर्डर-इन-कौंसिल (Order-in-council) जारी कर दिया जिससे दक्षिणी अफ्रीका में इन्टर-कौलोनियल कौंसिल (Iner-colonial-council) रेल व दूसरे आर्थिक प्रश्नों के हाथ में लेने के लिये बनाई गई। तीन वर्ष के बाद १९०६ में निराक्रम्य-सम्मेलन हुआ और निराक्रम्य-संघ स्थापित करने का प्रस्ताव पास किया। पर सन् १८७१ से लेकर किसी प्रकार के संघ के लिये भी जो प्रयत्न हुए वे उपनिवेश-सरकारों द्वारा ही आरम्भ हुए थे, जनता की उसमें कोई राय न ली गई थी। इसलिये वे सब निष्फल रहे। सन् १९०७ के जून मास में दक्षिण-अफ्रीका के हाई कमिश्नर अर्ल सैलबौर्न ने केप कौलोनी के गवर्नर को एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने अपना यह दृढ़ मत प्रकट किया कि यदि संघ का प्रयत्न सफल होगा तो वह तभी जब जनता स्वयं इस प्रश्न को अपने हाथ में लेकर चले। संघ की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए उन्होंने लिखा "बंटे हुए देश का संयोजन

करना कोई ऐसा कार्य नही जिसे किसी दूसरे सुविधापूर्ण अवसर के लिये टाला जा सकता हो। यदि अलगावों को जैसे का तैसा छोड़ दिया जाय तो उनके दिन पर दिन पक्के व स्थायी होने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती और अन्त में एक दृढ़ संयोजन की सम्भावना असम्भव हो जाती है"।

सन् १९०८ की कांफ्रेंस—सन् १९०८ के मई मास में उपनिवेशों की कांफ्रेंस फिर हुई और रेल के किराये व कर सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार हुआ। पर संयुक्त राष्ट्र अमरीका की अनापोलिस कांफ्रेंस के समान यहां भी यह प्रस्ताव पास हुआ कि "इस कांफ्रेंस की राय में दक्षिण अफ्रीका का सर्वोच्च हित-साधन व उसकी समृद्धि ब्रिटेन की छत्रछाया में उपनिवेशों के संघीभूत होने से प्राप्त हो सकती है।" इस कांफ्रेंस में यह प्रस्ताव भी पास हुआ कि उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हो जो विधान का मसौदा तैयार करे। इन सिफारिशो को स्वीकार करते हुए चारों उपनिवेशों व रोडेशिया की धारा सभाओं ने अपने अपने प्रतिनिधि नियुक्त किये। ये ३३ प्रतिनिधि १२ अक्टूबर सन् १९०८ को डरबन नगर में एक सम्मेलन में एकत्रित हुए। इन प्रतिनिधियों में बहुत से ऐसे थे जो बोइर युद्ध में एक दूसरे के विरुद्ध लड़े थे और क्योंकि उन्हें ऐसे मामलों पर विचार करना था जिस पर आपस में भारी मतभेद था उन्होंने अपनी बैठकें गुप्त रखीं। पहिले डरबन में वाद-विवाद आरम्भ हुआ फिर सम्मेलन हटकर केप-टाउन में निश्चय हुआ। इसके सामने एक बहुत ही जटिल काम था। जाति-विभेद आर्थिक मतभेद और विभिन्न निर्वन्ध-प्रणालियां ये सब इतने विराट प्रश्न थे कि उनको हल करना और तब संघ की शर्तों पर सब को सहमत करना बड़ा कठिन काम था। अन्त में एक विधान का मसौदा तैयार हुआ और उपनिवेशों की पार्लियामेंटों के सम्मुख रखा गया। ट्रांसवाल की पार्लियामेंट ने इसे बिना संशोधन के पास कर दिया। ओरेञ्ज रावर कौलोनी ने कुछ संशोधनों के सुझाव किये जो साधारण थे। केप कौलोनी में कुछ विशेष महत्वपूर्ण संशोधन किये जो समान अधिकार देने व अनुपाती प्रतिनिधित्व को मिटाने से सम्बन्ध रखते थे। नैटाल ने तो ऐसे संशोधन किये उनके परिणाम स्वरूप सम्मेलन का काम ही रुक जाता।

सम्मेलन का अधिवेशन फिर ब्लौमफौन्टेन में इन सब संशोधनों पर विचार करने के लिये हुआ। मसौदे में कुछ परिवर्तन कर दिये गये और मसौदा सब प्रतिनिधियों ने स्वीकार कर लिया। यह परिवर्तित मसौदा फिर उपनिवेशों की पार्लियामेंटों के सामने रखा गया। ट्रांसवाल, ओरेञ्ज रिवर

कौलोनी और केप कौलोनी ने इसी को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया पर नैटाल ने जो संघ से सशंकित था इसे जनमत के लिये रखा । इस लोक-निर्णय के परिणाम के सम्बद्ध में तरह-तरह की आशकायें रहते हुए भी नैटाल में जो अधिक बहुमत से इसे स्वीकार किया गया ।

इस प्रकार सम्मेलन का सब से कठिन कार्य सफलता पूर्वक समाप्त हुआ । तब उपनिवेशों के प्रतिनिधि इंगलैंड गये और मसौदे को पार्लियामेंट के सामने प्रस्तुत कराया । पार्लियामेंट ने इसे स्वीकार कर यूनियन आफ साउथ अफ्रीका एक्ट (Union of South Africa Act) २० सितम्बर सन् १९०९ को पास किया । ३१ मई सन् १९१० को चारों उपनिवेश विधिपूर्वक एक संघ में सम्बद्ध हो गये जिससे उनकी समस्यायें सदा के लिये हल हो गईं । इस संघ को दक्षिण अफ्रीका का सघ (Union of South Africa) कहते हैं ।

तब से संघ की पार्लियामेंट अर्थात् संसद ने १९०९ के शासन-विधान में १६ संशोधन किये हैं, कुछ साधारण केवल शाब्दिक व कुछ अधिक महत्वपूर्ण । सन् १९३४ में जो संशोधन हुआ वह स्टेटस् आफ दी यूनियन एक्ट (Status of the Union Act) के द्वारा हुआ । इस से वैस्ट-मिंस्टर-व्यवस्था को स्वीकार कर लिया गया । इस एक्ट की दूसरी धारा यों थी " यूनियन की पार्लियामेंट यूनियन में सब से सार्वभौम निर्बन्ध सत्ता होगी और किसी दूसरे कानून के होते हुए भी इंगलैंड की पार्लियामेंट का कोई कानून ११ दिसंबर सन् १९३१ के बाद यूनियन के कानून के रूप में मान्य न होगा जब तक उसको यूनियन की पार्लियामेंट के एक्ट (अधिनियम) से मान्य न ठहराया गया हो ।"

सन १९०९ का शासन-विधान

शासन-विधान की विशेषतायें—" शासन-विधान की प्रमुख विशेषता स्यात् अनागत पर इसका भरोसा है ।"* ये श्री ब्राण्ड के वचन हैं जो राष्ट्रीय सम्मेलन में ट्रांसवाल प्रतिनिधि-मण्डल के मंत्री थे । इसमें कुछ सच्चाई भी हैं । संघ के बनने से पूर्व इसके हिस्सेदार डच व अंगरेज दोनों एक दूसरे की ओर से व सरकार की ओर से अत्यन्त संदिग्ध चित्त रहते थे फिर भी भविष्य का भरोसा कर उन्होंने एक दूसरे के दृष्टिकोण का आदर करने के लिये अनेक बातों में समझौता किया । उस समय की स्थिति में

* यूनियन आफ साउथ अफ्रीका पृ० ११४

कोई भी यह नहीं कह सकता था कि उनमें इतना निकट संबन्ध स्थापित हो सकेगा। सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने वास्तव में ऐसा शासन-विधान बना कर विस्मयकारक काम किया, क्योंकि संघ-शासन की बहुतसी विशेषताओं को रखते हुए भी इसकी मूलभावना एकात्मक है।

एकात्मक विशेषतायें—यह केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तियां देता और प्रांतों को केवल प्रशासन-इकाइयों जैसा पद देता है जो अपने निर्बन्धकारी कार्यकारी व न्यायकारी कर्तव्यों के लिये केन्द्रीय-सत्ता पर निर्भर रहती हैं। यूनियन की प्रान्तीय सरकारें अधिकतर केन्द्र से सौंपी हुई शक्तियों का उपभोग करती हैं और उनकी व्यवस्थापक योजनायें केवल अध्यादेश (ordinances) ही होते हैं, निर्बन्ध (Law) नहीं होते। प्रान्तीय कार्यकारिणीयों के अध्यक्ष प्रशासक (Administrators) कहलाते हैं न कि गवर्नर या लैफ्टिनैण्ट गवर्नर। संघ सरकार प्रान्तीय सरकारों को कोई भी शक्ति सौंप सकती है। विधान की प्रस्तावना में संघ की प्रजा की इच्छा के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है हालांकि शासन-विधान का मसविदा उपनिवेशी सरकारों के प्रतिनिधियों ने बनाया था और कम से कम एक उपनिवेश नैटाल में यह मसविदा लोक निर्णय के लिये भी रखा गया था।

संघात्मक विशेषतायें—यद्यपि राज्य संगठन की मूलभावना एकात्मक (Unitary) है पर इसमें कुछ बातें ऐसी हैं जिनसे यह संघात्मक प्रतीत होता है। स्वयं प्रस्तावना में भी "स्थानीय मामलों में व ऐसे मामलों में जो प्रांतीय व्यवस्थापन और प्रशासन के लिये आरक्षित हों, निर्बन्ध व प्रशासन सत्ता वाले प्रान्तों के स्थापित करने के लिये" कहा गया हैं। इससे स्पष्ट है कि केन्द्रीय सरकार को असीमित अधिकार नहीं हैं। डच और अंगरेजी दोनों भाषायें मान्य हैं जिनमें सब सरकारी आलेख छपते हैं। कनाडा में भी फ्राँसीसी व अंगरेजी भाषायें फ्राँसीसी व अंगरेज बसने वालों को संतुष्ट करने के लिये मान्य करनी पड़ी थी। इसके विपरीत आस्ट्रेलिया में भाषा का प्रश्न न था न वहाँ जाति-सम्बन्धी समस्या सुलझानी थी। दक्षिण अफ्रीका में सीनेट असेम्बली दोनों संघागार प्रान्तीय-आधार पर बनी है जो निःसन्देह संघात्मक गुण है। संघ की राजधानी स्थापित करने में भी समझौता हुआ है, केप टाउन में धारा सभा स्थित है, प्रिटोरिया में कार्यकारिणी रहती है और ब्लोम फौनटीन में सर्वोच्च न्यायालय स्थित है। इस व्यवस्था से प्रान्तों का मान रखने का प्रयत्न किया गया है पर इससे अधिक व्यय होता है और

प्रशासन भी अच्छे ढंग से नहीं हो पाता*। मूलवासियों के प्रतिनिधि सम्बन्धी, शिक्षा व मताधिकार सम्बन्धी सब विषय अनन्यरूप से प्रान्तों के लिये उपेक्षित है। प्रान्तों की सीमायें वही है जो संघ बनने से पूर्व उपनिवेशों की थीं। सीनेट में सब प्रान्तों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है हालांकि केन्द्रीय सरकार द्वारा आठ सीनेट-सदस्यों के मनोनीत किये जाने का भी प्रावधान है। यह सब समझौते की आधारभूत विशेषतायें विधान को संघात्मक रूप प्रदान करती हैं।

आस्ट्रेलिया के विधान के विपरीत दक्षिण अफ्रीका के विधान में कार्यकारिणी का वर्णन पार्लियामेंट के वर्णन से पूर्व किया गया है। यह बहुत कुछ डच लोगों की उस प्रवृत्ति का परिणाम है जिसके वश होकर वे समय विशेष की स्थित सरकार पर अधिक भरोसा करते हैं। उनमें यह दृढ़ भावना है कि सरकार की आलोचना करना विश्वासघात है।

मिला जुला शासन विधान—सब बातों को ध्यान में रखते हुये यह स्पष्ट है कि शासन-विधान एकात्मक व संघात्मक सिद्धान्तों का अनुपम घोल है जिसका उद्देश्य दो यूरोपियन जातियों को मिलाना है। और यद्यपि तब से अब तक डच व अंगरेज मिलकर एक नहीं हुये (हो भी कैसे सकते थे) फिर भी ब्रिटिश दक्षिण अफ्रीका ने भूतकालिक नीतियों के लिखने वाले देवदूत को कम से कम विलाप करने के लिये काफी मसाला दे दिया है"[१]।

संघ सरकार

यद्यपि संघ सरकार की सृष्टि स्वतंत्र प्रान्तों के द्वारा ही हुई है पर प्रान्तीय सरकारों के ऊपर इसका पूर्ण अधिकार है। संघ-शासन-विधान ने इन प्रांतीय सरकारों को घटाकर केवल स्थानीय शासन संस्थायें भर रहने दिया है। इसलिये मताधिकार व नीची श्रेणियों में शिक्षा आदि के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार की शक्ति पर कोई बड़ी रोक-थाम नहीं है।

संघ धारा सभा—संघ की विधायिनी शक्ति पार्लियामेंट में विहित है जो राजा, सीनेट व असैम्बली तीनों को मिलाकर कही जाती है। पार्लियामेंट की शक्ति, सुव्यवस्था व सुशासन के लिये सब प्रकार के निर्बन्ध अर्थात्

---

* कीथ—कंस्टीटयूशनल लॉ आफ दी डौमिनियन्स, पृ० ३६३

[१] ईगरटन—फेडरेशन्स एण्ड यूनियन्स इन ब्रिटिश एम्पायर, पृ० ८६

कानून बनाने का अधिकार है *। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, आस्ट्रेलिया व कनाडा में केन्द्रीय धारा सभा के अधिकारों की सीमा नियत कर दी गई है और कहीं कहीं समवर्ती व शेष शक्तियाँ भी उन्हें दे दी गई हैं।

सीनेट—सीनेट संघ पार्लियामेंट का ऊपरी आगार है। इसका संगठन अनुपम है। यद्यपि चारों प्रांतों में से हर एक को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है अर्थात् प्रत्येक ८ प्रतिनिधि भेज सकता है, पर गवर्नर जनरल भी ८ सीनेट-सदस्यों को मनोनीत करता है जो दस वर्ष तक सदस्य बने रहते हैं। इस प्रकार सीनेट के सदस्यों की कुल संख्या ४० है। गवर्नर जनरल के मनोनीत सदस्यों में आधे केवल इसलिये चुने जाते हैं कि "उन्हें अपने सरकारी पद के नाते या और किसी प्रकार दक्षिण अफ्रीका की सवर्ण जातियों की युक्ति संगत आवश्यकताओं व इच्छाओं की पूर्ण जानकारी है (एक्ट की २४ (ii) धारा)। यह इसलिये आवश्यक समझा गया क्योंकि सवर्ण जातियाँ जो दक्षिण अफ्रीका की जन सख्या का ८० प्रतिशत भाग हैं प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व से वञ्चित हैं और वहाँ स्वायत्त शासन का अर्थ गोरे लोगों के शासन से ही है।

सीनेट के सदस्यों का निर्वाचन—प्रथम सीनेट के सदस्यों को चुनने के लिये एक ऐसी अनुपम रीति अपनाई गई जो किसी दूसरे शासन विधान में नहीं मिलती। प्रत्येक प्रांत के दोनों आगारों ने मिलकर अपने आठ प्रतिनिधि चुने जो दस वर्ष तक सीनेट के सदस्य नियुक्त हुए। इस वर्ष के समय में यदि किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो तो बची हुई अवधि के लिये प्रांतीय कौंसिल उसको भरती थी। एक्ट की २५ वीं धारा से बाद की सीनेटों के संगठित करने की रीति निश्चित कर दी गई थी। यह रचना इस प्रकार थी: गवर्नर जनरल के मनोनीत आठ सदस्य व प्रत्येक प्रांत के आठ प्रतिनिधि जिनको प्रांतीय कौंसिल के सदस्य व उस प्रांत के केंद्रीय असैम्बली के सदस्य मिलकर चुनते थे। इस प्रकार इस समय प्रांतीय सीनेट के सदस्य न जनता द्वारा सीधे चुने जाते हैं न केवल प्रांतीय कौंसिल द्वारा, पर वे ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जाते हैं जिसमें प्रांतीय कौंसिल के सदस्य व केंद्रीय असैम्बली में उस प्रांत के प्रतिनिधि होने हैं। इससे स्पष्ट है कि दक्षिणी अफ्रीका की सीनेट दूसरे संघ-शासनों की सीनेट की अपेक्षा अधिक सघात्मक ढंग पर निर्मित होती है।

---

* साउथ अफ्रीका एक्ट १९०९ की ५९ वीं धारा

सीनेट के सदस्यों की योग्यता—सीनेट के सदस्यों की आयु तीस वर्ष की होनी चाहिये, उसे असैम्बली के सदस्यों को निर्वाचित करने वाला मतधारक (Voter) होना चाहिये, संघ का पांच वर्ष का निवासी होना चाहिये, यूरोपियन जाति का ब्रिटिश जानपद होना चाहिये और बन्धक सम्पत्ति के अतिरिक्त ५०० पौंड या उससे अधिक मूल्य की अचल सम्पत्ति का स्वामी होना चाहिये। इस प्रकार आस्ट्रेलिया अमरीका की सीनेट की अपेक्षा अफ्रीका की सीनेट कम लोकतन्त्रात्मक है।

सीनेट की कार्यपद्धति—सीनेट की अवधि दस साल की है। यह अपना सभापति स्वयं चुन लेती है। गणपूरक संख्या के लिये १२ सदस्यों का उपस्थित होना आवश्यक है। सब निर्णय मताधिक्य से होते हैं। सभापति केवल तभी अपना निर्णायक मत दे सकता है जब किसी प्रश्न के पक्ष व विपक्ष में मतों की संख्या बराबर हो, अन्यथा नहीं।

हाउस आफ असैम्बली—यह पार्लियामेंट का निचला आगार है जिसमें इस समय १५० सदस्य हैं। यह संख्या सन् १९३१ की जनगणना के सम्बन्ध में नियुक्त छटे परिसीमन कमीशन (Delimitation Commission) की सिफारिश पर निश्चित की गई थी। इन सदस्यों का निर्वाचन प्रांतीय निर्वाचन-क्षेत्रों से होता है। सन् १९४६ के निश्चय के अनुसार ये सदस्य इस सख्या में प्रत्येक प्रांत से चुने जाते हैं:—केप आफ गुड होप अर्थात् उत्तमाशा अन्तरीप से ५५, नैटाल से १६, ट्रांसवाल से ६६ और औरेञ्ज फ्री स्टेट से १३।

प्रथम असैम्बली में प्रांतीय प्रतिनिधियों की संख्या यों ही मनचाही ढंग पर निश्चित कर दी गई थी। केप व ट्रांसवाल को (उनकी गोरे निवासियों की संख्या देखते हुए) कम प्रतिनिधित्व दिया गया जिससे नैटाल और औरेञ्ज फ्री स्टेट को अधिक प्रतिनिधित्व मिल सके। विधान ने प्रत्येक प्रांत को एक पृथक इकाई मान लिया है (जो एक सघात्मक गुण है) और इसके लिये यह प्रावधान कर दिया है कि संघ स्थापना के दस वर्ष तक या उस समय तक जब असैम्बली के सदस्यों की सख्या १२० तक पहुँच जाय(सन् १९१० में यह संख्या १११ थी) जो कोई भी लम्बा समय हो, किसी भी प्रांत के प्रतिनिधियों की सख्या कम नहीं की जायगी। यह भी निश्चित कर दिया गया है कि प्रति पांच वर्ष बाद यूरोपिय निवासियों की गणना की जाय और सबसे हाल की प्राप्त संख्या के आधार पर असैम्बली के सदस्यों की संख्या मे निम्नलिखित

योजनानुसार परिवर्तन कर दिया जायगा:—

(i) सबसे प्रथम, सन् १९०४ की जनगणना के अनुसार यूरोपियन प्रौढ़ पुरुषों की संख्या में (यह संख्या ३४९,८३७ थी) प्रथम असैम्बली के सदस्यों की संख्या (यह संख्या १११ थी) से भाग देकर संघका आनुपातिक हिस्सा निश्चित कर लिया जाय। इस प्रकार निश्चित हुआ प्रत्येक सदस्य का हिस्सा ३१५१ है।

(ii) प्रति पाँच वर्ष बाद यूरोपियन प्रौढ़ पुरुषों की गणना की जायगी और यदि किसी प्रांत में उनकी संख्या बढ़ जाय तो प्रत्येक ३१५१ की बढ़ती के लिये उस प्रान्त के प्रतिनिधियों की संख्या में एक व्यक्ति बढ़ा दिया जायगा। परन्तु प्रतिनिधियों की संख्या में यह वृद्धि उस समय तक न की जायेगी जब तक उस प्रान्त के यूरोपियन प्रौढ़ पुरुषों की संख्या ३१५१ में तत्कालीन प्रतिनिधियों की संख्या के गुणा करने से प्राप्त संख्या जितनी अधिक हो उसी हिसाब से प्रतिनिधियों की संख्या की वृद्धि की जायेगी। यह प्रतिबन्ध इसलिये आवश्यक था क्योंकि प्रारम्भ में प्रत्येक प्रान्त के लिये निश्चित प्रतिनिधियों की संख्या अनुपाती हिस्से के आधार पर निर्णीत न हुई थी, दो प्रान्तों को अपने हिस्से से कम और दो को अधिक प्रतिनिधित्व मिला हुआ था।

मताधिकार और सदस्यों की योग्यतायें—असैम्बली के मतदाताओं की योग्यतायें सन् १९३० के ३८ वें और सन् १९३१ के ४१ वें एक्ट में निश्चित हैं। पहिले एक्ट से सब प्रौढ़ यूरोपियन स्त्रियां भी मताधिकारिणी बना दी गईं। दूसरे से केप व नैटाल प्रान्त में मतधारकों के सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यता की शर्त दूर कर दी गई। इस प्रकार यूरोपियनों के लिये प्रौढ़मताधिकार प्रचलित है। असैम्बली के सदस्य प्रत्येक प्रान्त के एक-प्रतिनिधिक निर्वाचन-क्षेत्रों से चुने जाते हैं। प्रति पांच वर्ष बाद गवर्नर-जनरल से नियुक्त सर्वोच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों का परिसीमन कमीशन (Delimitation Commission) इन निर्वाचन क्षेत्रों को पुनर्संगठित करता है। प्रान्त के निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित करने में कमीशन यातायात के मार्गों, प्राकृतिक स्थिति, वर्तमान क्षेत्र सीमाओं, हितों की भिन्नता या समानता तथा आबादी का घनत्व या विरलत्व (Sparsity) आदि का उचित ध्यान रखता है। निर्वाचन-क्षेत्रों को विभाजन मतधारकों की निश्चित संख्या (अर्थात् ३१५१) के आधार पर किया जाता है पर कमीशन आवश्यकता पड़ने पर इस संख्या से कम या अधिक संख्या के आधार पर भी विभाजन कर सकता है यदि यह

कमी या अधिकता निश्चित संख्या के १५ प्रतिशत की सीमा के भीतर हो। कमीशन जब ब्यौरेवार अपने प्रस्ताव तैयार कर लेता है तो गवर्नर-जनरल उनकी घोषणा कर उन्हें अन्तिम निर्णयों का रूप दे देता है।

असैम्बली के उम्मेदवार को असैम्बली के सदस्यों के चुनने वाला मत-धारक होना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि वह यूनियन में पांच वर्ष तक रह चुका हो और यूरोपियन जाति का ब्रिटिश जानपद हो।

असैम्बली का संगठन—असैम्बली की अवधि पांच वर्ष है पर गवर्नर-जनरल इस अवधि से पूर्व भी उसका विलयन कर सकता है। असैम्बली अपने सदस्यों में से एक को अपना स्पीकर अर्थात् सभापति चुनती है। कम से कम ३० सदस्यों का गणपूरक होता है। असैम्बली के सब निर्णय मताधिक्य होते हैं। स्पीकर का मतों की पक्ष व विपक्ष में संख्या बराबर होने पर ही मत देने का अधिकार है अन्यथा नहीं।

प्रत्येक सदस्य को आगार में स्थान ग्रहण करने के पूर्व निष्ठा की शपथ लेनी पड़ती है। कोई भी व्यक्ति एक समय में दोनों आगारों का सदस्य नहीं हो सकता पर मंत्री जो एक आगार का सदस्य है दूसरे आगार में भी भाषण दे सकता है पर वहां मत देने का अधिकार उसे नहीं होता। यदि कोई सदस्य ऐसा अपराध कर डाले जिसके लिये उसे कम से कम एक वर्ष के कारावास का दण्ड मिले और उसे इस कारावास के दण्ड को जुर्माने के रूप में बदलवाने की स्वतंत्रता न दी गई हो तो वह असैम्बली का सदस्य नहीं रहता।

वह दिवालिया घोषित होने पर, मानसिक रोग से पीड़ित कहे जाने पर या किसी लाभदायक सरकारी पद पर आसीन किये जाने पर भी सदस्य नहीं रहता। पर अन्तिम निर्योग्यता मंत्रियों पर, पेंशन पाने वालों पर और अवकाश प्राप्त सैनिक अफसरों पर लागू नहीं समझी जाती। सीनेट और असैम्बली के प्रत्येक सदस्य को कुछ भत्ता मिलता है और सदस्य रहने के समय में आमतौर पर मिलने वाली सब मुक्तियाँ, अधिकार व सुविधायें प्राप्त रहती हैं।

पार्लियामेंट स्वयं अपने उपनियम बनाती है—प्रत्येक आगार स्वयं ही अपने काम करने के नियमों को व कार्य पद्धति को निश्चित करता है। दोनों आगारों की शक्तियां एक समान हैं पर मुद्राविधेयक असैम्बली में ही प्रथम पुर स्थापित किये जाते हैं। जब दोनों आगार किसी विधेयक को पास

कर देते हैं तो वह गवर्नर-जनरल की अनुमति के लिये भेजा जाता है। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार है कि पार्लियामेंट से पास हुये किसी विधेयक में पार्लियामेंट से उसमें संशोधन करने की सिफारिश कर सकता है। वह किसी भी विधेयक को सम्राट की अनुमति के लिये आरक्षित कर सकता है पर यह अनुमति एक वर्ष के भीतर ही मिलनी चाहिये।

दोनों आगारों का पारस्परिक सम्बन्ध—यदि असैम्बली किसी विधेयक को पार (पास) कर दे और सीनेट उसे पार करने से इन्कार करे या उसे ऐसे संशोधनों से पार करे जिन्हें असैम्बली मानने को तैयार नहीं है तो वह विधेयक असैम्बली को वापिस भेज दिया जाता है। यदि उसी सत्र में असैम्बली उसे ऐसे रूप में फिर पार करे जो सीनेट को नापसन्द हो तो गवर्नर जनरल दोनों आगारों का संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। इस संयुक्त अधिवेशन में असैम्बली से अन्तिम बार प्रस्तावित योजना पर व ऐसे संशोधनों पर जिनका एक आगार ने प्रस्ताव किया हो पर दूसरे ने न माना हो विचार किया जाता है। यदि दोनों आगारों के सदस्यों की संख्या के बहुमत से कोई संशोधन स्वीकार होता है तो वह दोनों आगारों से पारित (पास किया हुआ) समझा जाता है। और यदि विधेयक संशोधनों सहित उपस्थित सदस्यों के बहुमत से स्वीकार हो जाता है तो विधिपूर्वक पारित समझा जाता है। उसके बाद यह गवर्नर-जनरल की अनुमति के लिये भेज दिया जाता है।

दोनों आगारों के मतभेद को मिटाने वाली पद्धति आस्ट्रेलिया की तत्सम्बन्धी पद्धति से अधिक सरल है इसलिये अधिक उत्तम है और व्यवस्थापन कार्य में सहायता देती है।

संघ-कार्यकारिणी

स्टेटस आफ दी यूनियन एक्ट (Status of the Union Act) की चौथी धारा के प्रथम खंड के अनुसार आन्तरिक व बाहरी सब मामलों में संघ की कार्यकारिणी सत्ता राजा में विहित है जो संघ के मंत्रियों की सलाह से कार्य करता है। राजा इस सत्ता का व्यावहारिक प्रयोग स्वयं कर सकता है या अपने प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल द्वारा करा सकता है। खंड (२) से यह स्पष्ट कर दिया गया है कि एक्ट में जहां कहीं राजा का वर्णन है उससे संघ के मंत्रियों की सलाह पर कार्य करने वाला राजा का ही अर्थ लगाना चाहिये।

अब गवर्नर-जनरल केवल संघ का वैधानिक-अध्यक्ष भर ही रह गया है और राजा के नाम से संघ की सब सेनाओं का सेनापति होता है।

संघ के शासन कार्य में गवर्नर-जनरल को सलाह देने के लिये मंत्रियों की एक कार्यकारिणी कौंसिल है। इस कौंसिल के सदस्यों को गवर्नर जनरल चुनता है और चुने जाने पर शपथ लेकर कौंसिल के सदस्य का स्थान ग्रहण करते हैं। कम से कम सिद्धांतत: गवर्नर-जनरल का अनुग्रह रहते समय तक ये सदस्य अपने पद पर आसीन रहते हैं। कार्यकारिणी के सदस्यों को जो मंत्री कहलाते हैं, चुनने में गवर्नर-जनरल प्रचलित वैधानिक प्रथा के अनुसार पार्लियामेंट में बहुमत वाले दल के नेता को प्रधान मंत्री का पद स्वीकार करने के लिये बुलाता है। यह प्रधान मंत्री तब अपने साथी मंत्रियों को चुनता है और उनके नाम गवर्नर-जनरल को भेजना है जो उन्हें स्वीकार कर मंत्री नियुक्त कर देता है। मंत्रियों का संगठित रूप मंत्रिपरिषद कहलाता है। ये मंत्री आगे वर्णन किये हुये शासन विभागों का प्रबन्ध व देखभाल करते हैं: वैदेशिक विभाग, आन्तरिक विभाग, स्वास्थ्य व शिक्षा विभाग, खान-विभाग, रेल व सुरक्षा विभाग, अर्थ-विभाग, न्याय-विभाग, श्रम-विभाग, कृषि विभाग भूमि-विभाग, तार डाक व लोक निर्माण विभाग और मूल निवासिओं के मामलों का विभाग।

मंत्रीपरिषद् सामुदायक रुप में असैम्बली को उत्तरदायी है और उसका विश्वास खोने पर पदत्याग कर देती है। रेल, बन्दरगाह व डाकखाने का प्रबन्ध एक बोर्ड के द्वारा होता है जिसका अध्यक्ष तत्सम्बन्धी मंत्री होता है। दिन प्रतिदिन के शासन सचालन के लिये सिविल सर्विस के कर्मचारियों की बड़ी संख्या है। डच और अंगरेजी दोनों भाषायें राजभाषायें मानी जाती हैं।

संघ-न्याय मण्डल

संघ का सामान्य कानून अंगरेजी कानून नहीं है वरन् हालैंड का रोमन डच कानून है जो अधिकतर लिखित है। पर कुछ मामलों में, जैसे व्यापार, कम्पनियां, प्रतिलिप्याधिकार आदि, अंगरेजी कानून बर्ता जाता है। हां अंगरेजी कानून अप्रकट रुप से व्यावहारिक व अपराध-सम्बन्धी पद्धति पर अपना धीरे धीरे प्रभाव अवश्य डाल रहा है और बीमा व दूसरे व्यापारिक मामलों में निश्चयरुप से उसी के अनुसार कार्य होने लगा है।

विधान की ९५ वीं धारा से एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई है इस न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश व चार छोटे न्यायाधीश होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के आधीन प्रांतीय उच्च न्यायालय है। प्रत्येक प्रांतीय उच्च न्यायालय के आधीन भ्रमणशील (Circuit court) व मजिस्ट्रेट के

न्यायालय हैं। गवर्नर जनरल कौंसिल की सलाह से सब न्यायाधीशों को नियुक्त करता है। ये लोग सद्व्यवहार करते रहते समय तक अपने पद पर बने रहते हैं। और केवल तभी अपने पद से हटाये जा सकते हैं जब पार्लियामेंट के दोनों आगार तदर्थ एक ही सत्र में ऐसा किये जाने का निश्चय करें।

सर्वोच्च न्यायालय का पुर्नविचार विभाग सारे संघ का सब से ऊंचा अपील सुनने वाला न्यायालय है जिसकी बैठकें ओरेञ्ज फ्री स्टेट की राजधानी ब्लोमफोन्टीन नगर में होती है। साधारणतया दक्षिण अफ्रीका के किसी उच्च न्यायालय के पुनर्विचारक विभाग के निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल की न्याय समिति में अपील नहीं की जाती, पर राजा को अब भी इस सम्बन्ध में अपने विशेषाधिकार द्वारा ऐसी अपील की अनुमति देने का अधिकार है।

प्रान्तीय उच्च न्यायालयों को सब प्रान्तीय मामलों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार रहने के अतिरिक्त उन सब मामलों में भी क्षेत्राधिकार है (क) जिनमें संघ सरकार या संघ सरकार की ओर से कोई व्यक्ति जो मुकदमा चला रहा हो या जिस पर मुकदमा चलाया गया हो वादी या प्रतिवादी हो, और (ख) जिन में किसी प्रान्तीय अधिनियम के वैध होने न होने का प्रश्न उठता है। असैम्बली के व प्रान्तीय कौंसिल के निर्वाचनों से सम्बधित मामले भी उन्हीं के क्षेत्राधिकार में हैं।

संघ का सर्वोच्च न्यायालय सब उच्च न्यायालयों व प्रान्तीय न्यायालयों में बरते जाने वाली कार्यपद्धति के सम्बन्ध में नियम निश्चित करता है। इसके निर्णयों व आज्ञाओं का प्रत्येक प्रान्त में पालन होता है। इससे स्पष्ट है कि दक्षिणी अफ्रीका संघ के सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति आस्ट्रेलिया के सर्वोच्च न्यायालय से अधिक है परन्तु दक्षिणी अफ्रीका में सर्वोच्च न्यायालय को विधान की व्याख्या करने और संघ-निर्बन्धों के वैध-अवैध होने का निर्णय करने का अधिकार नहीं है।

प्रान्तीय व स्थानीय सरकारें

संघ स्थापित होने से पूर्व के चार उपनिवेश संघ के प्रान्त बन गये थे और अब भी वे चार ही प्रान्त संघ के सदस्य है (१) उत्तमाशा अन्तरीप का प्रान्त, नैटाल, ट्रांसवाल व ओरेञ्ज फ्री स्टेट। प्रान्तों को कुछ थोड़े से अधिकार हैं और उनको बहुत कुछ ऐसा स्थान प्राप्त है जैसा केन्द्रीय सरकार के आधीन प्रशासन इकाइयों को प्राप्त रहता है। प्रत्येक प्रान्त में एक

व्यवस्थापक कौंसिल है जिसके सदस्यों की संख्या उस प्रान्त के संघ असैम्बली में बैठने वाले प्रतिनिधियों की संख्या के बराबर होती है। किन्तु यह संख्या किसी भी दशा में २५ से कम नहीं होती। इस समय इन प्रान्तीय कौंसिलों के सदस्यों की संख्यायें इस प्रकार हैं:—केप आफ गुड होप प्रान्त में ६१, नैटाल में २५, ट्रांसवाल में ५७ और ओरेञ्ज फ्री स्टेट में २५। सब प्रान्तों में यूरोपियन निवासिय को प्रौढ़ मताधिकार दिया हुआ है। प्रान्त का निवासी कोई भी मतधारक कौंसिल का सदस्य बनने के लिये उम्मेदवार खड़ा हो सकता है। प्रत्येक कौंसिल की अवधि पांच साल है और यह अवधि समय के बीतने पर ही समाप्त होती है और किसी प्रकार नहीं क्योंकि प्रान्तों में कार्यकारिणी धारासभा को उत्तरदायी नहीं है। प्रान्तीय कौंसिल वर्ष में एक बार अवश्य अपनी बैठक करती है। यह अपने सदस्यों में से अपना सभापति चुनती है और अपनी कार्यपद्धति के नियम स्वयं बनाती है जो गवर्नर जनरल की अनुमति पाने के पूर्व लागू नहीं होते। कौंसिल के सदस्यों को सामान्य भत्ता मिलता है और कौंसिल में वाक् स्वतंत्रता के अतिरिक्त सामान्य सुविधायें व मुक्तियां प्राप्त हैं। कौंसिल में सब प्रश्नों पर बहुमत से निर्णय होता है।

सन् १९०९ के विधान की २५वीं धारा के अन्तर्गत कौंसिलों को निम्नलिखित विषयों में अधिनियम बनाने का अधिकार है:—

(१) प्रान्तीय आवश्यकताओं के लिये मुद्रा एकत्रित करने के लिये प्रत्यक्ष कर लगाना,

(२) पार्लियामेंट से बनाये हुये नियमों के अनुकूल और गवर्नर-जनरल व मंत्रि परिषद की अनुमति से प्रान्त की केवल निजी साख (credit) पर ऋण लेना।

(३) पांच साल तक उच्च शिक्षा को छोड़ कर शेष शिक्षा का प्रबन्ध। उसके बाद जब तक पार्लियामेंट इसका कोई दूसरा प्रबन्ध न करे यही प्रबन्ध चलाते रहना।

(४) पार्लियामेंट से निर्णीत शर्तों के अनुसार कृषि का प्रबन्ध करना।

(५) धर्मार्थ संस्थाओं और चिकित्सालयों की स्थापना, भरण पोषण व प्रबन्ध।

(६) नगर संस्थायें, प्रदेश कौंसिलें व दूसरी इसी प्रकार की स्थानीय संस्थायें।

(७) प्रान्त के भीतर (रेल व बन्दरगाह और ऐसे निर्माणों को छोड़ कर जो प्रान्त की सीमा के बाहर तक फैलते हों) निर्माण कार्य करना। किन्तु यह सब पार्लियामेंट की उस शक्ति के आधीन है जिसके द्वारा वह किसी भी लोक-निर्माण को राष्ट्रीय घोषित कर सकती है और उसकी देख-भाल आदि के लिये प्रान्तीय कौंसिल द्वारा या किसी और प्रकार से प्रबन्ध करा सकती है।

(८) सड़कें, पुल आदि—उन पुलों को छोड़ कर जो दो प्रान्तों को मिलाते हों।

(९) बाज़ारू पशुओं का बाड़ा।

(१०) मछली व बनजीवों की रक्षा।

(११) इस धारा में वर्णित विषयों के अन्तर्गत मामलों से संबन्धित किसी प्रान्तीय निर्बन्ध या अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिये जुर्माने या कारावास के दण्ड का विधान करना।

(१२) सामान्यतः वे सब विषय जो गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल (Governor-General-in-Council) की राय में केवल वैयक्तिक या स्थानीय सरकार के हैं।

(१३) वे सब विषय जिनके संबन्ध में पार्लियामेंट किसी कानून से अधिनियम बनाने की शक्ति किसी प्रान्तीय कौंसिल को सौंप दे।

यह बड़ी रोचक बात है कि संयुक्त-राष्ट्र अमरीका व आस्ट्रेलिया के विधान में जहां केन्द्रीय सरकार की शक्तियां आयंत्रित कर दी हैं और जिनका विशेषतयाः विवरण विधान में दे दिया गया है, शक्तियों की व्याख्या करने वाली धारा के अन्तिम शब्द ऐसे हैं जिनसे केन्द्रीय सरकार की शक्तियों को बढ़ने का अवसर मिला हुआ है। दक्षिणी अफ्रीका के संघ-शासन-विधान में भी ऐसे ही अन्तिम शब्द हैं पर उनसे प्रान्तीय सरकारों की शक्तियों को बढ़ने का अवसर दिया गया है जैसा उपर्युक्त (१२) व (१३) अनुच्छेदों से स्पष्ट है। संयुक्त राज्य अमरीका व आस्ट्रेलिया की केन्द्रीय सरकारों ने अनुभव के आधार पर अपनी शक्तियां बढ़ा ली हैं पर दक्षिण अफ्रीका में यह प्रवृत्ति विपरीत दिशा में है। यहां प्रान्तीय सरकारों ने सन् १९१० के पश्चात् नई शक्तियां प्राप्त कर ली हैं। इन नई शक्तियों में से कुछ ये हैं: हानिकारक बनस्पतियों व कीड़ों का नाश करना, गन्ने, चाय अंगूर की कृषि करना, कृषि-संस्थाओं को अनुदान देना;

पुस्तकालय कौतुकागार (Museums) और कुछ कलाभवन; निर्धनों की देख-भाल, दुकानों के समय का नियमन, छोटे नगर बसाना व उनका प्रबन्ध करना। केप प्रान्त में औद्योगिक संस्थाओं में श्रम-निर्बन्धों को लगाना और उन्हें कार्यान्वित कराना"।* प्रान्तीय कौंसिलें गाड़ियों, घुड़दौड़ व मनोविनोद के स्थानों को लाइसेंस देती और उन पर नियंत्रण रखती हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षणालयों की फीस चिकित्सालय की फीस और दूसरी बहुत सी फीस भी लगाती हैं। जब कभी कोई प्रान्तीय कौंसिल किसी ऐसे नये कानून को बनाना आवश्यक समझती है जिसके बनाने का अधिकार उसे स्वयं प्राप्त नहीं है तो वह संघ पार्लियामेंट से उस कानून को बनाने की प्रार्थना कर सकती है।

एक महत्वपूर्ण वैधानिक स्थिति ऐसी है जिसमें दक्षिण अफ्रिका की प्रान्तीय कौंसिलें आस्ट्रेलिया या संयुक्त राज्य अमेरिका के उपराज्यों की धारा सभाओं की अपेक्षा केन्द्रीय सरकार के अधिक आधीन हैं। प्रान्तीय धारा सभा का व्यवस्थापन अधिनियम (Ordinance) कहलाता है निर्बन्ध अर्थात् कानून (Law) नहीं कहलाता। इस अधिनियम का भी कोई प्रभाव नहीं होता जब तक गवर्नर-जनरल-इन कौंसिल अपनी अनुमति उसके लिये न दे। यदि पास होने के एक वर्ष के समय के भीतर यह अनुमति न प्राप्त हो तो अधिनियम समाप्त हो जाता है। "यह अनुमति केवल बाध्य व्यवहार ही नहीं होता। किन्तु इसका बड़ा महत्व रहता है क्योंकि इसका उपयोग इस नियम के पालन कराने में किया जा सकता है और किया गया है कि मूल निवासियों से सम्बन्धित मामलों का और विशेषकर उन मामलों का जिनका प्रभाव एशिया निवासियों पर पड़ता है नियंत्रण व प्रबन्ध गवर्नर-जनरल-इन कौंसिल के कौंसिल के अधिकार में हो। प्रान्तीय अधिनियम उसी हद तक वैध समझे जाते हैं जहाँ तक वे पार्लियामेंट के किसी निर्बन्ध के विरुद्ध नहीं होते और इन अधिनियमों के स्थान पर पार्लियामेंट अपने निर्बन्ध बनाकर उनको व्यर्थ कर सकती है"।[१] प्रांत अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत अपना आगम एकत्रित करते हैं और सन् १९१३ के आर्थिकसम्बन्धों वाले एक्ट (Financial Relation Act) के प्रावधानों के अनुसार वे संघ-राज्य-कोष से आर्थिक सहायता भी पाते हैं। प्रान्तों के आगम का अधिकतर भाग इस आर्थिक सहायता से ही प्राप्त होता है।

---

*कीथ-कंस्टीट्यूशन, एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड लौज आफ दी एम्पायर पृ० २३२

[१] उसी पुस्तक में पृ० २३३

दक्षिण-अफ्रीका-संघ की इकाइयाँ दूसरे संघ शासनों की इकाइयों से जितनी कार्यकारी सत्ता के सम्बन्ध में भिन्न है उतनी किसी और बात में नहीं हैं। प्रत्येक प्रांत में गवर्नर-जनरल-इन कौंसिल से पाँच वर्ष के लिये नियुक्त एक प्रशासक (Administrator) होता है। यह प्रशासक ही प्रान्तीय कार्यकारिणी का अध्यक्ष होता है। हर प्रान्त में एक कार्यकारिणी समिति होता है जिसमें प्रांतीय कौंसिल के सदस्यों में से कौंसिल द्वारा निर्वाचित या किसी और प्रकार से चुने हुये चार सदस्य होते हैं। प्रशासक (Administrator) इस समिति का सभापति होता है। प्रान्तीय समिति गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल की स्वकृति से इस समिति के सदस्यों का वेतन निश्चित करती है। प्रशासक व समिति के सदस्य प्रान्तीय कौंसिल की कार्यवाही में भाग ले सकते हैं और उनमें से जो कौंसिल के सदस्य हैं वे अपना वोट (मत) भी दे सकते हैं।

प्रशासक (Administrator) कार्यकारिणी समिति की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करता है। समिति के सब निर्णय बहुमत से होते हैं जिनमें प्रशासक का मत भी शामिल होता है। पक्ष व विपक्ष में मत बराबर होने पर प्रशासक को निर्णायक मत देने का भी अधिकार होता है। प्रांत के सब कर्मचारियों की नियुक्ति आदि का प्रबन्ध यही समिति करती है। "उन सब मामलों में जिनके विषय में प्रांतीय कौंसिल को कोई शक्ति आरक्षित या सुपुर्द नहीं की गई है, प्रशासक आदेश मिलने पर गवर्नर जनरल की ओर से कार्य करेगा और ऐसा करते समय यह आवश्यक नहीं कि प्रशासक कार्यकारिणी समिति के दूसरे सदस्यों से सलाह लें"*। दूसरे सब मामलों में समिति का पूरा नियंत्रण रहता है पर एक ही राजनीतिक दल के व्यक्तियों के संगठित न होने के कारण धारा सभा को यह मंत्रिपरिषद की तरह उत्तरदायी नहीं है। इस बात में ये प्रांत स्विट्ज़रलैंड के कैन्टनों से बहुत कुछ मिलते हैं।

प्रांतों को न्यायामण्डल पर कोई अधिकार नहीं है। केवल छोटे छोटे न्यायालय ही प्रांतीय अधिकार में हैं। न्यायकारी सब सत्ता संघ-सरकार को प्राप्त है।

हर प्रांत में नगर पालिकायें (Municipal Boards) और स्थानीय संस्थायें हैं जो स्थानीय हित सम्बन्धी मामलों का प्रबन्ध करती हैं।

---

* विधान की १४ वीं धारा।

ऐसी नगरपालिकायें केप प्रांत में १३४ और ओरेञ्ज फ्री स्टेट में ६४ हैं। हर नगरपालिकाओं में एक मेयर और कुछ निर्वाचित सदस्य होते हैं।

शासन-विधान का संशोधन

संघ-शासन-विधान के रचने वालों ने दक्षिण अफ्रिका में कनाडा की विधान संशोधन पद्धति की अपेक्षा आस्ट्रेलिया की पद्धति अपनाना अधिक वाञ्छनीय समझा। विधान की १५२ वीं धारा संघ पार्लियामेंट को निम्नलिखित दो शर्तों पर विधान की किसी धारा को रद्द करने या बदलने की शक्ति देती है:

(१) पार्लियामेंट किसी ऐसे विधान को रद्द या परिवर्तित नहीं कर सकती जिसको कार्यन्वित करने के लिये समय की एक निश्चत अवधि रखी गई हो। ऐसे प्रावधान प्रथम असैम्बली व सीनेट के संगठन के बारे में है और अब उनका कोई महत्व नहीं क्योंकि एक्ट के पास होने के पश्चात् अब बहुत समय बीत चुका है।

(२) पार्लियामेंट असैम्बली में प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधियों की संख्या के अनुपात को बदल नहीं सकती या मिटा नहीं सकती जब तक कि कुल सदस्यों की संख्या १५० तक न पहुंच जाय या संघ के बनने के पश्चात् दस वर्ष का समय न बीत जाय, जो कोई भी अपेक्षाकृत अधिक समय ले। और क्योंकि यह संख्या १५० तक पहुंच चुकी है, यह प्रतिबन्ध भी बेकार हो गया है। पार्लियामेंट केप व दूसरे प्रान्तों में असैम्बली के निर्वाचकों की योग्यताओं में परिवर्तन नहीं कर सकती, न यह कोई ऐसा कानून बना सकती है जिससे डच और अंगरेज़ी दोनों राजभाषायें न रहें जब तक कि इन परिवर्तनों के करने वाला विधेयक पार्लियामेंट की संयुक्त बैठक में पास न हुआ हो और तृतीय वाचन में पार्लियामेंट के सदस्यों की संख्या के दो-तिहाई बहुमत से स्वीकृत न हुआ हो।

पिछले तीस वर्षों में पार्लियामेंट ने शासन-विधान में कई संशोधन किये हैं किन्तु वे सब साधारण ढंग के ही थे और या तो वे मताधिकार के सम्बन्ध में थे या उनसे प्रान्तीय सरकारों को अधिक शक्तियां सौंपी गईं थीं। कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण-अफ्रीका तीनों डोमिनियनों में दक्षिण अफ्रीका ने विधान संशोधन का सरलतम तरीका काम में लाया है। यह विधान की एकात्मक भावना के अनुकूल ही था।

राजनीतिक दल

साम्राज्य में उपनिवेशों को बनाये रखने के कार्य में दक्षिण अफ्रीका ने ब्रिटेन के मार्ग में अनेक बाधायें उत्पन्न की थीं। इस संघर्ष का महत्तम उत्कर्ष सन् १८९९-१९०० के बोइर-युद्ध में हुआ जिसका अन्त ३१ मई सन् १९०२ की वैरीनिंग (Vereeniging) की सन्धि से हुआ। पर सौभाग्य से बोइरों व नेता जनरल स्मट्स, बोथा, हर्टज़ोग और डीवट ने अपने बचन का पालन किया और सन्धि की शर्तों को पूरा किया। किन्तु उन्होंने हैट वौक (Het Walk) नामक एक राजनीतिक दल का संगठन किया जिसका उद्देश्य ट्रांसवाल और ओरेञ्ज रिवर कौलोनी को स्वायत्त शासनाधिकार दिलाना था। जब सन् १९०९ में चारों उपनिवेश मिल कर संघ में संगठित हो गये, लार्ड ग्लैडस्टोन (इंगलैंड के प्रसिद्ध उदारदल के नेता का पुत्र) संघ का प्रथम गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। केप टाउन में पहुँच कर लार्ड ग्लैडस्टोन ने अपनी प्रथम मन्त्रिपरिषद् बनाने के हेतु नेताओं से बातचीत करना प्रारम्भ किया और २१ मई सन् १९१० को जनरल बोथा को जो उस समय ट्रांसवाल में प्रधानमंत्री था, मंत्रिमण्डल का संगठन करने के लिये आमंत्रित किया। इसी समय से बोथा व कुछ दूसरे नेताओं में मतभेद उत्पन्न हो गया। यह मतभेद सामान्य शासन नीति के सम्बन्ध में ही था। बोथा का यह विचार था कि यदि नये दक्षिण अफ्रीका का जन्म उस महाद्वीप में एक शुभतम घटना सिद्ध करना है तो तत्काल स्थित चारों प्रांतों के मंत्रिमण्डलों के प्रमुख मंत्रियों को संघ मंत्रिमण्डल में शामिल किया जाय जिससे डच और अंगरेज दोनों जातियों के सहयोग से उत्पन्न शिशु-शासन विधान को कार्यान्वित किया जा सके और उस सहयोग को अक्षुण रखा जा सके। इसके विपरीत कुछ लोग बोथा के मित्र डाक्टर जेमीसन के साथ थे जो कहते थे कि सब से योग्य व्यक्ति ही मंत्रिमण्डल में रखे जायं चाहे उससे अंगरेजी बहुमत वाले प्रांतों के सहयोग को हानि ही क्यों न हो जाय।

अन्त में बोथा ने अपना निर्णय कर लिया और अपने मंत्रिमण्डल में केप से चार, ओरेञ्ज फ्री स्टेट से दो (जनरल हर्टज़ोग को मिलाकर जो न्याय मंत्री बनाये गये) नैटाल से एक और ट्रांसवाल से तीन मंत्री लिये। नैटाल से लिये हुये जनरल स्मट्स जो (जनरल बोथा के अभिन्न मित्र और सहायक थे) सुरक्षा, खानों व आन्तरिक मामलों के मंत्री हुये। स्वयं श्री बोथा संघ के प्रथम प्रधान मंत्री बने। १९१०. के जून मास में उन्होंने एक

सन्देश निकाला और दक्षिण अफ्रीका दल (South Africa Party) के बनने की घोषना की जिसमें हैट वोक (Het Walk) अर्थात् 'जनता' नामक राजनीतिक दल को मिला दिया गया। इस नये राजनीतिक दल का मुख्य उद्देश्य सारे सघ की भलाई के लिये काम करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये निम्नलिखित साधन अपनाने का विचार था: (१) डचों और अंगरेजों दोनों का सहयोग प्राप्त करना (२) सब वर्गों के लोगों में मेल स्थापित करना और (३) ब्रिटिश साम्राज्य में सघ के लिये एक ऊंचा स्थान प्राप्त करना। दो साल तक जनरल बोथा का मंत्रिमण्डल अच्छी प्रकार काम करता रहा क्योंकि असैम्बली में उसे बहुमत का समर्थन प्राप्त था। श्री मैरीमैन को जो केप प्रांत के प्रधान मंत्री थे बोथा ने अपने मंत्रिमण्डल में एक पद देना चाहा पर उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया और उन्होंने असैम्बली में विरोधी पक्ष का नेतृत्व करना उचित समझा। इस प्रकार संघ पार्लियामेंट ने दल प्रणाली पर अपना काम प्रारम्भ किया।

दक्षिण अफ्रीका में यह सब लोगों को अच्छी तरह ज्ञात था कि फ्री स्टेट में अपने जनरल हर्टज़ोग ने अपनी शिक्षा सम्बन्धी नीति से अंगरेजों को विरोधी बना लिया था। परन्तु जनरल बोथा के प्रभुत्व-सम्पन्न प्रभाव ने जनरल हर्टज़ोग को मंत्रि-परिषद् बनने के बाद कुछ समय तक अपनी अंगरेज विरोधी प्रवृत्ति को प्रकट करने से रोक रखा। किन्तु यह बात अधिक दिन तक न चली और जनरल हर्टज़ोग ने अपने व्याख्यानों में यह कहा कि उनके लिये संघ का हित साम्राज्य के हित से अधिक प्रिय है। बिना मंत्रिमण्डल की सलाह से ऐसी बात कह देने से हो मंत्रिपरिषद के एक्यभाव पर बड़ा आघात लगा और बोथा के बार बार प्रयत्न करने पर भी जनरल हर्टज़ोग के विचारों के सम्बन्ध में दूसरे लोगों के मन का समाधान न हो सका और सरकार को विपत्ति का सामना करना पड़ा। जनरल हर्टज़ोग ने पदत्याग करने से मना कर दिया इसलिये जनरल बोथा ने स्वयं अपना त्यागपत्र दे दिया और उस मंत्रिमण्डल की दिसम्बर सन् १९१२ में इतिश्री हो गई। गवर्नर-जनरल ग्लैडस्टोन ने फिर जनरल बोथा को नया मंत्रीमण्डल बनाने के लिये आमंत्रित किया और जनरल बोथा ने हर्टज़ोग को छोड़ कर अपने सब पहिले साथियों को मंत्री नियुक्त किया। जनरल बोथा व जनरल हर्टज़ोग के इस बिलगाव ने उनके व उनके अनुगामियों के मौलिक व मेल न खाने वाले राजनीतिक आदर्शों के विभेद को सब पर प्रकट कर दिया। जनरल बोथा की दक्षिण अफ्रीका पार्टी समझती थी कि "दक्षिण अफ्रीका का भविष्य ब्रिटिश साम्राज्य

में रह कर ही उज्ज्वल हो सकता है" इसके विपरीत हर्टज़ोग के अनुयायी उस साम्राज्य के बाहर एक प्रजातंत्र सत्ता स्थापित करने में ही देश का कल्याण सम्भव समझते थे। मंत्रीमण्डल से निकाले जाने के बाद तुरन्त ही जनरल हर्टज़ोग ने एक नये राजनीतिक दल का संगठन किया जो नेशनलिस्ट (Nationalist) कहलाये। इनका उद्देश्य डच्चों की शक्ति को बढ़ा कर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में दक्षिण अफ्रीका की स्वतंत्रता के लिये प्रयत्न करना था। साउथ अफ्रीका पार्टी (South Africa Party) की कांग्रेस ने जनरल बोथा की नीति का समर्थन किया।

सन् १६१४ में युद्ध के आरम्भ होने के तुरन्त बाद ही जनरल बोथा ने जर्मनी के आधीन दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका पर आक्रमण कर उसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के लिये तैयार की। अगस्त २६, सन् १६१४ को नेशनल पार्टी (हर्टज़ोग पार्टी) ने प्रिटोरिया में सम्मलित होकर एक मत से इस विचाराधीन आक्रमण की निन्दा की। जब नेशनलिस्ट इस प्रकार युद्ध में भाग लेने का विरोध कर रहे थे संघ के दूसरे भागों में जर्मन प्रदेश को हथियाने का प्रयत्न उतनी ही तत्परता से चल रहा था जितना उसे अत्यावश्यक समझा जा रहा था"। जब यूरोप में युद्ध समाप्त हुआ और सब राजनीतिज्ञ वार्साई में सान्धपत्र पर हस्ताक्षर करने एकत्रित हुए उस समय जनरल बोथा ने प्रधानमन्त्री होने के कारण दक्षिण अफ्रीका का प्रतिनिधित्व किया। हर्टज़ोग के साथियों ने साउथ अफ्रीका पार्टी के विरुद्ध अपनी शक्ति बढ़ाने में कोई कसर न छोड़ी। लौटने के पश्चात् एक पखवारे के भीतर ही बोथा का शरीरान्त हो गया और उसके स्थान पर जनरल स्मट्स प्रधानमन्त्री हुए। यद्यपि दक्षिण अफ्रीका पार्टी का संख्या बहुत कम होगई थी परन्तु असैम्बली में इतनी संख्या अवश्य रही कि वे सन् १६२४ तक यूनियनिस्ट (Unionist) दल के सहयोग से मन्त्रिमण्डल बनाने में सफल रहे। उस वर्ष जब निर्वाचन हुआ तो उसमें स्मट्स की सरकार हार गई और नेशनलिस्टों ने बहुमत प्राप्त करने के कारण जनरल हर्टज़ोग की अध्यक्षता में मन्त्रिमंडल बनाया। शासन सत्ता में उस परिवर्तन के होने साम्राज्य से पृथक होने के आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा और इस ओर पहिला कदम बढ़ाने के लिये झण्डा सम्बन्धी विरोध आरम्भ किया। हर्टज़ोग के अनुयायी कहते थे कि यूनियन जैक (Union Jack) के बदले संघ का निजी झण्डा अपनाया जाय। इस सम्बन्ध में जब समझौता होकर एक योजना स्वीकार हो गई तो यह आन्दोलन भी समाप्त हो गया। सन् १६२६ व १६३० के बीच जो साम्राज्य सम्मेलन हुए

उनसे ही दक्षिण अफ्रीका के सम्मान को बढ़ाने में पर्याप्त सफलता मिल चुकी थी किन्तु सन् १९३१ की वैस्टमिंस्टर व्यवस्था से तो नेशनिलस्टों की सब मांगें पूरी हो गई। यद्यपि दोनों दलों के आदर्शों का विभेद बहुत कुछ मिट गया है फिर भी राजनीतिक संघर्ष व विरोध का भय बना ही रहेगा क्योंकि जब तक ये दोनों जीवित हैं और उनमें पारस्परिक मेल का अभाव है तब तक वे अपने अपने भिन्न राजनैतिक अस्तित्व की रक्षा के लिये या तो पुरानी फूट को फिर से जगाते रहेंगे या पुराने ढंग पर नये झगड़ों को खड़ा करने का प्रयत्न करेंगे*." और जब तक जनरल हर्टज़ोग राजनैतिक रंगमंच पर रहेंगे तब तक इन दोनों दलों के मिलने की सम्भावना नहा है क्योंकि पिछले १५ वर्षों में जब वह दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमन्त्री रहे, उन्होंने अपने राजनीतिक विरोधियों से जिनके नेता जनरल स्मट्स थे मतभेदों को बहुत कुछ बढ़ा चढ़ा दिया था। सच बात तो यह है सि १९१० से ही दक्षिण अफ्रीका के राजनीतिक दलों का प्रश्न वैयक्तिक दृष्टिकोणों की विभिन्नता की समस्या थी। नेशनलिस्टों में प्रजातंत्रीवर्ग अब भी प्रजातंत्र (Republic) के आदर्श का पुजारी है। जब सन् १९३९ में ब्रिटेन ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की उस समय जनरल हर्टज़ोग ने संघ असैम्बली में सघ के तटस्थ रहने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा जो ६७ के विरुद्ध ८० मतों से अस्वीकृत हो गया। जनरल हर्टजोग ने इस पर पद त्याग कर दिया और जनरल स्मटस् ने नया मंत्रिमण्डल बनाया। दक्षिण अफ्रीका में श्रमिक दल अभी बहुत हा मामूली स्थिति में हैं और उसका अभी कोई प्रभाव नहीं है। आजकल डाक्टर मालान की अध्यक्षता में शुद्ध नेशनलिस्ट दल का मंत्रिमण्डल दक्षिण अफ्रीका में शासन सत्ता को सम्भाले हुए है।

पाठ्य पुस्तकें

Brand,—The Union of South Africa (Oxford 1909).

Egerton,—Federations and Unions within the British Empire pp. 68–102 and 231–291 (Oxford 1911).

Engelenburg, F. V.—General Louis Botha chs. XIV, XVI, XX, XXI, & XXIII—XXXVIII, (George Harrop 1929).

---

* हीमफेयर : साउथ अफ्रीका पृष्ट २३०

Hofmeyr, J. H.—South Africa, chs. VII, & XI—XV, (Ernest Benn 1931).

Sharma, B. M.—Federal Polity, ch. II C, (vii) & chs. III & IV, (Lucknow 1931)

Newton, A. P.—Federal & Unified Constitutions (Longman 1923)

Select Constitutions of the World pp. 309–352

Statesman's Year Book (Latest Number)

अध्याय १५

आयरलैण्ड

"सब परिस्थितियों का विचार करके और सब सेनापतियों के विचार के पश्चात् हम इस निश्कर्ष पर पहुंचे कि मित्र आयरलैंड से हमें शान्तिकाल में व युद्धकाल में सन् १६२१ की संधि में दिये हुये हमारे उन कागज़ी अधिकारों से अधिक मूल्यवान् सिद्ध होगा जिनकी रक्षा अधिकाधिक मनमुटाव को बढ़ाकर ही हो सकती थी।"

(नैविल चैम्बरलेन)

आयरलैंड के द्वीप में जो अटलाण्टिक महासागर में इंगलैंड के पश्चिम में स्थित है दो भाग हैं और इन दोनों की अपनी अपनी पृथक शासन सत्ता है इनमें से आइर (Irish Republic) का क्षेत्रफल १७,०२४,४८५ वर्ग मील और जनसंख्या २,६६८,४२०, है और उत्तरी आयरलैंड का क्षेत्रफल ३३५२,२५१ वर्ग मील और जनसंख्या १२,७६,७५३ है। उत्तरी आयरलैंड में अधिकतर प्रोटेस्टेन्ट मत को मानने वाले व दक्षिणी आयरलैंड में अधिकतर कैथौलिक सम्प्रदाय के अनुयायी बसते हैं।

वैधानिक इतिहास

आयरलैंड के वैधानिक इतिहास के चार युग—आयरलैंड के वैधानिक इतिहास को हम चार युगों में बांट सकते हैं। पहिला ब्रिटिश विजय से लेकर सन् १८०० तक, दूसरा १८०० से लेकर १६२१ तक, तीसरा १६२१ से लेकर १६३७ तक, और चौथा १६३७ से पहिले युग में आयरलैंड को अंगरेजों ने जीता, उसको अपने आधीन रखा और अन्त में अपने राज्य में मिला लिया। सन् १६०० से १६२१ तक आयरलैंड ने होम-रूल (Home Rule) अर्थात् स्वराज्य लेने का भीष्म प्रयत्न किया पर आयरलैंड की राष्ट्रीयता को कुचल दिया गया और अन्त में दोनों देशों में एक संधि हो गई। सन् १६२१ की संधि से एक अर्ध-स्वतंत्र राज्य का प्रारम्भ हुआ जिस स्थिति को उत्कट राष्ट्रवादियों ने जिनके नेता डिवैलेरा थे, स्वीकार नहीं किया। सन् १६३७ में आयरलैंड ने स्वयं अपना शासन विधान बनाया, और नामतः तो नहीं पर कार्यतः स्वतंत्र होकर ब्रिटिश साम्राज्य की छत्र छाया से बाहर सम्पूर्ण सत्ताधारी जीवन आरम्भ किया।

आयरलैण्ड पर अङ्गरेजों की विजय—सन् ११६८ में हैनरी द्वितीय ने डरमौट के इस प्रस्ताव को कि आयरलैण्ड पर आक्रमण करने के लिये एक सेना भेजी जाय तुरन्त ही स्वीकार कर लिया क्योंकि हैनरी द्वितीय की पहिले से ही आयरलैण्ड पर आँख लगी हुई थी। डरमौट लीन्स्टर (Leinster) का निर्वासित राजा था। सन् ११७० में बार्थोलोम्यू दिवस से एक दिन पूर्व स्ट्रौंगबो (Strongbow) वाटर फोर्ड के पास सेना लेकर पहुँच गया, आयरलैण्ड की सेना को हराया और डब्लिन नगर को अपने अधिकार में कर लिया। हैनरी द्वितीय ने विजित प्रदेश में अपने न्यायालय स्थापित किये हाँलाकि अंगरेजी व आयरलैण्ड की दोनों न्याय प्रणाली साथ साथ चलती रहीं। इस भेद डालकर राज्य करने वाली नीति का बड़ा भयंकर परिणाम हुआ। हैनरी द्वितीय के उत्तराधिकारियों के पास इतना समय न था कि वे आयरलैण्ड के शासन प्रबन्ध की देखभाल करते इसलिये १३वीं शताब्दी की समृद्धि धीरे धीरे १४ वीं शताब्दी की निर्धनता में परिणित हो गई। इस बीच में आयरलैण्ड को दबाने के लिये कई सेनायें भेजी गईं और उनको विभिन्न मात्रा में सफलता प्राप्त हुई।

ट्यूडर काल—ट्यूडरवंशी राजाओं में हैनरी सप्तम को यह श्रेय प्राप्त हुआ कि उसने मैत्रीपूर्ण रीति से आयरलैण्ड के सरदारों को अपनी ओर मिला लिया। एलिजाबेथ के राज्यकाल में दो बार ऐसा हुआ कि आयरलैंड में अंगरेजी शासन के ऊपर विपत्ति आई और दोनों बार अल्स्टर के ओनिलों (O'Neills) ने ही इस शासन का अन्त करने का प्रयत्न किया। इस अवसर से पोप ने व स्पेन के राजा फिलिप ने लाभ उठाने का निश्चय किया क्योंकि उन्होंने यह सोचा कि आयरलैण्ड में इंगलैण्ड की रानी के विरुद्ध संघर्ष करने का अड्डा बनाया जाय। किन्तु सन् १५८८ में स्पेन के आरमैडा (जहाज़ी बेड़ा) के नष्ट हो जाने से एलिज़ाबेथ के वैरियों की योजना विफल हो गई। आयरलैण्ड में अंगरेजी प्रणाली को प्रचलित करने का जो प्रयत्न किया उसको जेम्स प्रथम ने पूरा किया। उसने अंगरेजों को आयरलैंड में बसाया। वह यही समय था जब अल्स्टर (Ulster) में स्कौच लोग आकर बसे और जो आयरलैण्ड व इंगलैण्ड के बीच फूट व संघर्ष के कारण बने और अब भी वैधानिक कठिनाई उत्पन्न कर रहे हैं।

कैथोलिक व प्रौटैरटैन्ट सम्प्रदायों के अनुयायियों में झगड़ा—जब चार्ल्स प्रथम इंगलैण्ड का राजा हुआ तो उसने वैन्टवर्थ (Wentworth) को आयरलैण्ड के निवासियों की दशा सुधारने के लिये भेजा। उसका

निश्चित उद्देश्य यह था कि आयरलैंड में निरंकुश शासन की नींव पक्की कर दे, उसका कहना था कि प्रोटैस्टैन्ट सम्प्रदाय का हित ही आयरलैण्ड का सब से बड़ा हित है किन्तु इतने पर भी उसको अल्सटर के प्रोटैस्टैन्टों (Protestants) के विरुद्ध आयरलैण्ड के रोमन कैथोलिकों भड़काने में हिचकिचाहट न हुई। अंगरेज आयरलैण्ड के रोमन कैथोलिकों के हित का चार्ल्स प्रथम के हित से मेल देखने लगे। स्थिति बहुत बिगड़ने लगी। विद्रोह की आग भड़की। स्पेन व पोप ने उसके भड़काने में सहायता की। यह विद्रोह तभी शान्त हुआ जब चार्ल्स प्रथम को फाँसी लग जाने के बाद क्रौमवैल (Cromwell) ने इसको शान्त करने का प्रयत्न आरम्भ किया। वह अपनी सेना लेकर डब्लिन में उतरा, उसपर अपना अधिकार किया और तब आइरलैण्ड के निवासियों से बदला लेने के लिये ड्रोघैडा की ओर बढ़ा। अक्टूबर सन् १६४१ के पश्चात् होने वाले विद्रोह में जिनकी जायदाद शामिल थी वह जब्त कर ली गई और नवम्बर ३० सन् १६६० की घोषणा से जिन लोगों ने दूसरों की जमीनें हथिया ली थीं उन्हें कानूनी रूप से वे जमीनें दे दी गईं।

आइरलैण्ड फिर एक बार दो शक्ति शाली प्रतिद्वन्द्वियों में संघर्ष का क्षेत्र बना। जेम्स द्वितीय इंगलैण्ड से भाग कर १४ वें लुई से जाकर मिल गया था जिसने विलियम तृतीय के विरुद्ध उसे सहायता देना आरम्भ किया। सन् १६६६ में लुई से यह प्रस्ताव किया गया कि यदि वह आयर निवासियों की अंगरेज़ों के विरुद्ध सहायता करे तो वे उसके आधीन रहने को तैयार हैं। इस पर सन् १६८६ में लुई ने आयरलैण्ड में एक सेना भेजने का निश्चय किया। ऐसा करने से उसका अभिप्राय जेम्स द्वितीय को राजसिंहासन दिलाना न था वरन् विलियम् तृतीय को परेशान करना था। एक ओर उत्तरी आयरलैण्ड में स्थित डैरी नाम के एक छोटे नगर के घेरे में लुई की सारी आशाओं पर पानी फिरा जा रहा था दूसरी ओर जेम्स द्वितीय ७ मई सन् १६८६ के दिन डब्लिन में अपनी प्रथम पार्लियामेंट कर रहा था। समय ने पलटा खाया, जेम्स द्वितीय के समर्थकों (Jacobites) को करारी हार खानी पड़ी। बौयन के युद्ध से विलियम तृतीय के पक्ष में निर्णय हुआ और लिमैरिक की सन्धि (१६८६) से विद्रोह का अन्त हुआ। उसके पश्चात् विलियम तृतीय ने आयरलैंड पर अपराधी कानून लादे जिससे भीतर ही भीतर अंगरेज़ों और आयरलैंड निवासियों का बिलगाव बढ़ता गया।

१८ वीं शताब्दी में—१८ वीं शताब्दी में आयरलैंड में अंगरेजी राज्य पक्का हो गया। धीरे धीरे आयरलैंड की समृद्धि घटने लगी। कृषि का

स्थान चरागाह ने ले लिया और भूमि विषयक झंझटों व धार्मिक मनमुटावों ने आइर निवासियों की समस्या को और भी अधिक जटिल बना दिया। इसी बीच में औद्योगिक क्रांति के परिणामोंकी भयंकरता भी अधिक स्पष्ट होने लगी। उद्योग सम्बन्धी व पार्लियामेंट के नियंत्रणों से जनता में असंतोष फैलने लगा। उसके बाद ही अमरीकन स्वतंत्रता युद्ध ने आइरलैंड की स्वतंत्रता के आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। यह स्वतंत्रता मुख्यतः धर्म की स्वतंत्रता थी जिस पर प्रौटैस्टेन्ट बुरी तरह आघात कर रहे थे। फ्रांस की क्रांति ने भी आइरलैंड के आन्दोलन की आग में घी का काम किया। नैपोलियन ने इंगलैंड के विरुद्ध आयरलैंड के विद्रोह से लाभ उठाना चाहा। किन्तु इसी बीच में पिट लन्दन और डब्लिन में स्थित दो पार्लियामेंटों के रहने के भयभीत परिणाम के प्रति जागरूक हुआ और उसने आइरलैंड की पार्लियामेंट को मिटाने का निश्चय कर लिया। इस निश्चय के फलस्वरूप आयरलैंड को मिलाने वाला सन् १८०० ई का एक्ट पास हुआ। हाउस आफ कामन्स में १०० स्थान आयरलैंड को दिये गये। हाउस आफ पीयर्स (House of Peers) में २१ पीयर व आयरलैंड के धर्ममठ के ४ पादरी आयरलैंड का प्रतिनिधित्व करने लगे। आयरलैंड की पार्लियामेंट को तोड़ दिया गया।

पिट (Pitt) ने आइर निवासियों को दिये हुये वचनों को पूरा करने का प्रयत्न किया किन्तु जार्ज तृतीय ने इस कार्य में बड़ी बाधा डाली। इस समय सौभाग्य से आयरलैंड को डेनियल ओकोनेल (Daniel O'Connell) जैसा कुशल नेता मिल गया। उसके सामने तीन उद्देश्य थे (१) रोमन कैथोलिकों की दशा का सुधार (२) धर्ममठ की आर्थिक सहायता बन्द करना और (३) पार्लियामेंट को पुर्नजीवित करना।

होम रूल के लिये संघर्ष—ओकोनेल को यह अच्छी प्रकार प्रतीत हो गया कि आइर निवासियों का उद्धार आयरलैंड की पार्लियामेंट के फिर से स्थापित होने से ही सम्भव है। इसलिये अप्रैल सन् १८४० में उसने रिपील एसोशियन नामक एक संस्था बनाई जिसका उद्देश्य इंगलैंड और आयरलैंड के एकीकरण को मिटाना था। उसने एक बड़ा आन्दोलन खड़ा किया किन्तु अल्सटर (Ulster) में इसका कड़ा विरोध हुआ क्योंकि वहां के निवासी अधिकतर प्रोटैस्टैन्ट थे।

इसी समय के लगभग सन् १८४६ के अकाल से आयरलैंड के किसानों की बड़ी दीन अवस्था हो गई। जमीदारों ने उन्हें जमीन का किराया न चुकाने के कारण बेदखल कर दिया। ये किसान तीन बातों के भूख थे। उचित

जमीन का किराया, पट्टे की स्थिरता और बेचने की स्वतंत्रता। इन मांगों का जमींदारों ने विरोध किया। अमरीका में आइरलैंड वासियों ने फैनियन समाज (Society of the Feunian) स्थापित किया जिसके सदस्यों को यह शपथ लेनी पड़ती थी कि वे नामतः नहीं किन्तु कार्यतः स्थापित आयरलैंड के राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखेंगे और आवश्यकता पड़ने पर उसकी स्वतंत्रता व एकता के लिये लड़ने को तैयार रहेंगे। सन् १८६३ में शिकागो में फैनियन समाज का बड़ा भारी सम्मेलन हुआ जिससे आयरलैंड में अमरीकन आन्दोलन को बड़ा प्रोत्साहन मिला। किन्तु फिनियन समाज की कार्यवाहियों को रोकने के लिये सरकार ने दमननीति का प्रयोग किया।

सन् १८६२ के निर्वाचनों में इंगलैंड में ग्लैडस्टोन की जीत हुई। उसने पदारुढ़ होने के कुछ दिन बाद ही आयरलैंड के धर्म (Irish church) के राजकीय सम्बन्ध को तोड़ने वाली और उसको वृत्तिरहित करने वाली योजना प्रस्तुत की और स्वीकार करा ली। सन् १८७० में उसने भूमि सम्बन्धी एक्ट (Land Act) पास करा लिया जिससे किसानों और जमींदारों की तनातनी दूर हुई।

सन् १८७३ में होम रूल एसोसिएशन (Home Rule Association) के सन् १८७० के अधिवेशन के फलस्वरुप आइरिश होम रूल लीग स्थापित हुई। इस एसोसिएशन के ये उद्देश्य थे :—

"अपने देश के लिये आयरलैंड में एकत्रित एक ऐसी पार्लियामेंट द्वारा अपने शासन प्रबन्ध करने का अधिकार प्राप्त करना जिसमें सम्राज्ञी व उसके उत्तराधिकारी हों और आयरलैंड के लार्ड्स और कामन्स हों।"

उस पार्लियामेंट को संघात्मक प्रणाली के अन्तर्गत यह अधिकार दिलाना कि वह आयरलैंड के भीतरी शासन के लिये कानून बना सके और आयरलैंड की आय व दूसरी सम्पत्ति पर नियंत्रण रख सके। प्रतिबन्ध केवल इतना रहे कि अंगरेजी सरकार के शासन-व्यय का उचित भाग उसको दिया जाया करे"।

"एक साम्राज्य सम्बन्धी पार्लियामेंट को उपनिवेश व आधीन प्रदेशों से सम्बन्धित प्रश्नों से निबटने का अधिकार दिया जाय, साम्राज्य व विदेशी राष्ट्रों के बीच सब बातों का देखभाल व साम्राज्य की सुरक्षा आदि का प्रबन्ध यही पार्लियामेंट किया करे"।

"दोनों देशों के सम्बन्धों का बिना सम्राट के विशेषाधिकारों में हस्तक्षेप किये या विधान के सिद्धांतों को तोड़े हुये उपर्युक्त उद्देश्यों के अनुकूल व्यवस्थित करना"।

इस प्रकार सन् १८७५ में चार्ल्स स्टिवार्ट पार्नेल (Charles Stewart Parnell) जो बाद में आयरलैंड का बिना अभिषेक किया हुआ राजा (Uncrowned King) प्रसिद्ध हुआ और जो बहुत सी बातों में ओ कोनल (O' Connel) से भिन्न था, किसानों का नेता हुआ। उसके भड़काने वाले व्याख्यानों ने विप्लवकारियों (Anarchists) की कार्य-वाहियों को बड़ा प्रोत्साहन दिया और वह कैद कर लिया गया।

सन् १८८५ में ग्लैडस्टोन ने आइरिश होम रूल बिल (Irish Home Rule Bill) जो बट (Butt) के सुझाव के अनुसार संघात्मक ढंग का था, पार्लियामेंट के सम्मुख रखा। किन्तु ग्लैडस्टोन के मित्रों ने ही इसका विरोध किया और यह विधेयक पास न हुआ। इसके पश्चात् सामान्य निर्वाचन हुआ और यूनियनिस्ट (Unionists) दल के लोगों का मंत्रि-मण्डल बना। किन्तु वे मंत्रिपद पर अधिक दिन न जम पाये और उनका स्थान सन् १८९० में ग्लैस्डटोन के नेतृत्व में उदारदल वालों ने लिया जिनका द्वितीय होम रूल बिल भी पहिले की तरह अस्वीकृत हुआ। किन्तु सन् १९०६ के निर्वाचन में उदारदल वालों को बहुत अधिक संख्या में पार्लियामेंट में स्थान मिले और सर हैनरी कैनरमैन कैम्पबैल ने प्रधान मन्त्री का पद लेकर शासन सूत्र सम्भाला।

उदारदल वालों ने सन् १९१२ का होम रूल बिल फिर उपस्थित किया जो कुछ विरोध के पश्चात् सन् १९१४ में पास होकर कानून घोषित हो गया। इससे आयरलैंड में फूट फैल गई। अल्सटर (Ulster) ने इसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह इंगलैंड से किसी प्रकार भी पृथक किये जाने का विरोधी था। इसके विपरीत दक्षिणी आयरलैंड ने इस बिल का स्वागत किया। इस प्रकार एक गृह युद्ध खड़ा हो गया और दोनों ओर से लड़ाई का सामान बाहर से मंगा कर इकट्ठा किया जाने लगा। किन्तु इसी बीच में सन् १९१४ का युद्ध छिड़ गया और आयरलैंड कुछ दिनों के लिये अपनी समस्यायें भूल कर साम्राज्य-रक्षा के हेतु कटिबद्ध हो गया। स्यात् यह आशा रही हो कि होम रूल अर्थात् स्वराज्य फलैन्डर्स के रणक्षेत्र में प्राप्त होगा न कि आयरलैंड में।

एक ओर तो सरकार क्रांतिकारी आन्दोलन का दमन करने की कार्यवाही कर रही थी, दूसरी ओर उसने आयरलैंड के सब राजनीतिक दलों, वर्गों व धर्मावलम्बियों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन सन् १९१७ में बुलाया। दुर्भाग्यवश इस सम्मेलन की रिपोर्ट जिस दिन सभापति ने प्रधानमंत्री के हाथ में दी उसी दिन आयरलैंड में अनिवार्य सैनिक भर्ती की घोषणा की गई। इस घोषणा से बड़ी खलबली मची जिससे शांतिपूर्वक समझौते की सम्भावना बिलकुल जाती रही। आयर निवासियों का कहना था कि उनके प्रतिनिधियों के अतिरिक्त किसी को यह अधिकार नहीं कि वह बलपूर्वक सैनिक भर्ती की आज्ञा दे। इसके अतिरिक्त यह भी एक बात थी कि स्वयं इंगलैंड में ऐसी भर्ती नहीं हो रही थी।

सन् १९१६ के ईस्टर सप्ताह के पश्चात् आयर निवासियों के सामाजिक जीवन में आदरपूर्ण स्थान सिन फेन (Sinn Fein) को प्राप्त हो चुका था। किन्तु इन घटनाओं के पश्चात् यह आदर और बढ़ गया और राष्ट्रीय आयर पर उसका प्रभुत्व अच्छी तरह जम गया। इसी बीच में पार्लियामेंट के आयर निवासी सदस्यों ने जो सन् १९१८ में निर्वाचित हुये थे पार्लियामेंट की बैठक में जाने से मना कर दिया। ये लोग वहां न जाकर धौल्यारअन (Deil Eireann) के नाम से डब्लिन में एकत्रित हुये और उन्होंने आइर-प्रजातंत्र राष्ट्र की रक्षा की शपथ ली। एक अनुरूप सरकार की स्थापना की, एक प्रजातंत्री-राष्ट्र-ऋण उधार लिया और कई यूरोपियन राजधानियों में अपने दूत भेजकर नये राष्ट्र की मान्यता स्वीकार कराने का प्रयत्न होने लगा। पंच फैसला करने वाले न्यायालय स्थापित किये गये और एक नई स्थानिक शासन पद्धति प्रचलित की गई ब्रिटिश सरकार ने सिन फेन (Sinn Fein) की इस चुनौती का सामना करने की ठानी। उसने धौल्यारअन को कुचल डाला उन समाचार पत्रों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाही की जिन्होंने नये प्रजातंत्र राष्ट्र का प्रचार किया और नये पंच फैसला करने वाले न्यायालयों को अवैध घोषित किया। इसके बदले में सिन फेन ने ब्रिटिश फौजों पर छुट पुट आक्रमण करना आरम्भ किया। किन्तु सन् १९२० में सन् १९१४ के एक्ट को बदलते हुये एक एक्ट पास किया जिससे उत्तरी व दक्षिणी आयरलैंड की दो पृथक पृथक पार्लियामेंट बनाने की योजना तैयार की। एक साल बाद लायड जार्ज (Lloyd George) वे डिवैलैरा को जो सन् १९१७ से धौल्यारअन का सभापति रह चुका था, बातचीत करने के लिये लन्दन बुलाया। इस बातचीत में सम्मिलित होने के लिये उत्तरी आयरलैंड के प्रधानमंत्री सर जेम्स क्रेग को भी आमंत्रित किया। इस कांफ्रेंस के सदस्यों की संख्या बढ़ती चली गई और

इसकी कार्यवाही कई दिनों तक चलती रही। अन्त में ६ दिसम्बर सन् १६२१ को ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड में संधि हो गई और एक संधिपत्र पर हस्ताक्षर हो गये।

सन् १६२१ की संधि बड़ी महत्वपूर्ण थी क्योंकि इसके द्वारा आयरलैंड के राष्ट्रवादियों की सब मांगे स्वीकार करली गईं। केवल दो बातें अस्वीकार की गईं, एक तो साम्राज्य से पृथक होना और दूसरी उत्तरी आयरलैण्ड को उसकी इच्छा के विरुद्ध गणराज्य (Republic) में शामिल करना। पहिली धारा से आयरलैंड को ब्रिटिश साम्राज्य में वही स्थान दिया गया जो आस्ट्रेलिया, कनाडा व दक्षिण अफ्रीका को मिला हुआ था। उसका नाम भी आइरिश फ्री स्टेट (Irish Free State) रख दिया गया।* बाहरी रूप से उत्तरी आयरलैंड फ्री स्टेट का भाग मान लिया गया। किन्तु यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि पार्लियामेंट द्वारा संधि के अनुमोदन के एक मास पश्चात् यदि उत्तरी आयरलैंड को पार्लियामेंट के दोनों आगार सम्राट को यह प्रार्थनापत्र भेजें कि फ्री स्टेट की पार्लियामेंट व सरकार की शक्तियाँ उत्तरी आयरलैंड में लागू न हों तो ऐसी शक्तियां लागू नहीं होंगी। संधि में एक अस्थायी सरकार बनने का प्रावधान कर दिया गया जो शासन-विधान बनने तक शासन का संचालन करेगी। इस अस्थायी सरकार को शासन-सम्बन्धी सब शक्तियां सौंप दी गईं।

डि वैलैरा (De Valera) ने इस संधि का विरोध किया। किन्तु विलियम कौसग्रेव (Wiliam Cosgrave) ने जो मंत्रिमण्डल का सभापति चुना गया संधि का समर्थन करने वाले दल का नेतृत्व संभाला। नई स्थायी सरकार ने शान्ति व व्यवस्था स्थापित करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और संधि की शर्तों के अनुसार काम करने का प्रण किया। धौल्यारअन के लिये नये निर्वाचनों में संधि के ६२ समर्थक (जिसमें कौसग्रेव दल के ४८ प्रतिनिधि थे) और कुछ विरोधी निर्वाचित हुए। अस्थायी सरकार ने एक शासन-विधान बनाया जिसको ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार कर लिया। यह शासन-विधान ६ दिसम्बर सन् १६२२ को सम्राट की घोषणा से लागू किया गया।

सन् १६२२ का शासन-विधान—सन् १६२२ के शासन-विधान में कुछ बड़ी महत्वपूर्ण विशेषतायें थीं जो दूसरे विधानों में उस समय न पाई जाती थीं। विधान से आयर निवासी जनता को सम्पूर्ण सत्ताधिकारी मान

---

* 'डोमिनियन' या 'कौलोनी' शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया।

लिया गया था। आयर भाषा राज्य-भाषा मान्य कर दी गई हालांकि अंगरेजी भाषा को भी समान पद दिया हुआ था। नागरिक अधिकारों की व्याख्या कर दी गई थी। व्यवस्थापक मण्डल में दो आगार थे, एक धौल्यार-अन (निचला आगार) और दूसरा सीनेड (Seanad Eireann) (ऊपरी आगार)। दोनों आगारों को मिला कर एयरचथास (Oireachtas) नाम रखा गया। एयरचथास गतानुदर्शी (Expost facto) कानून अर्थात् वह कानून जो किसी बीती हुई तिथि से लागू होता हो नहीं बना सकती थी। आक्रमण होने की स्थिति के अतिरिक्त युद्ध करने के लिये इसकी सम्मति भी आवश्यक थी। विधान-संशोधन संधि की शर्तों के अन्तर्गत एयरचथास कर सकती थी। किन्तु यह संशोधन यदि विधान लागू होने वाली तिथि से ८ वर्ष के भीतर दोनों आगार स्वीकार करें तो वह तब तक लागू न होगा जब तक वह निर्णय (Referendum) स्वीकार न हो जाय। इस लोक निर्णय में रजिस्टर्ड मतधारकों में बहुसंख्यक मतधारकों द्वारा मत पड़ने चाहिये और संशोधन के पक्ष में इन पड़े हुए मतों के दो तिहाई मत अवश्य होने चाहिये। विधान में यह भी प्रावधान था कि जनता स्वयं भी विधान संशोधन व कानून का प्रस्ताव कर सकती है। इस प्रावधान से व दूसरी शक्तियों से जो विधान ने प्रजा को सौंपी थी आयरलैंड के निवासियों को उतनी स्वतंत्रता दे दी गई थी जितनी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में किसी दूसरे प्रजावर्ग को नहीं प्राप्त थी।

कार्यकारिणी—सन् १९२२ के शासन विधान की नवीनता उसके द्वारा स्थिर कार्य कारिणी के संगठन में थी। इस कार्यकारिणी में ५ से लेकर ७ तक मंत्री होते थे जिनको सम्राट का प्रतिनिधि कौंसिल के प्रेसीडेंट द्वारा मनोनीत किये जाने पर नियुक्त करता था, मंत्रियों की यह कौंसिल धैल्यारअन अर्थात् निचले आगार को उत्तरदायी थी। यद्यपि कौंसिल का अध्यक्ष (President) दूसरे डोमिनियनों की प्रथा के अनुसार मंत्रियों को स्वयं नियुक्त न करता था परंतु और दूसरी सब बातों में वही सत्ताधारी रहता था। इस कार्यकारिणी कौंसिल के सब मंत्री धौल्यारअन के ही सदस्य होते थे। इस प्रकार आयरलैंड का शासन विधान अध्यक्षात्मक शासन-विधानों की श्रेणी में न आकर मंत्रिपरिषदात्मक विधानों की श्रेणी में ही गिना जाता था, यह कार्यकारिणी कौंसिल सामुदायिक रूप से धौल्यारअन को उत्तरदायी रहती थी।

विधान की ५५ व ५६ वीं धारा से कार्यकारिणी कौंसिल में एक महत्व-पूर्ण और नवीन तत्व का प्रवेश हुआ। धौल्यारअन (Dail Eirenn) को यह अधिकार दे दिया गया कि वह धारा सभा के बाहर से कुछ व्यक्तियों को मंत्री मनोनीत कर सकती थी। इसकी एक प्रतिनिधिक समिति इन व्यक्तियों का नाम चुन कर इसके सम्मुख रखती थी जिनको यह स्वीकार कर सकती थी या रद्द कर देती थी। कौंसिल के मंत्रियों व इन मनोनीत मंत्रियों की कुल संख्या १२ से अधिक न हो सकती थी। इस प्रकार मंत्रि-मण्डल मे १२ मंत्री होते थे जिनमें से कौंसिल के, जो वास्तविक मंत्रि-परिषद थी, मंत्रियो की संख्या ७ से अधिक न हो सकती थी। जो मंत्री कौंसिल के सदस्य न होते थे वे वैयक्तिक रूप से अपने शासन-विभाग के काम के लिये उत्तरदायी रहते थे। ये लोग अपने पदों पर तभी तक रह सकते थे जब तक धौल्यारअन की अवधि समाप्त न हो। उन्हें इस पद से धौल्यारअन ही हटा सकती थी। किंतु वह भी कथित कारणों के आधार पर ही ऐसा कर सकती थी।

सम्राट का प्रतिनिधि आइरिश फ्री स्टेट का गवर्नर जनरल कहलाता था। यह गवर्नर जनरल केवल वैधानिक रूप से ही राज्य का अध्यक्ष था वास्तविक शासन-सूत्र धौल्यारअन को उत्तरदायी कार्यकारिणी कौंसिल के हाथ में ही था।

न्याय-मण्डल—विधान की ६४–७२ तक धारायें न्याय-मण्डल के संगठन से सम्बंध रखती हैं। न्याय-मण्डल में प्रारम्भिक न्यायालय और पुनर्विचारक न्यायालय दोनों थे। दूसरे न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) कहा जाता था। इस न्याय-मण्डल को पार्लियामेंट (oireachtas) संगठित करती थी। प्रारम्भिक न्यायालयों में एक उच्च न्यायालय भी था जिसको सब विषयों में, चाहे वे व्यावहारिक हो या अपराध से सम्बन्ध रखते हों, और निर्बन्ध संबन्धी हों या वास्तविकता संबन्धी, प्रारंभिक क्षेत्राधिकार था। विधान के अन्तर्गत किसी निर्बन्ध अर्थात् कानून को वैध अवैध ठहराने के प्रश्नों पर उस न्यायालय को प्रारंभिक क्षेत्राधिकार दिया गया था। सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) सब मामलों में पुनर्विचारक न्यायालय था।

डिवैलरा व उसके फीनाफेल (सिनफेन दल का दूसरा नाम) नामक दल ने न तो संधि का और न उस पर आधारित शासन-विधान का समर्थन किया। इसके विपरीत कौसग्रेव व उसके साथी संधि को मानने और शासन विधान को सफल कार्य करने पर तुले हुए थे।

सन् १९२३ के निर्वाचन में कौसग्रेव (Cosgrave) के दल को ६३ और फीना फेल दल को ४४ स्थान ही धौल्यारअन में प्राप्त हो सके जिससे निर्णायक शक्ति कृषक, श्रमिक व स्वतंत्र दल वालों के हाथ में रह गई जिनको कुल मिलाकर ४६ स्थान प्राप्त थे।

कुछ समय तक डी वैलरा और उसके दल के लोगों ने निष्ठा की शपथ लेना स्वीकार न किया और वे डेल से बाहर ही रह कर ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल से पृथक रहने वाली आइर को स्वतंत्रता के लिये लड़ते रहे। किन्तु फिर उन्होंने अपनी चाल बदली और डिवैलरा के कहने से उनके मित्र प्रजातंत्री प्रतिनिधियों (Republican Deputies) ने शपथ पर हस्ताक्षर कर दिये और मन में समझ लिया कि यह शपथ कोरा शब्दाडम्बर है। इस प्रकार वे डेल में बैठने लगे।

सन् १९२७ में नया निर्वाचन हुआ, इस निर्वाचन में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु कौसग्रेव-दल अधिक संख्या में था इसलिये कौसग्रेव फिर एक बार कौंसिल का अध्यक्ष चुन लिया गया। प्रजातंत्री दल ने धौल्यारअन में रह कर वैधानिक चालों से लड़ना निश्चित किया किन्तु पदासीन दल से किसी प्रकार का भी सामाजिक सम्बन्ध न रखने का प्रण कर लिया।

सरकार की तीन योजनाओं ने प्रजातंत्री दल को अपना प्रभाव बढ़ाने का अच्छा अवसर दिया। पहिला तो यह कि लोक सुरक्षा विधेयक (Public Safety Bill) द्वारा सरकार ने अपने हाथ में पंच-निर्णय प्रणाली तोड़ने की और मृत्युदण्ड के अधिकारी सैनिक न्यायालय स्थापित करने की शक्ति ले ली। दूसरे, दो वर्ष बाद संसार भर में आर्थिक संकट आया जिसका आयर पर भी प्रभाव पड़ा। तीसरे, सरकार ने करों की मात्रा बढ़ादी। प्रजातंत्री दल ने सरकार की फिजूल खर्ची दिखलाकर व ब्रिटेन की ओर उनकी नीति का झुकाव दिखला कर उनको धिक्कारना प्रारम्भ किया जिससे उनका निजी प्रभाव बढ़ने लगा।

सन् १९३२ के निर्वाचन में फीना फेल दल के ७२ प्रतिनिधि धौल्यारअन के लिये चुन लिये गये जब कि कुल स्थान १३५ थे। डिवैलरा ने श्रमिक दल

के सहयोग से शासन-सूत्र अपने हाथ में करने का निश्चय किया। मार्च ९ सन् १९३२ को धौल्यारअन ने उसे कौंसिल का अध्यक्ष चुन लिया। पदारूढ़ होने के एक सप्ताह के भीतर ही उसने शपथ को मिटाने के संकल्प की घोषणा कर दी। धौल्यारअन ने इस सम्बन्ध में आवश्यक योजना पास कर दी और ऊपरले आगार ने भी चुपचाप अपनी सम्मति दे दी हालांकि यह डर था कि वह स्यात् अड़ंगा लगाये। शासन-विधान में भी कुछ सुधार किये गये जिनमें से सब से महत्वपूर्ण वह था जिससे सीनेट तोड़ दी गई।

डिवैलैरा ने अपनी शक्ति, प्रभाव, देश भक्ति व दृढ़ता का आयर प्रजातंत्र राष्ट्र के निर्माण करने में पूरा प्रयोग किया। सन् १९२२ के शासन विधान में उसने कई परिवर्तन किये जिनमें से मुख्य वह था जिससे विधान की ५० वीं धारा में "संधि के अन्तर्गत" अर्थ वाले शब्द हटा दिये गये जिसका परिणाम यह हुआ कि विधान में किसी भी धारा का जोड़ना या किसी धारा का संशोधन सम्भव हो गया चाहे वह धारा या संशोधन संधि की शर्तों के विरुद्ध ही क्यों न हों।

इसके अतिरिक्त डिवैलैरा ने एक नये शासन-विधान का मसौदा तैयार किया। इस नये शासन-विधान का विधेयक पार्लियामेंट (Ovreachtas) से स्वीकृत हो जाने के पश्चात् लोक निर्णय के लिये प्रस्तुत किया गया। इस लोक निर्णय से यह विधान स्वीकार हुआ। इस प्रकार २९ दिसम्बर सन् १९३७ से आयर प्रजातंत्र राष्ट्र का जन्म हुआ।

सन् १९३८ का आयर राष्ट्र

आयर प्रजातंत्र के विधान में दी हुई प्रस्तावना से यह स्पष्ट है कि विधान को आयर की जनता ने बना कर स्वयं अपने हित के लिये अपनाया है। यह प्रस्तावना लोक सत्ता की परिचायक है। प्रस्तावना में आगे चल कर विधान के उद्देश्यों का वर्णन किया है जो ये थे (१) लोक सुख को बढ़ाना (२) व्यक्ति की स्वतंत्रता व महानता की रक्षा करना (३) सच्चे सामाजिक संगठन को प्राप्त करना (४) देश की एकता को पुनः प्राप्त करना और (५) दूसरे राष्ट्रों से मित्रता व प्रेम बढ़ाना।

विधान जनता द्वारा ही दी हुई देन—ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के तीनों डोमिनियनों के शासन-विधान की व्यवस्था अन्तिमतः ब्रिटिश पार्लियामेंट ने ही की थी और शासन-विधान दूसरों की देन थे (हालांकि आस्ट्रेलिया का शासन विधान वहां की जनता ने तैयार किया था और लोक निर्णय के द्वारा उसे स्वीकार किया गया था)। किन्तु आयर के विधान की तैयारी व व्यवस्था

आयर की जनता ने ही की थी और अपने आपको उन्होंने स्वयं ही यह विधान प्रदान किया था। यह वह भेंट न थी जिसकी इच्छा उन लोगों ने की हो और ब्रिटिश पार्लियामेंट ने उसे उन्हें अनुग्रह रूप प्रदान किया हो, यह निम्नलिखित धाराओं से स्पष्ट है :—

"आयर के निवासी अपने राज्य संगठन के रूप को चुनने, दूसरे राष्ट्रों से अपने सम्बन्ध के रूप को निश्चित करने और अपनी प्रतिभा व परम्परा के अनुकूल अपने राजकीय आर्थिक व सांस्कृतिक जीवन को विकसित करने के सर्वोपरि व अखण्ड अधिकार की दृढ़तापूर्वक घोषणा करते हैं (प्रथम धारा)। आयरलैंड सर्वसत्ताधारी, स्वतंत्र प्रजातंत्री राज्य है" (पांचवी धारा)।"

"(१) सरकार की विधायिनी, कार्यकारिणी व न्यायाकारिणी सब शक्तियां ईश्वर की आधीनता में जनता से निसृत है। जनता का ही यह अधिकार है कि वह शासकों की नियुक्ति करे और अन्तिमतः लोकसुख व कल्याण की दृष्टि से राष्ट्रनीति के सब प्रश्नों पर निर्णय करे।"

"(२) इन शक्तियों को इस विधान से स्थापित राष्ट्र के अङ्ग ही कार्यान्वित कर सकते हैं।"

विधान में कहीं भी सम्राट या ब्रिटिश साम्राज्य का नाम तक नहीं है। राष्ट्र का अध्यक्ष जनता द्वारा निर्वाचित होगा है। अपने वैदेशिक सम्बन्धों व अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में आयर राष्ट्र का ब्रिटिश साम्राज्य की घरेलू नीति से कोई वास्ता नहीं रह गया है। यह स्वयं ही अपनी संसद (Oireachtas) द्वारा निश्चित की हुई अन्तर्राष्ट्रीय नीति का पालन करता है। एयर चथास (Cirechtas) की स्वीकृति के बिना राजकोष से व्यय कराने वाला कोई अन्तर्राष्ट्रीय समझौता राष्ट्र को मान्य न होगा, न ऐसा समझौता राष्ट्र के घरेलू कानून का भाग समझा जायेगा।

नागरिकों के अधिकार—सन् १९३७ के शासन विधान में मौलिक अधिकार पांच श्रेणियों में बांट दिये गये हैं (१) वैयक्तिक अधिकार (४० वीं धारा) (२) कुटुम्ब सम्बन्धी अधिकार (४१ वीं धारा) व (३) शिक्षा सम्बन्धी (४४ वीं धारा)। वैयक्तिक अधिकारों से सब नागरिक निर्बन्ध (Law) को लागू करते समय समान समझे जाते हैं। उनका जीवन, शरीर, सम्पत्ति, उनके निवासस्थान की अलंघ्यता, बिना हथियारों के शान्ति पूर्वक उनका एकत्रित होना तथा समुदाय या संघ बना कर रहना इत्यादि बातें, इन अधिकारों से प्राप्त कराने का प्रयत्न किया जाता है। ४१ वीं धारा से कुटुम्ब को समाज की प्रारम्भिक व मुख्य इकाई माना गया है और यह ऐसी नैतिक संस्था

है जिसको अखण्ड अधिकार हैं, जो किसी भी राजकीय कानून से नहीं छीने जा सकते और जो उस कानून से पूर्ववर्ती तथा उत्कृष्ट समझे जाते हैं। राष्ट्र के हित में कुटुम्ब का होना अनिवार्य होने से उसके अस्तित्व की रक्षा के लिये हर प्रकार की सुविधा का आयोजन कर दिया गया है। राज्य के हित में गृहिणी का बड़ा महत्व होने से यह नियम बना दिया गया है कि माताओं को आर्थिक आवश्यकतावश मज़दूरी करने पर बाध्य न होने दिया जायगा जिससे उनके गृह-कार्य में असुविधा हो। विवाह-प्रथा की रक्षा की गई है, विवाहोच्छेद करने का निषेध है।

राज्य ने "माता पिता के इस कर्तव्य व अधिकार को मान्य कर दिया है कि वे अपने साधनों के अनुसार अपनी सन्तान को धार्मिक, सामाजिक व नैतिक शिक्षा का जैसा चाहें वैसा प्रबन्ध कर सकते हैं"। वे जिस शिक्षालय में अपनी सन्तान को भेजना चाहें भेज सकते हैं और उन्हें किन्हीं विशेष शिक्षालयों में अपनी सन्तान को भेजने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। राज्य केवल न्यूनतम नैतिक बौद्धिक व सामाजिक शिक्षा अनिवार्य करता है। प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क है और राज्य की ओर से ऐसे व्यक्तियों व संस्थाओं को सहायता देने का प्रबन्ध है जो शिक्षा-प्रसार में निजी प्रयत्न करते हैं।

(४) राज्य यह स्वीकार करता है कि बौद्धिक प्राणी होने से मनुष्य के सम्पत्ति सम्बन्धी कुछ नैसर्गिक अधिकार हैं जो राजकीय कानून से श्रेष्ठ हैं। इसीलिये राज्य ने अपने ऊपर यह प्रतिबन्ध लगा लिया है कि वह ऐसा कोई कानून नहीं बनायेगा जिससे वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार समाप्त होता हो। इस अधिकार का नियमन सामाजिक न्याय व हित की दृष्टि से अवश्य किया जा सकता है और वह लोक हित की आवश्यकता से प्रतिबन्धित है।

राज्य समाज की शान्ति और नैतिक व्यवहार के अनुकूल किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय के मानने व किसी भी जीविका-साधन को अपनाने की स्वतंत्रता देता है। राज्य ने किसी भी सम्प्रदाय-विशेष को आर्थिक सहायता न देने, न धर्म के आधार पर भेद रखने या नियोगतायें लादने का वचन दिया है। प्रत्येक धर्म मठ को यह स्वतंत्रता दे दी गई है कि वह अपना प्रबन्ध स्वयं करें, सम्पत्ति उपार्जन करें और उससे धार्मिक व दातव्य संस्थायें स्थापित करे।

आयर राज्य की अधिकार-सीमा—शासन विधान की दूसरी धारा आयर-राष्ट्र की प्रादेशिक सीमायें निश्चित करती है। इसी सीमा के अन्तर्गत आयरलैंड का सारा द्वीप उससे लगे हुये सब द्वीप, व, राज्य-क्षेत्रीय समुद्र हैं। सारे द्वीप के भीतर उत्तरी आयरलैंड की ६ काउन्टी भी गिनी जाती हैं जो

अभी तक आयरलैंड के प्रजातंत्री शासन के अधिकार से बाहर हैं और जिनकी पृथक सरकार है।

राज्य का राष्ट्रीय नाम आयर (Eire) है, अंगरेजी भाषा में इसका अर्थ आयरलैंड है। सन् १९२२ के विधान का आइरिश फ्री स्टेट नाम अब नहीं रह गया है। राष्ट्रीय झंडा हरे, नारङ्गी व श्वेत रंग का तिरङ्गा है और आइरिश भाषा प्रथम राष्ट्र भाषा है, अंगरेजी द्वितीय राष्ट्र भाषा है। प्रजातंत्री शासन-विधान के लागू होने के समय आयरलैंड के जो व्यक्ति नागरिक थे वे आयर के नागरिक समझे जाते हैं। जानपद बनने के नियम कानून से स्थिर हो सकते हैं नागरिक अधिकारों के बदले में नागरिकों से यह आशा की जाती है कि वे राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखेंगे और राज्य के प्रति विश्वासघात न करेंगे। ये विधान के अनुसार नागरिकों के मौलिक कर्तव्य हैं।

कार्यकारिणी

राज्याध्यक्ष—प्रजातंत्री शासन विधान में राजा या सम्राट का कोई वर्णन नहीं है। राज्य की अध्यक्षता प्रेसीडेंट को सुपुर्द है। प्रसीडेंट राज्य में सब व्यक्तियों से ऊपर समझा जाता है। प्रेसीडेंट अनुपाती प्रतिनिधिक प्रणाली पर एकल-संक्राम्य मत (Single Transferable Vote) से गुप्त श्लाका द्वारा सात वर्ष के लिये सीधे प्रजा द्वारा चुना जाता है। जो व्यक्ति निचले आगार के सदस्यों का निर्वाचन कर सकते हैं वे ही प्रेसीडेंट का भी निर्वाचन करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में सन् १९४० तक प्रचलित प्रथा के अनुसार कोई प्रेसीडेंट केवल एक बार ही पुनर्निर्वाचित हो सकता था परन्तु आइरलैंड के शासन-विधान में ही यह निश्चित कर दिया है कि "प्रेसीडेंट का पुनर्निर्वाचन हो सकता है परन्तु केवल एक बार ही"। ३५ वर्ष का कोइ भी नागरिक प्रेसीडेंट के निर्वाचन के लिये खड़ा हो सकता है।

प्रेसीडेंट के पद के लिये उम्मेदवारों को धारासभाओं के कम से कम २० व्यक्ति मनोनीत कर सकते हैं या वे कम से कम चार प्रशासन काउन्टीयों (Administrative Counties) की कौंसिलों से मनोनीत होना चाहिये, अवकाश-प्राप्त प्रेसीडेंट स्वयं अपने आपको मनोनीत कर सकते हैं।

मनोनीत कैसे होता है—प्रेसीडेंट दोनों आगारों में से किसी का सदस्य नहीं रह सकता, किन्तु यदि कोई सदस्य प्रेसीडेंट निर्वाचित होजाय तो उसे धारा सभा का स्थान छोड़ना पड़ता है। प्रेसीडेंट किसी वेतन भोगी पदपर भी नहीं रह सकता। धारा सभा के दोनों आगारों के सदस्यों, सर्वोच्च न्यायालय व हाई-

कोर्ट के न्यायाधीशों और अन्य श्रेष्ठ नागरिकों के सम्मुख प्रेसीडेंट इस बात की शपथ लेता है कि (१) वह आयरलैंड के शासन-विधान की रक्षा करेगा और उसके विधि-निर्बन्धों का समर्थन करेगा (२) वह शासन-विधान व उसके अन्तर्गत बनाये हुये विधि-निर्बन्धों के अनुसार अपने कर्तव्यों का सच्चे मन से पालन करेगा और (३) वह अपनी सामर्थ्य व योग्यता को आयरलैंड की प्रजा की सेवा व हित के लिये समर्पित करेगा।

उस पर अभियोग कैसे लगाया जाता है—प्रेसीडेंट के रहने के लिये एक सरकारी भवन डब्लिन नगर में या उसके आसपास दिया जाता है। उसका वेतन व भत्ता कानून से निश्चित होता है। उसके ऊपर दुराचरण का अभियोग लगाया जा सकता है। अपने सदस्यों में से ३० व्यक्तियों से लिखित सूचना मिलने पर धारासभा का कोई भी आगार प्रेसीडेंट के विरुद्ध अभियोग के प्रस्ताव पर विचार कर सकता है। किन्तु यह प्रस्ताव तभी पास हो सकता है जब उस आगार के कुल सदस्यों में से दो तिहाई सदस्य उसे स्वीकार करें। उसके बाद उस अभियोग की जांच दूसरा आगार स्वयं करता है या दूसरों से करवाता है। यदि यह अभियोग इस आगार के दो तिहाई सदस्यों की राय में सिद्ध हुआ समझा जाता है तो प्रेसीडेंट अपने पद से हटा दिया जाता है।

प्रेसीडेंट की शक्तियां—ब्रिटिश सम्राट आयरलैंड के प्रेसीडेंट की तरह दुराचरण करने पर अभियोग लगाकर अपने पद से हटाया नहीं जा सकता परन्तु ब्रिटिश सम्राट के समान प्रेसीडेंट अपने पद के कर्तव्यों को पूरा करने और अपनी शक्तियों को कार्यान्वित करने में धारा सभा या किसी न्यायालय को उत्तरदायी नहीं है उन बातों को छोड़ कर जिनमें उसे स्वेच्छा से कार्य करना पड़ता है या कौंसिल आफ स्टेट से सम्बन्धित काम करने पड़ते हैं, प्रेसीडेंट अपनी शक्तियों व अधिकारों को सरकार की सलाह से ही काम में लाता है। शासन-विधान के अन्तर्गत निर्बन्ध-द्वारा प्रेसीडेंट को अतिरिक्त शक्तियां भी प्रदान की जा सकती हैं।

धौल्यारअन (Dail Eireann) द्वारा मनोनीत व्यक्ति को प्रेसीडेंट प्रधान मंत्री नियुक्त करता है और प्रधान मंत्री द्वारा मनोनीत किये जाने पर धौल्यारअन की पूर्व स्वीकृति से वह सरकार के दूसरे मंत्रियों को नियुक्त करता है। प्रधान मंत्री के परामर्श से प्रेसीडेंट (१) सरकार के किसी मंत्री का त्याग पत्र स्वीकार कर उसकी नियुक्ति रद्द करता है और (२) धौल्यारअन (Dail Eireann)का अधिवेशन न करने की आज्ञा देता है, वह उसका विलयन करता

है। यदि वह समझे कि प्रधान मंत्री पर धौल्यारअन के बहुसंख्या दल का विश्वास नहीं है तो वह प्रधान मन्त्री की सलाह को ठुकरा कर धौल्यारअन का विलयन करने से मना कर सकता है। प्रेसीडेंट किसी भी समय कौंसिल आफ स्टेट की सम्मति से एक या दोनों आगारों का अधिवेशन बुला सकता है।

दूसरे राज्यों के अध्यक्षों के समान आयरलैंड का प्रेसीडेंट भी धारा सभा से पास हुये विधेयकों पर अपने हस्ताक्षर कर उन्हें निर्बन्ध या कानून घोषित करता है। वह कानून के अनुसार राज्य के सैन्यदलों को आदेश देता है, सेना के अफसरों को अधिकार विभूषित करता है। क्षमण (Pardon) अधिकार को काम में लाता है या अपराधों के लिये दिये हुये दंड को घटाने या उसका रूप बदलने की अपनी शक्ति का उपयोग करता है।

कौंसिल आफ स्टेट (Council of State) अर्थात् राजपरिषद् की सलाह लेकर प्रेसीडेंट धारा सभा के दोनों आगारों को संदेश या व्याख्यान द्वारा राष्ट्रीय महत्व की बातों में अपने विचारों की सूचना दे सकता है। वह किसी ऐसे महत्व पूर्ण विषय में सारे राष्ट्र की प्रजा को संदेश सुना सकता है किन्तु ऐसा संदेश सरकार से पहिले स्वीकृत होना चाहिये।

शक्तियों पर प्रतिबन्ध—यद्यपि सिद्धांततः प्रेसीडेंट के अधिकार बहुत विस्तृत हैं पर व्यवहार में दो प्रकार से प्रतिबन्धित हैं (१) कौंसिल आफ स्टेट अर्थात् राज्यपरिषद् के रहने से और (२) मंत्रिपरिषद् की शक्तियों से। इन दोनों के कारण प्रेसीडेंट केवल एक वैधानिक अध्यक्ष भर ही रह जाता है।

प्रेसीडेंट की अनुपस्थिति में उसकी शक्तियों को एक कमीशन Commission) कार्यान्वित करता है जिसमें प्रधान न्यायाधीश (उसकी अनुपस्थिति में हाई कोर्ट का प्रेसीडेंट) धौल्यारअन का सभापति (या उप-सभापति) और सीनेट का सभापति (या उपसभापति), ये तीन सदस्य होते हैं।

राज्य परिषद्—(Council of State) कौंसिल आफ स्टेट अर्थात् राज्य-परिषद् एक नवीन संस्था है। यद्यपि कुछ अंशों में इसके परामर्श सम्बन्धी कर्तव्यों को देखते हुये ब्रिटेन या कनाडा की प्रिवी कौंसिल से मिलती जुलती है या यह जापान की जेनरो (Genro) के समान है किन्तु इसकी रचना इनसे बिलकुल भिन्न रीति पर होती है। इसमें वे लोग सदस्य रहते हैं: (१) पद-कारणात्—(Ex-officio) प्रधानमंत्री, उप प्रधानमंत्री, प्रधान न्यायाधीश हाईकोर्ट का प्रेसीडेंट, धौल्यारअन की सभापति, सीनेट की सभापति और महाप्राभिकर्ता (Attorney-General), (२) प्रत्येक व्यक्ति जो

प्रेसीडेंट, प्रधान मंत्री, प्रधान न्यायाधीश या पूर्वगामी कार्यकारिणी कौंसिल का सभापति रहा हो और परिषद् का सदस्य बनना स्वीकार करता हो, और (३) वे दूसरे व्यक्ति जिनको प्रेसीडेंट राज्य परिषद् का सदस्य नियुक्त करे।

प्रेसीडेंट को शासन-विधान ने यह अधिकार दिया है कि वह स्वेच्छा वश किसी समय भी अपने आदेश से जिन-किन्हीं व्यक्तियों को वह योग्य समझे उपर्युक्त श्रेणी (३) के अन्तर्गत् राज्य परिषद के सदस्य नियुक्त कर सकता है परन्तु इन सदस्यों की संख्या सात से अधिक न होनी चाहिये।

राज्य परिषद् के प्रत्येक सदस्य को परिषद् में प्रथम बार उपस्थित होने पर यह शपथ लेनी पड़ती है कि वह अपने कार्य को निष्ठापूर्वक, निष्पक्ष भाव से सम्पादन करेगा। प्रेसीडेंट से नियुक्त किया हुआ राज्य परिषद् का सदस्य प्रेसीडेंट को अपना त्याग पत्र देकर पद त्याग कर सकता है, और प्रेसीडेंट ऐसा करने का पर्याप्त कारण रहने पर अपने आदेश से ऐसे सदस्य की सदस्यता समाप्त कर सकता है।

प्रेसीडेंट राज्य परिषद् का अधिवेशन जब चाहे या जहां चाहे वहां बुला सकता है। परिषद् की शक्तियां केवल मंत्रणा देने तक ही सीमित हैं। किन्तु प्रेसीडेंट की कुछ ऐसी शक्तियां और कुछ ऐसे कर्तव्य हैं जिनको वह राज्य परिषद् की मंत्रणा के पश्चात् ही कार्यान्वित कर सकता है। इन बातों में उसे परिषद् का अधिवेशन बुला कर उसके सामने अपना विचार रखना पड़ता है और उपस्थित सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने का अवसर देना पड़ता है। ऐसा किये बिना प्रेसीडेंट उन विशिष्ट शक्तियों का उपयोग नहीं कर सकता, यह स्मरण रखने योग्य बात है कि राज्यपरिषद् केवल परामर्श देने वाली होने से व उसमें प्रधानमंत्री के रहने से मन्त्रिपरिषद् की प्रतिद्वन्द्वी नहीं हो सकती।

कार्यकारिणी—विधान की २८ वीं धारा से राज्य की कार्यकारिणी सत्ता का संचालन सरकार द्वारा होता है जिसमें न सात से कम न २५ से अधिक सदस्य हो सकते हैं। इन सदस्यों को प्रेसीडेंट विधान के अनुसार नियुक्त करता है। सरकार सामुदायिक रूप से धौल्यारअन (Daileireann) को उत्तरदायी रहती है। यही प्रतिवर्ष आगम व व्यय का लेखा तैयार करती है और धौल्यारअन के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत करती है।

प्रधानमंत्री (The Taoiseach)—सरकार के अध्यक्ष प्रधानमंत्री को टैओसिच कहा जाता है। वह प्रेसीडेंट को घरेलू व वैदेशिक नीति के

सब मामलों में सूचित रखता है। वह उपप्रधान मन्त्री को मनोनीति करता है जो उसकी अस्थायी अनुपस्थिति में उसका काम संभालता है। सरकार के सब सदस्यों को धारा सभा के दोनों आगारों में से एक का सदस्य अवश्य होना चाहिये किन्तु प्रधानमंत्री, उपप्रधान मंत्री व अर्थ मंत्री को धौल्यारअन का सदस्य होना अनिवार्य है और सरकार के दो मंत्रियों से अधिक सीनेट के सदस्य नहीं हो सकते। सरकार के प्रत्येक सदस्य को किसी भी आगार में बोलने का अधिकार है।

प्रधानमंत्री प्रैसीडेंट को अपना त्यागपत्र देकर पद त्याग कर सकता है किन्तु दूसरे मंत्री प्रैसीडेंट के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने के लिये प्रधानमंत्री को ही अपना त्याग पत्र देकर पद त्याग कर सकते हैं। इन दूसरी श्रेणी के त्याग पत्रों पर प्रैसीडेंट प्रधानमंत्री की सलाह से निर्णय करता है, प्रधानमंत्री कभी भी किसी मंत्री से पदत्याग करने के लिये कह सकता है यदि ऐसे कारण उपस्थित हो जायें जो उसकी राय में ऐसे पद त्याग कराने के लिये पर्याप्त हैं। यदि ऐसा कहे जाने पर कोई मंत्री त्याग पत्र न दे तो प्रैसीडेंट उसे मंत्रि पद से हटा सकता है। यदि प्रधानमंत्री धौल्यारअन (Daileireann) में बहु संख्यक दल का विश्वास पात्र नहीं रहता तो उसे पद त्याग करना पड़ता है। यदि उसकी सलाह से प्रैसीडेंट धौल्यारअन का विलयन न करे और सामान्य निर्वाचन करने की घोषणा न करे तो भी उसे पदत्याग करना होता है। प्रधानमंत्री के पदत्याग करने से सरकार के सब सदस्यों का पदत्याग समझा जाता है किन्तु ये लोग दूसरे नये सदस्यों के नियुक्त होने तक अपने पदों पर स्थित बने रहते हैं।

शासन-संगठन, कार्य-वितरण, शासन विभाग, मन्त्रियों (सरकार के सदस्यों) के नाम, किसी सदस्य की अनुपस्थिति में उसके कार्य की देखभाल, सदस्यों का वेतन ये सब बातें धारा सभा निर्बन्ध द्वारा निश्चित करती है।

संक्षेप में यह कहना चाहिये कि आयरलैण्ड की सरकार उत्तरदायी मंत्रिपरिषद् है जो लोकसभा को सामुदायिक रूप से उत्तरदायी है।

व्यवस्थापक मण्डल

राष्ट्रीय संसद (National Parliament)—आयरलैण्ड का व्यवस्थापक-मण्डल एयरचथास (Oireachatas) नाम से पुकारा जाता है। यह मण्डल प्रैसीडेंट, प्रतिनिधि सभा धौल्यारअन, (Daileireann) और सीनेट (Seanad Eireann) तीनों को मिला कर पुकारा जाता है। व्यवस्थापक मण्डल की बैठकें डब्लिन (Dublin) नगर के पास होती हैं। किन्तु

किसी और दूसरे स्थान पर भी ये बैठकें हो सकती हैं। सारे राष्ट्र की व्यवस्था करने वाला यह एकाही मण्डल है किन्तु इसके आधीन निम्न श्रेणी के व्यवस्थापक मण्डलों के बनाने का प्रबन्ध हो सकता है जो इस सम्बन्ध में कुछ अधिकार व शक्तियों से विभूषित किये जा सकते हैं। संसद (oireachtas) ऐसा निर्बन्ध बना सकती है जिससे प्रजा के सामाजिक व आर्थिक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली व्यावसायिक कौंसिलें स्थापित हों। संसद इन कौंसिलों के अधिकार, कर्तव्य, शक्तियाँ और संसद व सरकार से उनके सम्बन्ध की रूपरेखा निश्चित कर सकती है।

संसद का कोई भी निर्बन्ध जहाँ तक शासन-विधान के प्रतिकूल हो अवैध समझा जाता है। संसद गतानुदर्शी (*Ex post facto*) निर्बन्ध नहीं बना सकती। सेना की भर्ती करना तथा उसके भरण पोषण करने का अधिकार अनन्यरूप से संसद को ही प्राप्त है।

संसद (Oireachatas) की एक वर्ष में एक बैठक अवश्य होती है किन्तु दोनों आगारों में से कोई भी आगार विशेष विपत्ति की स्थिति में अपने दो-तिहाई सदस्यों की सम्मति से गुप्त बैठक करने का निर्णय कर सकता है। प्रत्येक आगार को अधिकार है कि वह अपने सभापति व उपसभापति को चुने और उनका वेतन निश्चित करे, स्थायी नियम व कार्यपद्धति का निश्चय करे जिससे इसके सदस्य स्वतंत्रता पूर्वक वाद-विवाद कर सकें और ऐसे व्यक्तियों से रक्षा कर सकें जो उन्हें अपना कर्तव्य पालन करने में झंझट डालते हों या भ्रष्टाचार कराने का प्रयत्न करते हों। प्रत्येक आगार में बहुमत से सब निर्णय होते है, सभापति केवल तभी अपना मत दे सकता है जब दोनों ओर के मत बराबर हों। आगार को आते समय और वहां से जाते समय सदस्यों को किसी अपराध के लिये पकड़ा नहीं जा सकता। आगार में कही हुई बातों के सम्बन्ध में वे केवल आगार के क्षेत्राधिकार में रहते हैं, उन के विरुद्ध कोई न्यायालय कार्यवाही नहीं कर सकता। उन्हें अपने काम के लिये भत्ता मिलता है और बिना किराया दिये वे सफर कर सकते हैं। एक व्यक्ति एक ही समय में दोनों आगारों का सदस्य नहीं हो सकता।

हर नागरिक, चाहे स्त्री हो या पुरुष, जिसकी आयु २१ वर्ष की हो यदि किसी और कारण से नियोग्य न हो तो निचले आगार (Dail Eireann) का सदस्य बन सकता है या उसके सदस्यों के निर्वाचन में मत दे सकता है। वह सीनेट का सदस्य भी बन सकता है। प्रत्येक मतधारक को केवल एक मत देने का ही अधिकार होता है।

निचला आगार—धौत्यारअन में १४७ सदस्य हैं जो अनुपाती प्रतिनिधिक (Proportional representation) प्रणाली के अनुसार एकल-संक्राम्य मत (Single transferable Vote) से चुने जाते हैं। निर्वाचन-क्षेत्र साधारण निर्बन्ध द्वारा निश्चित किये जाते हैं और प्रति २०००० से लेकर ३०००० मतधारकों को एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया जाता है। प्रतिनिधि व मतधारकों का यह अनुपात सब निर्वाचन-क्षेत्रों में बराबर है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र को कम से कम तीन प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होता है। प्रति १२ वर्ष बाद निर्वाचन-क्षेत्र का पुनर्संङ्गठन होता है किन्तु ऐसे पुनर्संङ्गठन से तत्कालीन लोक सभा की अवधि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने दिया जाता। लोकसभा की साधारण अवधि सात वर्ष है, यदि इस समय से पूर्व ही उसका विलयन न हो जाय। निर्बन्ध द्वारा ही इस सात वर्ष की अवधि कम की जा सकती है। लोकसभा के विलयन से तीन दिन के भीतर ही सामान्य निर्वाचन होता है और जहाँ तक सम्भव हो एक ही दिन में सारे देश में निर्वाचन होता है। नयी लोकसभा निर्वाचन होने वाले दिन से तीस दिन के भीतर अपनी बैठक करती है। निर्बन्ध द्वारा यह प्रावधान कर दिया है कि लोकसभा का सभापति सामान्य निर्वाचन में बिना निर्वाचन में भाग लिये ही निर्वाचित हो जाता है। लोकसभा (Dail Eireann) को ही आगम-व्यय (Revenue & Expenditure) पर विचार करने का अधिकार है किन्तु वह तभी जब सरकार उसका लेखा लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत करे।

ऊपरली सभा:—ऊपरली सभा अर्थात् सीनेट (Seanad Eireann) में ६० सदस्य हैं जिनमें से ११ सदस्यों को उनकी पूर्व स्वीकृति लेकर प्रधान मंत्री मनोनीत करता है। बचे हुये सदस्यों को निम्नलिखित संस्थायें निर्वाचित करती हैं:—

आयरलैंड का राष्ट्रीय विश्वविद्यालय	...	...	३
डब्लिन विश्वविद्यालय	...	...	३
उम्मेदवारों की पांच तालिकायें	...	...	४३

सब निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधिक प्रणाली द्वारा होते हैं। विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों के मताधिकार को निर्बन्ध द्वारा निश्चित किया जाता है। ४३ सदस्यों को चुनने के हेतु जो तालिकायें (Panels) बनाई जाती हैं वे ऐसे तैयार की जाती हैं कि उनमें ऐसे व्यक्ति हों जिन्हें आगे कही हुई बातों का सूक्ष्म ज्ञान या व्यवहारिक ज्ञान हो (१) राष्ट्रभाषा, संस्कृति,

साहित्य, कला, कृषि, शिक्षा या इनसे मिले-जुले विषय जिन्हें निर्बन्ध से निश्चत कर दिया गया हो, (२) कृषि आदि व मात्सिकी (Panely Fisheries) (३) संगठित व असंगठित श्रमिक (४) उद्योग, व्यापार बैंक, हिसाब किताब, एंजीनियरिंग व वस्तु शास्त्र, (५) लोक-प्रशासन व समाज-सेवा आदि। प्रत्येक तालिका से पांच से कम व ११ से अधिक सदस्य नहीं चुने जाते किन्तु निर्बन्ध द्वारा ऐसा आयोजन किया जा सकता है कि तालिकाओं में से कुछ सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से किसी व्यवसाय-सम्बन्धी संस्था द्वारा हो।

निर्बन्ध कैसे बनता है—मुद्रा-विधेयक को छोड़ कर किसी भी आगार में कोई विधेयक प्रस्तावित हो सकता है, मुद्रा विधेयक का प्रस्ताव लोक सभा (Dail Eireann) में ही हो सकता है। लोक सभा में प्रस्तावित कोई भी विधेयक यदि वह मुद्रा विधेयक नहीं हैं लोक सभा से पास होने पर सीनेट में भेजा जाता है जहाँ उसमें संशोधन किये जा सकते हैं। ऐसे संशोधनों के होने पर लोक सभा फिर उन संशोधनों पर विचार करती है। यदि कोई विधेयक सीनेट में आरम्भ हुआ हो और वहां पास होने पर लोक सभा द्वारा संशोधित हुआ हो तो वह संशोधित विधेयक ऐसे समझा जायगा मानों वह लोक सभा में प्रस्तावित हुआ है। एक आगार से पास हुआ विधेयक दूसरे आगार से स्वीकृत होने पर दोनों आगारों द्वारा पास हुआ समझा जाता है।

मुद्रा-विधेयक—लोक सभा (Seanad Eireann) से पास होने पर मुद्रा-विधेयक सीनेट के विचारार्थ भेजा जाता है। सीनेट (Seanad Eireann) ऐसे विधेयक के मिलने से २१ दिन के भीतर उसमें परिवर्तनों का सुझाव कर सकती है। इन सुझावों में से लोक सभा सब को या कुछ को अस्वीकृत कर सकती है। यदि सीनेट (Seanad Eireann) २१ दिन के भीतर ऐसे विधेयक को न लौटा सके या ऐसी सिफारिशों के सुझाव के साथ लौटावे जो लोक सभा को स्वीकार्य न हों, तो २१ दिन के समाप्त होने पर ऐसा विधेयक दोनों आगारों से पास किया हुआ समझ लिया जाता है। इस से यह स्पष्ट है कि सीनेट किसी मुद्रा-विधेयक के पास होने में अधिक से अधिक २१ दिन की देरी कर सकती है।

यदि कोई विधेयक किसी कर के लगाने, हटाने, बढ़ाने, घटाने या नियमित करने, किसी ऋण के चुकाने या किसी दूसरे काम के लिये राज्यकोष में कोई रकम लेने या रकम को बढ़ाने घटाने या मिटाने से सम्बन्ध रखता

हो; या वह राज्य कोष की रक्षा, आय व्यय का हिसाब व उसकी जांच, किसी ऋण के लेने या चुकाने या इन सब बातों के आधीन मामलों से सम्बन्धित हो तो वह मुद्रा-विधेयक कहलाता है। लोकसभा के सभापति की राय में यदि कोई विधेयक मुद्रा-विधेयक है तो वह उसके मुद्रा-विधेयक होने का प्रमाणपत्र देता है। यह प्रमाणपत्र इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णयकारी समझा जाता है। यदि सीनेट अपनी बैठक में जिसमें कम से कम ३० सदस्य उपस्थित हों यह प्रस्ताव पास करे कि, विधेयक के मुद्रा-विधेयक होने या न होने का प्रश्न विशेषाधिकार समिति (Committee of Privileges) के निर्णय के लिये सौंपा जाय, तो सभापति का प्रमाण-पत्र इस विषय में निर्णायक नहीं समझा जाता और दोनों आगारों में से बराबर संख्या में सदस्यों को लेकर बनी हुई विशेषाधिकार-समिति को इस प्रश्न का निबटारा करने का काम दे दिया जाता है। इस समिति का सभापति सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश होता है। वह मत लेते समय उसी स्थिति में अपना निर्णायक मत दे सकता है जब दोनों पक्षों के मत बराबर हों।

दोनों आगारों के मत विरोध को दूर करना—जिस दिन लोक सभा (Dail Eireann) किसी विधेयक को जो मुद्रा-विधेयक नहीं है सीनेट के पास भेजती है उसके ९० दिन की अवधि के भीतर सीनेट को चाहिये कि वह उस विधेयक पर विचार करे। इस अवधि को दोनों आगारों की सहमति से बढ़ाया जा सकता है। यदि इस निश्चित अवधि के भीतर सीनेट (Seanad Eireann) विधेयक को अस्वीकृत कर देती है या ऐसे संशोधनों सहित पास करती है जो लोक सभा को पसन्द नहीं है और यदि उपर्युक्त अवधि की समाप्ति के १८० दिन के भीतर लोक सभा तदर्थ प्रस्ताव पास कर देती है तो वह विधेयक प्रस्ताव पास होने के दिन दोनों आगारों से पास समझा जाता है।

यदि प्रधान मंत्री प्रेसीडेंट, लोक सभा व सीनेट के सभापतियों को लिख कर संदेश भेजे कि सरकार की राय में कोई विधेयक लोक शान्ति व सुरक्षा के लिये आवश्यक है या यह कि घरेलू व बाहरी विपत्तिपूर्ण स्थिति को ध्यान में रख कर विधेयक के विचारार्थ निश्चित समय को कम कर दिया जाय, तो यदि वह विधेयक शासन विधान में संशोधन नहीं करता, विधान की २८ वीं धारा के अनुसार उस पर विचार करने के लिये सीनेट को दिया हुआ समय घटाया जा सकता है। ऐसा करने के लिये पहिले लोक सभा तदर्थ प्रस्ताव पास करेगी और यदि प्रेसीडेंट राज्य-परिषद् (Council of State) की

सलाह से इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है तो प्रस्ताव के अनुसार समय कम कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में यदि सीनेट घटी हुई समय की अवधि के भीतर उस विधेयक को नामंजूर कर दे या उसे ऐसे संशोधनों से पास करे जो लोक सभा को स्वीकार्य न हों या न उसे पास करे न रद्द करे, तो वह विधेयक घटी हुई अवधि के समाप्त होने पर दोनों आगारों द्वारा पास समझा जाता है। इस प्रकार पास हुआ विधेयक केवल ९० दिन तक कानून के रूप में लागू हो सकता है यदि इस समय के समाप्त होने से पहिले ही दोनों आगार प्रस्ताव द्वारा उस निर्बन्ध की अवधि न बढ़ा दें। यदि ऐसा प्रस्ताव पास हो जाय तो वह निर्बन्ध प्रस्ताव में दिये हुये समय तक लागू रहेगा।

उपर्युक्त जितने सीनेट पर प्रतिबन्ध हैं उनसे सीनेट केवल दुहराने वाला आगार ही बन कर रह गया है जो कानूनों के बनने में देरी लगा सकता है, उन्हें रोक नहीं सकता।

प्रेसीडेन्ट के हस्ताक्षर—विधान में संशोधन न करने वाला जब कोई विधेयक दोनों आगारों से पास हो जाता है या पास हुआ समझा जाता है तो प्रधान मंत्री उसे प्रेसीडेंट के सामने रखता है। प्रेसीडेंट विधेयक के प्रस्तुत किये जाने से पांच दिन पहिले उस पर हस्ताक्षर नहीं कर सकता न सात दिन के बाद उस पर हस्ताक्षर हो सकते हैं। प्रेसीडेंट के हस्ताक्षर होने पर वह विधेयक कानून घोषित हो जाता है। सीनेट की पूर्व स्वीकृति लेकर सरकार पांच दिन से पहिले भी विधेयक पर हस्ताक्षर करा सकती है।

शासन-विधान का संशोधन न करने वाले विधेयक के पास होने के चार दिन के समय के भीतर यदि दोनों आगारों की संयुक्त बैठक में सीनेट के बहुसख्यक सदस्य व लोक सभा के एक-तिहाई सदस्य मिल कर प्रेसीडेंट को यह प्रार्थना भेजें कि विधेयक राष्ट्र के लिये इतना महत्वपूर्ण है कि उस पर लोकेच्छा जानना आवश्यक है तो प्रेसीडेंट उस विधेयक पर अपने हस्ताक्षर न करेगा। वह राज्य परिषद् से सलाह लेगा और दस दिन के भीतर यह निश्चय करेगा कि वह उस विधेयक पर हस्ताक्षर कर उसे निर्बन्ध अर्थात् कानून घोषित करे या न करे। घोषित न करने का निर्णय हो जाने पर वह उस निर्णय की सूचना प्रधानमंत्री व दोनों आगारों के सभापतियों को भेज देता है। ऐसा विधेयक केवल तभी निर्बन्ध बन सकता है यदि प्रेसीडेंट के निर्णय से १८ मास के भीतर (१) विधान की ४७वीं धारा के दूसरे अनुच्छेद

के अनुसार लोक निर्णय * द्वारा प्रजा ने उसे स्वीकार कर लिया हो, या (२) अपने विलयन व पुनर्संङ्गठन के पश्चात् धौल्याराअन (Dail Eireann) ने उसे फिर पास कर दिया हो। इस प्रकार स्वीकृत होने पर प्रेसीडेंट उस पर हस्ताक्षर कर उसे निर्बन्ध घोषित कर देता है।

विधान का संशोधन—४६ वीं धारा के अनुसार निश्चित प्रणाली से विधान का संशोधन हो सकता है। संशोधन का प्रस्ताव विधेयक रूप में लोकसभा (Dail Eireann) से आरम्भ होना चाहिये। इस विधेयक में सिवाय विधान-संशोधन के प्रस्ताव के दूसरा कोई प्रस्ताव न होना चाहिये। जब यह विधेयक दोनों आगारों से पास कर दिया जाता है या उनमें पास हुआ समझा जाता है, तब यह लोक निर्णय के लिये प्रस्तुत किया जाता है। इस लोक-निर्णय में दिये हुये मतों की अधिक संख्या उसे निर्बन्ध बनाने के पक्ष में पड़ी हो तो वह संशोधन का प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है। तब प्रैसीडेंट उस पर अपने हस्ताक्षर कर उसे निर्बन्ध घोषित कर देता है।

विधान की ३४–३६ वीं धारायें न्यायप्रबन्ध, न्यायालयों की रचना, उनके अधिकार क्षेत्र, न्यायाधीशों की नियुक्ति व अपराधों की जांच से सम्बन्ध रखती हैं।

न्यायालय दो प्रकार के हैं। एक तो प्रारम्भिक न्यायालय (जिनमें एक हाई कोर्ट जिसको १६२२ के विधान में वर्णित शक्तियां प्राप्त है और स्थानीय क्षेत्राधिकार के न्यायालय शामिल हैं) और दूसरा पुनर्विचारक न्यायालय जिसे सर्वोच्च न्यायालय कहते हैं। सन् १६२२ के विधान की अपेक्षा इस विधान में यह नवीनता है कि अब प्रेसीडेंट न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है क्योंकि अब सम्राट के प्रतिनिधि का अस्तित्व नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त अब इन न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध सम्राट की कौंसिल में अपील करने का अधिकार भी नहीं रह गया है। इसलिये सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के निर्णय अन्तिम निर्णय होते हैं। दूसरी बातों में, न्यायालयों के पूर्ववत अधिकार क्षेत्र व महत्ता है न्यायाधीशों की स्वतंत्रता, उनके पद की अवधि (सिवाय इसके कि वे दुराचारी सिद्ध होने पर दोनों आगारों की

---

* यदि लोकनिर्णय में पड़े हुये मतों की संख्या विधेयक के विरुद्ध हो तो वह प्रजा द्वारा अस्वीकृत समझा जाता है परन्तु शर्त यह भी है कि यह संख्या कुल मतधारकों की संख्या का एक तिहाई भाग अवश्य होना चाहिये वरना वह विधेयक स्वीकृत समझा जायगा।

प्रर्थना पर प्रेसीडेंट द्वारा हटाये जा सकते हैं) व उनके वेतन की मात्रा सुरक्षित कर दी गई है ।

प्रत्येक व्यक्ति को जो न्यायाधीश नियुक्त हुआ हो यह शपथ लेनी पड़ती है कि वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा के सम्मुख यह वचन देता है कि वह बिना भय, विद्वेष, प्रीति या पक्षपात के अपने कार्य करेगा और शासन-विधान की रक्षा व समर्थन करेगा । जो न्यायाधीश नियुक्त होने से पूर्व या उससे दस दिन के भीतर ऐसी घोषणा करने से इन्कार करता है वह अपने पद से हटा हुआ समझा जाता है ।

निम्नलिखित बातें निर्बन्ध द्वारा नियमित रहती हैं:—

(i) सर्वोच्च न्यायालय व हाईकोर्ट के न्यायाधीशों की संख्या और इनका वेतन, पेंशन व अवकाश पाने की आयु ।

(ii) अन्य न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या व उनकी अवधि, और

(iii) इन न्यायालयों की रचना व संगठन, क्षेत्राधिकार निश्चित करना व अन्य कार्यपद्धति सम्बन्धी मामले ।

विधान में यह भी आयोजन कर दिया गया है कि निर्बन्ध द्वारा विशेष न्यायालय भी स्थापित किये जा सकते हैं जिनमें उन अपराधों की जांच होगी जिनमें, उसी निर्बन्ध के अनुसार, सामान्य न्यायालय समुचित रूप से न्याय प्रबन्ध और शान्ति व सुरक्षा की रक्षा नहीं कर सकते । निर्बन्ध द्वारा इन विशेष न्यायालयों की रचना, शक्तियाँ, अधिकार-क्षेत्र व कार्यपद्धति निश्चित की जा सकती हैं । विधान से सैनिक न्यायालयों के स्थापित करने की भी अनुमति प्राप्त है । ये न्यायालय सैनिक कानून के विरुद्ध किये गये अपराधों की जांच करते हैं । इसके अतिरिक्त वे युद्ध या हिंसात्मक विद्रोह सम्बन्धी अपराधों के दण्ड का भी निर्णय करते हैं ।

पाठ्य पुस्तकें

Gwynn, D. R—The Irish Free State 1922-27

Macneill—Studies in the Constitution of the Irish Free State (1925)

Phillips, W. A.—The Revolution in Ireland 1906-1923

Ryan, D.—Un que Dictator–A Study of Eman de Valera (1936)

Sharma, B. M.—Recent Experiments in Constitution Making chs. II (U. I. P. H. Lucknow 1938)

The Constitution of Eire (1937)

The Statesman's Year Book (Latest Edition)

संयुक्त-राज्य अमरीका

अध्याय १६

संयुक्त-राज्य अमरीका का संघ-शासन

'जैसे अमरीका अंगरेज़ी बन गया वैसे ही उपनिवेशों में अंगरेज़ी संस्थायें अमरीकी बन गईं। इन संस्थाओं ने पृथक पृथक उपनिवेशों के राजनीतिक जीवन को नई स्थितियों व नई सुविधाओं के अनुकूल अपने आप को ढाल लिया। ये उपनिवेश प्रारम्भ में कठिनाइयों से लड़े, फिर विस्तृत हुये और अन्त में विजयी हुये। इन्होंने बिना अंगरेजी स्वभाव छोड़े अमरीकन रूप व रस प्राप्त कर लिया।''

(वुड्रो विलसन)

संयुक्त-राज्य अमरीका नई दुनियां की सबसे बड़ी इकाई है। इसका क्षेत्रफल ३,६८५,३८२ वर्ग मील है और जनसंख्या १३७,००८,४३५ है। इन संख्याओं में संयुक्त राज्य के आधीन उपनिवेशों व प्रदेशों की भी संख्यायें शामिल हैं। संघ के ४८ उपराज्यों का ही कुल क्षेत्रफल २,९७३,७७६ वर्ग मील है और जन संख्या १२२,७७५,०४६ है। यह देश पश्चिम में प्रशान्त महासागर व पूर्व में अटलाण्टिक महासागर के मध्य स्थित है। इसकी भौगोलिक विभिन्नता से बहुत सी राजनीतिक समस्यायें खड़ी हुईं और उसी से उन समस्याओं के सुलझाने की रीति भी निश्चित हुई। लगभग प्रत्येक राष्ट्रीय प्रश्न में भौगोलिक परिस्थिति ने सयुक्त राज्य के राजनीतिक जीवन पर अपना प्रभाव डाला है। आधुनिक युग में संयुक्त राज्य अमरीका का ही प्रथम ऐसा उदाहरण है जहां ऐसी पृथक इकाइयों को मिलाकर एक वास्तविक जनतांत्रिक संघ राज्य की स्थापना हुई जिनके हितों का स्वतंत्रता-युद्ध (War of Independence) से पूर्व कहीं भी मेल न होता था।

शासन-विधान का इतिहास

पूर्वकालीन उपनिवेश—संयुक्त राज्य अमरीका के शासन को संसार का सबसे महान राज्य-शासन प्रयोग समझा जाता है। प्रारम्भ में अटलाण्टिक के तट पर अंगरेजों द्वारा बसाये हुये १३ उपनिवेश थे। इन उपनिवेशों में

अंगरेजों के अतिरिक्त यूरोप की कुछ दूसरी जातियों के लोग भी आकर बसे थे पर उनकी संख्या अधिक न थी। ये प्रवासी अपने साथ अपनी मातृभूमि की राजनीतिक संस्थायें भी लाये थे और भावनायें भी। इस बात का नई दुनियाँ के इतिहास पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। ये उपनिवेश तीन प्रकार के थे:—

(१) सम्राट के उपनिवेश (Crown Colonies) जिनमें न्यू हैम्पशायर, न्यू यौर्क, न्यू जर्सी, उत्तरी व दक्षिणी कैरोलीना और जौर्जिया शामिल थे। प्रत्येक में गवर्नर शासन करता था जो सम्राट की शक्ति का प्रतीक था। उसकी सहायता करने के लिये एक कौंसिल होती थी।

(२) स्वाम्याधीन उपनिवेश (Proprietory Colonies) जिनमें पैन्सिलवेनिया, डेलावेयर और मेरीलेंड शामिल थे। उनका शासन ऐसे व्यक्तियों के आधीन था जिन्होंने शासन करने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। उन व्यक्तियों का इन उपनिवेशों से वही सम्बन्ध था जो सम्राट का अपने उपनिवेशों से।

(३) चार्टर उपनिवेश (Charter Colonies) इसमें रोडद्वीप और कनैक्टीकट शामिल थे। इनका शासन वहां के नागरिकों को सीधे सम्राट ने अपनी आज्ञा से सुपुर्द कर दिया था।

उपनिवेश में समानताएं—शासन-संगठन की साधारण विभिन्नताएँ इन उपनिवेशों में पाई जाती थीं परन्तु समानताएँ अधिक थी। "सब उपनिवेशों में निर्वाचित असैम्बलियों और राजसत्ता में नियुक्त गवर्नर व उसकी कौंसिल के बीच झगड़ा चलता रहता था। गवर्नरों को ऊपर से ऐसे आदेश मिलते थे जो प्रायः उपनिवेशों के रहने वालों के विचारों से या उनके हितों से मेल न खाते थे। उपनिवेश निवासी निस्सन्देह सम्राट के प्रतिनिधियों को हैरान करके क्रुद्ध करते थे। किन्तु साथ ही साथ यह भी बात थी कि जो अफसर इंगलैंड से भेजे जाते थे, वे विवेकहीन होते थे, जिसका परिणाम यह होता था कि वे अनावश्यक ही अमरीकन भावनाओं पर आघात किया करते थे।"* इसका परिणाम यह हुआ था कि शासक व शासितों के हितों में बड़ा भेद संघर्ष खड़ा हो गया। अन्त में लोग असैम्बली को अपना मित्र और गवर्नर को अपना वैरी मानने लगे। दूसरे शब्दों में, धारा सभा लोकप्रिय हो गई और कार्यकारिणी लोक-अप्रिय बन गई। ..... इस संघर्ष का एक परिणाम यह हुआ कि असैम्बली अर्थात् लोकसभा का अध्यक्ष

*टी० एच० रीड—फौर्स एण्ड फन्कशंस आफ अमरीकन गवर्नमेंट पृ० १०-१८

जो स्पीकर के नाम से विख्यात था और जो सभा का नेता व लोकेच्छा से शक्ति पाया हुआ सब से बड़ा अफसर था, राज्य संगठन में सब से प्रभावशाली राजनीतिक नेता बन गया।*

उपनिवेश-निवासी अंगरेज़ी संस्थायें चाहते थे—उपनिवेश निवासियों ने अपनी मातृभूमि की राजनीतिक संस्थाओं को जहां तक सम्भव हो सका, अपने नये देश में चलाने का प्रयत्न किया। उनकी सब से मूल्यवान् पैतृक सम्पत्ति "इंगलिश कामन ला" थी, जिसके अन्तर्गत अंगरेज़ों के वे सब मौलिक अधिकार सुरक्षित हैं, जिन्हें राजा भी नहीं छीन सकता और एक समय तो वे इतने आदरणीय थे कि यह माना जाता था कि ब्रिटिश पार्लियामेंट का निर्बन्ध भी उन को नहीं मिटा सकता[1]। अन्त में इन्हीं अधिकारों के ऊपर झगड़ा यहां तक बढ़ा कि उपनिवेशों व मातृभूमि में विच्छेद हो गया। सन् १७५०–७५ के बीच में उपनिवेश-वासियों ने ब्रिटिश पार्लियामेंट की उन अधिकारों के कुचलने की अनधिकार चेष्टा के विरुद्ध अपना असन्तोष प्रकट किया। उन्होंने सम्राट व पार्लियामेंट से लगाये हुए करों को देना अस्वीकार कर दिया और "बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं" के सिद्धान्त पर अड़ गये जो अंगरेज़ों की राजनीतिक बाइबिल का प्रथम आदेश है।

'मातृभूमि' के विरुद्ध युद्ध घोषणा—अन्त में इन १३ उपनिवेशों ने इंगलैण्ड और उसके सम्राट के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी और ४ जुलाई सन् १७७६ को एक मत होकर यह घोषणा प्रकाशित की :—

"यह कि ये संगठित उपनिवेश स्वतन्त्र व मुक्त राज्य है और उनका यह अधिकार है कि वह स्वतन्त्र व मुक्त रहें, यह कि वे ब्रिटिश सम्राट के प्रति किसी प्रकार की निष्ठा से प्रतिबन्धित नहीं हैं, यह कि ग्रेट ब्रिटेन व उन के बीच राजनीतिक यातायात बन्द है और बिलकुल बन्द होना चाहिए और यह कि स्वाधीन और मुक्त राज्य होने से उन्हें युद्ध करने, सन्धि करने, सुलह करने और वे सब बातें और कार्य करने का अधिकार है जिन्हें मुक्त व स्वतन्त्र राज्य अधिकारी होने से वे कर सकते हैं।"

---

*उसी पुस्तक में पृ० १६।

कनाडा में पैपीनाऊ और भारतवर्ष में वी०जे० पटेल का भी ऐसा ही उदाहरण है।

[1]उसी पुस्तक में पृ० २१।

इस प्रसिद्ध घोषणा में "मुक्त व स्वतंत्र राज्य अधिकारी होने से कर सकते हैं" शब्दों का उपनिवेशों के वैधानिक संघर्ष पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करने के बाद तुरन्त ही उपनिवेश-वासियों ने सब से प्रथम अपना ध्यान संगठित होकर युद्ध करने की ओर दिया। इस अभिप्राय की सिद्धि के लिये उन्होंने जून सन् १७७६ को एक समिति नियुक्त कर संघ का नियमावली का लेख बनवाया। इस नियमावली को राज्यों की कांग्रेस ने १५ नवम्बर सन् १७७७ को स्वीकार किया। यद्यपि इस नियमावली को उपोद्बलन (Ratification) अर्थात् अनुमोदन सब राज्य १७८१ से पूर्व न कर पाये किन्तु उसको कांग्रेस से पास होने के बाद तुरन्त ही लागू कर दिया गया। इस नियमावली की पहिली धारा से संघ का नाम "संयुक्त-राष्ट्र अमरीका' रख दिया गया। यही नाम अब तक ज्यों का त्यों चला आ रहा है। दूसरी धारा में यह लिखा था कि प्रत्येक राज्य अपनी उस स्वतंत्रता व सत्ता, और हर प्रकार की शक्ति व अधिकार का स्वामी है जिसको सब स्थापित कर संयुक्त-राज्य की कांग्रेस को नहीं सौंपा गया है। इससे स्पष्ट है कि राज्य अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने में कितने संदेही व सावधान थे और वे कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ही संगठित हुये जो तीसरी धारा में दिये हुये थे। तीसरी धारा यह थी: "पूर्ववर्णित राज्य इसके द्वारा पृथक रूप के पारस्परिक मित्रता, सुरक्षा, अपनी स्वतंत्रता की रक्षा और पारस्परिक सामान्य हितपूर्ति करने वाले दृढ़ संगठन में प्रवेश करते हैं और यह प्रतिज्ञा करते हैं कि धर्म, सत्ता, व्यापार या और किसी बहाने से किये हुये आक्रमण किये जाने पर या बल प्रयोग किये जाने पर वे एक दूसरे को सहायता करेंगे"। कांग्रेस ही एक ऐसी सार्वजनिक संस्था थी जिसकी स्थापना की गई। इसमें प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि थे। कम से कम दो और अधिक से अधिक ७ प्रतिनिधियों को भेजने का अधिकार प्रत्येक राज्य को मिला हुआ था। प्रत्येक राज्य को केवल एक मत ही देने का अधिकार था चाहे उसके प्रतिनिधियों की संख्या कुछ भी हो। राज्य के प्रतिनिधियों का बहुमत राज्य की इच्छा का द्योतक समझा जाता था। यदि किसी राज्य के प्रतिनिधियों में दोनों ओर के मत बराबर होते थे तो राज्य का मत रद्द समझा जाता था। कांग्रेस के अधिवेशन काल के अतिरिक्त समय में एक समिति कार्यसंचालन करती थी। इस समिति में प्रत्येक राज्य का एक प्रतिनिधि होता था और यह समिति वह सब कार्य कर सकती थी जिसको करने का अधिकार कांग्रेस को प्राप्त था। कांग्रेस अपना सभापति जिसे प्रेसीडेंट कहा जाता था स्वयं चुनती थी। किन्तु प्रेसीडेंट को

कार्य संचालन का अधिकार न दिया गया था क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि प्रेसीडेंट के रूप में उन पर दूसरे प्रकार का राजा बैठा दिया जाय ।*

यह वास्तविक स्थायी संघ न था—निस्सन्देह उपनिवेश-वासियों की इच्छा तो यही थी कि एक स्थायी संघ की स्थापना हो "परन्तु विधान की जो नियमावली बनाई गई उससे राज्यों का वास्तविक अनुकलन नहीं हुआ। प्रारम्भ से ही वे बालू की रस्सी के समान थे जो किसी को बांध सकने में असमर्थ थी। .....उनके नियमों के अनुसार कांग्रेस संघ की शक्ति को कार्यान्वित करती थी। कांग्रेस की समितियां ही इस संघ के कार्यकारी व न्यायकारी अंग थे। वास्तव में इसे कार्यकारी अङ्गों की आवश्यकता ही न थी क्योंकि इसे कार्य संचालन के कोई अधिकार ही न थे। इस का काम केवल परामर्श देना था न कि आदेश देना। यह राज्यों का हर बात में मुँह देखती थी। संघ का विधान केवल एक अन्तः राष्ट्रीय समझौते के समान था।"[1] कोई भी महत्वपूर्ण प्रस्ताव तब तक पास न समझा जाता था जब तक कि ९ राज्य उससे सहमत न हों। कई राज्यों ने अपने प्रतिनिधि ही न भेजे थे इस लिये संघ का योगाकर्षण जाता रहा और कांग्रेस की शक्ति भी जाती रही। कांग्रेस राज्यों से मुद्रा, मांग सकती थी पर उन्हें देने पर बाध्य न कर सकती थी, यह उनसे सेना की मांग कर सकती थी परन्तु उसके पास कोई ऐसा साधन न था जिससे वह उन्हें उस मांग को पूरा करने पर बाध्य कर सकती। यह संधि व समझौता कर सकती थी पर उसकी शर्तों का पूरा करना राज्यों पर छोड़ना पड़ता था। यह ऋण ले सकती थी किन्तु उसे चुकाने के लिये उसे राज्यों पर निर्भर रहना पड़ता था। यह एक ऐसी संस्था थी जिसे बहुत से विस्तृत अधिकारों से विभूषित किया गया था परन्तु उन्हें कार्यान्वित करने की शक्ति नहीं दी गई थी। कांग्रेस केवल परामर्श देने वाली संस्था ही थी। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् यह राज्यों को एक सूत्र में बांधने में असफल रही।

"इस काम करने की असमर्थता के कारण ही वर्तमान अधिक पूर्ण व अधिक दृढ़ राज्य संगठन की स्थापना सम्भव हुई"[2] मेरीलैंड (Maryland) और विर्जिनिया (Virginia) के राज्यों में पोटो मेक (Potomac) नदी में नौका चलाने के सम्बन्ध में झगड़ा हो गया। इस झगड़े को निबटाने

---

* रीड—फौर्स एण्ड फन्कशन्स आफ अमरीकन गवर्नमेंट पृ० ३६

विलसन—दी स्टेट (१९०० की आवृति) पैरा १०६७

उसी पुस्तक में पै० १०६६

के लिये जो कमिश्नर नियुक्त किये गये उन्होंने यह सिफारिश की कि एक दूसरा कमीशन नियुक्त किया जाय जो दोनों राज्यों से लगाये हुये आयात-निर्यात-करों के प्रश्न में छान बीन करे। इस पर विर्जिनिया ने व्यापार सम्बन्धी संघ के अधिकारों को अधिक विस्तृत करने पर विचार करने के लिये एक सम्मेलन बुलाया। सन १७८६ में यह सम्मेलन एनापोलिस नगर में हुआ जिसमें केवल पांच राज्यों ने ही अपने प्रतिनिधि भेजे। सम्मेलन ने अन्य प्रतिनिधियों के आने का इंतजार न करके एक प्रस्ताव स्वीकार किया और सम्मेलन समाप्त कर दिया। प्रस्ताव यह था कि कांग्रेस सब राज्यों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन फिलाडेलफिया नगर में बुलावे जो संघ के विधान में संशोधन करने के प्रश्न पर विचार करे क्योंकि उसके बिना इसकी राय में संघ का शांति पूर्वक चलना असम्भव था।

फिलाडेलफिया सम्मेलन—तदनुसार कांग्रेस ने सन् १७८७ का प्रसिद्ध फिलाडेलफिया सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन में जो प्रतिनिधि उपस्थित हुये वे सब लोक-कार्य में अनुभवी व्यक्ति थे इसलिये उन्होंने सारी समस्या को बड़े अच्छे ढंग से वस्तुस्थिति को देखते हुये सुलझाना आरम्भ किया। उनका उद्देश्य "एक दृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना करना था जिसके साथ साथ राज्य की अधिक से अधिक स्वतंत्रता भी सुरक्षित रहे। कई दिनों के वाद विवाद के पश्चात् उन्होंने सन् १७८७ के विधान का मसविदा तैयार किया। इस विधान ने संयुक्त राज्य की सरकार का रूप ही बदल दिया क्योंकि इससे केन्द्रीय सरकार को सीधे उपराष्ट्रों के नागरिकों से सम्बन्ध स्थापित करने की शक्ति प्रदान कर दी गई।

१७८७ का शासन-विधान

इस मसविदे को कांग्रेस ने राज्यों की स्वीकृति के लिये भेजा और जून २१, सन् १७८८ को जब नवें उपराज्य (न्यू हैम्पशायर) ने इसे स्वीकार कर लिया तो तुरन्त ही नौ उपराज्यों में इसे लागू कर दिया गया। इस नये शासन-विधान के अन्तर्गत प्रथम कांग्रेस का अधिवेशन ४ मार्च सन् १७८९ को हुआ।

विधान सर्वोच्च निबंन्ध है:—इस विधान का सबसे महत्वपूर्ण भाग इसकी प्रस्तावना है। इस प्रस्तावना में कहा गया है कि सब राज्यों की प्रजा संयुक्त-राज्य अमरीका के लिये यह विधान स्थापित करती है। पूर्ववर्ती संघ के विधान की अपेक्षा नये विधान में यह एक महत्त्वपूर्ण सुधार था

क्योंकि पुराने विधान में लोकमत को कोई स्थान न दिया गया था। दूसरी महत्वपूर्ण बात छटे अनुच्छेद की धारा २ ६ में दी हुई है जिसमें कहा गया है कि यह विधान और इसके अन्तर्गत बनाये हुये निर्बन्ध व वे सब संधियां संयुक्त-राष्ट्र अमरीका की सत्ता के अन्तर्गत की जायेंगी, राष्ट्र का सर्वोच्च निर्बन्ध समझी जायेंगी। प्रत्येक उपराष्ट्र में न्यायाधीश उनके प्रावधानों के अनुसार निर्णय दिया करेंगे चाहे उपराज्य का विधान या कोई निर्बन्ध उनके विरुद्ध ही क्यों न हों।" इस धारा से विधान बहुत ही सुरक्षित और संघ का शासन बहुत ही दृढ़ हो गया, क्योंकि जब कभी संघ सरकार के या किसी उपराज्य के कानून का विधान से विरोध खड़ा होता है, विधान की ही विजय होती है, और ऐसे मामलों में अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के हाथ में रहता है जो पूर्णतया स्वतन्त्र न्यायालय है।

शासन-विधान की अन्य विशेषताएँ—यह शासन-विधान आधुनिक राष्ट्रों के विधानों में सब से संक्षिप्त हैं। अमरीकनों ने इस में दो प्रमुख सिद्धान्तों को सुरक्षित रखा है, पहिला लोकसत्ता व दूसरा संघ में उपराज्यों की समानता। उन्होंने इसमें पूर्णतया शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त को अपनाया है। आगे चल कर ज्ञात होगा कि कार्यकारी, निर्बन्धकारी व न्यायकारी सत्ता एक दूसरे से बिल्कुल पृथक हैं। यह बहुत ही कठिन परिवर्तनशील विधान है। अब तक केवल २१ ही संशोधन इसमें हुये हैं। इसमें "बन्धन व संतुलन की पद्धति" (system of checks & balance) रखी गई है। इसके कुछ प्रावधानों की आलोचना की जाती हैं जैसे, सीनेट को सन्धि व नियुक्ति करने की शक्ति प्रदान करना उचित नहीं समझा जाता। किन्तु यह ध्यान में रखने की बात है कि सन् १७८७ के विधान-निर्माता उस समय की परिस्थितियों का सामना करने के लिये योजना बना रहे थे, इस लिए "कल की सरकार को आज के मापदण्ड से मापना गलत हैं"*। विधान का संचालन बहुत असंतोषजनक सिद्ध नहीं हुआ है और इसके बनने के समय से राज्य की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई और वह समृद्धिशाली हुआ। यह सच है कि १५० वर्ष के इस लम्बे समय में भयंकर विवाद खड़े हुये और यह प्रतीत हुआ था कि सन् १८६१ का गृहयुद्ध संघ को तितर-बितर कर देगा, किन्तु फिर भी इसका कुछ महत्वपूर्ण संशोधनों सहित अब तक बराबर बना रहना इस बात का प्रमाण है कि यह फ्रांस के

---

* फ्रौर्म एण्ड फंक्शन्स आफ अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ४३

शासन-विधान से अधिक दृढ़ है क्योंकि उतने ही समय में फ्राँस के शासन-विधान में कई बड़े परिवर्तन हो चुके हैं।

संघ-सरकार की शक्तियां

संयुक्त-राज्य अमरीका की संघ-सरकार की शक्तियाँ निश्चित रूप से स्थिर की हुई हैं जिन्हें उस सरकार के भिन्न भिन्न अङ्ग कार्यान्वित करते हैं। निर्बन्धकारी अंग, अर्थात् काँग्रेस (जिसमें सीनेट व प्रतिनिधि-आगार दो सभायें हैं) की प्रथम अनुच्छेद की ८वीं धारा के अनुसार निम्नलिखित शक्तियाँ हैं:—

विविध प्रकार के कर लगाना और मुद्रा एकत्रित करना, ऋण चुकाना, संयुक्त-राज्य की सुरक्षा और सार्वजनिक हित साधन का प्रबन्ध करना, किन्तु सब प्रकार के कर सारे संयुक्त-राष्य में एक समान होंगे।

संयुक्त-राज्य की सम्पत्ति के आधार पर ऋण लेना।

विदेशी राष्ट्रों से उपराष्ट्रों के बीच व मूल निवासियों से व्यापार सम्बन्धी नियमन करना।

जानपद बनाने व दिवालिया निश्चित करने वाले एक समान नियम व निर्बन्ध सारे संयुक्त-राज्य के लिये बनाना।

मुद्रा बनाना, उसका मूल्य स्थिर करना, विदेशी मुद्रा का मूल्य स्थिर करना, और माप तौल स्थिर करना।

संयुक्त राज्य के नकली प्रचलित मुद्रा व ऋण के प्रमाण पत्रों को बनाने पर दण्ड का विधान करना।

डाकघर स्थापित करना और डाक मार्ग बनवाना।

लेखकों व वैज्ञानिकों को अपने लेख व अन्वेषण के उपयोग का कुछ समय के लिये अनन्य अधिकार देकर उपयोगी कला व विज्ञान की उन्नति करना। सर्वोच्च न्यायालय से छोटे संघ न्यायालय स्थापित करना।

समुद्री लूट-पाट की व्याख्या करना व उसके लिये दण्ड का विधान करना, अन्तः राष्ट्रीय निर्बन्ध के विरुद्ध किये अपराधों के लिये दण्ड देना।

युद्ध की घोषणा करना, बदला लेने के आज्ञापत्र देना और युद्ध में प्राप्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में नियम बनाना।

सेना एकत्रित करना व शिक्षित करके तैयार रखना। किन्तु इस काम के लिये दो वर्ष से अधिक समय के लिये एक साथ मुद्रा का आयोजन नहीं हो सकता।

जल सेना संगठित कर उसका भरण पोषण करना।

स्थल सेना व जल सेना के शासन व नियमन सम्बन्धी नियम बनाना।

संघ के निर्बन्धों को कार्यान्वित करने के लिये, विद्रोह को दबाने के लिये, और आक्रमण से रक्षा के लिये सेना बुलाने का आयोजन करना।

सेना को संगठित, शिक्षित व सुसज्जित करने और उसके उस भाग पर नियंत्रण रखने का आयोजन करना जो संयुक्त राज्य की सेवा में उपयोग किया जा रहा हो। उपराज्यों को, बचे हुये सेना के भाग को, कांग्रेस द्वारा निश्चित शिक्षण के अनुसार शिक्षित करने का व सेना के अफसरों को नियुक्त करने का अधिकार देना।

ऐसे जिले में जिसका क्षेत्रफल १० वर्ग मील से अधिक न हो, जिसको उपराज्यों ने संघ सरकार के सुपुर्द कर दिया हो व कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया हो, और इस प्रकार स्वीकृत होकर जो संघ सरकार का निवास-स्थान बन गया हो, उसमें अनन्य रूप से शासन करना। वैसा ही शासन उन सब जगहों में करना जो संघ सरकार ने उपराज्यों की धारा सभा की सम्मति से खरीद ली हों और जिनमें किले, बारूदखाने, अस्त्रागार, बन्दरगाह व दूसरी आवश्यक इमारतें बनी हों। और उन सब निर्बन्धों को बनाना जो पूर्वोक्त शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक व उचित्त हों और उन दूसरी शक्तियों को कार्यरूप देने के लिये आवश्यक व उचित्त हों जो विधान ने संयुक्त-राज्य की सरकार या उसके किसी शासन विभाग या अफसर में विहित कर दीं हों।

प्रथम अनुच्छेद की ९ वीं धारा ने नकारात्मक प्रतिबन्ध लगा कर कांग्रेस की शक्तियां और भी कम कर दी हैं, जैसे :-

(१) जब तक वास्तव में विद्रोह या आक्रमण न हुआ हो कांग्रेस अपराधी को न्यायालय में उपस्थित किये जाने का आदेश दिलवाने की सुविधा को स्थगित नहीं कर सकती।

(२) यह कोई गतानुदर्शी निर्बन्ध पास नहीं कर सकती।

(३) यह उच्चता की कोई उपाधि नहीं दे सकती।

सन् १७८७ में जब विधान का निर्माण हुआ, नागरिकों के अधिकारों को बिधान में घोषित करने का प्रश्न इतना महत्वशाली न हुआ था क्योंकि उस समय संघ सरकार की शक्तियों के विरुद्ध उपराष्ट्रों के क्या अधिकार होने चाहिये, यह प्रश्न अधिक महत्व रखता था। चार वर्ष बाद सन् १७९१ में

लगभग १० संशोधन विधान में किये गये जिनमें से नौ संशोधनों से नागरिकों के अधिकार प्रत्याभूत (Guaranteed) हुये और इस प्रकार संघ सरकार की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश रख दिया गया। इन संशोधनों से निम्नलिखित बातें निश्चित हो गई :-

(१) कांग्रेस ऐसा कोई निर्बन्ध न बनायेगी जिससे कोई धर्म विशेष प्रतिष्ठित होता हो या स्वतंत्रता पूर्वक उसके अनुसार आचरण करने पर रोक लगती हो, या वक्तृता देने, छापने व प्रकाशित करने, या जनता के शान्ति पूर्वक समुदाय बनाकर रहने या सरकार से अपनी तकलीफों की शिकायत करने की स्वतंत्रता कम होती हो।

(२) स्वतंत्र राज्य की रक्षा के लिये शिक्षित सेना आवश्यक होने से जनता का अपने पास अस्त्र रखने का अधिकार नहीं छीना जायेगा।

(३) शान्ति के समय में कोई सैनिक किसी घर में उस के स्वामी की सम्मति के बिना न बसाया जायेगा और युद्ध समय में भी सिवाय निर्बन्धानुसार ढंग के किसी दूसरे ढंग पर कोई सैनिक न बसाया जायगा।

(४) किसी व्यक्ति का शरीर, घर, उसके कागद व सामान बिना कारण न कुर्क किया जा सकता है न उनकी तलाशी ली जा सकती है।

(५) नरहत्या या अन्य बदनाम करने वाले अपराधों की जांच पंचों द्वारा होगी।

(६) सब अपराधी अभियोगों की जांच जल्दी से जल्दी खुले ढंग पर निरपेक्ष पंचों द्वारा होगी।

(७) २० डौलर से अधिक मूल्य के अभियोगों में पंचों द्वारा जांच होने का अधिकार सुरक्षित रहेगा।

(८) बहुत अधिक ज़मानत न मांगी जायगी न बहुत अधिक जुर्माना किया जायगा और न निर्दयतापूर्ण या असाधारण दण्ड ही दिया जायगा।

(९) शासन में किन्हीं अधिकारों की गिनती हो जाने का यह अर्थ न लगाया जायगा कि बचे हुये जनता के अधिकार मान्य नहीं हैं या वे कम आदरणीय हैं।

सन् १८७० में पास हुये १५वें संशोधन में यह कहा है कि संयुक्त-राज्य के किसी नागरिक को मताधिकार से वञ्चित न किया जायेगा न उस अधिकार को सीमित किया जायेगा क्योंकि वह किसी विशेष जाति, वर्ण का

है या पूर्व दासता की स्थिति में रहा है। सन् १९२० में किये गये १९ वें संशोधन से स्त्री पुरुष दोनों को मताधिकार दे दिया गया।

शक्तियों की सीमा स्थिर करना—सन् १७९१ में हुये विधान के दसवें संशोधन में कहा गया है कि विधान ने जिन शक्तियों को संघ सरकार के सुपुर्द नहीं किया है व जिन शक्तियों का उपराज्यों द्वारा कार्यान्वित किये जाने का विधान से निषेध किया गया है वे शक्तियां उपराज्यों या जनता के लिये सुरक्षित हैं। किन्तु संघ सरकार की शक्तियों पर इन सब प्रतिबन्धों के रहते हुये और शेष शक्तियां उपराज्यों को दिये जाने पर भी संघ सरकार की शक्ति धीरे धीरे कई कारणों वश बढ़ती जा रही है। पहिला कारण यह है कि न्यायाधीश मार्शल की अध्यक्षता में सर्वोच्च न्यायालय ने अर्थ-विहित शक्तियों का सिद्धांत प्रतिपादित किया और विधान की धाराओं का ऐसा व्यापक अर्थ लगाया कि केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया। दूसरे अन्तःराष्ट्रीय सम्बन्धों के बढ़ने और अन्तःराष्ट्रीय व्यापार की उन्नति होने से संघ सरकार ने बिना उपराज्यों के अधिकारों के समर्थकों को अप्रसन्न किये अपनी शक्तियों को बहुत बढ़ा लिया है। तीसरे विधान को व्यवहार में लाने से जो अनुभव हुआ उसके फलस्वरूप जो संशोधन किये गये उनसे संघ सरकार की शक्ति बढ़ गई। उदाहरण के लिये, प्रथम अनुच्छेद की नवीं धारा के पैरा ४ को लीजिये। इसके अनुसार संघ सरकार कुछ कड़ी शर्तों के पालन करने पर ही प्रत्यक्ष कर लगा सकती थी, किन्तु १६ वें संशोधन ने यह शर्तें हटा दीं और कांग्रेस को यह शक्ति दे दी कि वह किसी प्रकार से प्राप्त हुई आमदनी पर कर लगा सकती है और इस कर से प्राप्त धन को किसी भी कारण या संख्या का ध्यान रख उपराज्यों में न बांटा जायगा। अन्तिम कारण यह है कि संसार की परिस्थिति ही कुछ समय से ऐसी हो गई है जैसे, प्रशांत महासागर की समस्या, आर्थिक संकट और अन्तःराष्ट्रीय व्यापार, कि उसका प्रभाव सब राष्ट्रों पर पड़ा है और परिणाम-स्वरूप संघ सरकार ने प्रजा की अस्पष्ट सम्मति से अधिकाधिक शक्ति अपने हाथ में कर ली है।

संघ व्यवस्थापक मण्डल

संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस संघ का निर्बन्धकारी अंग है। इसमें दो आगार हैं, एक प्रतिनिधि-आगार और दूसरी सीनेट अर्थात् राज्य-परिषद्। इन दोनों आगारों की शक्तियां रचना व पारस्परिक सम्बन्ध मूल-विधान (१७८७) के प्रथम अनुच्छेद और १९१३ के १७ वें संशोधन में दिये हुये हैं।

प्रातानाध-आगार (House of Representatives) कांग्रेस का निचला आगार है जिसके सदस्य जनता से सीधे निर्वाचित होते हैं। प्रारम्भ में यह आयोजन था कि प्रत्येक २०००० नागरिकों की संख्या एक प्रतिनिधि चुनेंगी, किसी भी उपराज्य का कम से कम एक प्रतिनिधि अवश्य चुना जायगा और यह कि प्रति १० वर्ष की गणना द्वारा प्रतिनिधियों की संख्या कम या अधिक की जायगी हालांकि निर्वाचकों व प्रतिनिधियों की संख्या का अनुपात सब उपराज्यों में एक समान ही होगा। तदनुसार प्रतिनिधियों की प्रारम्भिक संख्या जो ६५ थी प्रति दस वर्ष के बाद बढ़ती गई क्योंकि नये उपराज्य संघ में आते गये और पुरानों में जनसंख्या बढ़ती गई। १४ वें संशोधन से निर्वाचन-सम्बन्धी कुछ परिवर्तन किये गये क्योंकि अबादी इतनी तेज़ी से बढ़ी कि यदि २०००० निर्वाचक एक एक प्रतिनिधि चुनते तो प्रतिनिधि आगार में सदस्यों की संख्या इतनी अधिक हो जाती कि उसको संभालना और कार्य संचालन करना कठिन हो जाता। आगार की वर्तमान संख्या ४३५ है जो सन् १९१० की जनगणना के अधार पर निश्चित की गई है जिससे एक सदस्य २११, ८७७ मतधारकों का प्रतिनिधित्व करता है। यह ४३५ सदस्य विवध उपराज्यों से इन संख्याओं में निर्वाचित होकर आते हैं! अलाबामा ९, ऐरीज़ोना २, अर्कनसास ७, कैलीफोर्निया २३, कौलोरैडो ४, कनैक्टीकट ६, डैलाबेयर १, फ्लोरीडा ६, जौर्जिया ११, इदाहो २, ईलियोनिस २६, इंडियाना ११, आइओवा ८, कन्सास ६, कैन्टकी ९, लुइसियाना ८, मेन ३, मेरीलैंड ६, मैसाच्यूसैट्स १४, मिचीगन १७, मिनैसोटा ९, मिससिपी ७, मिस्सौरी १३, मौन्टाना २, नैब्रास्का ४, नैवादा १, न्यूहैम्पशायर २, न्यूजरसी १४, न्यूमैक्सिको २, न्यूयार्क ४५, नार्थकैरोलीना १२, नार्थडैकोटा २, ओहियो २३, आक्लहामा ८, ओरीगन ४, पैनसिलवेनिया ३३, रोड आइलैंड २, साउथ कैरोलीना ६, साउथ डैकोटा २, टैनीसी १०, टैक्सास २१, ऊटा २, वरमौन्ट १, विरजीनिया ९, वाशिंगटन ६, पश्चिमी विरजीनिया ६, विसकौंसिन १०, और व्यौमिंग १।

निर्वाचन क्षेत्र—कांग्रेस प्रत्येक उपराज्य से चुने जाने वाले प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित करती है किन्तु उन प्रतिनिधियों को चुनने के लिये निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन प्रत्येक उपराज्य अपने आप करता है। इस कार्य में उपराज्य की धारा सभा प्रायः किसी राजनीति पक्ष के लाभार्थ निर्वाचन क्षेत्रों में परिवर्तन कर दिया करती है। उदाहरण के लिये यदि परिसीमन विधेयक पर विचार करते समय धारा सभा में रिपब्लीकन

(Republican) दल का बहुमत है तो वे लोग डैमोक्रेटिक (Democratic) दल के बहुमत वाले जिलों को मिलाकर कम से कम निर्वाचन क्षेत्रों में इकट्ठा कर देंगे जिससे आने वाले निर्वाचन में अधिक से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से रिपब्लिकन (Republican) प्रतिनिधि चुने जायें" *। जब डैमोक्रेट (Democrat) दल का बहुमत होता है तो वे भी अपने पक्ष में इसी प्रकार निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करते हैं। आगार जनसंख्या के आधार पर संगठित होता हैं इसलिये उपराज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या में बड़ा अन्तर देखने को मिलता है, उदाहरणार्थ, पूरे व्योमिंग (Wyoming) उपराज्य से केवल एक प्रतिनिधि चुना जाता है क्योंकि इसकी जनसंख्या २२५,५६५ (१९३० की जनगणना) है किन्तु अकेला न्यूयार्क (New York) नगर २० प्रतिनिधि चुनता है

मताधिकार—२१ वर्ष की आयु के नागरिक-अधिकार-प्राप्त सब व्यक्ति मत दे सकते हैं। आगार की अवधि दो वर्ष है इसलिये प्रति दो वर्ष पश्चात् नये प्रतिनिधियों का चुनाव होता है। यह चुनाव नवम्बर मास में होता है किन्तु नये प्रतिनिधि अगली ३ जनवरी को जाकर आगार में अपना स्थान पाते हैं क्योंकि इसी दिनाङ्क से नये आगार का जोड़ा प्रारम्भ होता है।

स्थानीय प्रतिनिधित्व—प्रतिनिधि जिन क्षेत्रों से निर्वाचित होते हैं उन्हीं के निवासी भी होते हैं इसलिये वास्तव में वे उस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं हालांकि ऐसे क्षेत्र में जो इतना उन्नत नहीं कि एक योग्य व्यवस्थापक उत्पन्न कर सके इस पद्धति के कारण अयोग्य व्यक्ति का निर्वाचन करना पड़ता है। इस पद्धति से बहुत से योग्य व्यक्ति प्रतिनिधि बनने से वञ्चित रह जाते हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि कुछ क्षेत्रों में बहुत से योग्य व्यक्ति मिलते हैं और दूसरों में कोई भी नहीं होता। अतएव जब कोई उम्मेदवार अपने क्षेत्र में हार जाने से प्रतिनिधि नहीं चुना जाता तो उसके लिये कोई दूसरा क्षेत्र नहीं रह जाता। यह ठीक है कि लोकसभा के सदस्य व्यवहार-कुशल, अनुभवी व स्वाभाविक सामर्थ्य के व्यक्ति होते हैं जिनमें आधे से अधिक विश्वविद्यालय के स्नातक होते हैं। फिर भी कांग्रेस की सदस्यता योग्य व्यक्तियों की अधिक संख्या को आकर्षित नहीं करती। कारण यह है कि इन प्रतिनिधियों से मतधारक सब प्रकार की आशा रखते हैं। कोई पेंशन चाहता है तो कोई पदवी, तीसरा अपने उद्योग में सहायता और इनके अतिरिक्त

* हैस्किन—दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ३०५।

स्थानीय काम के लिये उन्हें राजकीय अनुदान दिलवाने का प्रयत्न भी करना पड़ता है। यह सब काम बड़ा उकताने वाला और अरुचिकर होता है।

प्रतिनिधियों का पारिश्रमिक—प्रत्येक प्रतिनिधि को १२५००डालर वार्षिक आय मिलती है, २५०० डालर अलाउन्स और ३२००डालर एक क्लर्क रखने के लिये मिलते हैं, कागज़ वगैरह लेखन सामिग्री के लिये १२५ डालर और सफर खर्च २० सैन्ट (Cent) प्रति मील के हिसाब से दिया जाता है। अन्तिम मद में ही प्रशान्त महासागर के तट से आने वाले प्रतिनिधि का भत्ता २५०० डालर हो जाता है। यह प्रतिनिधि आगार दुनियां में सब से अधिक व्यय-साध्य व्यवस्थापक संस्था है। प्रतिनिधियों को अपने पत्र आदि बिना डाक खर्च दिये भेजने का अधिकार है। आगार को जाते समय व वहां से लौटते समय उनको किसी अपराध के लिये पकड़ा नहीं जा सकता। जब तक अपराध देशद्रोह, विद्रोह या हत्या की श्रेणी का न हो। उन्हें आगार में बोलने की स्वतंत्रता रहती है परन्तु अभद्र वचनों के लिये किसी भी सदस्य को आगार के दो तिहाई सदस्यों की सम्मति से बाहर निकाला जा सकता है।

आगार अपनी कार्य पद्धति स्वयं निर्धारित करता है—आगार को को अपनी कार्यपद्धति पर पूर्ण स्वत्व प्राप्त है। यह अपनी कार्यवाही का दैनिक लेख रखता है जिसे समय समय पर छाप कर प्रकाशित किया जाता है। कभी कभी जब कार्यवाही गुप्त रखने का निश्चय किया जाता है तो उसका विवरण प्रकाशित नहीं होने दिया जाता। वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर मास में प्रथम सोमवार को प्रारम्भ होता है, आगार के निजी डाकघर, भोजनालय व कार्यालय होते है।

आगार के अफसर—नया आगार निर्वाचन होने के पश्चात् ३ जनवरी को अपनी प्रथम बैठक करता है और सब से पहिला काम स्पीकर (सभापति), क्लर्क, चैपलेन, पोस्टमास्टर, सार्जेन्ट-एट-आर्म्स व द्वारपाल को चुनना होता है। यह चुनाव दल-प्रणाली पर ही होता है। प्रत्येक दल अपने अपने उम्मेदवार खड़ा करता है और बहुमत वाले दल की जीत होती है। निर्वाचित स्पीकर रीत्यानुसार आगार के सब से पुराने सदस्य से शपथ दिलाने की प्रार्थना करता है। बड़ी हर्ष ध्वनि के मध्य जब चारों ओर से अभिवादन सूचक रूमाल हिलते होते हैं और चित्रकारों के कैमरों की क्लिक क्लिक ध्वनि गूंजती है, वह क्लर्क से पदसूचक हथौड़ा लेता है। उसके पश्चात् कुछ थोड़े से शब्दों में सदस्यों को धन्यवाद देकर स्पीकर के कर्तव्य को सुचारु रूप से

पूरा करने की शपथ लेता है। उसके पश्चात् वर्णक्रमानुसार सदस्यों के नाम पुकार कर उन्हें शपथ लेने को कहा जाता है। जब सब सदस्य शपथ ले चुकते हैं तब कुछ दूसरे अफसर चुने जाते हैं। उसके पश्चात् आगार के संगठित हो चुकने की घोषणा कर दी जाती है।

पहिले जब सदस्यों की संख्या कम थी प्रत्येक प्रतिनिधि के लिये एक कुर्सी व एक मेज़ मिलती थी जिस पर रख कर वह अपनी लिखा पढ़ी व दूसरा काम कर सकता था, किन्तु अब संख्या के बढ़ जाने से आगार में स्थान की कमी हो गई और स्पीकर को सुनने में कठिनाई भी होने लगी। अतएव मेज़ें अब आगार से हटा दी गई हैं। पूर्व समय में स्पीकर (Speaker) को कई काम करने का अधिकार था, यहां तक कि आगार की समितियां भी वही नियुक्त करता था। वह इतना शक्तिशाली था कि उसे 'ज़ार' की पदवी दी जाने लगी थी। किन्तु कैनन (Cannon १८६६-१६११) के स्पीकर निर्वाचित होने के बाद आगार ने इस निरंकुशता को समाप्त करने का संकल्प किया। श्री कैनन कहा करते थे कि "स्पीकर आगार की ही कठपुतली है और आगार जब चाहे तब उसके महत्व को गिरा सकता है।"

आगार की समितियाँ—सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण समिति-पद्धति द्वारा काम करने की रीति अपनाई जाती है। ऐसी समितियों की संख्या १६ है जिनमें बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक दोनों दलों के सदस्य होते हैं। ये समितियाँ स्थायी समितियां कहलाती हैं। किन्तु इनमें से कुल ६ या ७ समितियां ही उल्लेखनीय हैं। सब से प्रभावपूर्ण नियोजन पर्यादान-समिति (Approperition Committee) और आगम समिति (Ways & Means Committee) ही है। छोटी समितियों की बैठकें मुश्किल से कभी हुआ करती हैं। समितियों का महत्व आगार में विचाराधीन विधेयक या प्रस्ताव पर निर्भर रहता है, जब जैसा विधेयक या प्रस्ताव विचाराधीन होता है उस समय उस विषय से सम्बन्धित समिति महत्वपूर्ण बन जाती है।

व्यवस्थापन कार्य प्रणाली—प्रत्येक विधेयक प्रथम वाचन के पश्चात् रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिये उससे सम्बन्धित समिति के सुपुर्द हो जाता है। समिति उस की परीक्षा व सुधार करना आरम्भ करती है। समिति से लौटने पर पांच सूचियों में से एक में इसका नाम रख दिया जाता है। इनमें पहिली सूची जिसका नाम संघ सूची (Union Calendar) है सारे आगार

की समिति से सम्बन्ध रखती है। यह समिति उन विधेयकों पर विचार करती है जो आय-व्यय से सम्बन्ध रखते हैं और जिन पर स्थायी समिति की अनुकूल रिपोर्ट होती है। दूसरी सूची आगार सूची (House Calendar) कहलाती है। इसमें वे सार्वजनिक विधेयक होते हैं जिनको संघ सूची में स्थान नहीं मिलता, तीसरी सूची सारे आगार की समिति की सूची (Calendar of the Committee of the Whole House) होती है जिसमें सब प्राइवेट (Private) विधेयक रखे जाते हैं। चौथा सूची में वे योजनायें होती हैं जो सर्वसम्मति से प्रस्तुत की जाती हैं और पाचवीं सूची में समितियों को दिये हुये आदेश मिलते हैं। इस प्रकार किसी भी सूची में रखे जाने के बाद विधेयक का दूसरा वाचन प्रारम्भ होता है। इस वाचन में सदस्य संशोधन के प्रस्ताव सामने रखते हैं और उन पर अपने विचार प्रकट करते हैं। किसी एक योजना पर कोई सदस्य एक बार बोल सकता है और वह भी एक घंटे से अधिक नहीं। जब कांग्रेस के सत्र (Session) की समाप्ति का समय आता है उस समय कांग्रेस की कार्यवाही का एक मनोरम दृश्य देखने को मिलता है। प्रायः इस समाप्ति से पहिले ही काम की बड़ी अधिकता रहती ही है। पर विरोधी दल भी उस समय अपनी विलम्बकारी चालें चलता है। आखिरी रात को इन चालों का मज़ा देखने में आता है। सारी रात की बैठक बड़ी असुविधाजनक होती है और प्रायः गणपूरक नहीं रहता। उस समय सदस्य गाकर, धूम्रपान कर, आपस में ठिठोली कर या झगड़ कर जगने का प्रयत्न करते हैं पर व्यवस्थापन कार्य नहीं होने देते। तीसरे वाचन के पश्चात् स्पीकर योजना पर मत लेना आरम्भ करता है। मत देने की तीन रीतियां है।

(१) मुखोच्चारण के स्वर से, यदि दूसरे दो ढंग अपनाने की माँग न की जाय तो प्रायः उसी से निर्णय किया जाता है।

(२) सदस्यों को, स्पीकर द्वारा नियुक्त गिनने वाले व्यक्तियों के सामने चलाने से (गण पूरक के पांचवें भाग के बराबर संख्या में सदस्यों से इसकी मांग हो सकती है) और

(३) सब सदस्यों का नाम पुकार कर और उन से 'हां' या 'ना' कहलवाकर। इसमें बड़ी देर लगती हैं। विरोधी दल इस ढंग को अड़ंगा लगाने के लिये प्रयोग कराने का प्रयत्न करता हैं। उपस्थित सदस्यों के पांचवें भाग से माँग किये जाने पर यह ढंग काम में लाया जाता है।

दोनों आगारों का पारस्परिक विरोध—जब आगार से कोई योजना स्वीकृत हो जाती है, तब वह सीनेट को भेज दी जाती है। यदि सीनेट इसे

अस्वीकार कर देती है तो यह वहीं समाप्त हो जाती है। किन्तु यदि सीनेट उसमें सुधार कर देती है तो यह वापिस प्रतिनिधि आगार के विचारार्थ लौटादी जाती है। यदि लोक सभा (House of Representatives) अर्थात् प्रतिनिधि आगार इन संशोधनों को अस्वीकार करता है तो इसकी सूचना सीनेट को दे दी जाती है। सीनेट इस सूचना के मिलने पर चाहे तो बराबर संख्या में दोनों आगारों के सदस्यों की कांफ्रेंस बुलाने की मांग कर सकती है। इन सदस्यों को 'मैनेजर' कहते हैं। इस कांफ्रेंस में किसी समझौते पर पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार जब योजना अन्तिमतः स्वीकार हो जाती है तब उस योजना का विधेयक स्पीकर और सीनेट के सभापति के हस्ताक्षर होने के लिये प्रस्तुत किया जाता है। हस्ताक्षर होने पर यह प्रैसीडेंट के पास भेज दिया जाता है। यदि प्रैसीडेंट उससे सहमत होता है तो वह उस पर सम्मति सूचक हस्ताक्षर कर देता है और वह विधेयक निर्बन्ध (Law) बन जाता है। किन्तु यदि प्रैसीडेंट उस से सहमत नहीं होता तो वह विरुद्ध युक्तियां देकर उसे उसी आगार को लौटा देता है जिसमें वह विधेयक प्रारम्भ हुआ था। इस प्रकार लौटाये जाने पर यदि पृथक पृथक दोनों आगार दो तिहाई मताधिक्य से उसे पास कर दें तो वह विधेयक प्रैसीडेंट की असम्मति होने के बावजूद निर्बन्ध बन जाता है। यदि प्रैसीडेंट किसी विधेयक पर दस दिन के भीतर हस्ताक्षर नहीं करता या प्रतिवाद करके नहीं लौटाता तो वह विधेयक अपने आप निर्बन्ध बन जाता है। किन्तु कांग्रेस के सत्र के अन्तिम दस दिनों में जो विधेयक प्रैसीडेंट के पास पहुँचते हैं वे तभी निर्बन्ध बन सकते हैं जब प्रैसीडेंट उन पर अपने हस्ताक्षर कर देता है। इस प्रकार इन विधेयकों को प्रैसीडेंट हस्ताक्षर न कर अपनी जेब में रख कर चुपचाप रहने से ही रद्द कर सकता है। निर्बन्ध बन जाने के बाद प्रत्येक विधेयक सेक्रेटरी आफ स्टेट के दफ्तर में जमा हो जाता है।

सब मुद्रा-विधेयक प्रतिनिधि आगार में प्रारम्भ होते हैं। सीनेट को उनमें संशोधन करने का अधिकार अवश्य है। प्रैसीडेंट के चुनाव के अन्तिम दिन तक यदि किसी उम्मेदवार को आवश्यक मताधिक्य प्राप्त नहीं होता तो प्रतिनिधि आगार ही किसी व्यक्ति को प्रैसीडेंट चुनता है।

ऊपरली सभा—अमरीकन संघ-व्यवस्थापक मण्डल का ऊपरी आगार सीनेट कहलाता है। यह उपराज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। उपराज्यों की समानता इसे मान्य है क्योंकि प्रत्येक उपराज्य को इसमें दो प्रतिनिधि भेजने

का अधिकार है। विधान की रचना होते समय उन लोगों ने जो उपराज्यों के अधिकारों के समर्थक थे यह ज़ोर दिया कि सब उपराज्यों को इकाई रूप में समान समझा जाय। उनकी यह मांग पारस्परिक मेल और प्रेम भाव बनाये रखने के हेतु स्वीकार कर ली गई थी। 'दी फैडरलिस्ट' नामक ग्रन्थ रचयिता का यह कहना ठीक ही है कि प्रत्येक उपराज्य को एक वोट (मत) देना उनकी अवशिष्ट संज्ञा को वैधानिक मान्यता प्रदान करता है और साथ साथ उस अवशिष्ट सत्ता की रक्षा करने के हेतु वह एक अस्त्र भी है।"* आगे चलकर वे फिर कहते हैं कि अनुचित निर्बन्धों के बनने में यह एक और रुकावट डाली गई है हालांकि वे यह मानते हैं कि ऐसी पेचदार रुकावट हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है और लाभदायक भी। प्रारम्भ में यह निर्णय हुआ था कि सीनेट के सदस्यों को उपराज्यों की धारा सभायें पृथक पृथक चुना करेंगी किन्तु १७वें संशोधन से इसमें कुछ परिवर्तन हो गया है और अब इन सदस्यों का चुनाव उपराज्यों की जनता स्वयं करती है। जब अस्थायी रूप से किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो जाता है तो उपराज्य की सरकार निर्वाचन होते समय तक के लिये उस स्थान को अपने मनोनीत व्यक्ति से भर सकती है।

सीनेट के सदस्यों की योग्यतायें—सीनेट के उम्मेदवार को ३० वर्ष की आयु का होना चाहिये। वह संयुक्त-राज्य का ९ वर्ष नागरिक रह चुका हो और निर्वाचन के समय उस उपराज्य में रहता हो जहां से वह निर्वाचित हुआ है। व्यवस्थापक मण्डल के अधिक संख्या वाले आगार के निर्वाचन में जो लोग मत देने के अधिकारी होते हैं वे ही इन सीनेट के सदस्यों के निर्वाचन में भाग ले सकते हैं।

सीनेट के सदस्यों को प्राप्त सुविधायें—प्रारम्भ में जब संघ में केवल १३ ही उपराज्य थे सीनेट के सदस्यों की संख्या २६ थी किन्तु उपराज्य की संख्या के बढ़ने से सीनेट के सदस्यों की संख्या भी बढ़ती गई और इस समय ४८ उपराज्यों से ९६ सीनेट के सदस्य चुने जाते हैं। सीनेट के सदस्य ६ वर्ष तक सदस्य बने रहते हैं, प्रति दो वर्ष बाद एक-तिहाई सदस्य हट जाते हैं। अतएव सीनेट सर्वदा जीवित रहती है। सीनेट के सदस्यों को प्रतिनिधियों के समान ही ७५०० डौलर का पारिश्रमिक मिलता है। उनको प्रतिनिधियों के समान ही बोलने की स्वतंत्रता और पकड़े जाने से मुक्ति मिलती रहती है। "वे धन कमाने के लिये किसी सरकारी विभाग (Executive Depart-

* फैडरलिस्टः अध्याय ५२

ment) में वकालत नहीं कर सकते। वे संयुक्त राज्य के किसी सरकारी पद पर नियुक्त नहीं किये जा सकते जिसका वेतन उस समय बढ़ाया गया हो जब वे सीनेट के सदस्य थे *। यदि कोई सीनेटर (सीनेट का सदस्य) ऐसे किसी सरकारी पद को स्वीकार कर लेता है तो उसे घटे हुये वेतन पर काम करना पड़ता है।

सभापति—संयुक्त राज्य का उप-प्रेसीडेंट (Vice President) अर्थात् उपाध्यक्ष जिसको सीधे जनता चुनती है सीनेट का सभापति होता है। किन्तु निर्णायक मत (Casting Vote) देने के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकार या शक्ति उसे नहीं होती। उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में सभापति का आसन ग्रहण करने के लिये सीनेट आपस में से ही किसी सदस्य को अनुपस्थिति भर के समय के लिये सभापति चुन लेती है। यह अस्थायी सभापति (President Pro Tempore) उपाध्यक्ष के बराबर ही वेतन पाता है। सीनेट के नये निर्वाचित सदस्यों को उपाध्यक्ष ही शपथ दिलवाता है। क्योंकि एक बार में किसी उपराज्य से दो में से केवल एक सीनेटर ही नया चुना जा सकता है, शपथ लेते समय पूर्व सीनेटर नये सीनेटर को उपाध्यक्ष की मेज के पास ले जाता है। कभी कभी पूर्व सीनेटर और नये सीनेटर में बड़ा वैरभाव रहता है, वैयक्तिक और राजनीतिक भी, जिससे वे आपस में एक दूसरे का अभिवादन भी नहीं करते।

सीनेट की शक्तियाँ—सीनेट की शक्तियां बड़ी विस्तृत हैं। यह प्रतिनिधि-आगार से अधिक शक्तिशाली है। सीनेट निर्बन्धकारी, कार्यकारी व न्यायकारी तीनों प्रकार की सत्ता का उपभोग करती है। निर्बन्धकारी आगार की स्थिति में यह प्रतिनिधि-आगार के बराबर ही शक्तिशाली है। अन्तर केवल इतना ही है कि मुद्रा-विधेयक निचले आगार में ही प्रारम्भ होता है, सीनेट में नहीं हो सकता। कार्यकारी क्षेत्र में प्रेसीडेंट जिन समझौतों व संधियों को करता है वे सीनेट के दो-तिहाई मताधिक्य से स्वीकृत होनी चाहिये। सीनेट ने जो सब से महत्वपूर्ण संधियां उपोद्बलित (ratified) की और जिनसे संसार का ध्यान आकर्षित हुआ वे थीं जो अस्त्र-परिसीमन कांफ्रेंस के परिणाम स्वरूप हुई। चतुर्शक्ति संधि (Four Power Pact) भी ऐसी ही संधि थी जिसका सीनेट ने उपोद्बलन किया। सीनेट ने प्रेसीडेंट विलसन के उस प्रस्ताव को रद्द कर दिया था कि अमरीका राष्ट्र-संघ League of

* दी अमरीकन गवर्नमेन्ट, पृ० ३२१

Nations) की सदस्यता स्वीकार करले और उस विशेष अवसर पर सीनेट ने अपनी कार्यकारिणी सत्ता का प्रेसीडेंट के विरुद्ध प्रदर्शन किया। जिन संघ-सरकार के अफसरों की प्रेसीडेंट नियुक्ति करता है उनकी नियुक्ति में सीनेट की सम्मति लेना आवश्यक है। इन कार्यकारी शक्तियों को सीनेट में विहित करने को ठीक ठहराते हुये वाइकाउन्ट ब्राइस ने कहा है "वैदेशिक नीति का परिचालन व नियुक्ति करने का अधिकार ऐसे प्रेसीडेंट के सुपुर्द करना खतरे से खाली न होगा जो चार वर्ष तक अपने पद से हटाया नहीं जा सकता, जिसके मंत्री धारा सभा में नहीं बैठते और उसको उत्तरदायी नहीं होते। न ये शक्तियां ऐसी अल्पजीवी और बहुसंख्यक संस्था को सुपुर्द की जा सकती थी जैसा कि प्रतिनिधि-आगार है जो राष्ट्र को पर्याप्त रूप में उत्तरदायी नहीं बन सकता और जो अपनी कड़ी कार्य नियमावलि के कारण विधेयकों पर व दूसरी समस्याओं पर इतनी अच्छी तरह वाद-विवाद नहीं कर सकता जिससे जनता व देश को उनका स्पष्ट ज्ञान हो जाय" *। न्यायकारी सत्ता-धारी होने के नाते सीनेट न्यायालय के रूप में संघ सरकार के अफसरों पर लगाये हुये अभियोगों की जांच करती है। सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख न्याया-धीश पर व अन्य न्यायाधीशों पर लगाये गये अभियोग की जांच भी सीनेट ही करती है। अब तक सीनेट ने ऐसे नौ अभियोगों की जांच की है जिनमें प्रेसीडेंट एन्ड्रू जौन्सन और न्यायाधीश सैमूअल चेज़ के अभियोग भी शामिल हैं। ये दोनों जांच के पश्चात् मुक्त कर दिये गये। जार्ज वाशिंगटन ने एक बार सीनेट को वह तश्तरी बताया था जिसमें प्रतिनिधि आगार में पकाई हुई चाय ठंडी होती है।

सीनेट सबसे शक्ति शाली ऊपरी आगार है—कुछ लोग अमरीकन सीनेट को दुनियां का सबसे शक्तिशाली ऊपरी आगार बताते हैं क्योंकि सीनेट को उन बहुत सी बातों के करने का अधिकार हैं जो न हाउस आफ लार्ड्स (House of Lords) कर सकता है न फ्रांस की सीनेट या स्विस-सीनेट कर सकती है। अमरीका की सीनेट की शक्ति और प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया जाता है "कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें प्रैसीडेंट और सीनेट बिना प्रतिनिधि आगार की सम्मति से कर सकते हैं या प्रतिनिधि आगार व सीनेट प्रैसीडेंट की सम्मति के बिना कर सकते हैं किन्तु वह बातें अपेक्षाकृत बहुत थोड़ी हैं जिन्हें प्रैसीडेंट और प्रतिनिधि-आगार बिना सीनेट की सम्मति

* मौडर्न डैमोक्रेसीज़, पुस्तक २, पृ० ६६

के कर सकते हैं" *। सीनेट की उपयोगिता का वर्णन करते हुये राजनीतिज्ञ ब्राइस ने लिखा है: "यह प्रतिनिधि-आगार से अधिक परिवर्तन-विरोधी नहीं है, इसमें २० वर्ष पहिले की अपेक्षा धनी व्यक्तियों की संख्या कम है और अब इसे धनी वर्ग से सहानुभूति नहीं रह गई है। इसके सदस्यों की संख्या कम होने के कारण जहां योग्य व्यक्तियों को इसमें आकर अपनी सामर्थ्य व योग्यता दिखाने व ख्याति प्राप्त करने का अधिक अवसर मिलता है, वहां यह सरकार के शासन-यंत्र के परिचालन में स्थिरता भी लाती है क्योंकि इस के अधिकतर सदस्य चार या छः वर्ष तक अपने स्थानों पर सुरक्षित रहने से लोक-आवेगों से जल्दी ही चंचल नहीं होते। इसमें चाहे कुछ भी दोष हों किन्तु इसका अस्तित्व अपरिहार्य है। [१]

यह बात निस्सन्देह है कि सीनेट ने कई राष्ट्रचेताओं को जन्म दिया है। संयुक्त-राज्य अमरीका के कई व्यक्ति प्रेसीडेंट होने से पूर्व सीनेट में सदस्य रह चुके थे। इनमें मुनरों, जैकसन, हैरीसन पीअर्स, हार्डिंग के नाम उल्लेखनीय हैं।

सीनेट अपनी कार्यप्रणाली स्वयं निर्धारित करती है—अपना कार्य करने के लिये सीनेट ने स्वयं अपने नियम बना रखे हैं। विभिन्न प्रस्तावों व विधेयकों पर विचार करने के लिये सीनेट की स्थायी समितियाँ हैं जिनकी संख्या १५ है। प्रत्येक समिति में बहुसंख्यक दल के ही लोग अधिक संख्या में रहते हैं। कौन व्यक्ति सदस्य बनाये जायेंगे यह प्रत्येक दल की गुप्त समिति (caucus) निश्चत करती है। सीनेट का सदस्य जितनी देर चाहे सीनेट में बोल सकता है। संयुक्त-राज्य अमरीका की सीनेट ही दुनियाँ में ऐसी धारा-सभा है, जहाँ वाक्स्वतंत्रता पर कुछ भी रोक नहीं है। सीनेटर जब एक बार बोलने खड़ा होजाता है तो वह जब तक बोलना चाहे बोल सकता है वह दूसरे सीनेटर को अपनी वक्तृता में हाथ बटाने को कह सकता है और उसकी वक्तृता समाप्त होने के पश्चात् वह फिर अपनी वक्तृता जारी रख सकता है। कभी कभी चमड़े जैसे मजबूत फेफड़े वाले सीनेटरों ने इस अधिकार का ऐसा उपयोग किया है कि सत्र की समाप्ति के समय जिस योजना पर बोलना आरम्भ किया उस पर इतनी देर तक बोले कि

---

* दी अमरीकन गवर्नमेन्ट पृ० ३१७

[१] मौर्डन डेमौक्रेसीज़ पुस्तक २ पृ० ६६

सत्रावसान होने से वह योजना वहीं समाप्त हो गई *। जब कोई सीनेटर किसी योजना के विरुद्ध होता है तो वह इसी अधिकार का प्रयोग कर उसे समाप्त कर देता है। अल्प-संख्यक दल प्रायः यही तरीका काम में लाता है। इसको फिलीबस्टर (Filibuster) कहते हैं। एक समय सीनेटर स्मूर जो ऊटा उपराज्य (Utah) का प्रतिनिधि था, बिना अपनी मेज़ से हटे ही सारी रात बोलता रहा। एक दूसरे अवसर पर टैक्साज़ का सीनेटर शैफर्ड राष्ट्र-संघ (League of Nations) के कार्य का निरीक्षण करते हुये ६ घंटे और ५० मिनट तक बोलता रहा और "इतने समय तक वह न बैठा न आराम किया, यहां तक कि पानी तक न पीया"[१]। सन् १९०८ में विसकोंसिन के सीनेटर ला फौलिट और दूसरे सीनेटरों ने एल्डरिच मुद्रा सम्बन्धी विधेयक (Currency Bill) का ऐसा विरोध किया कि सीनेट की बैठक २९ मई की दोपहर को आरम्भ होने के पश्चात् ३० घंटे तक चलती रही। वाक्-स्वातंत्र्य के इस दुरुपयोग के होते हुये भी (यदि हम इसे दुरुपयोग कहें) सीनेट ने इस नियम को अभी तक बदलने का प्रयत्न नहीं किया है और इस अधिकार को अक्षुण्ण रखा है। साधारणतया सीनेट की बैठकों में दर्शकों के लिये कोई बाधा नहीं होती। किन्तु प्रायः महत्वपूर्ण शासन कार्य होने पर गुप्त बैठकें भी होती हैं जिनमें सामान्य जनता को जाने की आज्ञा नहीं होती।

सीनेट में बीते हुए दिनों के बहुत से स्मृति चिन्ह अभी तक रहते आरहे हैं। बहुत दिनों पहिले सीनेटरों ने जो मेजें काम में लाईं थीं उन्हें कुछ सीनेटर अब भी गर्व के साथ प्रयोग में लाते हैं। उन दिनों सभापति की मेज पर सूंघनी की डिबिया रखी जाया करती थी। वह डिबिया अब भी वैसे ही रखी जाती है हालांकि उसे अब कोई काम में नहीं लाता। इसी तरह पहिले स्याही सुखाने वाले कागज का आविष्कार न होने से रेत की डिबिया सीनेटरों की मेजों पर रखी जाती थी। ये अब भी उसी तरह वहां मिलेगी। यद्यपि वे अब प्रयोग में नहीं लाईं जाती।

सीनेट में एक और अद्भुत प्रथा प्रचलित हैं वह यह है कि सीनेटर को आज्ञा मांगने का अधिकार है कि उसकी लिखी हुई वक्तृता जिसका एक शब्द भी सीनेट में न पढ़ा गया हो, कांग्रेस के आलेखों में इस रूप में शामिल कर दी जाय मानों वह सीनेट में पढ़ी गई हो कुछ सीनेटर तो इस

---

* फौर्म एण्ड फंकशन्स आफ अमरीकन गवर्नमेंन्ट, पृ० २६४-२३५

[१] दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ३२४

लिखित पर न बोली पर हुई वक्तृता में प्रशंसा सूचक क्षेपकों तक को उस जगह लिख देते हैं जहां वे समझते हैं कि श्रोता यदि वक्तृता को सुनते तो करतल-ध्वनि आदि में प्रशंसा करते, जिससे वह वक्तृता वास्तव में बोली हुई प्रतीत होने लगती है। दुनिया में किसी और देश की धारा सभा में ऐसी प्रथा प्रचलित नहीं मिलेगी। ऐसी लिखित वक्तृता यदि लेख के रूप में किसी समाचार पत्र या पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी होती है तो वह सीनेट के आलेख में शामिल नहीं की जा सकती है। सन् १९२६ के फरवरी मास में सीनेटर एमकैलर (Mckeller) ने यह चाहा कि विश्व-युद्ध ऋण समझौते पर लिखा उसका लेख आलेख में शामिल कर लिया जाय। सभापति ने इस पर आपत्ति की और प्रश्न किया किया कि क्या सीनेटर ने स्वयं उस लेख को लिखा है। सीनेटर ने उत्तर में कहा कि यह सही है कि लेख उसने ही लिखा है। इस पर सभापति ने कहा कि "अतएव सीनेट के नियमों के अनुसार सभापति की समझ में यह आता है कि सीनेटर के बिना पढ़े हुए इसे छापा नहीं जा सकता"।*

कांग्रेस का प्रभाव—राजनीतिज्ञ ब्राइस ने कांग्रेस के महत्व के बारे में यह संक्षिप्त वर्णन दिया है। "यह वह उपद्रवकारी व जल्दबाज संस्था सिद्ध नहीं हुई जिसका विधान निर्माताओं को भय बना हुआ था: इसमें आवेगों की आंधी बहुत कम उठती है। उपद्रव आदि के दृश्य तो देखने में ही नहीं आये। राजनीतिक दलों का अनुशासन कठोर रहता है। मित्रता का वातावरण सदा बना रहता है, कार्य प्रणाली की अवज्ञा नहीं की जाती और इने-गिने व्यक्तियों के हाथ में शक्ति रहती है। यह असाधारण रूप से निर्वाचकों और विशेष कर विभिन्न राजनीतिक दलों की इच्छाओं को जानने व उन्हें पूरी करने को उत्सुक रहती है।" [१] इस कथन के होते हुए भी यह सच है कि प्रखर बुद्धि वाले व्यक्ति कांग्रेस में निर्वाचित होने को उत्सुक नहीं रहते। इसका एक विशेष कारण यह है कि अमरीका में ऐसे व्यक्तियों के लिये दूसरे अधिक आकर्षक कार्यक्षेत्र खुले हैं जहां वे अपनी प्रतिभा का उपयोग कर सकते हैं। लोक यात्रा के जितने विभिन्न मार्ग अमरीका में हैं, स्यात् और किसी देश में न मिलेंगे जिनमें महत्वाकांक्षी सामर्थ्यवान व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति कर सकते हैं। प्रचुर धन राशि लाने वाले औद्योगिक

---

* दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ३२०

[१] मौर्डन डैमौक्रेसीज़, खं० २, पृ० ६७

व्यवसाय, अच्छी फीस देने वाला वकीलों का कार्य व विश्व-विद्यालयों के ऊँचे पद जहाँ युवकों को मार्ग दिखलाने में ही अपने जीवन का श्रेय समझने वाले व्यक्तियों को ख्याति प्राप्त होती है, जीवनयापन के ये कतिपय साधन प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिये प्रचुरमात्रा में उपलब्ध है।

संघ कार्यकारिणी

विधान में यह लिखा हुआ है कि "कार्यकारिणी शक्ति संयुक्त राज्य अमरीका के प्रैसीडेन्ट में विहित रहेगी। वह चार वर्ष तक अपने पद पर स्थित रहेगा।" दिन प्रतिदिन के व्यवहार में शासन विभागों के अध्यक्ष ही शासन कार्य करते हैं। कांग्रेस इन शासन विभागों को जन्म देती हैं और उन पर अपना नियन्त्रण रखती है।

प्रैसीडेन्ट पद के लिये योग्यतायें—प्रैसीडेन्ट पद के उम्मेदवार में कुछ योग्यताएँ होना आवश्यक हैं। ये विधान के अनुच्छेद की धारा के ५वें पैरा में दी हुई हैं। जिसमें लिखा है कि "कोई भी व्यक्ति जो इस विधान के अङ्गीकार होने के समय संयुक्त राज्य अमरीका का नागरिक नहीं है प्रैसीडेन्ट के पद के योग्य न समझा जायगा। न वह व्यक्ति इसके योग्य समझा जायगा जो ३५ वर्ष की आयु का न हो और १४ वर्ष तक संयुक्त राज्य अमरीका का निवासी न रह चुका हो।" इन योग्यताओं के अतिरिक्त इस पद के लिये उम्मेदवार देखते समय राजनीतिक दल ऐसे व्यक्ति को ही छांटते हैं जो अधिक से अधिक मतदाताओं को अपने पक्ष में करने में सफल हो सकता हो। "इसलिये वह उम्मेदवार ऐसा होना चाहिए जो सामाजिक जीवन के किसी क्षेत्र में सफल कार्य सिद्ध हुआ हो, चाहे कांग्रेस में, किसी उपराज्य के गवर्नर के पद पर, किसी बड़े नगर के मेयर के पद पर, मंत्रिपद पर, स्यात् राजदूत या न्यायाधीश के पद पर या वह एक असाधारण ख्याति प्राप्त पत्रकार रहा हो।"*

प्रैसीडेंट के पद की अवधि—एक प्रेसीडेंट का कार्यकाल ४ वर्ष है। विधान में एक ही व्यक्ति के पुनर्निर्वाचन के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है। किन्तु संयुक्त-राज्य के प्रथम प्रेसीडेंट जार्ज वाशिंगटन तथा टौमस जैफरसन ने यह प्रथा चला दी थी कि एक ही व्यक्ति का प्रैसीडेंट के पद के लिये एक बार ही पुनर्निर्वाचन हो सकता है। सन् १९४० तक कोई भी व्यक्ति लगातार दो बार प्रेसीडेन्ट न चुना गया था। सन् १८७५ में जनरल ग्रांट तीसरी बार चुने

* मौडर्न डैमोक्रेसीज़, पुस्तक पृ० ७२

जाने के लिये कुछ कुछ इच्छुक था परन्तु प्रतिनिधि आगार ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास करके उस इच्छा की जड़ ही खोद दी: "इस सभा को समझ में प्रेसीडेन्ट वाशिंगटन व अन्य संयुक्त-राज्य के प्रेसीडेन्टों ने प्रेसीडेन्ट के पद से दूसरे कार्यकाल से पश्चात् अवकाश लेने का जो उदाहरण रखा था वह सर्वमान्य होकर हमारी प्रजातंत्र शासन प्रणाली का ऐसा अंग बन चुका है कि इस चिरकाल सम्मानित प्रथा के प्रतिकूल चलना अविवेकपूर्ण, देशप्रेम के विरुद्ध और हमारी स्वतंत्र संस्थाओं के लिये भयपूर्ण होगा"। थियोडोर रूसवैल्ट (Theodore Roosevelt) लगातार तीसरी बार निर्वाचन के लिये खड़ा हुआ किन्तु उसके प्रतिद्वन्दी उम्मेदवार ने उसको निर्वाचन में सफल न होने दिया। किन्तु सन् १९४० में फ्रैंकलिन रूसवैल्ट (Franklin D. Roosevelt) जिसका कार्यकाल सन् १९४१ में समाप्त हो रहा था, यूरोपियन युद्ध-जनित विपत्ति-पूर्ण अन्तःराष्ट्रीय स्थिति के कारण तीसरी बार प्रेसीडेन्ट निर्वाचित हो गया और सन् १९४४ में वह चौथी बार निर्वाचित हुआ क्योंकि दूसरा महासमर समाप्त नहीं हुआ था और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति गंभीर और जटिल थी। इस प्रकार प्रचलित प्रथा पर आघात लगा, प्रेसीडेन्ट का कार्यकाल ३६६ दिन वाले वर्ष के पश्चात् आने वाले वर्ष की २० जनवरी की दोपहर को समाप्त होता है। यह दिनांक शासन-विधान के १८ वें संशोधन से निश्चित हुई थी।

निर्वाचन कैसे होता है—प्रेसीडेन्ट का निर्वाचन सीधे जनता नहीं करती किन्तु प्रेसीडेन्ट-निर्वाचक करते हैं। इन प्रेसीडेन्ट-निर्वाचकों को ३६६ दिन वाले वर्ष के दिसम्बर मास में प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार के दिन जनता स्वयं चुनती है। किन्तु प्रेसीडेन्ट के चुनाव की लड़ाई पांच छः मास पूर्व मई या जून से ही आरम्भ हो जाती है। दुनियां में यह सब से बड़ी राजनीतिक लड़ाई समझी जाती है। फिर भी "अमरीकन राजकीय जीवन की यह विशेषता है कि पूर्व शासक के आसन छोड़ने और नये शासक के आसनारूढ़ होने से अशान्ति की एक लहर भी नहीं उठती"। इसका कारण यह है कि अमरीकन जनता शलाका की संदूक (Ballot Box) की विजय को शान्ति पूर्वक शिरोधार्य कर लेती है।

प्रैसीडेंट निर्वाचकों का चुनाव—प्रेसीडेन्ट-निर्वाचकों के चुनाव की तिथि से कुछ मास पूर्व राजनीतिक दल सारे देश में अपना प्रचार आरम्भ कर देते हैं। वे गत ग्रीष्म-ऋतु में प्रेसीडेन्ट व उप-प्रेसीडेन्ट के पदों

के लिये अपने अपने उम्मेदवार निश्चित कर चुके होते हैं। नवम्बर मास में प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार के दिन सब मतधारक व्यक्ति अपने अपने उपराज्य में एकत्रित होकर इन निर्वाचकों के चुनाव के लिये अपना मत देते हैं। इस निर्वाचन में उम्मेदवारों की योग्यता पर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता केवल उनका किस दल से सम्बन्ध है इसी का ध्यान रखा जाता है। मतधारक अपने अपने झुकाव के अनुकूल रिपब्लिकन (Republican) या डैमोक्रेट (Democrat) दल के उम्मेदवारों को निर्वाचक बनाने के लिये अपना मत देते हैं। किसी उपराज्य से चुने जाने वाले प्रेसीडेन्ट-निर्वाचकों की संख्या उस उपराज्य के प्रतिनिधि आगार में बैठने वाले निवासी व सीनेट में भेजे हुये प्रतिनिधियों (सीनेटरों) की संख्या के योग के बराबर होती है।

प्रैसीडेंट और उप-प्रैसीडेंट का निर्वाचन—ये प्रैसीडेंट-निर्वाचक दिसम्बर मास के दूसरे बुधवार के बाद आने वाले सोमवार के दिन अपने अपने उपराज्य की राजधानी में एकत्रित होकर प्रेसीडेंट व उप प्रेसीडेंट चुनने के लिये अपना मत देते है। इस निर्वाचन के परिणाम के सम्बन्ध में तीन प्रमाण पत्र तैयार किये जाते हैं, एक जिले के न्यायालय में रख दिया जाता है। दूसरा सीनेट के प्रैसीडेंट को डाक से भेज दिया जाता है और तीसरा उसी को पत्रवाहक के द्वारा भेजा जाता है। इसके बाद ६ जनवरी को सीनेट व प्रतिनिधि-आगार की संयुक्त बैठक में काँग्रेस का अधिवेशन होता है। सीनेट का सभापति उन प्रमाण पत्रों को खोलता है। तब दोनों आगारों से दो दो व्यक्ति इन्हें गिनने के लिये नियुक्त किये जाते हैं। जो उम्मेदवार सब प्रैसीडेंट-निर्वाचकों का मताधिक्य प्राप्त करते हैं वे प्रेसीडेंट और उप-प्रैसीडेंट घोषित कर दिये जाते हैं। इन निर्वाचकों की संख्या ५३१ है इसलिये जिस प्रैसीडेंट पद के उम्मेदवार को या उप-प्रेसीडेंट के पद के उम्मेदवार को २६६ या अधिक मत मिल जाते हैं, वह प्रैसीडेंट या उपप्रैसीडेंट चुन लिया जाता है। किन्तु यदि इतने मत पाने वाला कोई उम्मेदवार न हो तो प्रथम अधिकतम मत पाने वाले उम्मेदवारों में से प्रतिनिधि-आगार एक को प्रैसीडेंट चुन लेता है। इसी प्रकार सीनेट उप-प्रैसीडेंट को चुनती है। इस चुनाव में उप राज्य के सब प्रतिनिधियों को एक ही मत देने का अधिकार होता है और जो उम्मेदवार बहु संख्यक उप-राज्यों के मत प्राप्त करता है वह प्रैसीडेंट चुन लिया जाता है। यदि प्रतिनिधि-

आगार ४ मार्च तक किसी को प्रैसीडेंट नहीं चुन पाता तो पूर्व उप-प्रैसीडेंट अपने आप प्रैसीडेंट बन जाता है और जो उप प्रैसीडेंट के पद का उम्मेदवार इस पद के चुनाव में अधिकतम मत प्राप्त करे वह सीनेट द्वारा उप-प्रैसीडेंट घोषित कर दिया जाता है।

इस प्रणाली से यह स्पष्ट है कि प्रैसीडेंट या उप-प्रैसीडेंट (अथवा-अध्यक्ष या उपाध्यक्ष) के चुनाव के लिये प्रैसीडेंट-निर्वाचकों का मताधिक्य ही आवश्यक है, प्रजा के प्राथमिक मतदाताओं का मताधिक्य होना आवश्यक नहीं है। सन् १८७६ में हेज (Hayes) और सन् १८८८ में हरिसन (Harrison) प्रेज़ीडेंट-निर्वाचकों के बहुमत से चुने गये थे किन्तु उनके विरोधी टिल्डैन और क्लीविलैण्ड को प्रजा का बहुमत प्राप्त था। प्राथमिक मतदाताओं ने अधिक संख्या में इन को चुनना चाहा था किन्तु प्रैसीडेंट-निर्वाचकों की अधिक संख्या ने हेज और हैरीसन को पसन्द किया। प्रैसीडेंट की मृत्यु होने पर उसके पदत्याग करने पर या हटाये जाने पर उप-प्रैसीडेंट (उपाध्यक्ष) अपने आप प्रैसीडेंट बन जाता है। यदि ऐसे अवसर पर उप-प्रैसीडेंट भी इस योग्य न हो कि प्रैसीडेंट बना दिया जाय, उसके पदत्याग करने से मृत्यु होने से, अस्वस्थ या हटाये जाने से, तो सेक्रेटरी आफ स्टेट (Secretary of State) अन्तरिम प्रैसीडेंट बन जाता है। यदि वह यह कार्यभार नहीं ले सकता तो युद्ध-सेक्रैटरी प्रैसीडेंट का पद ग्रहण करता है इसी क्रम से एटौरनी जनरल (Attorney-General) अर्थात् महा प्रभिकर्ता, पोस्टमास्टर जनरल, नौसेना-सेक्रेटरी, गृह सेक्रेटरी आवश्यता पड़ने पर पद के लिये नियुक्त होते हैं" *।

शपथ—निर्वाचन समाप्त होने के पश्चात् अभिषेयक के लिये प्रैसीडेंट को एक जलूस के साथ ले जाया जाता है। उसे यह शपथ लेनी पड़ती है "मैं यह शपथ लेता हूं (या प्रतिज्ञा करता हूं) कि मैं प्रैसीडेंट के कार्य को निष्ठा पूर्वक करूंगा और अपनी सारी योग्यता से संयुक्त-राज्य के विधान को बनाये रखूंगा उसकी रक्षा करूंगा और उसकी रक्षा के लिये प्रयत्न करूंगा"

प्रैसीडेंट का वेतन—प्रेसीडेन्ट को एक लाख डौलर का वार्षिक वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष यात्रा खर्च के लिये ५०,००० डौलर, ३६००० डौलर लेखन सामग्री, तार टैलीफोन आदि के लिये और ३००० डौलर छपाई आदि के लिये दिया जाता है। प्रेसीडेन्ट के रहने के

* स्टेट : पैरा १३३३ (१६०० का संस्करण)

व्हाइट हाउस (White House) नाम का एक सुन्दर भवन मिला हुआ है जो १७ एकड़ भूमि घेरे हुये है और जिस पर प्रतिवर्ष १२४००० डौलर खर्च किया जाता है। एक विशेष पुलिस का जत्था, जिसमें तीन अफसर व ३० सिपाही रहते हैं, ७५००० डौलर के खर्च पर रक्षा के लिये रखा जाता है। तिस पर भी उसके उच्चपद के कारण प्रेसीडेन्ट का व्यक्तिगत खर्च इतना अधिक है कि जब वह व्हाइट हाउस को छोड़ता है तो उसमें प्रवेश करने के समय की अपेक्षा अधिक निर्धन होकर जाता है ।

प्रैसीडेंट अत्यन्त लोकप्रिय व्यक्ति होता है—साधारणतया प्रेसीडेन्ट राज्य का सब से अधिक लोकप्रिय व्यक्ति होता है। दुनियां में जितने चित्र उसके लिये जाते हैं उतने किसी दूसरे व्यक्ति के नहीं लिये जाते। कई बार वह चलित चित्रों में भी दिखाई देता है। यह कहा जाता है कि वाशिंगटन नगर के एक दुकानदार के पास प्रेसीडेन्ट विलसन के चित्र की १५००० प्रतिलिपियां थी। प्रेसीडेन्ट की डाक का थैला दुनियां के किसी भी दूसरे शासनाध्यक्ष की डाक की अपेक्षा अधिक भारी होता है। प्रतिदिन पत्रों व तारों की संख्या ३००० से ४००० तक होती है जिनमें से केवल २०० ही प्रेसीडेन्ट तक पहुंचते हैं शेष उसका सेक्रेटरी देखता है। "स्यात् दुनियां में ऐसा कोई दूसरा अफसर न होगा जिसके पास उतने प्रार्थना पत्र आते हों जितने अमरीका के प्रेसीडेन्ट के पास आते हैं। प्रायः इनमें मनचले लेखकों की हास्यपूर्ण चुटकियाँ भी रहती हैं। सामान्यतः प्रैसीडेंट को अनेकों वस्तुएं भेंटस्वरूप प्राप्त होती हैं। प्रेसीडेन्ट हार्डिंज़ की मृत्यु के पश्चात् व्हाइट हाउस के तीन कमरों में भरी हुई ऐसी उपहार-वस्तुओं को बांधने में और भेजने में दो सप्ताह का समय लगा। प्रेसीडेन्ट से मिलने वालों की संख्या बहुत अधिक होती है। प्रेसीडेन्ट हार्डिंज़ के समय में १५०,००० व्यक्ति प्रेसीडेन्ट से मिलने आये। "यदि प्रेसीडेन्ट यह चालाकी न सीखे कि मिलने वाले व्यक्ति को अवसर न दे कर वह स्वयं उसका हाथ पहिले पकड़ ले तो निश्चिय ही हस्तमर्दन करते करते उसकी बांह सूज जाय" *।

सब से शक्तिशाली शासनाध्यक्ष—"अमरीका के प्रेसीडेन्ट पर जितनी जिम्मेदारियां हैं और उसकी जितनी शक्ति है उतनी इस देश में या दुनियां के किसी दूसरे देश में किसी व्यक्ति की नहीं हैं। वह दुनियां के शासकों में सब से प्रथम है"। [१] प्रेसीडेन्ट की शक्ति का उपर्युक्त वर्णन

---

* हैमकिनः दी अमरीकन गवर्नमेंट पृ० ५६–५७

[१] उसी पुस्तक में पृ० ५१

बिलकुल सत्य है, इसमें यदि कोई अपवाद है तो वे कम्पनियों के डाइरेक्टर हैं जिन्होंने पिछले कुछ वर्षों से अपने हाथ में बहुत शक्ति केन्द्रित कर रखी है। प्रेसीडेन्ट की शक्ति में विशेषता इस बात की है कि उसका वैधानिक महत्व बहुत है और उसे लोक समर्थन प्राप्त रहता है। एक समय जो यह भय हुआ था कि प्रेसीडेन्ट स्यात् निरंकुश शासक बन जाय, वह निर्मूल सिद्ध हुआ है ".....राष्ट्र के मन में अमरीकन शासन के सिद्धांतों की जड़ें इतनी गहरी जमी हुई हैं कि उनको उल्लंघन करने की थोड़ी सी भी प्रवृत्ति से विरोध की आंधी चलने लगेगी"*। ब्रिटिश सम्राट अपनी सरकार का दिखावटी अध्यक्ष है। उसका कोई भी कार्य तब तक वैध नहीं होता जब तक उसका समर्थन मंत्रियों में से कोई न करे। वह राज्य करता है पर शासन नहीं करता। उसके बारे में यह कहा जाता है कि वह कोई अपराध नहीं कर सकता। इस कथन में बहुत कुछ सच्चाई है क्योंकि शासन के मामले में वह स्वयं कोई आज्ञा नहीं देता। सब शासन शक्ति मंत्रिमण्डल के पास रहती है। इस मंत्रिमण्डल का अध्यक्ष प्रधान मंत्री होता है और वही प्रमुख शासक रहता है। सम्राट का व्याख्यान भी मंत्रिमण्डल तैयार करता है जिसमें इसकी शासन नीति रहती है। फ्रांस का प्रेसीडेन्ट भी अपनी सरकार का दिखावटी अध्यक्ष है, वहां भी सारी शासन शक्ति मंत्रिपरिषद् के हाथ में रहती है। फ्रांस का प्रेसीडेन्ट न राज्य करता है न शासन करता है। इसके विपरीत संयुक्त-राज्य अमरीका के प्रेसीडेन्ट के पास कई शक्तियां हैं और वह वास्तव में शासन करता है।

विधायिनी शक्तियां (Legislative Powers)—प्रेसीडेंट अपने संदेशों द्वारा कांग्रेस के सम्मुख निर्बन्ध सम्बन्धी प्रस्ताव रखता है। पहिले प्रेसीडेन्ट प्रतिनिधि-आगार और सीनेट की संयुक्त बैठक में स्वयं जाकर कांग्रेस को अपना संदेश दिया करता था। बाद में यह प्रथा छोड़ दी गई और केवल यह संदेश उसकी ओर से पढ़ कर सुना दिया जाने लगा। किन्तु प्रेसीडेन्ट विलसन ने स्वयं जाकर अपने संदेश देने की प्रथा को फिर चालू किया। यह संयुक्त अधिवेशन प्रतिनिधि-आगार के भवन में होता है। "कभी कभी प्रेसीडेंट का संदेश किसी ऐसे सिद्धांत का प्रतिपादन कर देता है कि वह मौलिकतत्व के रूप में मान्य हो जाता है और इस प्रकार वह सिद्धांत या नियम देश के विधान का वैसा ही भाग बन जाता है मानों विधान में विधि-पूर्वक उसे शामिल कर लिया गया हो"[१]। जो सिद्धांत सुनगे सिद्धांत

* मोडर्न डैमौक्रेसीज़ पु० २, पृ० ७६

[१] दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ६५

(Monroe Doctrine) के नाम से प्रसिद्ध है उसकी सृष्टि प्रेसीडेन्ट मुनरो के द्वारा इसी प्रकार हुई थी। प्रेसीडेन्ट मुनरो ने यह घोषणा की कि "संयुक्त-राज्य अमरीका पश्चिमी गोलार्द्ध में यूरोपियन राज्यों के आधिपात्य और प्रभाव का बढ़ना सहन नहीं करेगा" प्रेसीडेन्ट के ये संदेश कांग्रेस के निर्बन्ध-कार्य पर बड़ा प्रभाव डालते हैं, विशेष कर उस समय जब प्रेसीडेन्ट के ही दल का कांग्रेस में बहुमत होता है।

प्रैसीडेंट का प्रतिषेधात्मक अधिकार (Veto Power)—प्रैसीडेंट कांग्रेस के बनाये हुए विधेयकों को रद्द भी कर सकता है। जो विधेयक दोनों आगारों से स्वीकार हो चुका हो, उसे प्रेसीडेंट अपनी विरुद्ध युक्तियों सहित दस दिनों के भीतर लौटा सकता है। इस प्रकार लौटाया हुआ विधेयक तबतक कानून नहीं बन सकता जब तक कि दोनों आगारों में दो तिहाई मत से वह फिर जैसे का तैसा पास न हो जाय। यदि दो तिहाई मत से वह पास न हो तो वह रद्द समझा जाता है। प्रेसीडेंट कांग्रेस का अतिरिक्त अधिवेशन कर सकता है।

प्रतिषेधकात्मक अधिकार (Veto Power) **का महत्व**—उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रेसीडेंट की विधायिनी शक्ति ७१ प्रतिनिधियों और १५ सीनेटरों के बराबर है (प्रतिनिधियों की संख्या ४३५ और सीनेट की ९६ है)। ऐसी शक्ति न ब्रिटिश सम्राट के पास में है न फ्रांस के प्रेसीडेंट के पास। अमरीका के प्रेसीडेंट ने सन् १७८९ व १९२५ के बीच में ६०० बार इस शक्ति का प्रयोग किया। राजनीतिज्ञ हरमन फाइनर ने प्रतिषेधात्मक शक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है: "यह ऐसी शक्ति है जिसमें कुछ व्यय नहीं करना पड़ता और जिसके प्रयोग करने में सफलता की आशा तो रहती है, दण्ड का भय नहीं रहता। देश में व्यवस्थापिका सभा में लड़ी हुई व्यवस्था सम्बन्धी लड़ाई को कांग्रेस का कोई भी दल केवल इतने समय में हार सकता है जितनी देर में प्रेसीडेंट 'नहीं' व कुछ दूसरे व्याख्यात्मक शब्द लिखने में लगावे। इस 'नहीं' का उल्लंघन पुनर्विचार और दो तिहाई मत से ही हो सकता है जो कांग्रेस में काम की बहुलता और दोनों आगारों में दलों की विभिन्नता के कारण सम्भव नहीं है।" * असल में प्रेसीडेंट ने व्यवस्थापन कार्य का बहुत कुछ नेतृत्व अपने हाथ में कर लिया है।

कार्यकारिणी शक्तियां—शासन-क्षेत्र में प्रेसीडेंट की शक्तियां बड़ी

---

* थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेंट पृ० II, पृ० १०३३

विस्तृत हैं। वह राष्ट्र का प्रमुख मजिस्ट्रेट अर्थात् शासक है। वह सेना का मुख्य सेनापति है। विदेशी राजदूतों को वह ही स्वीकार करता है तथा अपने राजदूतों की नियुक्ति भी वह ही करता है। वह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की भी नियुक्ति करता है। उसका यह प्रमुख काम रहता है कि वह यह देखे कि संयुक्त-राज्य अमरीका के कानूनों का भली भान्ति पालन हो रहा है। सीनेट की अन्तिम स्वीकृति से वह संधि कर सकता है। पर-राष्ट्र विभाग का वह अकेला कर्त्ता धर्ता हैं। इस नियंत्रित शक्ति का वह इस प्रकार प्रयोग कर सकता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय जिससे कांग्रेस को सिवाय प्रेसीडेंट की नीति का समर्थन करने के और कोई चारा ही न रह जाय। शासन सम्बन्धी नियुक्तियों में उसे सीनेट से सलाह लेनी पड़ती है। व्यवहार में वह जिस उपराज्य में नियुक्ति करनी होती है उसी के सीनेटरों से सलाह लिया करता है। किन्तु जब सीनेट की बैठक न हो रही हो, उस समय अस्थायी रूप से रिक्त पदों के भरने का उसे पूरा अधिकार है। ऐसी नियुक्तियां वह ऐसे ढंग से कर सकता हैं कि सीनेट की इच्छा के विरुद्ध भी वह नियुक्ति पक्की बनी रहे। रिक्त पदों पर वह अपने मित्रों व राजनीतिक दल के साथियों को नियुक्त कर अपने पक्षानुराग का खुले तौर पर परिचय देता है। पदाधिकारियों की नियुक्ति की शक्ति का प्रायः ऐसा उपयोग किया गया है कि घरेलू व वैदेशिक मामलों में प्रैसीडेंट की ही मन चाही बात होती है। छोटे पदाधिकारियों को प्रैसीडेंट बिना सीनेट से पूछे ही नियुक्त कर सकता है। क्षमा दान करने की शक्ति प्रैसीडेंट ही को दी हुई है और प्रैसीडेंट ही छुट्टियां घोषित करता है।

स्वविवेकी शक्तियाँ—(Discretionary powers) प्रेसीडेन्ट को कुछ ऐसी शक्तियां भी प्राप्त हैं जिनका उपयोग वह अपने विवेक से ही करता है। इन शक्तियों के बल पर प्रैसीडेंट किन्हीं व्यक्ति या व्यक्ति समूहों को किसी काम के करने से रोक सकता है या किसी काम को करने के लिये उन्हें बाध्य कर सकता है। इस शक्ति के प्रयोग में न्यायालय भी रुकावट नहीं डालते। असल में न्याय-सत्ता और प्रेसीडेंट में मुश्किल से कभी टक्कर होती है। प्रैसीडेंट की शक्ति इतनी अधिक है कि एक अवसर पर जब प्रधान न्यायाधीश मार्शल ने प्रैसीडेंट जैकसन की इच्छा के प्रतिकूल एक निर्णय दिया तो प्रेसीडेंट जैकसन ने कहा "मार्शल ने अपना निर्णय दे तो दिया पर वह उसको कार्यान्वित भी करें।" इससे दिखला दिया कि न्यायालय भी अपने निर्णय को कार्यान्वित कराने में प्रेसीडेंट पर ही निर्भर हैं।

प्रैसीडेन्ट पर अभियोग—प्रैसीडेंट पर दुर्व्यवहार व महापराध का अभियोग लगाया जा सकता है। प्रतिनिधि आगार में अभियोग लगाने का निर्णय पहिले होता है। तब सीनेट में यह अभियोग लगाया जाता है और उसकी जाँच की जाती है। प्रेसीडेंट को अपराधी ठहराने और दण्ड देने के लिये सीनेट का निर्णय दो तिहाई बहुमत से होना चाहिये।

प्रैसीडेंट की मंत्रिपरिषद्—प्रैसीडेंट की मंत्रिपरिषद में शासन विभागों के अध्यक्ष होते हैं जिनको प्रैसीडेंट सीनेट की सम्मति से नियुक्त करता है। "ये लोग प्रैसीडेंट के ऐसे निकटस्थ सहायक होते हैं कि यदि सीनेट प्रैसीडेंट से चुने हुये व्यक्तियों को नियुक्त करने से इन्कार करे तो यह केवल खेदजनक भद्दी बात ही न हो वरन् यदि ऐसे विरोधों की संख्या अधिक हो तो शासन सत्ता ही छिन्न भिन्न हो जाय।"* प्रैसीडेंट की मंत्रिपरिषद के सदस्यों को वैसी ही शक्तियां प्राप्त नहीं है जैसी ब्रिटिश या फ्रांस की पार्लियामेंटरी या अन्य मंत्रिपरिषद के सदस्यों को मिली हुई रहती हैं। इसका कारण यह है कि अमरीकन कार्यकारिणी शक्ति केवल प्रेसीडेंट में ही विहित है। यह एकात्मक कार्यकारिणी (Unitary Executive) है और इसीलिये फ्रांस व इंगलैण्ड की अनेकात्मक कार्यकारिणी से भिन्न है। अमरीका की कार्यकारिणी स्थायी (चार वर्ष के समय तक) अध्यक्षात्मक (Presidential) कार्यकारिणी है जो व्यवस्थापक मण्डल को उत्तरदायी नहीं है जैसी कि संसदात्मक कार्यकारिणी (Parliamentary Executive) होती हैं। अमरीका के प्रैसीडेंट को यह अधिकार है कि वह अपने मंत्रियों की राय को पलट सकता है। वह प्रायः ऐसा करता भी है क्योंकि उनकी सलाह सिफारिश के रूप में होती है। इसका स्पष्टीकरण एक उदाहरण द्वारा किया जा सकता है एक बार अब्राहम लिंकन ने अपना एक प्रस्ताव अपने सात मंत्रियों की परिषद के सामने रखा और उन सब ने उसका विरोध किया। परन्तु स्वयं उसने उसका समर्थन किया। उसने चुपचाप यह निर्णय दिया: "इस निर्णय के पक्ष में हां कहने वाला १ और विपक्ष में न कहने वाले ७ मत है इसलिये हां की जीत हुई"

सचिव प्रैसीडेंट के मातहत हैं—प्रैसीडेंट के मंत्री जो सेक्रेटरी कहलाते हैं दोनों आगारों में से किसी में भी उपस्थित नहीं हो सकते। वे वहां जाकर अपनी नीति पर लगाये हुये दोषारोपण का प्रतिवाद भी नहीं कर

* थौमी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट पृ० ०४४

सकते। वे प्रैसीडेंट के ही आश्रित रहते है और यदि वे किसी बात में प्रैसीडेंट से सहमत नहीं होते तो अधिक से अधिक यही कर सकते हैं कि अपना पद त्याग कर दें। प्रैसीडेंट रूसवेल्ट के समय में ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे। युद्ध के समय प्रैसीडेंट की शक्ति अधिनायक (Dictator) जैसी हो जाती है। उस समय उसे सेक्रेटरियों से परामर्श लेने की आवश्यकता भी नहीं रहती। किन्तु बहुत कुछ प्रैसीडेंट के व्यक्तित्व पर निर्भर रहता है। यदि वह सुदृढ़ व्यक्ति नहीं है तो वह कुछ नहीं कर पाता, और यदि वह दृढ़ इच्छा वाला होता है तो अपने देश में सर्वशक्तिमान् बना रहता है।

ये सेक्रेटरी विभिन्न शासन विभागों के अध्यक्ष बना दिये जाते हैं। इस समय इन विभागों की संख्या १० है। मंत्रिपरिषद् में इन दसों के उपाध्यक्ष १० सेक्रेटरी हैं। स्टेट डिपार्टमेंट, अर्थात् परराष्ट्र विभाग, अर्थ विभाग, युद्ध-विभाग, न्याय-विभाग, डाक-विभाग, नौसेना-विभाग, गृह-विभाग, कृषि-विभाग, व्यापार विभाग और श्रम-विभाग, ये दस विभाग हैं। इन शासन विभागों के बारे में शासन-विधान में कुछ भी नहीं कहा गया है किन्तु ये कांग्रेस के एक्टों से स्थापित हुये हैं।

संघ-न्याय मण्डल

सर्वोच्च न्यायालय—संयुक्त-राज्य अमरीका के शासन विधान की तीसरी धारा से न्याय शक्ति "सर्वोच्च न्यायालय या उन अन्य न्यायालयों में जो कांग्रेस समय समय पर स्थापित करे" विहित है। संघ न्यायमण्डल की चोटी पर जो सर्वोच्च न्यायालय है उसकी शक्ति व अधिकार विधान से ही उसे प्राप्त हैं। इस लिये वह व्यवस्थापक मण्डल या कार्यकारिणी सत्ता के आधीन नहीं है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति—इसमें सन्देह नहीं कि इन सर्वोच्च न्यायाधीशों को प्रैसीडेंट ही नियुक्त करता है, किन्तु इनको चुनने में प्रैसीडेंट दलबन्दी की नीति का अनुकरण नहीं करता। "इनकी नियुक्ति में राजनीति का बहुत थोड़ा पुट रहता है। अपने दल का ध्यान न रखते हुये प्रैसीडेंट रिक्त स्थान की पूर्ति करने के लिये सबसे योग्य व्यक्ति को ही नियुक्त करता है" *। सर्वोच्च न्यायालय के आधीन संघ विचरण शील (Circuit Courts) न्यायालयों व जिले के न्यायालयों के न्यायाधीशों को प्रैसीडेंट महा प्राभिकर्ता (Attorney General) की सिफारिश पर नियुक्त करता है। महाप्राभिकर्ता

* दी अमरीकन गवर्नमेंन्ट, पृ० २६५

स्वयं सम्बन्धित उपराज्य के सीनेटरों से सलाह लेता है। इससे स्पष्ट है कि संघ-न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति में यह ध्यान रखा जाता है कि वे विधि-निर्बन्ध के सम्बन्ध में अनुपम योग्यता रखते हों। "अयोग्य व्यक्तियों को न्यायधीश के पद पर नियुक्त करने से नियुक्त करने वाली सत्ता को जितना दोष मिलता है उतना किसी और शासन की गलती से नहीं मिलता"*। शासन विधान में यह भी कहा गया है कि "न्यायाधीश, चाहे वे सर्वोच्च न्यायालय के हों अथवा छोटे न्यायालयों के, जब तक सदाचारी रहेंगे अपने पदों पर काम करते रहेंगे और निश्चित समय पर अपनी सेवाओं के लिये जो परिश्रमिक पावेंगे वह उनके सेवा-काल में कम नहीं किया जा सकता"। अतएव, इन परिस्थितियों में संयुक्त-राज्य का सर्वोच्च न्यायालय, प्रैसीडेंट कांग्रेस और उपराज्यों के कार्यों को वैध अवैध ठहराने की अपनी शक्ति के कारण और उस स्थायित्व के कारण जिसके होने से उसे बदलते हुये लोकमत का मुंह नहीं देखना पड़ता, संयुक्त-राज्य की शासन प्रणाली की बहुत सी बातों में एक बहुत प्रभावशाली हेतु बना हुआ है और दुनियां का सब से बड़ा न्याय संगठन है।[1]

सर्वोच्च-न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र—संघ-न्यायसंगठन के अधिकार-क्षेत्र के सम्बन्ध में शासन-विधान का लेख यह है: "इस शासन-विधान के सम्बन्ध में या संयुक्त-राज्य अमरीका के कानून और इन के आधीन जो संधियां हुई हों या भविष्य में हों उनके अन्तर्गत कानूनों के प्रावधानों के सम्बन्ध में या प्राकृतिक न्याय के बारे में उठने वाले प्रश्नों में, राजदूतों से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों में, सामुद्रिक व नौसेना के अधिकार-क्षेत्र में उठने वाले प्रश्नों में, उन झगड़ों में जहाँ संयुक्त-राज्य वादी या प्रतिवादी हो, दो या दो से अधिक उपराज्यों के बीच झगड़ों में, एक उपराज्य और दूसरे उपराज्य के नागरिकों के झगड़े में, विभिन्न उपराज्यों के नागरिकों के झगड़े में, एक ही उपराज्य के दो नागरिकों को विभिन्न उपराज्यों से मिले अनुदान सम्बन्धी झगड़ों में और एक उपराज्य व उसके नागरिकों तथा दूसरे किसी विदेशी राज्य व उसके नागरिकों में जो झगड़ा हो, इन सब बातों में संघ-न्यायमण्डल को निर्णय करने का अधिकार प्राप्त रहेगा"। विधान ने सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक व पुनर्विचारक अधिकार-क्षेत्र की सीमा भी इस प्रकार निश्चित

---

* फौर्म एण्ड फंकशन्स आफ अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २८३

[1] दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २८५

कर दी है: "राजदूतों व किसी उपराज्य से सम्बन्धित मुकदमे सर्वोच्च न्यायालय में ही प्रारम्भ होंगे। अन्य उपर्युक्त मुकदमों में सर्वोच्च न्यायालय में कानून की व्याख्या व वास्तविकता के प्रश्न पर केवल पुनर्विचार हो सकता है उन अपवादों को छोड़ कर और उन नियमों के अनुसार जिन्हें कांग्रेस निश्चित कर दे"।

प्रारम्भिक अधिकार-क्षेत्र—जैसे उन मुकदमों में जहाँ किसी संघ या उपराज्य के कानून के वैध-अवैध होने का प्रश्न हो सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं वैसे ही जिन मुकदमों में संघ सरकार या कोई उपराज्य सरकार एक पक्ष में हो सर्वोच्च न्यायालय में ही वे प्रारम्भ होते हैं। संयुक्त-राज्य का सबसे बड़ा पुनर्विचारक न्यायालय होने के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय की वास्तविकता महत्ता और अनुपमता इस बात में है कि वह शासन-विधान की व्याख्या, करता है और उसकी मान्यता को सुरक्षित रखता है। किन्तु अपनी इस शक्ति के प्रयोग का सूत्रपात वह न्यायालय स्वयं नहीं करता। इसका प्रयोग तभी होता है जब उसके सामने कोई एक ऐसा निश्चित उदाहरण उपस्थित किया जाता है जिसमें संघ सरकार या उपराज्य-सरकार के किसी कानून की वैधानिकता पर आपत्ति की गई हो। ऐसे मुकदमे का निर्णय देने में यह न्यायालय शासन-विधान को सर्वोपरि मान कर उसकी कसौटी पर दूसरे कानूनों को वैध अवैध ठहराता है। "प्रेसीडेन्ट या कांग्रेस का कोई भी कार्य तभी वैध समझा जाता है जब उस कार्य का सम्बन्ध लिखित शासन-विधान के किसी वाक्य या शब्द से हो। प्रेसीडेन्ट विलसन ने अपने पब्लिक पेपर्स (Public Papers) में सच कहा है कि "हमारे न्यायालय हमारी विधान-प्रणाली के आधीन हैं, वे हमारे राजकीय विकास के साधन हैं, हमारा राज्य-संगठन कुछ ऐसा विशेष रूप से वैधानिक प्रकृति का है कि हमारी राजनीति वकीलों पर निर्भर रहती है। अतएव प्रत्येक मुकदमें में निर्णय देते समय सर्वोच्च-न्यायालय को पहिले यह निश्चय करना पड़ता है कि जिस शक्ति को कांग्रेस अपनी कहती है वह विधान के किसी प्रावधान से जोड़ खाती है या नहीं और उसके बाद यह देखा जाता है कि उस प्रावधान का कितना विस्तृत अर्थ लगाया जा सकता है"।

विधान की व्याख्या—विधान ने कांग्रेस की शक्तियों को पूरी तरह से निर्धारित कर दिया है किन्तु अनुच्छेद १ की ८ वीं धारा के १८ वें पेरा (Para) से न्यायाधीशों को व्याख्या करने के हेतु विस्तृत क्षेत्र छोड़ दिया

गया है जिसके द्वारा उनको यह निर्णय करने की स्वतंत्रता मिली हुई है कि क्या कांग्रेस से अध्यर्थित शक्ति "पूर्वोक्त शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक है"। इन शब्दों की व्याख्या करने में ही न्यायाधीशों ने निहित शक्तियों के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस निहित शक्तियों के सिद्धांत (Doctrine of Implied Powers) के आधार पर अमरीका में संघ सरकार की शक्तियों को बहुत बढ़ा दिया गया है। न्यायाधीश टैनी (Tany) ने सर्वोच्च न्यायालय के सम्बन्ध में कहा था "यदि हम इस न्यायालय में विधान के शब्दों को नवीन अर्थ देने में स्वतंत्र हैं तो ऐसी व्याख्या से किसी भी शक्ति को संघ सरकार के सुपुर्द किया जा सकता है और उसे उपराज्यों से छीना जा सकता है।"

निहित-शक्तियों के सिद्धान्त को प्रतिपादित कर संघ सरकार को शक्तिशाली बनाने का श्रेय सब से अधिक न्यायाधीश मार्शल को दिया जाता है जो बहुँत समय तक न्यायाधीश के पद पर बना रहा और जो "उसी युग की उत्पत्ति था जिस में शासन विधान का निर्माण हुआ और विधान निर्माताओं के अभिप्राय से भली भांति परिचित था। जब किसी प्रश्न पर कहीं भी बचत न दिखाई दी थी तो वह यह बतला सकता था कि देश के हित में किस प्रकार बाल की खाल निकाली जा सकती है और उसने उसके समकालीनों की राय में अपने निर्णयों में विधान के स्पष्ट शब्दों की भी खूब खींचा-तानी की।"* अब भी अमरीका के वकील उन निर्णयों को उतना ही पुनीत समझते हैं जितना विधान की धाराओं को क्योंकि दोनों का ही तात्पर्य एक है। वह तात्पर्य यह है कि राष्ट्र को चिरंजीवी और सुदृढ़ बनाया जाय*।"

राजनीतिज्ञ हरमन फाइनर ने अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के बारे में एक बार कहा था कि ऐसे कर्तव्यों वाला ऐसा न्यायालय राजनीति शास्त्र अमरीका की अपनी निराली देन है जो इसके विरोध में पाई जाती है। इसमें बढ़कर, यह वह सीमेंट है जिससे संघराज्य का भवन सुदृढ़ बना रहता है।"[१]

एक दूसरे लेखक हैस्किन (F. J. Haskin) ने भी न्यायालय के बारे में कहा है कि "यह न्यायालय राज्य संगठन यन्त्र की चाल को ठीक रखने वाला चक्र है। जब लोकमत के झकोरों के सरकार के दूसरे

* दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २८७

[१] थ्यौरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट, पु० १ पृ० ३०६

विभाग इधर उधर झटके खाते हैं यह अपनी न्याय-संतुलन बनाये रखता है सब समय और सब परिस्थितियों में इसका कर्तव्य विधान की सर्वोच्चता की रक्षा करना है। इस कर्तव्य का निबाहना लोकहित के लिये अत्यन्त आवश्यक है।*

सर्वोच्च न्यायालय की बनावट—सर्वोच्च न्यायालय में एक प्रमुख न्यायाधीश जिसका वार्षिक वेतन १४५०० डालर है और ८ उप-न्यायाधीश जिनमें से प्रत्येक को १४००० वार्षिक वेतन दिया जाता है होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय में काम करने के अतिरिक्त ये ९ न्यायाधीश उन ९ भ्रमणशील न्यायालयों के काम की देखभाल करते हैं जो कांग्रेस ने स्थापित किये हैं। संयुक्त-राज्य का सारा भूमि प्रदेश ९ क्षेत्रों में बांट कर इन ९ भ्रमणशील न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र में कर दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश यदि चाहें तो ७० वर्ष की आयु में अवकाश प्राप्त कर सकते हैं, यदि उस समय तक वे दस साल तक अपने पद पर काम कर चुके हों। मुकदमों को सुनने के लिये सब न्यायाधीश मिल कर बैठते हैं। सब के बीच में प्रमुख न्यायाधीश बैठता है। मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार और शुक्रवार के दिन मुकदमों की सुनवाई होती है। शनिवार के दिन न्यायाधीशों के परामर्श के लिये निश्चित है जब वे आपस में मिलकर सब मुकदमों पर विचार व बहस करते हैं और विचार करने के पश्चात् पृथक होकर अपने अपने सुपुर्द किये हुये मुकदमे का निर्णय लिखते हैं। निर्णय पहिले ही विचार करने के फलस्वरूप बहुमत से या सर्वसम्मति से ही निश्चित रहता है। अगले सोमवार के दिन न्यायालय भवन में सब के सामने ये निर्णय सुना दिये जाते हैं।

न्यायालय की साधारणतया अक्टूबर से लेकर जून तक बैठक हुआ करती हैं। दुनियां में ऐसी कोई संस्था नहीं है जो इतने प्रभावपूर्ण ढंग से अपना कार्य करती हो जितना अमरीका का सर्वोच्च न्यायालय करता है। इसकी बैठकों में समय-निष्ठा और अनुपम शान्ति देखने योग्य है।

भ्रमणशील न्यायालय—कांग्रेस ने सर्वोच्च न्यायालय के आधीन निम्नकोटि की संघ अदालतें भी स्थापित की हैं। इस समय ऐसे न्यायालय १० हैं। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में से प्रत्येक एक भ्रमणशील न्यायालय के प्रबन्ध की देख भाल करता है। प्रत्येक भ्रमणशील न्यायालय में दो न्यायाधीश होते हैं जिनको ७००० डालर प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। ये

---

* दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २९६

दौरा करने वाले न्यायाधीश कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त जिस जिले में न्यायालय की बैठक होती है वहां एक जिला न्यायाधीश भी होता है जो भ्रमणशील न्यायालयों की बैठकों में भाग लेता है यदि उसके निर्णय के विरुद्ध न्यायालय में अपील न सुनी जा रही हो। ऐसा होते समय वह दौरा करने वाले न्यायाधीशों के साथ बैठकर अपील नहीं सुनता।

जिला-न्यायालय—न्यायमण्डल की तह में ८० जिला-न्यायालय हैं जिनमें एक या अधिक जिला न्यायाधीश होते हैं। इनका वेतन ६००० डालर होता है। हर एक उपराज्य में कम से कम एक जिला-न्यायालय अवश्य होता है। किन्हीं में एक से अधिक भी न्यायालय होते हैं किन्तु एक ही जिले में दो या अधिक उपराज्यों का प्रदेश शामिल नहीं किया जाता। कुछ इने गिने मामलों को छोड़कर जिनमें सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार है सब मामले जिले के न्यायालयों में ही पहिले आरम्भ होते हैं। इनके निर्णय के विरुद्ध अपील भ्रमणशील न्यायालयों और अन्त में सर्वोच्च न्यायालय में हो सकती है। किन्तु अपराध के मुकदमों में जिनमें फांसी का दण्ड दिया जा सकता है जिले के न्यायालय से सीधी सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

अन्य न्यायालय—उपर्युक्त न्यायालयों के अतिरिक्त दो प्रकार के न्यायालय और भी होते हैं, एक अध्यर्थन-न्यायालय (Court of Claims) और दूसरे निराक्रम्य करके पुनर्विचारक न्यायालय (Court of Customs & Appeal)। पहिले में सरकार के प्रति व्यक्तियों के दावे के मुकदमे सुने जाते हैं और दूसरे में निराक्रम्य-कर सम्बन्धी कानून के अन्तर्गत मुकदमे निबटाये जाते हैं। ये न्यायालय साधारण मुकदमों से कोई सरोकार नहीं रखते।

सन् १६११ से पूर्व न्यायमण्डल की कार्य-प्रणाली व कार्यवाही से सम्बन्धित कानून में ६००० धारायें थीं किन्तु उसी साल इनकी फिर से छान बीन की गई और उनमें से असंगत धाराओं को निकाल कर उन्हें एक संक्षिप्त पर स्पष्ट रूप दे दिया गया।

शासन-विधान का संशोधन—शासन-विधान के संशोधन में दो अवस्थायें होती हैं, एक प्रस्ताव और दूसरा उसका उपोद्बलन।

विधान के ५ वें अनुच्छेद के अनुसार संशोधन का प्रस्ताव निम्न-लिखित दो प्रकार से किया जा सकता है:—

(१) कांग्रेस स्वयं ही शासन-विधान में संशोधन का प्रस्ताव कर सकती

है यदि दोनों आगारों में पृथक पृथक दो तिहाई बहुमत उसकी आवश्यकता को स्वीकार करता हो।

(२) उपराज्यों की दो तिहाई संख्या की धारा-सभायें कांग्रेस से संशोधन की प्रार्थना कर सकती हैं। ऐसा किये जाने पर कांग्रेस को इन संशोधनों का प्रस्ताव करने के लिये एक सम्मेलन बुलाना पड़ता है।

किन्तु दोनों अवस्थाओं में संशोधन तभी वैध और लागू समझा जाता है जब या तो तीन चौथाई उपराज्यों की धारा सभाओं द्वारा वह उपोद्बलित अर्थात् स्वीकृत हो जाता है या तीन चौथाई संख्या के उपराज्यों में इस कार्य के लिये बुलाये हुये सम्मेलनों में वह स्वीकार हो जाता है।

उपर्युक्त संशोधन की रीति से स्पष्ट है कि संघ-सरकार और उपराज्य दोनों ही का विधान-संशोधन में हाथ रहता है। यह संशोधन रीति सहज-साध्य नहीं है। अतएव सन् १७८६ व १६३६ के बीच यद्यपि १६०० संशोधन-प्रस्ताव रखे गये किन्तु उनमें से केवल २१ संशोधन ही स्वीकृत हुये शेष निरर्थक होने से रद्द कर दिये गये *। इन २१ संशोधनों को तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं। पहिली श्रेणी में नागरिकों के अधिकार-सम्बन्धी संशोधन हैं (मूल विधान में ये अधिकार न रखे गये थे)। ये सन् १७६१ में किये गये प्रथम १० संशोधन हैं और १७६८ व १६०४ में किये गये ११ वें व १२ वें संशोधन हैं। दूसरी श्रेणी में, १३ वां (१८६५) संशोधन जिससे दास प्रथा का निषेध किया गया, १४ वां (१८६८) और १५ वां (१८७०) जिससे सब उपराज्यों में समान नागरिक अधिकार दिये गये। इनके द्वारा गृह युद्ध (Civil war) के वैधानिक परिणामों को लिखित रूप दिया गया। तीसरी श्रेणी में बचे हुये ६ संशोधन हैं जिनमें से सन् १६१३ का संशोधन कांग्रेस को प्रत्यक्ष कर लगाने व वसूल करने की शक्ति देता है, सन् १६१३ के दूसरे संशोधन ने सीनेटरों के निर्वाचन को प्रत्यक्ष लोकमत से होने वाला बना दिया, सन् १६१६ के संशोधन से मद्य बनाना, बेचना व संयुक्त-राज्य की सीमा के भीतर बाहर से मद्य मंगाने का निषेध किया गया, सन् १६२६ के संशोधन से स्त्रियों को मताधिकार दिया गया, सन् १६३३ के संशोधन से १६१६ के मद्य निषेध करने वाले संशोधन को समाप्त कर दिया गया और उसी साल के दूसरे संशोधन से प्रेसीडेंट व प्रतिनिधियों की अवधि-समाप्ति के दिनाङ्क निश्चित कर दिये गये।

---

* थियौरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट, पुस्तक १, पृ० १६५

संयुक्त राज्य के शासन-विधान में संशोधन करने की प्रणाली ऐसी है कि एक व्यक्ति भी संशोधन के कार्यान्वित होने में रुकावट डाल सकता है। उदाहरण के लिये यदि सीनेट में ९६ सदस्यों में से ८५ उपस्थित हों जिनमें से ५६ संशोधन के पक्ष में मत दें और २९ उसके विरुद्ध मत प्रकट करें तो वह संशोधन सीनेट में दो-तिहाई संख्या पक्ष में न होने से स्वीकार नहीं समझा जा सकता चाहे प्रतिनिधि आगार में वह दो-तिहाई मत से पास हो चुका हो।

संयुक्त-राज्य में राजनीतिक दल

संयुक्त-राज्य के राजनीतिक दलों की रचना, रूप व उद्देश्य इंगलैंड व अन्य देशों के दलों के उद्देश्यों से भिन्न हैं। इस भिन्नता को समझने के लिये इन दलों का संक्षिप्त इतिहास जानना सुविधाजनक होगा।

प्रारम्भ में संयुक्त-राज्य अमरीका में एक दल था जिसमें धनी मानी व्यक्ति थे जो राजा के प्रति निष्ठा रखने का दावा करते थे। दूसरा दल उन लोगों का था जो संख्या में बहुत अधिक थे किन्तु निर्धन व साधन-हीन थे और जो राजभक्ति के प्रतिकूल देश-भक्ति को उच्चतर मानते थे। इस दलबन्दी का स्वतंत्रता-युद्ध के पश्चात् अन्त हो गया। सन १७८७ में जब शासन-विधान बना तो दो शक्तिशाली दल बने, एक फैडरलिस्ट्स जो धनी मानी वर्ग में से थे और केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में थे और दूसरे डैमोक्रेट्स, जो उपराज्यों की सर्वाधिकारी सत्ता व उनके अधिकारों की प्रमुखता के समर्थक थे। ये लोग स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व का प्रचार करते थे। टौमस जैफरसन इस दल का नेता था। थोड़े ही समय के पश्चात् हैमिल्टन के नेतृत्व में फैडरलिस्ट्स दल जार्ज वाशिंगटन का सहयोग प्राप्त होने से अधिक शक्तिशाली हो गया।

कुछ समय पश्चात् दलबन्दी के आधार का रूप कुछ बदल गया। सन १८५६ में फडरलिस्ट्स, जो उस समय रिपब्लीकन नाम से कहलाने लगे, और डैमोक्रेट्स में बहुत ही उग्र विरोध हो गया। यह जानकर आश्चर्य होगा कि डैमोक्रेट्स दासप्रथा के समर्थक बने, उन्होंने अपने स्वतंत्रता समानता व भ्रातृभाव के सिद्धान्त को केवल गौरवर्ण जनता तक ही सीमित माना। इस दल में अधिकतर वे लोग थे जो दक्षिणी उपराज्यों में कपास आदि की कृषि करते थे। रिपब्लिकन दल की अधिक संख्या उत्तरी उपराज्यों में थी। डैमोक्रेटस ने कलहाउन के उस सिद्धान्त का समर्थन किया जिससे यह

माना जाता था कि किसी संघ शासन से उपराज्यों को स्वेच्छानुसार पृथक होने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। उन्होंने अब्राहम लिंकन की दास प्रथा-निवारण नीति का विरोध किया। गृह-युद्ध के सन् १८६१ में अन्त हो जाने से और उसके परिणाम स्वरूप विधान में संशोधन हो जाने से दास प्रथा का प्रश्न सर्वदा के लिये हल हो गया और इन दोनों दलों की विभिन्न नीति का यह आधार समाप्त हो गया।

इस समय रिपब्लीकन और डैमोक्रेट दो राजनीतिक दल हैं जिनमें से पहिला दल एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के बनाने के पक्ष में है। यहाँ यह बतलाना उचित होगा कि अमरीका में विभिन्न राजनीतिक दल बनने के लिये पर्याप्त मसाला नहीं है। पहिली बात तो यह है कि शासन विधान की भाषा इतनी स्पष्ट और उपराज्यों व केन्द्रीय सरकार में शक्ति-विभाजन के बारे में उसका मन्तव्य समझने में इतना सरल है कि राजनीतिक दलों के लिये कार्य-क्रम का कुछ मसाला बचता ही नहीं। विधान-संशोधन पेचीदा और कठोर होने से उसके आधार पर किसी राजनीतिक दल का सगठन सम्भव नहीं। दूसरे अभी संयुक्त-राज्य की आर्थिक, सांस्कृतिक व भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि कोई महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्न नहीं उठते। वहाँ मुश्किल से कोई निर्धन भूखा वर्ग मिलेगा क्योंकि कृषि, उद्योग व व्यापार की पूंजी अधिकतर जन संख्या में बंटी हुई है। राष्ट्र की अधिकतर जनता मध्यवर्ग की है। संसार की दूसरी राष्ट्र-शक्तियाँ, यूरोपियन, जापान आदि, संयुक्त-राज्य से इतनी दूर हैं कि अमरीका को इनसे डरने की कोई सम्भावना नहीं है, इस-लिये वैदेशिक नीति के आधार पर दलबन्दी नहीं हो सकती। उद्योग व व्यापार के लिये अब भी बड़ा विस्तृत क्षेत्र खुला पड़ा है और अधिकतर लोग उससे लाभ उठाने में व्यस्त हैं। अधिकतर लोग नौन-कनफौरमिस्ट्स (Non-Conformists) हैं इसलिये सांस्कृतिक विभिन्नता भी अधिक प्रखर नहीं है। सबसे अन्त में यह बात है कि शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त से राजनीतिक मतभेद का क्षेत्र बहुत संकुचित रह गया है।

इसलिये यह कथन चाहे कितना ही विपरीत क्यों न प्रतीत होता हो पर है यह सत्य कि अमरीकन राजनीतिक दलों के उद्देश्यों की विभिन्नता के हेतु संख्या में इतने कम हैं कि "अमरीका में एक ही राजनीतिक दल है जिसे रिपब्लीकन व डैमोक्रेटिक दल का संयुक्त दल कहा जा सकता है जो स्वभाव से व अधिकार संघर्ष से दो समान भागों में बटा हुआ है, एक भाग

रिपब्लीकन कहलाता है और दूसरा डैमोक्रैट।"* संयुक्त-राज्य के इतिहास में अधिकतर रिपब्लीकन दल ने निर्वाचनों में जीत पाई है और प्रेसीडेण्ट के पद पर उसी दल का प्रतिनिधि नियुक्त हुआ है। डैमोक्रेट दल का प्रभुत्व बहुत कम रहा है। राजनीतिज्ञ हरमन फाइनर ने इन दलों के कार्य व इनमें असमानता न होने के सम्बन्ध में कहा है "यह ध्यान देने योग्य बात है कि अमरीकन राजनीतिक दलों के बारे में जितना साहित्य है वह उनका महत्व दिखलाते समय यही कहता है कि ये दल मतधारकों को संगठित करते हैं और अपने उम्मेदवार खड़े करते हैं। कार्य-क्रम के मापदण्ड को और आदर्श के पालन को गौण मान कर इनका केवल साधारण सा वर्णन ही कर दिया जाता है। कुछ समय से अब आर्थिक संकट व समाजवाद के जाग्रत होने से राजनीतिक दलों में कुछ आर्थिक उग्र भेद उत्पन्न हो गये हैं जिसके फलस्वरूप समाजवादी दल का संगठन हो गया है। किन्तु यह अभी अधिक प्रभाव पूर्ण नहीं हुआ है। हालांकि यह समाजवादी दल या और छोटे मोटे दल बने रहें परन्तु अमरीकन राजनीति व निर्वाचनों पर इनका अधिक प्रभाव नहीं रहेगा। अतएव यह प्रतीत होता है कि दो-दल-प्रणाली (रिपब्लीकन व डैमोक्रेट) ही भविष्य में बहुत दिनों तक अमरीका में प्रभुत्व जमाये रहेगी।

पाठ्य पुस्तकें

Brogan, D. W.—The American Political System (London 1933)

Bryce, Viscount—Modern Democracies
Vol II pp. 3–140
,, ,, 2 Vol. (Macmillan 1907)

Finer Herman—Theory & Ptactice of Modern Government, Vol. I chs. VII, XI & XV, Vol II chs. XXIII

Hamilton, Jay & Madison—The Federalist (Especially Nos. I—XIV)

---

* थियोरी एण्ड प्रैक्टिस ऑफ मौडर्न गवर्नमेन्ट, पृ० ५३६

Haskin. F. J.—The American Government ch. I & XXII—XXVI

Hughes, C. E.—The Supreme Court of United State (N. Y. 1938)

Munro, W. B.—The Govermment of the United State (Macmillan 1937)

Newton. A. P.—Federal & Unified Constitutions pp. 66–94

Reed. T. H.—Form & Functions of American Government, chs. I.–IV.III. XI–XIII & XIX–XXIII

Sharma, B. M.—Federal Polity ch. II pp. 72-90 and Appendix A

Smallie, K.—The American Federal. System chs. I & III-IV

Wilson, Woodrow—The State (Chapters on Government of the United States)

अध्याय १७

संयुक्त राज्य अमरीका में उपराज्यों की सरकारें

"अमरीका के राजनीतिक इतिहास में उपराज्यों के शासन-विधान सब से प्राचीन हैं क्योंकि वे उन्हीं राजकीय उपनिवेश-चार्टरों के संशोधित व परिवर्तित रूप हैं जिनसे अमरीका में सब से प्रथम अंगरेजी बस्तियां स्थापित की गई थीं और जिनके द्वारा उनकी स्थानीय सरकारों का संगठन किया गया था जिनके ऊपर ब्रिटिश सम्राट और अन्तिमतः पार्लियामेंट का आधिपत्य था"।

(जेम्स ब्राइस)

उपराज्यों की उत्पत्ति व विकास—सन् १७८७ ई० में संयुक्त-राज्य अमरीका में १३ उपराज्य थे। ये वही उपनिवेश थे जिन्होंने ब्रिटिश सम्राट के आधिपत्य को मानने से इन्कार कर दिया और स्वतंत्रता-युद्ध में विजय प्राप्त की। धीरे धीरे इसके पश्चात् पश्चिम की ओर नई बस्तियां स्थापित हुईं जिससे नये उपराज्य बने जो सन् १७८७ के शासन-विधान के तीसरे अनुच्छेद के पैरा १ की तीसरी धारा के अनुसार संघ-राज्य में शामिल कर लिये गये। इस धारा से नये उपराज्यों के बनने का प्रावधान कर दिया गया था, शर्त केवल यह थी कि तत्कालीन स्थिति किसी उपराज्य की प्रदेशभूमि के विस्तार आदि में बिना कांग्रेस या उस उपराज्य की धारा सभा की सम्मति के कोई परिवर्तन न किया जायेगा। इस समय संयुक्त राज्य अमरीका के संघ राज्य में ४६ उपराज्य हैं। उनका शासन उनके निजी पृथक पृथक शासन-विधानों द्वारा स्थापित राज्य संगठनों के आधीन होता है। ये शासन-विधान लिखित हैं और इनका अस्तित्व राष्ट्रीय संघ-शासन-विधान पर निर्भर नहीं है किन्तु इनके आधारभूत सिद्धांत एक समान हैं जो इंगलैंड से बसने वाले अपने साथ लाये थे।

उपराज्यों के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख बातें—भूमि के विस्तार, जन-संख्या, भौगोलिक स्थिति और आर्थिक अवस्था में उपराज्यों में पारस्परिक विभिन्नता है। नीचे लिखी सारिणी में प्रत्येक उपराज्य (हवाई द्वीप के ४६वें

उपराज्य को छोड़ कर) का क्षेत्रफल, जनसंख्या व संघ में शामिल होने के समय के बारे में सूचना मिल सकती है:—

उपराज्य का नाम और उसके संगठन का वर्णन		वर्ग मीलों में क्षेत्रफल	सन् १६३० की जनसंख्या
अलाबामा	(१६१६)	५१,२७६	२,६४६,२४८
ऐरीज़ोना	(१६१२)	११३,८१०	४३५,५७३
आर्कनसास	(१८१३)	५२,५२५	१,८५४,४८२
कैलीफोर्निया	(१८५०)	१५५,६५२	५,६७७,२५१
कौलैरैडो	(१८७६)	१०३,६५८	१,०३५,७६१
कनैक्टीकट	(१७८८)	४,८२०	१,६०६,६३३
डैलावेयर	(१७८७)	१,६६५	२३८,३८०
फ्लोरीडा	(१८४५)	५४,८६१	१,४६८,२११
ज्योर्जिया	(१८८८)	५८,७२५	२,६०८,५०६
इदाहो	(१८६०)	८३,५५४	४४५,०३२
इल्योनिस	(१८१८)	५६,०४३	७,६३०,६५४
इन्डियाना	(१८१६)	३६,०४५	३,२३८,५०३
आइओवा	(१८४६)	५५,५८६	२,४७०,६३६
कनसास	(१८६१)	८१,७७४	१,८८३,६६६
कैंचुकी	(१७६२)	४०,१८१	२,६१४,५८६
लुईसियाना	(१८१२)	४५,४०६	२,१०१,५२३
मेन	(१८२०)	२६,८६५	७६७,४२३
मेरीलैंड	(१७८८)	६,६४१	१,६३१,५२६
मैसाच्यूटैस	(१७८८)	८,०३६	४,२४६,६१४
मिचीगन	(१८३७)	५७,४८०	४,८४२,३२५
मिनैसोटा	(१८५८)	८०,८५८	२,५६३,७५२
मिसिसिपी	(१८१७)	४६,३६२	२,००६,८२१
मिस्सोरी	(१८२१)	६८,७२७	३,६२६,३६७
मौन्टाना	(१८८६)	१४६,१३१	५३७,६०५
नैब्रास्का	(१८६७)	७६,८०८	१,३७७,६६३
नैवैदा	(१८६४)	१०६,८२१	६,०५८

उपराज्य का नाम और उसके संगठन का वर्णन		वर्ग मीलों में क्षेत्र फल	सन् १६३० की जनसंख्या
न्यू हैम्पशायर	(१७८८)	६,०३१	४६५,२५३
न्यूजर्सी	(१७८७)	७,५१४	४,०४१,३३४
न्युमैक्सिको	(१६१२)	१२२,५०३	४२३,३१७
न्यूयार्क	(१७८८)	४७,६५४	१२,५८८,०६६
नार्थ कैरोलीना	(१७८६)	४८,७४०	३,१७०,२७६
नार्थ डैकोटा	(१८८६)	७०,१८३	६८०,८४५
ओहियो	(१८०३)	४०,७४०	६,६४६,६६७
ओक्लाहामा	(१६०७)	६६,४१४	२,३६६,०४०
ओरीगन	(१८५६)	६५,६०७	६५३,७८६
पैंसिलवेनिया	(१८८७)	४४,८३२	६,६३१,३५०
रोड आइलैंड	(१७६०)	१,०६७	६८७,४६७
साउथ कैरिलीना	(१७८८)	३०,४५६	१,७३८,७६५
साउथ डैकोटा	(१८८६)	७६,८६८	६६२,८४६
टैनैसी	(१७६६)	४१,६८७	२,६१६,५५६
टैक्सास	(१८४५)	२६२,३६८	५,८२४,७१५
ऊटा	(१८६६)	८२,१८४	५०७,८४७
वरमोन्ट	(१७६१)	६,१२४	३५६,६११
विरजीनिया	(१७८८)	४०,२६२	२,४२१,८५१
वाशिंगटन	(१८८६)	६६,८३६	१,५६३,३६६
वर्जीनिया	(१८६३)	२६,०१२	१,७२६,२०५
विसकौन्सिन	(१८४८)	५५,२५६	२,६२६,००६
व्यौमिंग	(१८६०)	६७,५४६	२२५,५६५

उपराज्य शासन-विधान— संयुक्त राज्य के संघ शासन-विधान में केन्द्रीय राज्य संगठन की रचना व शक्तियों का वर्णन है। उसमें उपराज्यों के शासन-विधान के सिद्धांत नहीं दिये हुये हैं। इस संघ-शासन-विधान का

निर्माण उन १३ मूल-उपराज्यों के शासन-विधानों के प्रमुख सिद्धांतों के आधार पर हुआ था जो १७८७ के संगठन के सदस्य बने थे। अतएव उपराज्यों के शासन-विधान संघ-शासन-विधान से बिलकुल पृथक हैं। उनकी शक्ति का स्रोत पृथक पृथक उपराज्यों की जनता है। आस्ट्रेलिया व स्विटज़रलैंड में भी सदस्य-राज्यों के शासन-विधान संघ शासन-विधान में शामिल नहीं है और इसलिये उनका वैसा ही महत्व और स्वतंत्र अस्तित्व है जैसा अमरीकन उपराज्यों के शासन-विधानों का। इसके विपरीत, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका व रूस में संघ-शासन-विधान और उपराज्यों के शासन-विधान सब मिलकर एक शासन-विधान के रूप में हैं। भारतवर्ष के नये शासन-विधान में भी केन्द्रीय सरकार के संघात्मक राज्य संगठन व प्रांतों के राज्यसंगठन की रूप रेखा एक ही वैधानिक आलेख से निश्चित हुई है। अमरीकन उपराज्यों के शासन-विधान संघ-शासन विधान से पुराने हैं, इसलिये उनके आधार पर ही संघ-शासन-विधान की रचना भी हुई।

४८ उपराज्य शासन-विधान—संयुक्त राज्य अमरीका के प्रत्येक उपराज्य का अपना पृथक पृथक शासन-विधान है इसलिये ४८ विभिन्न उपराज्य शासन-विधान हैं जिन्हें अध्ययन करने के पश्चात् उपराज्यों के शासन-प्रबन्ध का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु उन सब में इतनी अधिक समानता है कि इन उपराज्यों के शासन-प्रबन्ध को समझने के लिये केवल उनकी सामान्य विशेषताओं को जानने से ही काम चल जाता है। इसका कारण जैसा राजनीतिज्ञ ब्राइस ने कहा है, यह है "कि ये सब प्राचीन अंगरेज़ी संस्थाओं की कुछ अधिक व कुछ थोड़ी मिलती हुई प्रतिलिपियां हैं। अर्थात् ये वे चार्टर-प्राप्त स्वायत्त-शासन करने वाली कम्पनियां हैं जो अंगरेजी स्वाभाविक प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर और अंगरेजी पार्लियामेंट-प्रणाली के उदाहरण को सामने रख कर ऐसे राज्यसंगठनों में विकसित हो गईं ज अठाहरवीं शताब्दी के इंगलैंड के राज्यसंगठन से मिलते जुलते थे"। जब ये राज्यसंगठन स्वतंत्र राज्य बन गये तब भी इन्होंने अपने मूल शासन विधानों की प्रमुख विशेषताओं को ज्यों का त्यों सुरक्षित रखा। उनमें केवल वही परिवर्तन किया जो उनकी नई कानूनी, वैधानिक और अन्तःराष्ट्रीय स्थिति के लिये आवश्यक था। जब संघ में नये उपराज्य बन कर शामिल हुये, प्रत्येक ने मूल १३ उपनिवेशों के शासन-विधानों के ढांचे को ही अपना लिया। "ऐसा करने के लिये उनका अधिक झुकाव इसलिये भी था क्योंकि प्राचीन

शासन-विधानों में उन्हें कार्यकारिणी, निर्बन्धकारिणी व न्यायकारिणी सत्ता का वह पृथकत्व देखने को मिला जो उस समय के राजनीति शास्त्र की दृष्टि से स्वतंत्र सरकार के लिये आवश्यक समझा जाता था। इस पृथकत्व सिद्धांत से ही उन्होंने आगे बढ़ने का निश्चिय किया"। *

उपराज्यों के शासन-विधानों की सामान्य विशेषतायें—शक्ति विभाजन के सिद्धांत के अतिरिक्त कुछ ऐसी बातें हैं जो इन सब शासन-विधानों में मिलती हैं। प्रत्येक उपराज्य में शासन-विधान जनता की देन है जिन्होंने कार्यकारिणी के अध्यक्ष को निर्वाचन करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा है। यह अध्यक्ष गवर्नर कहलाता है। शासन-विधान का संशोधन, लोकनिर्णय (Referendum), निर्बन्ध-उपक्रम (Initiative), और प्रत्याहरण (Recall), ये सब भी जनमत के आधीन हैं। प्रत्येक उपराज्य में एक निर्वाचित गवर्नर व कुछ प्रशासन-अधिकारी, द्विआगारिक व्यवस्थापक मण्डल, स्वतंत्र न्यायमण्डल और स्थानीय शासन संस्थायें हैं जैसे काउन्टी, नगर, ग्राम, जिनके कारण संयुक्त राज्य अमरीका को जनतंत्रात्मक राज्यों की गिनती में बड़ा उंचा स्थान प्राप्त है।

उपराज्य व्यवस्थापक-मण्डल

उपराज्य के राज्यसंगठन में व्यवस्थापक मण्डल सब से महत्वपूर्ण संस्था है। लगभग सब उपराज्यों में द्विआगारिक व्यवस्थापक-मण्डल हैं जिसके निचले आगार को प्रतिनिधि-आगार और ऊपरले आगार को सीनेट कहते हैं। केवल नैब्रास्का में एक वैधानिक संशोधन द्वारा यह निश्चय हुआ कि व्यवस्थापक मण्डल में ही एक आगार हो जिसके सदस्यों की संख्या ४३ हो, असल में द्विआगारिक व्यवस्थापक मण्डल की प्रणाली को उपराज्यों ने संघ शासन की नकल करके ही अपनाया। ऊपरले आगार के पक्ष में विधान-कार्य में जल्दबाजी के दोष को दूर रखने की जो दलील सामने उपस्थित की जाया करती थी वह अब अधिक महत्व नहीं रखती क्योंकि इस दोष को दूर रखने के लिये समाचार पत्रों का प्रभाव, किसी भी निर्बन्ध का तीन बार वाचन कर विचार करने की पद्धति, गवर्नर की अस्वीकार करने की शक्ति और लोकनिर्णय की पद्धति, ये सब पर्याप्त समझे जाते हैं।

---

* ब्राइस : अमरीकन कामनवैल्थ, पुस्तक १, पृ० ४७८

धारा सभा का निर्वाचन—दोनों आगार लोक-निर्वाचित संस्थायें होती हैं। इस निर्वाचन में सब नागरिक भाग ले सकते हैं। दुहरे प्रतिनिधित्व का दोष दूर रखने के लिये और दोनों आगारों के अस्तित्व की आवश्यकता दिखलाने के हेतु दोनों आगारों के निर्वाचन क्षेत्रों को भिन्न प्रकार से संगठित किया जाता है। सीनेट में काउन्टियों (Counties) से निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। चाहे उनकी जनसंख्या कितनी ही हो; किन्तु प्रत्येक काउन्टी के प्रतिनिधियों की संख्या एक समान होती है। निचले आगार के प्रतिनिधियों का निर्वाचन जनसंख्या के आधार पर विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों से होता है। इसलिये इस कथन में कुछ सत्य है कि सीनेट का भौगोलिक निर्वाचन होता है और प्रतिनिधि आगार का जन-संख्यात्मक। निचले आगार में अधिकतर ग्राम निवासी प्रतिनिधि हैं और नगरों की जनसंख्या बढ़ने से सीनेट में नगरवासी अधिक संख्या में हैं। निचला आगार सीनेट की अपेक्षा बड़ा होता है इसलिये वह सीनेट की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय रहता है।

व्यवस्थापक मण्डल की अवधि—यह अवधि भिन्न-भिन्न उपराज्यों में अलग अलग हैं। प्रायः सीनेट की अवधि निचले आगार से अधिक लम्बी होती है। सीनेट के कुछ सदस्यों के स्थान पर निश्चित काल के पश्चात् नये सदस्य आ जाते हैं किन्तु निचले आगार के सब प्रतिनिधि निश्चित समय के बाद फिर से नये चुने जाते हैं। बहुत से उपराज्यों में सीनेट के उम्मेदवारों को प्रतिनिधि-आगार के उम्मेदवारों की अपेक्षा अधिक आयु का होना पड़ता है।

व्यवस्थापक मण्डल का कार्य—सब उपराज्यों में व्यवस्थापक मण्डल के सदस्यों को एकसा ही वेतन मिलता है। कुछ उपराज्यों में धारा सभा की साल में दो बैठकें होती हैं, किन्हीं में साल में एक ही होती हैं। सदस्यों को सामान्य मुक्तियां, सुविधायें व अधिकार मिले हुए रहते हैं। प्रत्येक आगार का अपना अपना सभापति होता है और अन्य पदाधिकारी होते हैं जिनको आगार चुनता है। कोई विधेयक किसी भी आगार में आरम्भ किया जा सकता है किन्तु मुद्रा-विधेयक निचले आगार में ही आरम्भ हो सकता है। सीनेट मुद्रा-विधेयक में संशोधन कर सकती है। कोई योजना तभी आगार से स्वीकृत समझी जाती है जब उसके आगार में तीन वाचन हो जाते हैं। तब यह दूसरे आगार को भेज दी जाती है। यदि वह वहां स्वीकृत हो जाती है तो गवर्नर के हस्ताक्षर से कानून बन जाती है। यदि दोनों आगारों में तमभेद

होजाता है तो वह योजना अस्वीकृत समझी जाती है। दोनों आगारों से स्वीकृत योजना को गवर्नर अपनी आपत्तियों के साथ लौटा सकता है। इस प्रकार लौटाये जाने पर वह योजना तभी कानून बन सकती है जब वह दोनों आगारों में फिर से निश्चित मताधिक्य से पास हो जाय।

विधान संशोधन—संघ विधान के समान उपराज्यों के सब शासन शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त के आधार पर ही बने हैं। धारा सभा विधान में संशोधन भी कर सकती है केवल इन संशोधनों के लिये सामान्य मताधिक्य से कुछ अधिक मत पक्ष में होने चाहिये। किसी उपराज्य में गणपूरक के $\frac{2}{3}$ मताधिक्य से और कहीं आगार के कुल सदस्यों की दो-तिहाई संख्या से विधान में संशोधन हो सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विधान-संशोधन का प्रस्ताव तब तक स्वीकृत नहीं समझा जाता जब तक लोक-निर्णय से वह पास न हो। कोई भी उपराज्य अपने शासन-विधान में ऐसा संशोधन नहीं कर सकता जो राष्ट्रीय संघ-शासन विधान के प्रतिकूल हो।

उपराज्यों के व्यवस्थापक मण्डल की शक्तियां—यह पहिले बतलाया जा चुका है कि संघ सरकार की शक्तियां सीमित हैं और संघ-शासन-विधान उपराज्यों की शक्तियों की व्याख्या नहीं करता, इसमें केवल इतना ही कहा है गया है कि जो शक्ति निश्चितरूप से संघ सरकार को न दी गई हो, न स्पष्टतया उपराज्यों को उससे वंचित रखा गया हो वह उपराज्यों के सुपुर्द है। अतएव उपराज्यों को सब शेषाधिकार मिले हुए हैं। किन्तु कुछ समय से यह देखने में आरहा है कि बढ़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीयता, व्यापारिक सम्बन्धों की पेचीदगी और कुछ राष्ट्रों की शक्ति लोलुपता के कारण उपराज्य केन्द्रीय सरकार पर अधिकाधिक परावलम्बी होते जारहे हैं। इसलिये वे धीरे धीरे उस स्वतन्त्रता और उन अधिकारों को खोते जारहे हैं जिनकी उन्होंने बड़े यत्न से संघ के प्रारम्भिक काल में रक्षा की थी।

उपराज्यों में कार्यकारिणी

अमरीकन उपराज्य छोटे छोटे गणराज्य हैं। इनके शासन विधान के इस गुण को बदला नहीं जा सकता। प्रत्येक उपराज्य में प्रमुख कार्यकारिणी सत्ता एक लोक निर्वाचित गवर्नर में निहित रहती है। कार्यकारी विभाग व्यवस्थापक मण्डल से पृथक स्वतन्त्र रहता है। इसमें गवर्नर के अतिरिक्त एक लैफ्टिनैन्ट गवर्नर, एक सेक्रेटरी आफ स्टेट, एक कोषाध्यक्ष, महाप्राभिकर्ता

(Attorney-General), अंकेक्षक (Auditor) शिक्षा प्रबन्धक और कुछ दूसरे छोटे अफसर होते हैं।

गवर्नर—उपराज्य की सरकार का अध्यक्ष गवर्नर होता है। गवर्नर का पद बड़ा पुराना है। अमरीकन उपनिवेशों के प्रारम्भिक काल से ही लगभग ३०० साल से यह परम्परा के आधार पर चलता चला आ रहा है। गवर्नर जनता द्वारा चुना जाता है। इस पद के लिये उपराज्य के नागरिक ही योग्य समझे जाते हैं। गवर्नर के पद के उम्मेदवारों को राजनीतिक दलों के सम्मेलन में चुनकर मनोनीति किया जाता है। इस सम्मेलन में उस दल के सब कांउन्टियों से प्रतिनिधि एकत्र होते हैं। निर्वाचन गुप्त शलाका द्वारा होता है और सामान्य मताधिक्य से उम्मेदवार चुन लिया जाता है। उम्मेदवार उस उपराज्य का ५ वर्ष तक निवासी रह चुका हो और निर्वाचन के समय उसकी आयु ३० वर्ष से कम न होनी चाहिये। गवर्नर के पद की अवधि भिन्न भिन्न उपराज्यों में भिन्न हैं किन्तु या तो यह दो या चार वर्ष हैं। गवर्नर पुनर्निर्वाचन के लिये खड़ा हो सकता है। तीन हजार से लेकर २५००० डालर तक का वेतन भिन्न भिन्न उपराज्यों में दिया जाता है। गवर्नर पर अभियोग लगाकर उसके पद से उसे हटाया जा सकता हैं। यदि ऐसा न्यायाधिकरण (Tribunal) जिसमें उपराज्य की सीनेट के सदस्य व उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हों, दो-तिहाई मत से गवर्नर को अपराधी सिद्ध कर दे तो गवर्नर उसके पद से हटाया जा सकता है। लगभग एक दर्जन उपराज्यों में सरकार से प्रार्थना कर गवर्नर का प्रत्याहरण (Recall) किया जा सकता है अर्थात् उसे पद से हटाया जा सकता है। ऐसा प्रत्याहरण करने के लिये निश्चित रूप से कारण देने पड़ते हैं। किन्तु अभी तक केवल एक ही गवर्नर को (नौर्थ डेकौटा के गवर्नर फ्रेज़ियर को) ही इस प्रकार हटाया गया है (१६२१)।

गवर्नर की शक्तियां—गवर्नर को कई प्रकार की शक्तियां दी जाती हैं। विधान-कार्य में प्रत्येक कानून के घोषित होने से पूर्व उस पर गवर्नर के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। वह धारासभा से पास किये हुये किसी भी विधेयक पर आपत्ति कर सकता है और पुनर्विचार के लिये लौटा सकता है। वह धारा सभा का विशेष अधिवेशन बुला सकता है जिनमें विशेष योजनाओं पर ही विचार हो सकता है। धारासभा के साधारण अधिवेशनों में भी गवर्नर नये कानून बनाने के लिये सुझाव देता है और अपने उच्च पद के प्रभाव से दोनों आगारों में उन्हें स्वीकृत करा लेता है। थियोडोर रूज़वैल्ट ने जो कभी

उपराज्य का गवर्नर रह चुका था यह कहा था, कि "आधे से अधिक मेरा गवर्नर का काम आवश्यक और महत्वपूर्ण कानूनों का पास कराना था"। गवर्नर दलबन्दी में पूरी तरह भाग लेता है। अपने पक्ष के व्यवस्थापकों की सहायता से वह धारा सभा पर अपना प्रभुत्व रखता है हालांकि वह धारा सभा का सदस्य नहीं होता। कुछ मात्रा में वह विधेयकों को जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है कानून बनने से रोक सकता है। धारा सभा के मन्तव्य व निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिये गवर्नर अध्यादेश (Ordinances) निकालता है। वह छोटे पदों पर नियुक्तियां कर सकता है, और उन पदों पर आसीन व्यक्तियों को हटा सकता है। वह सामान्य शासन-प्रबन्ध की देख भाल रखता है और यह भी देखता है कि आर्थिक कार्य, सैनिक कार्य, केन्द्रीय सरकार से सम्बन्ध रखने वाले कार्य, सुचारु रूप से हो रहे हैं। वह दण्डित अपराधियों को क्षमा प्रदान भी कर सकता है। उपराज्य के अधिकतर पदाधिकारियों की नियुक्ति गवर्नर ही करता है किन्तु इन नियुक्तियों में सीनेट की सम्मति होना आवश्यक है। वह सिविल सर्विस के अफसरों को तरक्की आदि दे सकता है। बजट उसके ही आदेशों के अनुसार बनाया जाता है। वह बाह्यरूप से प्रधानसेनापति भी होता है।

दूसरे पदाधिकारी—जिन अफ़सरों की गवर्नर स्वयं नियुक्ति नहीं करता वे अधिकतर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। उनका अवधि-काल निश्चित रहता है। इसलिये वे अफसर गवर्नर के मातहत न होकर सहकारी होते हैं। अतएव केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की अपेक्षा गवर्नर के मंत्री अधिक स्वतंत्र हैं क्योंकि केन्द्रीय मंत्री प्रेसीडेंट द्वारा ही बनाये जाते हैं, और वह स्वेच्छा से ही उनको नियुक्त करता व हटा सकता है। उपराज्य का गवर्नर अपने मंत्रियों को न नियुक्त करता है न हटा सकता है। ये लोग अभियोग लगा कर अवश्य हटाये जा सकते हैं किन्तु गवर्नर के साथ भी ऐसा ही बर्ताव किया जा सकता है। इस प्रकार हटाने के लिये प्रतिनिधि-आगार उन पर पहिले अपराधों का अभियोग लगाता है। सीनेट इन अपराधों की जांच करती है और अपराधी सिद्ध होने पर उन्हें उनके पद से हटा सकती है। सामान्य नागरिकों के समान ही उन्हें न्यायालयों की आज्ञा का पालन करना पड़ता है। जिस अवधि के लिये गवर्नर चुना जाता है उसी अवधि के लिये ही उन अफसरों का चुनाव होता है। "सब राज्यपदाधिकारी एक दूसरे की सेवा नहीं करते, वे जनता की सेवा करते हैं जिसके द्वारा वे चुने जाते हैं। वे जनता पर ही निर्भर रहते हैं न कि एक दूसरे पर।"

उपराज्य-न्यायमण्डल

प्रत्येक उपराज्य में अपने अपने शासन-विधान के अन्तर्गत न्याय-मण्डल स्थापित हैं। उपराज्य के न्यायालय संघ-न्यायालयों के आधीन नहीं होते किन्तु वे एक पृथक न्यायमंडल के अङ्ग होते हैं जिसको अपने अधिकार क्षेत्र में पूरी स्वतंत्रता व शक्ति रहती है। सामान्य संघटन में ये न्यायालय संघ-न्यायालयों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। दोनों न्यायप्रणालियों में छोटे बड़े कई न्यायालय होते हैं जिनके कर्तव्य व शक्तियां एक दूसरे से भिन्न, कम या अधिक होती हैं। प्रत्येक उपराज्य में न्यायालयों की तीन श्रेणियां होती हैं, किसी में चार भी होती हैं। पहिली श्रेणी में जस्टिसेज़ आफ दी पीस (Justices of the Peace) हैं जो मामूली रुपये पैसे या बहुत छोटे अपराधों की जांच कर दण्ड देते हैं। इनके ऊपर काउन्टी या म्यूनिसिपल न्यायालय होते हैं जिनमें कुछ बड़े मुकद्दमों की प्रारम्भिक सुनवाई होती है और निचली अदालतों के निर्णयों के विरुद्ध पुनर्विचार की अपील की जाती है। इनके ऊपर उच्च न्यायालय होते हैं जो काउन्टी न्यायालयों के निर्णय पर, प्रार्थना किये जाने पर पुनर्विचार करते हैं और कुछ अधिक भारी मुकद्दमों में प्रारम्भिक विचार भी करते हैं। इन सब के ऊपर उपराज्य का सर्वोच्च न्यायालय होता है जिनमें सब प्रकार के मुकद्दमों पर प्रार्थना करने पर पुनर्विचार होता है। इस न्यायालय के निर्णयों पर पुनर्विचार करने के लिये संघ-सर्वोच्च न्यायालय (Federal Supreme Court) से प्रार्थना नहीं की जा सकती।

उपराज्यों के न्यायालय दो बड़ी बातों में संघ न्यायालयों से भिन्न हैं। पहिला भेद तो यह है कि उपराज्य के न्यायाधीश जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं किन्तु संघ न्यायालय के न्यायाधीशों को कार्यकारिणी नियुक्त करती है केवल १० उपराज्य ऐसे हैं जिनके न्यायाधीश निर्वाचित न होकर कार्यकारिणी द्वारा नियुक्त होते हैं। दूसरा भेद यह है कि प्रत्येक उपराज्य में न्यायपद्धति भिन्न भिन्न है जिससे सब उपराज्यों में न्याय-व्यवहार में समानता नहीं हो पाती।

उपराज्यों के न्यायाधीशों पर प्रतिनिधि-आगार अभियोग लगा सकता है और सीनेट अभियोग की जांच कर उन्हें दण्डनीय ठहरा कर उनके पद से उन्हें हटा सकती है। बारह उपराज्यों में यह प्रथा प्रचलित है कि धारा सभा में तत्सम्बन्धी प्रस्ताव पास होने से ही किसी न्यायाधीश को हटाया जा सकता है। नौ उपराज्यों में गवर्नर धारा सभा की प्रार्थना पर न्यायाधीश को पदच्युत

कर सकता है। कुछ उपराज्यों में जनता न्यायाधीशों का प्रत्याहरण कर सकती है। इस के लिये पदच्युत करने की प्रार्थना पर जनता का प्रत्यक्ष मत लिया जाता है। इन उपराज्यों में न्यायालयों के कुछ निर्णयों को भी जनमत से वापिस किया जा सकता है। इन सब बातों को प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली की दृष्टि से उचित ठहराया जाता है। जनमत के इस प्रकार के हस्तक्षेप से न्यायकार्य में भ्रष्टाचार की मात्रा बढ़ती है, यह निश्चय है। यही नहीं किन्तु इससे अन्याय बढ़ता है, और न्यायप्रणाली की स्थिरता जाती रहती है।

स्थानीय शासन

विभिन्न स्थानीय संस्थायें—सयुक्तराज्य अमरीका एक बहुत ही जनतंत्रात्मक राज्य है इसलिये सब उपराज्यों में "स्थानीय-शासन का काम जनता से प्रत्यक्ष रीति से चुनी हुई स्थानीय शासन संस्थाओं को सुपुर्द है। स्थानीय शासन के अन्तर्गत पुलिस, सफाई, निर्धनों की देखभाल, शिक्षालयों का भरण-पोषण व प्रबन्ध, सड़कों व पुलों का बनवाना और उनको अच्छी अवस्था में बनाये रखना, व्यापार व उद्योग के लाइसेंस देना, कर लगाना और इकट्ठा करना, छोटे छोटे न्यायालय व कारागृह स्थापित करना और वे अन्य सब कार्य आते हैं जो राज्य की विभिन्न जातियों व वर्गों के सुख शान्ति व स्थानीय शासन प्रबन्ध के लिये आवश्यक हैं। टाउनशिप (Township), काउन्टी (County), शिक्षालय-जिला (The School District), कस्बा (Town) व नगर (City) ये विभिन्न प्रकार की और विभिन्न क्षेत्राधिकार वाली स्थानीय शासन संस्थायें पाई जाती हैं। इनके निजी कर्मचारी होते हैं। इन संस्थाओं की शक्तियां उपराज्य की सरकार से प्राप्त रहती हैं। वे बहुत ही सीमित मात्रा में कर लगा सकती हैं। अधिकतर संस्थाओं में एक कार्यकारी बोर्ड और कर्मचारी होते हैं। जिनमें नियम बनाने वाली सभायें भी होती हैं, वहां ये सभायें अपना काम बहुत कुछ उसी पद्धति पर करती हैं जिस पर उपराज्य की धारा सभायें करती हैं। जैसा भारतवर्ष में प्रांतीय सरकारों के स्वायत्त शासन विभाग हैं वैसा उपराज्यों में कोई विभाग नहीं है जो इन स्थानीय संस्थाओं पर स्वेच्छाचारी नियंत्रण रखता हो। अमरीका में स्थानीय-शासन उस देश की शासन प्रणाली का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग है।

प्रत्यक्ष लोकतन्त्र

निर्बन्ध उपक्रम (Initiative)—अमरीका में प्रत्यक्ष लोकतंत्र (Direct Democracy) केवल उपराज्यों में ही पाया जाता है, संघ शासन में नहीं, किन्तु स्विजट्रलैंड में यह दोनों जगह पाया जाता है। अमरीकन प्रजातंत्र के प्रारम्भिक समय से ही शासन विधान के संशोधन कार्य में जनता के भाग लेने की प्रथा प्रचलित थी। किन्तु लोक-निर्णय की इस प्रथा के अतिरिक्त बहुत से अमरीकन उपराज्यों ने निर्बन्ध-उपक्रम की प्रथा भी अपनाई है। इस प्रथा में व्यक्तियों को यह स्वतंत्रता रहती है कि वे किसी विधेयक या शासन-विधान के संशोधन को तैयार कर धारा सभा की मध्यस्थता के बिना ही लोक-निर्णय के लिये रख सकते हैं।

लोक निर्णय—लोक निर्णय के अधिकार के होने से व्यक्तियों की निश्चित संख्या यह माँग कर सकती है कि धारा सभा से पास किया हुआ कोई निर्बन्ध जनता की स्वीकृति या अस्वीकृति के निर्णय के लिये उपस्थित किया जाय। पाँच से पन्द्रह प्रति सैकड़ा नागरिक प्रायः निर्बन्ध उपक्रम का प्रस्ताव कर सकते हैं और पाँच से दस प्रति सैकड़ा नागरिक लोक-निर्णय की माँग कर सकते हैं। यह संख्या उपराज्यों में एक समान नहीं है।

इस प्रत्यक्ष लोक-व्यवस्थापन कार्य की मांग क्यों की गई, इसके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ब्राइस ने कुछ कारण बतलाये हैं जो ये हैं :—

(१) उपराज्य की धारा सभा पर यह अविश्वास कि यह लोकमत का सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं करती और जनता की इच्छानुसार कानून नहीं बनाती, (२) धनी व्यक्तियों व कम्पनियों की ओर से यह शंका कि ये व्यवस्थापकों व अफसरों पर अपना अनुचित प्रभाव डालते हैं और ऐसा कानून बनवा लेते हैं जो पूंजी वर्ग के ही अनुकूल होता है। (३) जनता के हाथ में ऐसी शक्ति रखने की इच्छा जिससे ऐसी निर्बन्ध योजनायें पास की जा सकें जो धारा सभा की अपेक्षा लोकनिर्णय से सुगमता से पास की जा सकती हैं (४) अल्प संख्यक समुदाय के विवेक की अपेक्षा, सारी जनता के विवेक, नीतिमत्ता व पुनीतता में विश्वास।

निर्बन्ध-प्रकरण व लोकनिर्णय (Initiative and Referendum) प्रत्यक्ष लोक-व्यवस्थापन के ये दोनों साधन साधारण निर्बन्ध बनाने व विधान-संशोधन दोनों में ही प्रयोग किये जाते हैं।

इस प्रणाली के दोष—ऊपर से देखने में यह प्रणाली कितनी ही आकर्षक प्रतीत होती हो किन्तु व्यवहार में यह बिलकुल दोष रहित सिद्ध नहीं हुई है। ऐसे कई उदाहरण है जहां ऐसे कानून बनाये गये जो दोषपूर्ण थे और ऐसे कानून रद्द कर दिये गये जो बड़े लाभदायक सिद्ध हो रहे थे। इसके कारण व्यवस्थापक अपने उत्तरदायित्व की ओर इतने सतर्क नहीं रहते जितना वे अन्यथा रह सकते हैं। जनता ने भी प्रत्यक्ष-व्यवस्थापन (Direct Legislation) में उतनी बुद्धिमानी का परिचय नहीं दिया जितनी उन्होंने अपने प्रतिनिधियों के चुनने में दिखलाई। इसके अतिरिक्त यह सत्य भी है कि एक साधारण मतधारक दो उम्मेदवारी की अच्छाई-बुराई का अन्तर जितना अधिक भली भांति मालूम कर सकता है उतनी अच्छी तरह से वह यह निश्चय नहीं कर सकता कि कौनसी योजना लोक हितकारी होगी और कौनसी नहीं क्योंकि कानूनों की पेचीदगी उसके लिये दुरूह होती है, वह आसानी से उनके सब पहलुओं को नहीं देख सकता न उनके अन्तिम परिणामों का उसे भान हो सकता है।

प्रत्याहरण (Recall)—देश के शासन कार्य में जनता स्वयं भाग ले सके, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अमरीका में एक तीसरी प्रथा भी प्रचलित है। इसको प्रत्याहरण (Recall) कहते हैं जिसका यह अर्थ है कि किसी भी प्रतिनिधि या राजपदाधिकारी को जो जनमत के अनुकूल नहीं है प्रत्यक्ष लोकमत लेकर वापिस बुला लेना। जहां तक यह प्रथा प्रतिनिधियों व राजपदाधिकारियों तक ही लागू है, इससे बहुत लाभ भी हुआ है। इसका कारण यह है कि इस से ये लोग सतर्क व कर्तव्य परायण बने रहते हैं। पदाधिकारी अपने कार्य को कुशलता से व सतर्कता से सम्पादित करते हैं। और प्रतिनिधि अपने निर्वाचकों की इच्छा का ठीक ठीक प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु कुछ उपराज्यों में न्यायाधीशों को भी जनता मत लेकर उनके पद से हटा देती है। इस प्रत्याहरण-प्रणाली के कुछ समर्थकों का तो यहां तक कहना है कि संघ न्यायालयों पर भी यह प्रणाली लागू होनी चाहिये। उनका यह प्रयत्न अभी सफलीभूत नहीं हो पाया है, प्रत्याहरण भय से न्यायसंगठन निर्बल हो जाता है, कहीं कहीं इसके भय से न्यायाधीश कर्तव्य-विमुख भी हो सकते हैं। जब तक न्यायाधीशों को यह विश्वास न हो कि वे साधारणतया अपने पद से हटाये नहीं जा सकते और उनका वेतन कम नहीं किया जा सकता, कोई भी न्यायमण्डल अपने कर्तव्य को निरपेक्षभाव से व सच्चाई से पूरा नहीं कर सकते। यदि निर्बन्ध उपक्रम (Initiative) और लोकनिर्णय (Referen-

dum) प्रतिनिधिक शासन प्रणाली पर कुठाराघात करते हैं तो प्रत्याहरण की प्रणाली शासन को निर्बल बनाती है। किन्तु अमरीका में जहां न्यायाधीश व उच्च पदाधिकारी भी जनता से निर्वाचित होकर नियुक्त होते हैं, प्रत्याहरण प्रथा का होना यह सिद्ध करता है कि सामान्य नागरिक इन पदाधिकारियों को चुनने की भी योग्यता नहीं रखते।

पाठ्य पुस्तकें

पूर्व अध्याय के अन्त में जो पुस्तकों की सूची दी हुई है उनमें ही उपराज्यों की शासन प्रणाली के अध्ययन करने के लिये पर्याप्त सामग्री मिलेगी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक उपराज्य के लिये स्टेट्समैन ईयरबुक (Statesman Yearbook) का सबसे नवीन संस्करण भी प्रयोग किया जा सकता है।

अध्याय १८

स्विट्ज़रलैंड की सरकार

शासन-विधान का इतिहास

परिचय—स्विट्ज़रलैंड एक पहाड़ी देश है जो दक्षिणी पश्चिमी यूरोप के मध्य में बसा हुआ है। इसके उत्तर में जर्मनी, पूर्व में आस्ट्रिया, दक्षिण में इटली, और पश्चिम में फ्रांस है। पूर्व से पश्चिम तक इसकी अधिक से अधिक लम्बाई कुल २२६½ मील है, उत्तर से दक्षिण तक अधिक से अधिक चौड़ाई १३७ मील है। कुल क्षेत्रफल १५६४४ वर्ग मील है। इसके विभिन्न भाग समुद्र तट से ६४६–१५००० फीट की ऊँचाई पर हैं। इस देश की जनसंख्या ४,०६६,४०० है। यह देश २२ जिलों या केन्टनों में बटा हुआ है यहां के निवासियों की जीविका का साधन प्रमुखतया खेती है। (यहां ३००,००० जमीन की पट्टियां हैं जिनसे २० लाख व्यक्ति अपना भरण पोषण करते हैं, अर्थात् कुल जनसंख्या का ५३·५ प्रतिशत भाग खेती पर निर्भर है। कृषि के अतिरिक्त पशुपालन और उद्योग व कारोबार हैं जिनसे शेष निवासी अपनी जीविका उपार्जन करते हैं।

निवासी—स्विट्ज़रलैंड के निवासी एक जाति-समूह के नहीं हैं। उनमें विभिन्न जाति, धर्म व भाषा बोलने वाले वर्ग हैं। कुछ जर्मन हैं, फ्रैंच हैं, और इटैलियन हैं। कुल जनसंख्या का ६९ प्रतिशत भाग जर्मन भाषा बोलता है जो अधिकतर उत्तर के १९ कैन्टनों में रहता है। फ्रैंच भाषा के बोलने वाले २१·१ प्रतिशत व्यक्ति हैं जो पश्चिम के ५ कैन्टनों में रहते हैं और ८ प्रतिशत इटैलियन भाषा बोलते हैं। धर्म की दृष्टि से यहां के निवासी इस प्रकार विभाजित हैं: प्रोटैस्टेन्ट ५६·७ प्रतिशत, रोमन कैथौलिक्स ४२·८ प्रतिशत, और शेष अन्य-धर्मावलम्बी हैं*। ऐतिहासिक व भौगोलिक कारणों से यहां के निवासी धर्म के मामले में बड़े अद्भुत ढंग पर बंटे हुये हैं। यह विभाजन तीन प्रमुख भाषा-क्षेत्रों का भी अनुकरण नहीं करता। स्विट्ज़रलैंड में ऐसे बहुत से व्यक्ति मिलेंगे जो विदेशों से भाग कर यहां बस गये हैं क्योंकि सैनिक-सेवा या राजनीतिक अपराधों से बचने के लिये उन्हें यह देश सब से अधिक सुरक्षित प्रतीत हुआ।

---

* ब्रुक्स—गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैंड

देश की भौगोलिक विभिन्नता, भाषा, धर्म, जाति व रीतिरिवाजों के भेद के कारण और कृषिजीवी होने से यहां के निवासियों में लोकतंत्र की भावना बहुत मात्रा में पाई जाती है। इन्हीं कारणों से देश में वास्तविक संघात्मक संस्थाओं का विकास भी हुआ है। प्राचीन व अर्वाचीन सच्चे लोकतंत्रों का उदाहरण देते समय एथेन्स (Athens) और स्विट्ज़रलैंड का नाम लिया जाता है। स्विट्ज़रलैंड एक बहुत छोटा देश है इसलिये यहां के निवासी अपने अपने केन्टन के शासन में सुगमता से सक्रिय भाग ले सकते हैं। वे अपने जीवन से संतुष्ट हैं। वहां की सरकार लोकहितकारी दूरदर्शी, कुशल, मितव्ययी और अपनी नीति में दृढ़ है। सामाजिक जीवन में भ्रष्टाचार का नाम नहीं सुना जाता और राज्यपदाधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जाती है न कि किसी निजी राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से। उनके सामने जो समस्या है वह यह है कि संतोषी, मितव्ययी और स्थिर-प्रकृति वाले व्यक्तियों में स्थानीय शासन किस प्रकार चलाया जाय। इस समस्या को सुलझाना यहां अधिक सुगम है बनिस्बत ऐसे बड़े देश में जहां के निवासी धनी और महत्वाकांक्षी हैं। इसीलिये यह भी ठीक है कि स्विट्ज़रलैंड में जिन उपायों से इस समस्या को सुलझाया गया है उनसे दूसरे देशों की भिन्न परिस्थितियों में वैसा ही संतोषजनक परिणाम नहीं हो सकता।

वैधानिक इतिहास के पांच युग—स्विट्ज़रलैंड के राजनीतिक इतिहास को प्रायः पांच हिस्सों में बांटा जाता है (१) प्राचीन संघ, सन् १२९१ से १७९८ तक, (२) हैल्वैटिक प्रजातंत्र, (३) सन् १७९८ से १८०३ तक, (४) नैपोलियन काल, सन् १८०३ से १८१५ तक। सन् १८१५ से १८४१ तक का संघ राज्य और (५) सन् १८४८ से अब तक का वर्तमान संघ-शासन।

(१) प्राचीन संघ—सन् १२९१ में उरी, स्वीज़ और डन्टरवाल्डन नाम के तीन केन्टनों ने अपने आप को एक स्थायी संगठन में अपने अधिकारों की रक्षा के लिये संघीभूत किया। ये केन्टन लूज़र्न झील के सब से पृथक एक किनारे पर बसे हुये थे, किन्तु इनका राजनीतिक दर्जा एक समान न था। वह समय सामन्तशाही की अराजकता का था। इस संगठन के बनने पर आस्ट्रिया के राजा लियोपोल्ड को बुरा लगा और वह सेना लेकर इन उद्दण्ड केन्टनों को दण्ड देने के लिये आगे बढ़ा। किन्तु इस युद्ध में केन्टनों की

विजय हुई। अतएव यह संघ फलने फूलने लगा। सन् १३५३ तक इसमें ३० सदस्य हो गये। "इसके पश्चात् ऐसे युग का आरम्भ हुआ जिसे राजनीतिज्ञ ब्रुक्स ने 'सैनिक शक्ति का युग' कहा है। इस युग में केन्टनों ने पड़ोसी विदेश राज्यों से भूमि छीन छीन कर अपने प्रदेश का विस्तार बढ़ाया"।* उस समय स्विस लोग स्वदेश में ही लोकतंत्र के समर्थक थे, बाहर न थे; सन् १४४२ से १४५० तक व एक बार फिर सन् १५३१ और १७२१ में धार्मिक व जातिगत विभेदों के कारण गृह-युद्ध हुये। किन्तु इन सब आपत्तियों के रहते हुये भी यह आश्चर्य की बात है कि संघ ने विदेशियों के आक्रमणों का डट कर सामना किया और विजय पाई जिससे आपसी फूट से छिन्न-भिन्न स्विट्ज़रलैंड उस युग की डांवाडोल अवस्था में भी अपने राजनीतिक व्यक्तित्व की रक्षा कर सका।

(२) **हैल्वैटिक प्रजातंत्र**—स्विस राजनीतिक इतिहास का दूसरा युग जिसे हैल्वैटिक प्रजातंत्र के नाम से पुकारा जाता है सन् १७९८ से आरम्भ होकर १८०३ में समाप्त होता है। स्विट्ज़रलैंड की सेना फ्रांस की डाइरेक्टरी (Directory) के सैन्य-बल से हार गई, जिसके परिणाम स्वरूप फ्रांस ने अपने यहां के तत्कालीन शासन-विधान के ढांचे के समान ही स्विट्ज़रलैंड को अपना शासन-विधान बनाने पर बाध्य किया। देश को २२ डिपार्टमेंटों (Departments) अर्थात् प्रांतों में बांट दिया गया। प्रत्येक डिपार्टमेंट की अपनी स्थानीय धारा सभा थी जो स्थानीय मामलों में स्वाधीन थी। सारे देश के शासन के लिये सीनेट और ग्रांड कौंसिल (Grand Council) नाम के दो आगारों का व्यवस्थापक मण्डल बनाया गया। बाहरी रूप से स्विट्ज़रलैंड में प्रजातंत्र स्थापित करने का प्रयत्न करते हुये फ्रांस की राजसत्ता इस देश पर अपने अधिकार के वास्तविक मन्तव्य को छिपा न सकी। उन्होंने बर्न नगर में स्थित राजकीय कोष को ज़ब्त कर लिया और केन्टनों से बहुत सा धन और अनेकों सैनिक दूसरे देशों से लड़ने के लिये एकत्रित कर अपने आधीन किये। इसका परिणाम यह हुआ कि केन्टनों में विद्रोह खड़ा हो गया जिसकी प्रतिक्रिया में फ्रांसीसियों ने स्विट्ज़रलैंड के निवासियों की निर्दयता-पूर्वक हत्या की। जब फ्रांस और आस्ट्रिया में युद्ध आरम्भ हुआ तो स्विट्ज़रलैंड तुरन्त ही इस संघर्ष की युद्धभूमि बन गया।

---

* फैडरल पौलिटी पृ० ५३

(३) **नैपोलियन काल**—नैपोलियन ने तुरन्त ही अपने कुशल जनरल ने (Ney) को सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये भेजा। स्विट्ज़रलैंड के प्रतिनिधि पैरिस में इकट्ठे हुये और वहां उन्होंने एक्ट आफ मिडियेशन (Act of Mediation) पास किया जिससे स्विट्ज़रलैंड के इतिहास का तीसरा युग आरम्भ हुआ। किन्तु इस एक्ट से भी स्विट्ज़रलैंड को फ्रांस के प्रभाव से छुटकारा न मिला। सन् १८१३ में जब नैपोलियन की हार हुई तब इस युग की समाप्ति हुई।

(४) **सन् १८१५-१८४८ का संघ-शासन**—वियेना कांग्रेस (Vienna Congress) ने यूरोप के नक़शे को बिलकुल बदल दिया था, यह सभी जानते हैं। यद्यपि स्विट्ज़रलैंड को अपनी खोई हुई भूमि न मिली किन्तु एक सुन्दर शासन-विधान अवश्य मिल गया जो १८१५ की संधि के नाम से प्रसिद्ध है। इस विधान से सब केन्टनों को समान राजनीतिक दर्जे का मान लिया गया और प्रत्येक को इसी आधार पर राष्ट्रीय परिषद् में एक मताधिकार दिया गया। स्थानीय मामलों में उन्हें पूरी स्वाधीनता दे दी गई। सन् १८३० के जुलाई मास में इस विधान में कई महत्वपूर्ण सुधार किये गये।

५—**आधुनिक काल**—सन् १८४५ ई० में स्विट्ज़रलैंड में भयंकर गृहयुद्ध हुआ जिसमें सात केन्टनों ने अपना पृथक संघ बनाया, जिसका नाम उन्होंने बैचाफनैटर सौदरबन्द (Bewaffneter Sonderbund) रखा और यह धमकी दी कि वे संघ-शासन से पृथक हो जायेंगे। संघ-संसद ने जनरल डयूफोर की अध्यक्षता में अपनी १ लाख सेना भेजी जिसने विद्रोही कैन्टनों की ५५००० सेना को इस दिन के युद्ध के पश्चात् हरा दिया। इस प्रकार संघ से पृथक होने के कार्य को सफल होने से रोका। सन् १८४८ में कैथौलिक कैन्टनों की कुछ मांगों को पूरा करने के लिये शासन विधान को दुहराया गया। इस नये विधान से जिसमें सन् १८७४ में फिर संशोधन हुआ स्विट्ज़रलैंड के पांचवें युग का आरम्भ होता है। वर्तमान समय में यही युग चल रहा है।

सन् १८७४ का शासन-विधान

सन् १८४८ के शासन-विधान में नये विचारों की प्रतिच्छाया के साथ साथ प्राचीन व्यवहार को सुरक्षित रखने का प्रयत्न दिखाई पड़ता था। इन दोनों का मेल उसमें स्पष्ट रूप से किया गया था। संघ-सरकार को जो शक्तियां सुपुर्द की गई थीं वे बहुत सीमित थीं। "ये शक्तियां सेना सम्बन्धी व कूटनीति सम्बन्धी मामलों में प्राप्त थी। डाक, आयात-निर्यात कर, माप,

तोल इन आर्थिक विषयों में भी, जिनमें मिली जुली कार्यवाही के बिना प्रजा की एकता की रक्षा नहीं हो सकती, संघ-सरकार को अधिकार दिया गया था"।* इस विधान को जब व्यवहार में लाया गया तो यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाया जाय। इस उद्देश्य से जो आन्दोलन चला उसमें यह कहा गया कि केन्टनों की पृथक न्याय प्रणालियां मिटा दी जायँ, कानून को संघीभूत कर क्रमबद्ध किया जाय और एक स्थायी संघ न्यायालय स्थापित किया जाय। यह भी कहा गया कि रेलों का राष्ट्रीयकरण किया जाय और वे संघ सरकार के आधीन रखी जायं। और यह भी मांग की गई कि प्रत्येक कानून सम्पूर्ण जनता की स्वीकृति के लिये रखा जाय। इस सम्बन्ध में जनता शब्द से कैन्टनों की पृथक पृथक जनता न समझी जाय किन्तु सारे संघ की जनता को अन्तिम निर्णय करने वाला न्यायालय समझा जाय।[१]

सन् १८७४ के शासन-विधान का रूप—उपर्युक्त परिवर्तन के सुझावों को सन् १८७४ के संशोधित शासन-विधान में स्वीकार कर लिया गया। इस संशोधित विधान को प्रथम धारासभा ने पास किया फिर लोक-निर्णय से यह स्वीकार हुआ। यह विधान विस्तार में संयुक्त राज्य अमरीका के शासन-विधान का आधा है। "यह विधान संघ-सरकार और कैन्टनों की सरकारों की शासन सम्बन्धी व कानून सम्बन्धी शक्तियों की सीमा निर्धारित करता है।" इसने कैन्टनों के अधिकार व संघ सरकार के अधिकार के समर्थकों के विचारों का सामञ्जस्य कर उन्हें लोक हितकारक सजीव रूप देने का प्रयत्न किया है। इसी लिये इसका इतना लम्बा विस्तार है जिससे पढ़ने वाला उकता जाता है। किन्तु इसमें आन्तरिक मतभेद और सम्भवतः संघर्ष के कारणों को दृष्टि में रख कर उनके दोष को दूर रखने या उन्हें उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न किया गया है जिससे राजनीति सम्बन्धी सद्गुणों की दृष्टि से बहुत ऊंचा स्थान दिया जाता है।" स्विट्ज़रलैण्ड के विधान-निर्माता मौन्टस्क्यू (Montesquieu) के सिद्धांत में श्रद्धा न रखते थे इसी लिये उन्होंने राज्य-संगठन के विभिन्न अङ्गों में शक्ति का विभाजन या पृथकीकरण नहीं किया और न उसके साथ पारस्परिक संतुलन या विरोध का आयोजन किया"। इस दृष्टि से संयुक्त राज्य अमरीका व स्विट्ज़रलैंडके विधान

---

* सैलैक्ट कन्स्टीट्यूशन आफ दी वर्ल्ड, पृ० ४२७

१ सैलैक्ट कंस्टीट्यूशन्स आफ दी वर्ल्ड, पृ०४२८

में अद्भुत असमानता है। स्विट्ज़रलैंड में २२ कैन्टनों या यों कहिये कि १६ पूर्ण और ६ अर्ध-कैन्टनों का संघ- शासन स्थापित किया गया है। इनके नाम शासन विधान की प्रस्तावनामें दिये हुये हैं। नये उपराज्यों अर्थात् घटकों या इकाइयों को संघ में शामिल करने का आयोजन इस विधान में नहीं है। यदि ऐसा करने की आवश्यकता पड़ जाय तो विधान में परिवर्तन करना पड़ेगा। इसके विपरीत संयुक्त-राज्य अमरीका के शासन विधान में इससे सम्बन्धित स्पष्ट प्रावधान है।

विधान की प्रमुख विशेषतायें—स्विट्ज़रलैण्ड के निवासियों को सन् १८४८ के गृहयुद्ध का कटु अनुभव हो चुका था इसलिये इस नये विधान में पृथकीकरण की सम्भावना को दूर रखने का प्रयत्न किया गया है। इसके लिये यह निश्चित प्रावधान कर दिया गया है कि कैन्टनों में आपस में राजनैतिक सन्धियां नहीं हो सकतीं। संयुक्त राज्य अमरीका के शासन विधान में कहा गया है कि संघ सरकार के निर्बन्धों को संघ सरकार के अफसर कार्यान्वित करेंगे और उपराज्यों के निर्बन्धों को उपराज्यों के अफसर। किन्तु स्विट्ज़रलैण्ड में इस प्रकार का विभाजन नहीं किया गया है। इस विधान में स्विस नागरिकता की विधिपूर्वक परिभाषा नहीं की गई है किन्तु केवल यही कह दिया गया है कैन्टन का प्रत्येक नागरिक स्विस नागरिक है। विधान में मूलाधिकारों का वर्णन नहीं मिलता किन्तु वैयक्तिक अधिकारों का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। निर्बन्धन्याय में विधि के समक्ष सब व्यक्तियों की समानता, आत्मस्वातंत्र्य, धर्म-विश्वास व आराधना सम्बन्धी स्वतंत्रता और समाचार पत्रों की स्वतंत्रता सुरक्षित कर दी गई है। किन्तु विधान के ५२ वें अनुच्छेद से नये मठों या सम्प्रदायों को पुनर्जीवित करना मना है। नागरिकों का यह अधिकार भी सुरक्षित कर दिया है कि वे प्रार्थना पत्र दे सकते हैं और समुदाय बना सकते हैं। प्रतिबन्ध केवल इतना है कि ये समुदाय राज्य में हानिकारक या किसी अवैध उपायों को काम में नहीं ला सकते। भारतवर्ष के समान स्विट्ज़रलैंड के विधान-निर्माताओं के सामने भी विभिन्न भाषा, धर्म और जातियों की समस्या थी। अतएव भारतवर्ष के निवासियों को स्विट्ज़रलैंड के विधान व उसके इतिहास का अध्ययन बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

---

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैण्ड, पृ० ४६

शक्ति-विभाजन—विधान के प्रथम अध्याय में सामान्य प्रावधान दिये हुये हैं जिनमें उन शक्तियों का वर्णन भी किया गया है जो केन्द्रीय सरकार (Federal Government) द्वारा भोगी जाती हैं। दूसरे अनुच्छेद में संघ के उद्देश्य की परिभाषा से संघ-सरकार की शक्तियों का मूल भाव जाना जा सकता है। इसके अनुसार संघ का उद्देश्य विदेशियों से देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना, देश के भीतर शान्ति व सुव्यवस्था रखना, सदस्य-राज्यों की स्वतंत्रता व अधिकारों की रक्षा करना और उन सब की समृद्धि को बढ़ाना है। इसलिये संघ-सरकार को बहुत ही सीमित और स्पष्टतया निश्चित अधिकार प्राप्त हैं। तीसरे अनुच्छेद में इसको स्पष्ट कर दिया गया है: "जहां तक संघ शासन से कैन्टनों की सम्पूर्ण सत्ता मर्यादित नहीं हुई है, कैन्टन सम्पूर्ण सत्ताधारी हैं, अतएव वे उन सब शक्तियों को काम में ला सकते हैं। जो संघ सरकार को नहीं सौंपी गई हैं"। संघ ने कैन्टनों की सम्पूर्ण सत्ता, उनकी भूमि व उनके नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने का वचन दिया है। कैन्टनों के शासन-विधानों में संघ सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती, पर उनमें संघ शासन-विधान के विरुद्ध कोई बात न होनी चाहिये, उनसे प्रतिनिधिक प्रजातंत्री गणराज्य की रक्षा होती रहनी चाहिये और कैन्टनों की बहुसंख्यक जनता उन विधानों को मान्य समझती हो। कैन्टन आपस में राजनैतिक मित्रता नहीं कर सकते हालांकि वे दूसरे कामों में एक दूसरे से सहयोग कर सकते हैं। अद्भुत बात तो यह है कि कैन्टनों को यह अधिकार अब भी मिला हुआ है कि वे पुलिस, अर्थ-सम्बन्धी और सीमा सम्बन्धों के बारे में विदेशी राज्यों से संधि कर सकते हैं। पर इन समझौतों में कोई ऐसी बात न होगी जो संघ के या दूसरे कैन्टनों के हितों के प्रतिकूल हो। इसके साथ साथ यह भी प्रतिबन्ध है कि विदेशी राज्यों से जो कुछ विचार विनिमय होगा वह संघ कौंसिल की मध्यस्थता से होगा। कोई भी पूर्ण कैन्टन या अर्ध-कैन्टन २०० सैनिकों से अधिक स्थायी सैन्य शक्ति न रख सकेगा। यह ऐसा प्रावधान है जो प्रायः बहुत से अन्य संघ-शासन विधानों में नहीं मिलता क्योंकि सुरक्षा व उससे सम्बन्धित सब संस्थायें संघ सरकार के आधीन ही होती हैं। कैन्टनों की सेना का अनुशासन संघ कानून से निश्चित व नियमित रहता है और आवश्यकता पड़ने पर संघ सरकार संघ सेना के अतिरिक्त कैन्टनों की सारी सैन्यशक्ति पर अनन्यरूप से तुरन्त अपना नियंत्रण रख सकती है इससे यह सम्भावना नहीं रहती कि कोई कैन्टन संघ के विरुद्ध शक्तिशाली बन युद्ध के लिये खड़ा हो जाय। यदि दो कैन्टनों में कोई झगड़ा हो जाता है या

किसी कैन्टन में विद्रोह खड़ा हो जाता है तो संघ कौंसिल उसके निबटाने का प्रबन्ध करती है और यदि परिस्थिति गंभीर हो तो अधिनायक जैसी शक्ति अपने हाथ में कर उसका प्रयोग करती है। सब बातों पर विचार करने के पश्चात् यह कहा जा सकता हैं कि संघ में रह कर भी कैन्टनों को बहुत विस्तृत अधिकार मिले हुये हैं।

केन्द्रीय सरकार की शक्तियां—केन्द्रीय सरकार सेना-सम्बन्धी कानून बना सकती है। सेना का संगठन, युद्ध-घोषणा, संधि करना, सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध इन सब की व्यवस्था संघ-निर्बन्धों से होती हैं। जल-विद्युत शक्ति, डाक व तार, संघ की सड़कें और पुल, वायु-तरण (Aerial Navigation), विदेशी मुद्रा की कीमत, मुद्रा का बनाना, माप व तोल, बारूद का बनाना और बेचना, विवाह-निर्बन्ध और उदर्पण (Extradition) आदि पर संघ सरकार का अनन्य स्वामित्व व नियंत्रण है। व्यवहार सम्बन्धी मामलों में, व्यापार के कानूनी प्रश्नों के बारे में, चलसम्पत्ति के हस्तान्तरण, साहित्यिक व कलात्मक प्रतिलिप्याधिकार (Copy Right), औद्योगिक अन्वेषण, ऋण चुकाने के अभियोग और दिवालियापन आदि के सम्बन्ध में संघ सरकार को निर्बन्ध बनाने का अधिकार है। न्यायसंगठन, न्याय-कार्य-प्रणाली, अपराध सम्बन्धी कानून, खाद्य व अन्य घरेलू वस्तुओं के व्यापार और सामान्य आयात-निर्यात-कर, इन सब के लिये भी संघ सरकार आवश्यक व्यवस्था कर सकती है। संघ सरकार कैन्टनों से निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा के लिये आयोजन की आशा रखती है।

संघ सरकार की आय—आय के सम्बन्ध में विधान के ४१ वें अनुच्छेद से संघ सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह हुंडियों, बीमे की रसीदों, अधिकार-पत्रों व अन्य समान पर्चों पर मुद्रांक कर (Stamp Duty लगा सकती है। किन्तु इस कर से जो धन एकत्रित हो, व्यय घटा कर उसका पांचवा भाग कैन्टनों को लौटाना पड़ता है। ४२ वें अनुच्छेद में कुछ और आगम स्रोतों का वर्णन है जैसे, संघ सम्पत्ति की आय, सीमा पर उघाया हुआ संघ-कर, डाक व तार से प्राप्त आय या बारूद बनाने के एकाधिकार से प्राप्त धन, कैन्टनों में सैनिक सेवा से मुक्त किये गये व्यक्तियों से प्राप्त कर का आधा भाग (स्विट्ज़रलैंड में सैनिक सेवा अनिवार्य है जो व्यक्ति इससे मुक्त होना चाहते हैं उनसे कुछ कर वसूल किया जाता है), मुद्रांक कर, कैन्टनों से प्राप्त धन।

अन्य शक्तियां जो निश्चित रूप से संघ सरकार को नहीं दी गई हैं विधान ने कैन्टनों को सुरक्षित कर दी हैं।

संघ-व्यवस्थापक-मण्डल

द्विआगारिक व्यवस्थापक मण्डल—यह व्यवस्थापक मण्डल फैडरल असैम्बली अर्थात् संघ परिषद् के नाम से पुकारा जाता है। इसमें दो आगार हैं, एक को नेशनल कौंसिल और दूसरे को कौंसिल आफ स्टेट कहते हैं।

निचला आगार—नेशनल कौंसिल व्यवस्थापक मण्डल का निचला आगार है। इसके सदस्यों को सब प्रौढ़ नागरिक अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर चुनते हैं। प्रति २२००० नागरिकों का एक प्रतिनिधि चुना जाता है। यदि ११००० या इससे अधिक संख्या मतधारकों की होती है तो उन्हें एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होता है। कैन्टनों के जिले निर्वाचन-क्षेत्र रहते हैं। कैन्टनों की जनसंख्या में बहुत अन्तर है अतएव छोटे कैन्टनों में कुछ एक ही प्रतिनिधि चुन कर भेजते हैं। ऊरी का कैन्टन अपने २३००० नागरिकों का एक प्रतिनिधि चुनता है किन्तु बर्न के ३१ और ज्यूरिच के २८ प्रतिनिधि नेशनल कौंसिल के सदस्य हैं। नेशनल कौंसिल की कुल संख्या सन् १९३९ के निर्वाचन के पश्चात् १८७ थी। सन् १९३० के निर्बन्ध से इसका कार्यकाल तीन वर्ष से बढ़ा कर चार वर्ष कर दिया गया है। इतने समय से पहिले आगार का विलयन नहीं होता क्योंकि कार्यकारिणी नेशनल कौंसिल को उत्तरदायी नहीं है। यह कार्यकारिणी पार्लियामेंटरी (संसदात्मक) ढंग की नहीं है।

सदस्यों की योग्यता—राज्य का प्रत्येक नागरिक जिसने २१ वें वर्ष में प्रवेश किया हो मत देने का अधिकारी है और पादरियों को छोड़ कर कोई भी मतधारक प्रतिनिधि चुना जा सकता है। किन्तु एक ही व्यक्ति दोनों आगारों का सदस्य एक समय में नहीं रह सकता। प्रत्येक प्रतिनिधि को आने जाने के खर्च के अतिरिक्त आगार में उपस्थित रहने के प्रतिदिन के लिये २५ फ्रैंक के हिसाब से भत्ता मिलता है। वर्ष में चार बैठकें होती हैं। आगार स्वयं ही अपने सभापति व उपसभापति को चुनता है। हर एक सत्र के लिये नये सभापति व उपसभापति चुने जाते हैं। पूर्व सभापति या उपसभापति को लगातार दूसरे सत्र में, अर्थात् दूसरे वर्ष में, फिर से सभापति या उपसभापति नहीं चुना जा सकता। एक वर्ष में जितनी बैठकें होती हैं उन सब की एक सत्र में गिनती होती है।

आगार का सभापति—समान मत होने पर सभापति को निर्णायक मत देने का अधिकार है। अतएव साधारण प्रश्नों पर वह दो मत दे सकता है। किन्तु समितियों के सदस्यों के निर्वाचन में वह दूसरे सदस्यों के समान ही मतदान करता है। इस सभापति का प्रभाव व शक्ति वैसी नहीं है जैसी अमरीकन प्रतिनिधि-आगार के सभापति को प्राप्त है। फिर भी इस पद की आकांक्षा बड़े बड़े राजनीतिक नेता करते हैं और जो सौभाग्य से इस पद को पा जाते हैं उनका अपने साथियों में बड़ा विशेष आदर होता है। यही बात कौंसिल आफ स्टेट के सभापति के बारे में भी ठीक है"। *

ऊपरला आगार—फेडरल असैम्बली का ऊपरला आगार कौंसिल आफ स्टेट्स कहलाता है। अमरीका व आस्ट्रेलिया की सीनेट की तरह इसमें कैन्टनों के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं। प्रत्येक कैन्टन को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। इस प्रकार २२ कैन्टनों के ४४ प्रतिनिधि होते हैं। अर्ध-कैन्टन एक प्रतिनिधि भेजता है। "यह अनोखी बात है कि विधान में इन प्रतिनिधियों के चुनाव के ढंग के बारे में कोई प्रावधान नहीं है। न इन की योग्यता ही निर्धारित की गई है। ये सब बातें कैन्टनों पर छोड़ दी गई हैं। विधान में यह भी नहीं कहा गया है कि पादरी लोग इसके सदस्य नहीं हो सकते"।[1] विधान में केवल यह निर्धारित है कि कैन्टन अपने प्रतिनिधियों को स्वयं वेतन देंगे। फिर भी कैन्टनों में यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है कि इस सम्बन्ध में वे सब एक ही प्रणाली का अनुकरण करें। यह बात इससे स्पष्ट है कि अधिकतर कैन्टनों में कौंसिल आफ स्टेट्स के प्रतिनिधि सीधे प्रजा द्वारा चुने जाते हैं। कुछ कैन्टनों में वहां की धारा-सभायें इन प्रतिनिधियों को चुनती हैं।

सदस्यों की अवधि—तीन वर्ष की अवधि ही एक सामान्य नियम सा हो गया है किन्तु किन्हीं कैन्टनों में १ वर्ष और दूसरों में चार वर्ष की अवधि भी रखी जाती है। कैन्टन अपने प्रतिनिधियों को वापिस बुला सकते हैं और उनके स्थान पर दूसरे प्रतिनिधियों को भेज सकने में स्वतंत्र हैं। किन्तु ४१ वें अनुच्छेद से एक प्रावधान है जो इसके प्रतिकूल प्रतीत होता है। इस अनुच्छेद में लिखा है कि "कौंसिल आफ स्टेट्स के सदस्यों को कौंसिल में अपना मत देने के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया जा सकता"।

---

*गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैंड, पृ० ७६–८०

[1] ,, ,, ,, ,, पृ० ८३

सदस्यों का वेतन—कैन्टन अपने प्रतिनिधियों को वेतन व आने जाने का खर्चा उसी दर से देते हैं जो संघ सरकार नेशनल कौंसिल के सदस्यों के लिये निश्चित करती है। यदि कौंसिल आफ स्टेट्स के सदस्य किन्हीं व्यवस्थापक-समितियों मे सदस्य बनने पर कार्य करते हैं तो संघ सरकार उन्हें भत्ता देती है।

सभापति—कौंसिल आफ स्टेट्स स्वयं ही अपना सभापति व उपसभापति चुनती है। किन्तु एक ही कैन्टन के निवासी एक सत्र में दोनों पदों के लिये नहीं चुने जा सकते। न एक ही कैन्टन के प्रतिनिधियों में से लगातार दो सत्रों में सभापति या उपसभापति चुने जा सकते हैं (अनुच्छेद ८२) प्रचलित प्रथानुसार उपसभापति दूसरे सत्र में सभापति बना दिया जाता है। वर्ष में जितनी बैठकें होती हैं वे सब एक सत्र का भाग समझी जाती हैं। मत बराबर रहने पर सभापति को निर्णायक मत देने का अधिकार है।

संघ व्यवस्थापक मण्डल की शक्तियाँ—संघ व्यवस्थापक मण्डल, जैसा पहले बतला चुके हैं, फैडरल असैम्बली (Federal Assembly) के नाम से पुकारा जाता है जिसमें कौंसिल औफ स्टेट्स और नेशनल कौंसिल नाम के दो आगार हैं। मंत्रिपरिषद् जो फैडरल कौंसिल (Federal Council) के नाम से प्रसिद्ध है सब निर्बन्ध योजनाओं को तैयार करता है, चाहे वह याचना विधेयक के रूप में हो या रिजोल्यूशन अर्थात् प्रस्ताव के रूप में। धारा सभा के सदस्य या दूसरे सामान्य व्यक्ति (उस दशा में जब वे स्वयं किसी योजना का प्रस्ताव रखते हैं) किसी योजना के प्रस्ताव की सूचना दे सकते हैं और फैडरल कौंसिल तब इस प्रस्ताव का मसविदा तैयार करती है। कभी कभी प्रस्ताव करने वाले व्यक्ति स्वयं ही अपना मसविदा कौंसिल के पास भेज देते हैं। जब सत्र आरम्भ होने जा रहा हो उस समय फैडरल कौंसिल उस सत्र में विचारार्थ रखे जाने वाले विधेयकों और प्रस्तावों की पूरी सूची कौंसिल औफ स्टेट्स और नेशनल कौंसिल के सभापतियों के सम्मुख रख देती है। ये दोनों आपस में विचार करके यह निर्णय कर लेते हैं कि कौन से प्रस्तावों पर दोनों आगारों में पहिले विचार किया जाय। यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि जब एक आगार में कोई योजना स्थापित हो जाती है तो यह फैडरल असेम्बली में स्थापित हुई समझी जाती है इसलिये यदि एक आगार में वह योजना अस्वीकृत हो जाय फिर भी दूसरे आगार में वह विचाराधीन समझी जाती है।

दोनों आगारों को समान अधिकार हैं। उन दोनों में मत भेद होने पर प्रत्येक एक समिति नियुक्त करता है। ये दोनों समितियाँ आपस में सलाह करती हैं और प्रायः किसी न किसी समझौते पर पहुँच जाती हैं। यदि समझौता न हो तो योजना या प्रस्ताव गिर जाता है। स्विट्जरलैंड में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जब इस प्रकार के मतभेद से कोई वैधानिक संकट खड़ा हो गया हो। दूसरे विधानों की प्रथा के विपरीत स्विस विधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे दोनों आगारों के मतभेद होने पर किसी प्रश्न पर निर्णय हो सके। किन्तु इन मत भेदों की संख्या अधिक नहीं होती न ये बहुत गम्भीर होते हैं क्योंकि अपनी रचना के कारण कौंसिल आफ स्टेट्स नेशनल कौंसिल अर्थात् लोक सभा से अधिक उन्नति-विरोधी नहीं होती। निर्बन्ध-निर्माण में सारी प्रजा को अन्तिम नियंत्रण का अधिकार होने से विधान में इस कमी का कोई महत्व भी नहीं रह जाता है।

असैम्बली को संघ-अधिकार क्षेत्र के सब विषयों में व्यवस्था करने का अधिकार है। आगारों के इन अधिकारों या शक्तियों को संक्षेप में नीचे दिया गया है :—

(१) विदेशी राज्यों से व्यवहार करने में, युद्ध या संधि करने में, संघ-सेना के लिये निर्बन्ध बनाने में, स्विट्जरलैंड की बाहरी सुरक्षा व तटस्थता बनाये रखने के लिये सब प्रकार का प्रबंध करने में ये आगार संघ की सर्वाधिकारी सत्ता का उपभोग करते हैं।

(२) कैन्टनों व संघ के बीच वे संघ के अधिकार की रक्षा करते हैं। इसके साथ साथ वे यह भी ध्यान रखते हैं कि कैंटनों के विधानों की सुरक्षा-सम्बंधी-संघ द्वारा दी हुई प्रत्याभूति के पालन के हेतु आवश्यक निर्बन्ध भी बनते रहें। और फैडरल कौंसिल से प्रार्थना किये जाने पर वे कैंटनों में आपस में किये हुये या किसी कैंटन और विदेशी राज्य के बीच किये हुये समझौते या संधि के वैध-अवैध होने का निर्णय भी करते हैं।

(३) वे संघ की सामान्य निर्बन्ध शक्ति को कार्यान्वित करते हैं और इस बात का विशेष प्रयत्न करते हैं कि शासन-विधान कार्यान्वित हो और संघ के कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन हो।

(४) वे संघ के आय-व्यय के लेखे को पास करते हैं और संघ की आर्थिक स्थिति पर नियंत्रण रखते हैं।

मौडर्न डैमोक्रेसीज पुस्तक, पृ० ५३६

(५) वे संघ के पदाधिकारियों व कर्मचारियों का प्रबन्ध करते हैं। आवश्यक शासन विभागों की रचना का उनके अफसरों के वेतन आदि का उचित प्रबन्ध भी उन्हीं के द्वारा होता है।

(६) वे संघ सरकार की व संघ न्यायमण्डल की कार्यवाहियों पर दृष्टि रखते हैं, शासन सम्बन्धी मुकदमों में फैडरल कौंसिल के निर्णयों के विरुद्ध वे शिकायतें सुन उन पर अपना निर्णय देते हैं।

(७) जनता की सम्मति से वे संघ-शासन-विधान में संशोधन भी करते हैं। *

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाएगा कि फैडरल असैम्बली को विधायिनी, कार्यकारिणी व न्यायकारिणी शक्तियां प्राप्त हैं और वह उनका प्रयोग भी करती है। स्विट्ज़रलैंड में मौंटेसक्यू के शक्ति विभाजन के सिद्धांत का अनुकरण नहीं किया गया है। वहां की कार्यकारिणी व्यवस्थापक मण्डल अर्थात् फैडरल असैम्बली को अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी नहीं होती बल्कि असैम्बली की इच्छाओं को व्यवहाररूप देती है। संयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के समान यहां का न्यायमण्डल सर्वोच्च न्याय सत्ता नहीं है

सम्मिलित बैठकें—असैम्बली के दोनों आगार फैडरल कौंसिल (कार्यकारिणी) का निर्वाचन करने के लिये संयुक्त अधिवेशन में सम्मिलित होते हैं। ऐसी संयुक्त बैठकों में ही फैडरल कौंसिल के सभापति व उपसभापति का चुनाव किया जाता है। फैडरल चांसलर व अन्य प्रमुख संघ अधिकारी भी इसी संयुक्त बैठक में चुने जाते हैं।

व्यवस्थापक-मण्डल के उल्लेख-पत्र—असैम्बली की कार्यवाही का उल्लेख जर्मन, फ्रैंच व इटैलियन तीनों भाषाओं में रखा जाता है और सदस्यों को किसी भी भाषा में वक्तृता देने का अधिकार है। दोनों आगारों में कार्यवाही बड़े शिष्टाचार से और गौरवपूर्ण ढंग पर होती है। जब कोई सदस्य वक्तृता देता होता है उस समय सब लोग बिलकुल शांत रहते हैं। सब सदस्य अपने कार्य से परिचित रहते हैं और उनकी संख्या कम होने से सब मामलों पर पूर्ण विचार होता है। सैनिक मामलों की खूब अच्छी तरह से छानबीन होती है क्योंकि सैनिक सेवा हर स्विट्ज़रलैंड के निवासी के लिये अनिवार्य होने के कारण सब सदस्य उसमें वैयक्तिक अनुभव के आधार पर विचार प्रकट करते हैं और अपनी अभिरुचि का परिचय देते हैं।

---

* दी स्टेट, पैरा ६९६ (सन् १९२६ की प्रति)

सदस्यों की योग्यता—दोनों आगारों के सदस्य खूब पढ़े लिखे व्यक्ति होते हैं। नेशनल कौंसिल के ३/५ सदस्य और कौंसिल आफ स्टेट के तीन-चौथाई सदस्य विश्वविद्यालय में शिक्षित व्यक्ति होते हैं।* कुछ सदस्य ऐसे भी होते हैं जो विदेशी विद्यालयों में शिक्षा पाये हुये होते हैं। जैसी दलबंदी संयुक्त-राज्य की कांग्रेस में देखने को मिलती है वैसी स्विस व्यवस्थापक मण्डल में नहीं है। यहाँ का साधारण व्यवस्थापक "ठोस, चतुर, उद्वेग हीन या कम से कम अपने उद्वेगों को सहज ही व्यक्त न करने वाला होता है। किसी समस्या पर विचार करने में वह व्यावहारिक बुद्धि से मनन करता है और उसका दृष्टिकोण मध्यवर्गीय व्यवहारी व्यक्तियों का सा रहता है। जर्मन व्यक्ति की तरह उसकी प्रवृत्ति सैद्धांतिक बातों पर बार २ लौटने की नहीं होती न फ्रांस के निवासी के समान वह चकित करने वाले वाक्यों से प्रभावित होता है"।[1] सदस्य आगारों में ठीक समय पर नियमानुसार उपस्थित होते हैं। व्यवस्थापकों के इन गुणों के कारण स्विट्ज़रलैंड के व्यवस्थापक मण्डल को विशेषतया आदरणीय और गौरवपूर्ण समझा जाता है। संसार में इसके समान दत्तचित्त होकर अपना काम करने वाली दूसरी कानून बनाने वाली संस्था नहीं है। इसमें क्रमबद्ध वाद-विवाद कम होता है और उससे भी कम क्रमबद्ध व्याख्यान होते हैं। यहां प्रभावपूर्ण भाषा की कला का कोई प्रदर्शन नहीं होता। वक्ताओं को न कोई बीच में रोकने का प्रयत्न करता है न प्रशंसा के उद्गार ही प्रकट करते हैं। नेशनल कौंसिल में सदस्य खड़े होकर वक्तृता देते हैं, किन्तु कौंसिल आफ स्टेट में अपने स्थान से ही वे अपने विचार प्रगट करते हैं।

संघ-कार्यकारिणी

स्विटज़रलैंड की कार्यकारिणी जिसको फैडरल कौंसिल का नाम दिया हुआ है, एक अनोखे प्रकार की है। राजनीतिज्ञ ब्राइस ने इसकी अनुपमता का इस प्रकार वर्णन किया है "किसी दूसरे प्रजातंत्र राज्य में ऐसी प्रथा नहीं कि कार्यकारी सत्ता एक व्यक्ति को न देकर एक समिति के हाथ में रखी गई हो और ऐसा कोई दूसरा देश न होगा जहां कार्यकारी सत्ता दलबन्दी से इतनी अप्रभावित हो। यह कौंसिल मंत्रिपरिषद नहीं है जैसा कि ब्रिटेन में है या उन देशों में है जिन्होंने ब्रिटेन की परिषद-प्रणाली का अनुकरण किया

---

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैंड, पृ० ६८

[1] मौडर्न डैमोक्रेसीज़, पु० १, पृ० ३७८

है क्योंकि यह व्यवस्थापक मण्डल का नेतृत्व नहीं करती और उसके द्वारा हटाई भी नहीं जा सकता। संयुक्त-राज्य अमरीका की कार्यकारिणी के समान यह व्यवस्थापक मण्डल के तंत्र के बाहर भी नहीं है। यद्यपि इसमें परिषद-प्रणाली और अध्यक्षात्मक प्रणाली (Cabinet System and Presidential System) दोनों के कुछ कुछ गुण पाये जाते हैं। यह दलबन्दी से परे रहने के कारण दोनों से भिन्न है। यह दल के बाहर स्थित रहती है। इसका निर्वाचन किसी राजनीतिक दल-विशेष के कार्यक्रम को पूरा करने के लिये नहीं किया जाता। "यह किसी दल की नीति निर्धारित नहीं करती किन्तु फिर भी दल के रंग से कुछ न कुछ रंगी अवश्य होती हैं।"*

फैडरल कौंसिल की बनावट—फैडरल कौंसिल में सात सदस्य होते हैं जिनको फैडरल असैम्बली संयुक्त बैठक में चार वर्ष के लिये चुनती है। असैम्बली ही आकस्मिक रिक्त स्थानों को जाने वाले सदस्य के समय के लिये सदस्यों की नियुक्ति कर भरती है। कोई भी स्विस नागरिक जो नेशनल कौंसिल का सदस्य बनने के योग्य हो फैडरल कौंसिल में चुना जा सकता हैं। किन्तु एक ही कैन्टन के दो निवासी फैडरल कौंसिल के सदस्य नहीं बन सकते। निर्वाचन की पद्धति पर कानून से एक रोक और भी लगा दी गई है: एक से अधिक ऐसे व्यक्ति एक ही समय फैडरल कौंसिल के सदस्य नहीं बन सकते जो विवाह से या जन्म से किसी भी पीढ़ी तक सीधी लाइन में और चार पीढ़ी तक पार्श्ववर्ती लाइन में सम्बन्धित हों। जो व्यक्ति गोद लेने से सम्बन्धी हो गये हों उनको भी यह प्रतिबन्ध लागू होगा। जो कोई विवाह से इस प्रकार के सम्बन्ध में बंधेगा वह फैडरल कौंसिल की सदस्यता त्याग देगा[1]। प्रचलित प्रथा के अनुसार सब से बड़े ज्यूरिच व बर्न कैन्टनों का एक एक निवासी कौंसिल का सदस्य अवश्य होता है, बचे हुए पांच स्थानों को दूसरे कैन्टनों में बांट दिया जाता है। प्रायः एक या दो स्थान उन कैन्टनों के निवासियों से भरे जाते हैं जहां फ्रैंच या इटैलियन भाषा अधिकतर बोली जाती है। जो सदस्य पुनर्निर्वाचन के लिये खड़े होते हैं उनका पुनर्निर्वाचन साधारणतया हो ही जाता है। सन् १८४८ से अब तक इस सम्बन्ध में केवल दो व्यक्तियों का ऐसा पुनर्निर्वाचन नहीं हुआ। इसलिये कौंसिल के सदस्य बड़े अनुभवी व्यक्ति होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का

---

* मौर्डन डैमोक्रेसीज़, पुस्तक १, पृ० ३६३-३६४

[1] गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिकल आफ स्विटजरलैंड नामक पुस्तक में दिये हुए कथनानुसार पृ० १०४-१०५

उदाहरण मौजूद है जो २५-३० वर्ष तक कौंसिल के सदस्य रहे। विधान में यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध नहीं है फिर भी प्रायः ये कौंसिल के सदस्य नेशनल कौंसिल या कौंसिल आफ स्टेट के सदस्यों में से ही छांट कर नियुक्त किये जाते हैं। किन्तु फैडरल कौंसिल के सदस्य बन जाने पर वे धारा-सभा के सदस्य नहीं रह सकते। इससे धारा सभा और कार्यकारिणी दोनों बिलकुल पृथक रहे आते हैं।

प्रति वर्ष फैडरल कौंसिल के सदस्यों में से असैम्बली एक को प्रैसीडेंट निर्वाचित करती है। एक उप-प्रैसीडेंट भी निर्वाचित होता है। पिछले वर्ष का उप-प्रैसीडेंट प्रायः अगले वर्ष के लिये प्रैसीडेंट चुन लिया जाता है। कोई भी व्यक्ति लगातार दो वर्षों तक प्रैसीडेंट या उप प्रैसीडेंट नहीं रह सकता। प्रैसीडेंट केवल फैडरल कौंसिल का सभापति ही रहता है। वह उत्सवों में संघ का प्रतिनिधित्व करता है, कौंसिल का कार्य संचालन करता है, सामान्य रूप से उसके काम की देखभाल करता है और अत्यावश्यक मामलों में कौंसिल की ओर से कार्यवाही भी करता है। कौंसिल में निर्णय लेते समय यदि दो पक्षों के मत बराबर हों तो वह निर्णायक मत दे सकता है।

बिना शक्ति का अध्यक्ष—किन्तु स्विस प्रैसीडेंट को धारासभा के कानूनों के प्रतिषेध करने का अधिकार नहीं है और वह अन्य सदस्यों के समान ही किसी एक शासन-विभाग का अध्यक्ष रहता है। उसके कोई विशेष अधिकार नहीं हैं और दूसरी बातों में भी वह नाम मात्र का अध्यक्ष समझा जाता है, उसको "बिना किसी महत्व का प्रैसीडेंट" कह कर उसका वर्णन किया जाता है। इस कथन में कुछ तथ्य भी है क्योंकि उसका कार्यकाल बहुत थोड़ा है और फ्रैंच प्रैसीडेंट या अमरीका के प्रैसीडेंट में जो शक्तियां विहित हैं वैसी किसी शक्ति का वह उपभोग नहीं करता। तिसपर भी इस पद का बड़ा गौरव है और राजनैतिक क्षेत्र में महत्वाकांक्षियों के लिये सब से अधिक ऐश्वर्य का पद है जिस पर पहुंचने का वे प्रयत्न करते हैं

हर एक फैडरल कौंसिल के सदस्य को प्रतिवर्ष २५००० फ्रैंक वेतन मिलता है। प्रैसीडेंट को केवल १५०० फ्रैंक और अधिक मिलते हैं।

फैडरल कौंसिल की कार्यवाही:—विधान के १०२ वें अनुच्छेद से प्रदान की हुई शक्तियों के आधीन, फैडरल कौंसिल संघ के आदेशों के अनुसार सब संघ का काम करती है। संघ-विधान के पालन और संघ के कानूनों, आदेशों व समझौतों के अनुकरण को यह निरापद करने के लिये आवश्यक कार्यवाही करती है, केन्टनों के शासन-विधानों के पालन की सुरक्षा करती है,

फैडरल असैम्बली के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले निर्बन्धों व आदेशों का मसविदा तैयार करती है, और कैन्टनों वा अन्य कौंसिलों द्वारा भेजे हुये प्रस्तावों पर अपनी रिपोर्ट देती है।* फैडरल कौंसिल संघ निर्बन्धों को, संघ-न्यायालय के निर्णयों को व कैन्टनों के बीच हुये समझौतों को कार्यरूप देती है। यह उन शासन-पदों पर व्यक्तिओं की नियुक्ति करती है जो असैम्बली द्वारा नहीं भरे गये हों। यह विदेशी राज्जों से की हुई संधियों को और कैन्टनों के बीच की हुई संधियों की परीक्षा कर अपनी सहमति देती है, राष्ट्र के सब वैदेशिक व्यवहार को चलाती और आवश्यकता पड़ने पर स्विट्ज़रलैंड की घरेलू व बाहरी सुरक्षा का प्रबन्ध करती है। यह शान्ति व सुव्यवस्था की रक्षा के लिये सेना बुलाती है और सेना पर आधिपत्य रखती है। यह संघ की आय-व्यय का प्रबन्ध करती है, अपने कार्य का विवरण असैम्बली के सम्मुख रखती और अपने कार्य के सम्बन्ध में उन विशेष रिपोर्टों को प्रस्तुत करती है जो असैम्बली द्वारा मांगी जाती हैं।

प्रशासन-विभाग—उपर्युक्त विभिन्न कार्यकलापों का संचालन करने के लिये फैडरल कौंसिल ने सात प्रशासन-विभागों का निर्माण किया है। परराष्ट्र विभाग, न्याय व पुलिस विभाग, गृह विभाग, युद्ध विभाग, अर्थ-विभाग, उद्योग व कृषि विभाग और डाक व रेल विभाग, ये सात प्रशासन-विभाग असैम्बली के आदेशों को कार्यरूप देते हैं। कुछ समय पहिले प्रैसीडेंट परराष्ट्र-विभाग को अपने हाथ में रखता था किन्तु हाल ही में यह प्रथा टूट गई है। अब प्रतिवर्ष शासन-विभागों का राजमंत्रियों में नये ढंग से वितरण किया जाता है। प्रत्येक प्रशासन-विभाग के लिये मुख्य अध्यक्ष के अतिरिक्त एक दूसरा अध्यक्ष निश्चित कर दिया जाता है जो स्वयं किसी दूसरे विभाग का मुख्य अध्यक्ष होता है। अतएव फैडरल कौंसिल का प्रत्येक सदस्य एक प्रशासन-विभाग का मुख्य अध्यक्ष और किसी अन्य प्रशासन विभाग का 'एवज़ी अध्यक्ष' होता है। इस युक्ति से शासन के कार्य का सुसंचालन पक्का हो जाता है क्योंकि बारी बारी से सब प्रशासन विभागों के कार्य की पेचीदगी का अनुभव सदस्यों को हो जाता है।

फैडरल कौंसिल का कार्यसंचालन—फैडरल कौंसिल की बैठक सप्ताह में दो बार बर्न नगर में होती है। गणपूरक चार सदस्यों की उपस्थिति होती है। मताधिक्य से सब निर्णय होते हैं। "कौलिजियेट" ढंग की कार्य-

---

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैंड, पृ० ११०

कारिणी होने के कारण कौंसिल के सदस्य अपने साथी सदस्यों से प्रस्तुत की हुई योजनाओं के विरुद्ध प्रकट रूप से असैम्बली में बोल सकते हैं। यह इसलिये सम्भव है कि प्रत्येक सदस्य अपने कार्यों के ही लिये उत्तरदायी है, कौंसिल सामुदायिक रूप से धारा सभा को उत्तरदायी नहीं है जिस प्रकार ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् पार्लियामेंट को उत्तरदायी है। ऐसी योजना भी जो फैडरल कौंसिल की सर्वसम्मति से असैम्बली के सम्मुख रखी गई हो यदि असैम्बली द्वारा अस्वीकार हो जाय तो "राजमंत्रियों को अपने त्यागपत्र देने या पद से हटाये जाने, इन दोनों बातों में एक को पसन्द करने की स्वतंत्रता नहीं रहती, वे उस निर्णय को शिरोधार्य करते और उसके अनुसार कार्यारम्भ कर देते हैं"। वे अपने पदों पर बराबर रहे आते हैं, पदत्याग नहीं करते। इस प्रथा के कारण कौंसिल दूसरे देशों की सिविल सर्विस से मिलती जुलती है, केवल अन्तर यह है कि इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रति चार वर्ष बाद होता है। फैडरल कौंसिल के सदस्य धारा सभा के किसी भी आगार में उपस्थित हो सकते हैं और बोल सकते हैं। वे वाद-विवाद में बिना किसी प्रतिबन्ध के भाग ले सकते हैं। उन्हें वहां प्रश्नों का उत्तर भी देना पड़ता है। किन्तु असेम्बली के सदस्य न होने के कारण वे वहां वोट नहीं दे सकते। वे स्विस राजनीति में अन्तिम-अधिकार रखने वाली असैम्बली की इच्छा को कार्यान्वित करते हैं।

धारा सभा को अनुत्तरदायी—फैडरल कौंसिल की शक्ति विधान-प्रदत्त है। "वह राष्ट्र की किसी अन्य कार्यकारी सत्ता की ओर से काम नहीं करती है" इसकी रचना बहुसख्यक दल से बनाई जाने वाली मंत्रिपरिषद् के ढंग पर नहीं होती। इसमें कोई प्रधानमंत्री नहीं होता जो सब मंत्रियों को अपने ही दल के व्यक्तियों में से चुनता हो। इसके "सदस्य विभिन्न राजनीतिक दलों से ही नहीं वरन् विरोधी दलों से भी चुने जाते हैं"। तिस पर भी वे लोग कौंसिल के प्रति सद्भावना व अपने इस संगठन के ऊपर अभिमान दिखाते हैं। अपनी नीति के लिये यह असैम्बली पर निर्भर रहती है। यह धारा सभा का विलयन नहीं करा सकती और उसके द्वारा अपने पक्ष में निर्णय करने की जनता से अपील नहीं कर सकती। असैम्बली भी कौंसिल के सदस्यों को बरखास्त नहीं कर सकती"। इन अनुपम बातों के रहते हुये भी कौंसिल अपना काम बड़ी कुशलता से, मिलकर व उत्तम ढंग पर करती है।

---

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विटज़रलैंड, पृ० ११२–११३

इसका कारण यह है कि यह छोटी संस्था है जिसके सदस्यों को लम्बे समय का अनुभव रहता है और ये लोग अपने अपने दलों के व्यक्तियों की सहायता से असैम्बली में अपना बड़ा प्रभाव रखते हैं। निमुक्तियां करने की शक्ति होने से भी उनका बड़ा दबदबा रहता है। सन् १९१४-१८ के महायुद्ध में असैम्बली ने फैडरल कौंसिल को असीमित अधिकार दे दिये थे जिनकी सहायता से वह स्विट्ज़रलैंड की सुरक्षा, पूर्णता व तटस्थता की रक्षा के लिये सब प्रकार का प्रबन्ध कर सके और स्विट्ज़रलैंड की आर्थिक स्थिति व विश्वास की रक्षा कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कौंसिल को खर्च करने और कर्ज़ लेने की असीमित शक्ति दे दी गई थी। केवल प्रतिबन्ध इतना था कि उसे असैम्बली की आगे होने वाली बैठक में पूर्व बैठक के बाद से इन असीमित शक्तियों के प्रयोग का पूरा विवरण देना पड़ता था। उस समय कौंसिल को जो शक्तियां दी गईं उनसे कौंसिल का प्रभाव सदा के लिये बढ़ गया है।

कौंसिल के प्रभाव के बारे में ब्राइस का मत—राजनीतिज्ञ ब्राइस ने स्विस कार्यकारिणी की प्रशंसा इस प्रकार की है : इस प्रणाली से ऐसी संस्था की स्थापना होती है जो जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व को कम किये बिना शासक असैम्बली को प्रभावित कर केवल परामर्श ही नहीं दे सकती किन्तु दलबन्दी से दूर रहने के कारण यह आवश्यकता पड़ने पर दो लड़ने वाले दलों में मध्यस्थ का काम भी कर सकती है और कठिनाइयों को कम कर मित्रभावना के सहारे समझौते करा सकती है। इसके द्वारा सिद्ध-बुद्धि प्रशासक राष्ट्र की सेवा में लगे रहते हैं चाहे उनके वे राजनीतिक विचार कुछ भी हों जिन के कारण तत्कालीन राजनीतिक दलों में विभेद हो। इसके द्वारा परम्परा की रक्षा होती है और नीति की अविच्छिन्नता बनी रहती है।

फैडरल कौंसिल की सफलता—फैडरल कौंसिल की बहुत कुछ आलोचना व इसके सुधार के लिये अनेकों सुझावों के होते हुये भी यह दृढ़ विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि "स्विस कार्यकारिणी ने अपनी शक्तियों व अवसरों की सीमा के भीतर उच्च श्रेणी की दक्षता प्राप्त कर ली है और इस छोटे देश में रहने वाली तीनों जातियों का संतुलन करने में यह कृतकार्य हुई है।

चांसलर—स्विस कार्यकारिणी का वर्णन समाप्त करने से पूर्व चांसलर, जो संघ का एक उच्च पदाधिकारी होता है, का वर्णन भी कर देना

आवश्यक है। इस पदाधिकारी का नाम विधान की १०५ वीं धारा में पाया जाता है, इसको प्रति चार वर्ष पश्चात् फेडरल असैम्बली चुनती है। वह फैडरल असैम्बली व कौंसिल के जनरल सेक्रेटरी के समान कार्य करता है और उसी के कार्यकाल तक अपने पद पर काम करता है। विशेष रूप से वह फैडरल कौंसिल के आधीन रहता है। चांसलर के कर्तव्यों में उल्लेख पत्रों का रखना, प्रलेखों की रक्षा, निर्वाचनों, लोकनिर्णयों (Referendum) निर्बन्ध-उपक्रम (Initiative) आदि का विधिवत् प्रबन्ध करना, ये सब काम गिने जाते हैं। संघ के सब निर्बन्धों पर उसके हस्ताक्षर होना आवश्यक है, उनको वैध करने के लिये नहीं किन्तु उनके सही होने को प्रमाणित करने के लिये। अतएव वह एक 'उच्च हैड क्लर्क' के समान है और उसके नाम से किसी को जर्मन चांसलर का भ्रम न होना चाहिये जो जर्मनी में एक बड़ी शक्तिशाली विभूति के रूप में हुआ करता था।

संघ न्यायमण्डल

इसकी बनावट—विधान द्वारा एक संघ-ट्रिबूनल अर्थात् न्यायालय की स्थापना की गई है जिसमें संघ-सम्बन्धी मामलों में न्याय का निर्णय किया जाता है। इस समय इसमें २६–२८ सदस्य हैं और ६ अतिरिक्त न्यायाधीश हैं। ये सब ६ वर्ष के लिये फैडरल असैम्बली द्वारा चुने जाते हैं और इस अवधि के समाप्त होने पर फिर चुने जा सकते हैं। इनमें से एक प्रैसीडेंट और एक उप-प्रैसीडेंट नियुक्त किया जाता है। दोनों दो वर्ष के लिये नियुक्त होते हैं और लगातार दो बार वे निर्वाचित होकर नियुक्त नहीं किये जा सकते। प्रैसीडेंट का वेतन २७००० फ्रैंक प्रति वर्ष है। दूसरे न्यायाधीशों में प्रत्येक को २५००० फ्रैंक मिलता है। स्विट्ज़रलैंड का कोई नागरिक जो नेशनल कौंसिल का सदस्य होने योग्य है, वह न्यायालय का सदस्य चुना जा सकता है चाहे उसकी विधि-निर्बन्ध सम्बन्धी जानकारी और योग्यता कुछ भी हो। पर प्रतिबन्ध यह है कि वह न्यायालय का सदस्य रहने के साथ साथ धारा सभा का सदस्य नहीं रह सकता न किसी और पद पर काम कर सकता है। यह एक विचित्र सी बात प्रतीत होती है कि, कम से कम सिद्धांततः, विधान न्यायाधीशों के लिये कोई विधि-निर्बन्ध सम्बन्धी जानकारी की योग्यता निश्चित नहीं करता हालांकि व्यवहार में ऐसी जानकारी रखने वाले व्यक्ति ही न्यायाधीश चुने जाते हैं।

इसका अधिकार क्षेत्र—संघ व कैन्टनों के बीच व्यवहार सम्बन्धी सब मुकद्दमे, ऐसे मुकद्दमे जो संघ व कम्पनियों या व्यक्तियों के बीच में हों,

आपस में कैन्टनों के मुकदमे, या कैन्टनों व कम्पनियों या व्यक्तियों के बीच के मुकदमे निबटाना संघ न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में है। यह न्यायालय संघ के प्रति देश द्रोह के अपराध या शासन-विधान के विरुद्ध विद्रोह सम्बन्धी अपराधों की जांच करने का भी अधिकारी है। राष्ट्रों के मध्य मान्य निर्बन्ध के विरुद्ध अपराधों या ऐसे अपराधों और राजनीतिक अवज्ञाओं की परीक्षा जिसमें संघ सेना के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो जाय, यह न्यायालय कर सकता है। संघ पदाधिकारियों के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों को भी यही न्यायालय सुन कर अपना निर्णय देता है। "क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में यदि संघ और कैन्टनों के अधिकारियों में झगड़ा हो जाय, या लोक निर्बन्ध के बारे में यदि कैन्टनों में मतभेद हो, नागरिकों के वैधानिक अधिकारों के उल्लंघन की शिकायत हो, या समझौतों अथवा संधियों के तोड़ने की व्यक्तियों द्वारा शिकायत की जाय तो इन सब मामलों की जांच करने का संघ-न्यायालय को अधिकार है"।* मज़े की बात यह है कि धारा सभा द्वारा पास किये हुये निर्बन्धों को वैध-अवैध निश्चित करने का अधिकार इस न्यायालय को नहीं है जिससे यह अमरीका के सर्वोच्च-न्यायालय के समान प्रभावशाली व गौरवपूर्ण न्यायालय नहीं रह जाता। अमरीका में सर्वोच्च न्यायालय धारा सभा या कार्यकारिणी के तंत्र से परे हैं। किन्तु इस न्यायालय के "सीमित अधिकारों के कारण, न्यायाधीशों की निर्वाचन-पद्धति होने से और धारा सभा का न्याय-मण्डल पर नियंत्रण होने से स्विट्ज़रलैंड के निवासी एक शक्तिशाली संघ-न्यायमण्डल बनाने में असफल रहे हैं। यह कमी इस बात से और भी अधिक खटकती है कि उन्होंने संयुक्त-राज्य अमरीका की बहुत सी बातों में नकल की है"।[1] यद्यपि यह सच है कि इस न्याय-मण्डल का अधिकार क्षेत्र बराबर विस्तृत होता जा रहा है फिर भी यह निश्चय है कि वह संयुक्त-राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के वैधानिक महत्व को नहीं पा सकता। विशेष कर धारा सभा के बनाये हुए निर्बन्धों को वह अवैध घोषित नहीं कर सकता। ऐसा करना स्विटजरलैंड को ही नहीं वरन् यूरोपीय परम्परा के भी विरुद्ध होगा। इसका कारण स्पष्ट है और वह यह कि स्विटजरलैंड में शक्ति-विभाजन को अंगीकार नहीं किया है। धारा सभा ही राज्य-संगठन का सब से शक्तिशाली अंग है और वह भी प्रजा की सतर्क देख-रेख में सदा बनी रहती है क्योंकि जनता लोक-निर्णय (Referendum)

* विधान की ११३ वीं धारा

[1] फैडरल पौलिटी, पृ० १८६-१८७।

निर्बन्ध-उपक्रम (Initiative) और प्रत्याहरण (Recall) द्वारा लोक व्यवस्था पर अपना प्रत्यक्ष नियंत्रण रखती है।

न्याय मण्डल की कार्य प्रणाली—न्यायाधीशों को इस ढंग से चुना जाता है कि वे तीनों राष्ट्र-भाषाओं का प्रतिनिधित्व करें। न्यायालय की बैठक लूसेन नगर में होती है जो फ्रेंच भाषा-भाषियों के कैन्टन वौड (Vaud) में स्थित है। बर्न नगर के राजनीतिक वातावरण से न्यायालय को दूर रखने के लिये ऐसा किया गया था। न्यायालय तीन विभागों में विभक्त है, प्रत्येक विभाग में ८ न्यायाधीश व्यवहार-सम्बन्धी व कानून-सम्बन्धी (civil) मुकदमों को सुनकर निर्णय करते हैं। अपराध-सम्बन्धी (criminal) मुकदमों का निबटारा करने में पंच (Jury) सहायता करते हैं। ये संख्या में १२ होते हैं और ५४ नामों की सूची से १४ चुने हुए व्यक्तियों में से लाटरी द्वारा छांट लिए जाते हैं। मुकदमे में प्रत्येक पक्ष को सूची के २० नामों के विरुद्ध आपत्ति करने का अधिकार होता है। इन पंचों को प्रतिदिन के काम के लिये २० फ्रैंक पारिश्रमिक मिलता है।

राजनीतिक दल

दलबन्दी की भावना का अभाव—"फ्रांस और इंगलैंड के राजनीतिक दलों की अपेक्षा यहां राजनीतिक दल निम्न-श्रेणी का कार्य करते हैं क्योंकि कार्यकारी क्षेत्र में आगार मंत्रियों को स्थान च्युत नहीं करा सकते और व्यवस्थापन क्षेत्र में आगारों का निर्णय अन्तिम निर्णय नहीं होता। यह अन्तिम-निर्णय जनता का होता है।"* इनके अतिरिक्त उत्कट दलबन्दी की भावना के इस अभाव के पीछे और भी कई कारण हैं। धारासभा के सत्र बहुत कम समय के होते हैं जिससे दलबन्दी को सुदृढ़ करने के लिये समय ही नहीं रहता। धारासभा के सदस्य जिलों के अनुसार समूह बनाकर बैठते हैं न कि दल समूहों में। केन्द्रीय सरकार के हाथ में अपने समर्थकों को देने के लिये कोई अधिक संख्या में पुरस्कार भी नहीं होते क्योंकि कैन्टनों की सरकारों को ही अधिक विस्तृत अधिकार मिले हुए हैं। संघ-सरकारी पदों पर राजनीति के आधार पर न होकर योग्यता के कारण ही नियुक्तियां होती हैं। इन पदाधिकारियों के वेतन इतने कम हैं कि कृपाकांक्षी व्यक्ति उससे आकर्षित नहीं होते। फैडरल कौंसिल के मंत्रियों का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर होता है जिससे गुटबन्दी को प्रोत्साहन नहीं मिलता। लोक-निर्णय

---

* मौडर्न डैमोक्रेसीज़, पुस्तक १ पृ० ३६०

और प्रत्याहरण से स्विटजरलैंड जैसे छोटे देश में दलबन्दी नहीं होने पाती क्योंकि मतधारक अपने पड़ोसियों को ही मत देने के अधिक इच्छुक होते हैं। योजना के दोष गुण पर अधिक ध्यान दिया जाता है न कि व्यक्ति विशेष पर। अतएव पड़ौसी से न कि दल के उम्मेदवारों से यह अधिक आशा की जाती है कि वह प्रिय योजनाओं का समर्थन करेगा। अन्तिमतः स्विस निवासी स्वभाव से व्यावहारिक बुद्धि के होते हैं, उनमें वह गुण नहीं पाया जाता है जो प्रायः राजनीतिक दलबन्दी के लिए आवश्यक है। वे निर्वाचन के समय किसी प्रकार का प्रदर्शन पसन्द नहीं करते।

पुराने दल—प्रारम्भ में उपराज्यों के अधिकार के प्रश्न पर दलों का संगठन हुआ था। कैथोलिक सम्प्रदाय के अनुयायी जो परम्परा के समर्थक थे अपने आप को फैडरलिस्ट (Federalist) कहते थे किन्तु कैन्टनों के अधिकारों को सुरक्षित किये जाने पर जोर देते थे। इसी नाम का अमरीका में एक राजनीतिक दल हैं जो मिल्टन और वाशिंगटन के नेतृत्व में उपराज्यों के स्थान पर केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में था। स्विटजरलैंड में दूसरा दल अपने आप को सेन्ट्रलिस्ट (Centralist) के नाम से पुकारता था और केन्द्रीय सरकार की शक्ति को बढ़ाने का समर्थन करता था। सौंदरबन्द के युद्ध में कैथोलिक दल की हार हुई किन्तु मेल और सुदृढ़ संगठन के कारण उनका अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ। विजयी सैन्ट्रलिस्ट कुछ समय के पश्चात् दो शाखाओं में बंट गये, एक रैडीकल दल (Radicals) और दूसरा राइट-विंगर्स (Right wingers)। रैडीकल दल की संख्या बढ़ती गई क्योंकि उन्होंने संघक्षेत्र में लोक निर्णय और निर्बन्ध-उपक्रम लागू करने का जो प्रश्न उठाया उसका प्रजा ने बड़ा समर्थन किया। सन् १८७४ में विधान में जो संशोधन हुआ वह रैडीकल दल की विजय का द्योतक था। उसके पश्चात् इस दल ने स्विस राजनीति पर अपना सिक्का जमा लिया। राइट विंगर्स (Right Wingers) जल्दी ही राजनीतिक क्षेत्र से लुप्त हो गये। रैडीकल दल से समाजवादी दल का आविर्भाव हुआ जिसने सन् १८९० के निर्वाचन में नेशनल कौंसिल के ६ स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया। किन्तु इस दल की अधिक उन्नति न हुई। "इसका एक कारण यह है कि स्विटज़रलैंड में पहिले से ही राज्यसंगठन के ऊपर अन्य देशों की अपेक्षा अधिक मात्रा में जनता का नियंत्रण हो चुका था और बड़े बड़े उद्योगों का समष्टिकरण भी हो गया था इसलिये इस बात में संदेह नहीं

कि इन कारणों से व अचल सम्पत्ति के छोटे छोटे टुकड़ों के अधिक व्यक्तियों में बंटे रहने से स्विट्ज़रलैंड में समाजवाद का वैसा ज़ोर नहीं हुआ जैसी जर्मनी और फ्रांस में रहा है। *

वर्तमान राजनीतिक दल—उपर्युक्त वर्णन से यह मालूम हो गया कि स्विट्ज़रलैंड में कैथोलिक अनुदार-दल और इण्डिपेंडेंट डैमोक्रेटिक रैडीकल (Independent Democratic Radical) दल ये दो बड़े राजनीतिक दल हैं। ऊपरी आगार में कैथोलिकों की पर्याप्त संख्या है और उनका एक शक्तिशाली अल्प संख्यक दल है। किन्तु लोक सभा अर्थात् निचले आगार में उनकी संख्या अधिक है। इसका विशेष कारण यह है कि निचला आगार जनसंख्या के आधार पर चुने हुये प्रतिनिधियों से संगठित होता है और इस दल के समर्थकों की संख्या, घनी आबादी वाले और अधिक संख्या में प्रतिनिधि चुनने वाले कैन्टनों में ही अधिक है।

शासन-विधान का संशोधन

दो प्रकार का परिवर्तन—किसी समय भी पूरे विधान का या उसके किसी भाग का संशोधन हो सकता है, ऐसा आयोजन स्वयं शासन विधान में कर दिया गया है। फेडरल असैम्बली का कोई आगार जब विधान को पूरी तरह से संशोधित करने का प्रस्ताव पास कर दे और उस प्रस्ताव को दूसरा आगार स्वीकार नहीं करे तो संशोधन का यह प्रश्न प्रजा के निर्णय के लिये रखा जाता है। ऐसे लोक निर्णय के लिये उस प्रस्ताव को भी प्रस्तुत किया जाता है जो पूरे शासन विधान के संशोधन के लिये ५०,००० मतधारकों द्वारा भेजा गया हो। दोनों अवस्थाओं में यदि मत देने वालों की अधिक संख्या संशोधन के लिये मत देती है तो दोनों कौंसिल के लिये नया निर्वाचन किया जाता है और नये आगार संशोधन कार्य को अपने हाथ में लेते हैं।

आंशिक संशोधन—आंशिक संशोधन दो प्रकार से हो सकता है: (१) जब ५०००० मतधारक आंशिक संशोधन का प्रस्ताव, केवल इच्छा प्रकट करके या संशोधन का पूरा मसविदा तैयार करके उपस्थित करें। इस संशोधन की मांग को जब फैडरल असैम्बली सामान्य ढंग से स्वीकार कर लेती है तो फैडरल कौंसिल उस संशोधन का मसविदा तैयार करना आरम्भ कर देती है। यदि फैडरल असैम्बली इस मांग को अस्वीकार कर देती है तो संशोधन हो

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैंड, पृ० २९६

न हो, यह प्रश्न लोक निर्णय के लिये रखा जाता है। यदि ५०००० मतधारक संशोधन का पूरा मसविदा प्रस्तुत करते हैं, उस दशा में असैम्बली अपना मसविदा भी प्रस्तुत कर सकती है और दोनों मसविदे लोक-निर्णय के लिये रखे जाते हैं। (२) असैम्बली के एक या दोनों आगार संघ-विधेयकों के ढंग पर विधान के संशोधन का प्रस्ताव कर सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि व्यवस्थापक मण्डल और जनता दोनों संशोधनों का प्रस्ताव रख सकते हैं।

विधान-संशोधन के लिये लोकनिर्णय अनिवार्य—उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में संशोधन लोक-निर्णय के लिये प्रस्तुत किया जाता है। बहुसंख्यक कैन्टनों में जब मताधिक्य से संशोधन स्वीकार हो जाता है तो यह पास समझा जाता है। बहुसंख्यक कैन्टनों की गिनती करने में पूरे कैन्टन का एक मत और अर्ध-कैन्टन का आधा मत गिना जाता है। पास होने के लिये सब कैन्टनों के मतदाताओं की अधिक संख्या उसके पक्ष में होनी चाहिये। अथवा यों कहा जा सकता है कि ११½ कैन्टनों की जनता से उसे स्वीकृत होना चाहिये। जून १९२१ तक २९ संशोधन लोक निर्णय के लिये प्रस्तुत किये गये जिनमें से एक को छोड़ कर सब पास हो गये। इनमें से केवल पांच का प्रस्ताव जनता द्वारा किया गया था। एक का प्रस्ताव ११७,४९४ मतों से किया गया था। यह प्रस्ताव जुआ-वर्ग के सम्बन्ध में था और इसका पूरा मसविदा तैयार करके मतधारकों ने संशोधन का प्रस्ताव किया था। असैम्बली ने अपना निजी वैकल्पिक मसविदा तैयार किया। दोनों मसविदे जनमत के लिये रखे गये। इस जनमत का परिणाम निम्नलिखित था:—

	पक्ष में मत	विरोध में मत	पक्ष में कैन्टनों की संख्या	विरोध में कैन्टनों की संख्या
उपक्रम किया हुआ मसविदा	२६९,७४०	३२१,९९६	१३½	८½
असैम्बली का मसविदा	१०७,२३०	३४४,९१४	½	२१½

कैन्टनों की सरकारें

घटक-राज्य या कैन्टनों के विस्तार में बड़ी भिन्नता है। गौबुन्डन और बर्न का क्रमानुसार जहां २७४६ वर्ग मील और २६५८ वर्ग मील क्षेत्रफल

है वहां जुग (Zug) का ९३ वर्गमील क्षेत्रफल हैं। बर्न कैन्टन की जनसंख्या सब से अधिक है। इसमें ६८८,७७४ व्यक्ति रहते हैं। एपैन्जल इण्टिरिअर (Appenzell Interior) जो अर्ध कैन्टन है उसमें सब से कम, अर्थात् १३,९८८ मनुष्य ही रहते हैं। सन् १२९१ से लेकर सन् १८१५ तक विभिन्न समयों पर ये कैन्टन संघ में शामिल किये गये थे। संघ में शामिल होने से पूर्व अधिकतर कैन्टन स्वतंत्र और सम्पूर्ण सत्ताधारी थे। उनके निजी शासन विधान और संस्थायें थीं। संघ में आने पर उन्होंने निश्चित शक्तियों को ही संघ के सपुर्द किया, शेष बातों में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सत्ता ज्यों की त्यों सुरक्षित रखी। इसी लिये संघ का नाम कनफीडरेशन (Confedration) है न कि फैडरेशन (Federation), जो अन्य देशों में पाया जाता है।

निम्न सारिणी में स्विस संघ के २२ कैन्टनों का क्षेत्रफल जनसंख्या और लोकसभा (Lower House) में उनके प्रतिनिधियों की संख्या दी हुई है।

कैन्टनों के नाम और संघ में आने का वर्ष	क्षेत्रफल	१९३० की जनसंख्या	नेशनल कौंसिल में प्रतिनिधियों की संख्या
ज्यूरिच (१३५१)	६६८	६१७,७०६	२८
बर्न (१३५३)	२६५८	६८८,७७४	३१
लूज़र्न (१३३२)	५७६	१८९,३९१	९
ऊरी (१२०१)	४१५	२२,९६८	१
स्वीज. (१२९१)	३५१	६२,३३७	३
ओबवाल्डन (१२९१)	१९०	१९,४०१	१
निडवाल्डन (१२९१)	१०६	१५०५५	१
ग्लैरस (१३५२)	२६४	३५,६५३	२
जुग (१३५२)	९३	३४,३९५	२
फ्रीबर्ग (१४८१)	६१५	१४३,२३१	७
सोलोथर्न (१४८१)	३०६	१४४,१९८	७
बेसिल-स्टेएट (१५०१)	१४	१५५,३०१	११
बैसिल-लैंड (१५०१)	१६५	९२,५४१	११
शैफेसान (१५०१)	११५	५१,१८७	२
एपैन्जल ए (१५१३)	९४	४९,९७७	२

एपैनजल आई (१५१३)	६७	१३६,८८	१
सेंट गैलेन (१८०३)	७७७	२८६,३६२	१३
गौबुन्डन (१८१३)	२७४६	१२६,३४०	६
असरगाड (१८०३)	५४२	२५६,६४४	१२
थुरगाड (१८०३)	३८८	१३६,०६३	६
टिसीनो (१८०३)	१०८६	१५६,२२३	७
वौड (१८०३)	१२८६	३३१,८५३	१५
वैलैज (१८१५)	२०२१	१३६,३६४	६
नौचटैल (१८१५)	३०६	१२४,३२४	६
जैनीवा (१८१५)	१०६	१७४,३६६	८
	कुल १५,६४४	१,०६६,४००	१८७

कैन्टनों में प्रत्यक्ष जनतंत्र—जिन बातों में शासन-विधान कैन्टनों की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध नहीं लगाता उनमें वे सम्पूर्ण सत्ताधारी हैं। कुछ छोटे कैन्टनों में प्रत्यक्ष जनतंत्र है, अर्थात् सब नागरिक मिल कर निर्बन्धकारी सत्ता का कार्य करते हैं। वे ही सब अफसरों को चुनते हैं। अन्य बहुत से कैन्टनों में कहीं अपरिहार्य और कहीं वैकल्पिक लोक निर्णय की प्रथा प्रचलित है, फ्रीवर्ग कैन्टन में ही किसी भी रूप में लोक निर्णय नहीं लिया जाता। स्विट्ज़रलैंड के कैन्टनों में यह ही एक ऐसा कैन्टन है जहां प्रतिनिधिक राज्य संस्थायें हैं।

कैन्टनों की धारा सभायें—प्रत्यक्ष जनतंत्र प्रणाली वाले छः कैन्टनों को छोड़ कर सब में सरकार का संगठन एक ही ढंग का पाया जाता है। प्रत्येक में द्विआगारिक व्यवस्थापक मण्डल है जो ३ या ४ वर्ष के लिये लोक निर्वाचन द्वारा संगठित किया जाता है। दस कैन्टनों में अनुपाती प्रतिनिधित्व द्वारा व्यवस्थापक चुने जाते हैं। प्रति ३००–५०० निवासी १ प्रतिनिधि को चुनते हैं। व्यवस्थापक मण्डल प्रायः ग्रॉड कौंसिल (Grand Council) के नाम से पुकारा जाता है।

शासन-विधान का संशोधन—सब कैन्टनों में शासन-विधान का उपोद्बलन और उसका संशोधन जनमत से होता है। कई कैन्टनों में सब निर्बन्ध अन्तिम स्वीकृति के हेतु जनमत के प्रकाशन के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं। बहुत से मुद्रा-विधेयक भी इसी भांति अपरिहार्य लोक निर्णय के

लिये रखे जाते हैं। कैन्टनों के विधान में संशोधन का प्रस्ताव जनता द्वारा व धारा सभा द्वारा किया जा सकता है।

कैन्टन की कार्यकारिणी—प्रत्येक कैन्टन में कार्यकारी सत्ता ५ या ७ सदस्यों के एक बोर्ड में विहित होती है। यह बोर्ड या कमीशन एडमिनिस्ट्रेटिव कौंसिल (Administrative Council), स्मौल कौंसिल (Small Council) या कौंसिल आफ स्टेट (Council of State) के नाम से विख्यात रहते हैं। ज़ुग और टिसीनों में यह कमीशन अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली पर चुना जाता है। अन्य कैन्टनों में साधारण पद्धति से निर्वाचित होता है। केवल फ्रीबर्ग और वैलेस में ही यह कार्यकारी कमीशन धारा सभा द्वारा चुना जाता है। कमीशन का एक प्रैसीडेंट और एक उप-प्रैसीडेंट होता है, "फैडरल कौंसिल की तरह कैन्टन की कार्य-कारिणी बड़े बड़े मामलों में सामुदायिक रूप से कार्य करती है"। जो सम्बंध फैडरल कौंसिल और फैडरल असैम्बली में है वही सम्बंध इन कमीशनों का कैन्टनों की धारा सभाओं से होता है, अर्थात् कौंसिल धारा सभा की अनुचर रहती है और उसके आदेशों को कार्यान्वित करती रहती है।

कैन्टन का न्यायमण्डल—प्रत्येक कैन्टन का अपना निजी न्याय-संगठन है किन्तु ब्यौरे की बातें छोड़ कर इस संगठन के सामान्य सिद्धांत व उसका रूप सब कैन्टनों में एकसा है। व्यवहार-सम्बन्धी व अपराध-सम्बन्धी मामलों को दो भिन्न न्यायालय सुनकर निर्णय देते हैं।

कैन्टनों में स्थानीय शासन—स्थानीय शासन की सबसे छोटी इकाई स्विस कम्यून (Swiss Commune) है। इनकी जनसंख्या में बड़ा भेद है। किसी में केवल ५०मनुष्य रहते हैं दूसरे में २००,००० मनुष्यों के नगर शामिल हैं। सारे देश में ३१६४ कम्यून (Commune) हैं। जहां प्राकृतिक स्थिति चाहती है उन बड़े कम्यूनों में क्वार्टर कम्यून अर्थात् उप-कम्यून भी होते हैं। कम्यून में प्रबन्ध करने वाली एक कम्यूनल कौंसिल होती है जिसमें ५ या कहीं ६ सदस्य होते हैं जिनको कम्यून के निवासी स्वयं चुनते हैं। इन कौंसिलों में एक सभापति और एक उप सभापति भी होता है।

कैन्टनों में शिक्षा—सब कैन्टनों में ऐसा शिक्षा-संगठन है जो अपनी व्यावहारिकता और दृष्टि की व्यापकता के लिये विख्यात हैं। इनमें नागरिक शास्त्र की शिक्षा अनिवार्य है इसीलिये यहां के निवासी अच्छे नागरिक हैं। अधिकतर कैन्टनों में कृषि शिक्षालय हैं। इनमें माध्यमिक शिक्षालय और

विभिन्न व्यवसायों की शिक्षण संस्थायें हैं जो संघ सरकार के डाक, तार टैलीफोन और चुंगी आदि कार्यों के लिये युवा स्त्री पुरुषों को शिक्षा देकर तैयार करते हैं। सैनिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। शिक्षा के सम्बन्ध में कैन्टनों को अधिक मात्रा में स्वाधीनता मिली हुई है हालांकि संघ सरकार शिक्षा के व्यय में कैन्टनों को सहायता देती है और यह आशा किया करती है कि शिक्षा का स्तर ऊंचे से ऊंचा हो।

प्रत्यक्ष जनतंत्र
(Direct Democracy)

स्विट्ज़रलैंड प्रत्यक्ष जनतंत्र का घर है—संसार के सब देशों में स्विट्ज़रलैंड ही ऐसा देश है जहां सब से अधिक मात्रा में प्रत्यक्ष जनतंत्र प्रचलित है। "जनतंत्र के विद्यार्थी के लिये स्विट्ज़रलैंड की प्रणाली में इससे अधिक शिक्षा देने वाली कोई अन्य वस्तु नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष जनतत्र से मानव-समुदाय की आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। उनके विचार व भावनाओं का जितना वास्तविक ज्ञान प्रकट रूप से इससे हो सकता है उतना प्रतिनिधिक संस्थाओं के माध्यम से विवर्त हुये ज्ञान से नहीं हो सकता"।* कई कारणों से यह प्रत्यक्ष जनतंत्र यहां सम्भव भी है। देश पहाड़ी है जिसमें छोटी छोटी घाटियां हैं जो एक दूसरे से पृथक होने से निवासियों में विभिन्नता उत्पन्न करती है। कैन्टनों का विस्तार छोटा है, बड़े से बड़े में भी ५ लाख से कुछ अधिक निवासी हैं। औसतन कैन्टन का क्षेत्रफल ६४० वर्गमील से अधिक नहीं है। "अतएव ऐसे प्रदेश के निवासी राजकार्यों के बीच में ही सदा रहते होते हैं और लोक कार्य के गुण दोष को जांचने के लिये सब समय सुगमता से एकत्र हो सकते हैं। उनके विचारों व भावनाओं में एकसापन भी होता है और उन्हें अपनी शक्तियों को प्रतिनिधियों को सौंपने की आवश्यकता नहीं रहती"।[१] अमरीका में भी प्रत्यक्ष जनतंत्र की संस्थायें हैं किन्तु स्विट्ज़रलैंड में उनकी अधिक आवश्यकता है क्योंकि यहां धारा सभा बहुत कम संख्या में कानून पास करती है इसलिये जनता ही उसकी कमी को पूरा करती है।

उपर्युक्त प्रत्यक्ष जनतंत्र के दो प्रसिद्ध साधन लोक-निर्णय (Referendum) और निर्बन्ध-उपक्रम (Initiative) है। पहिला प्रतिनिधियों द्वारा संपादित कार्य के दोषों को दूर कराने में प्रयोग किया जाता है और दूसरा उनकी भूल के दोषों के निवारण करने में काम में लाया जाता है।

---

* मौडर्न डैमोक्रेसीज़, पु. १, पृ० ४१५

[१] दी स्टेट (१६०० की प्रति) पृ० ३०६

संघ में लोक-निर्णय—स्विट्जरलैंड में सब विधान-संशोधनों के लिये लोक-निर्णय अपरिहार्य्य हैं। जैसा हम पहिले ही कह चुके हैं। दूसरे निर्बन्धों के लिये यह इच्छा पर छोड़ दिया गया है। वैकल्पिक अर्थात् इच्छा पर निर्भर लोक-निर्णय पूर्णरूप से स्विट्जरलैंड की ही कृति है। १८२०-१८३० की क्रांति के फलस्वरूप इसकी उत्पत्ति हुई। सन् १७८४ में ही संघ-शासन में इसको अङ्गीकार किया गया यद्यपि कुछ कैन्टनों में उन्नीसवीं शताब्दी के पहिले से ही इसका प्रयोग होता आ रहा था। सार्वजनिक प्रस्तावों व निर्बन्धों के लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है। "व्यवहार में, संधियों, वार्षिक आय-व्यय (बजट), स्थानीय सुधारों के हेतु आर्थिक अनुदान और धारा सभा के सामने प्रस्तुत निश्चित प्रश्नों पर दिये गये निर्णय, जैसे क्षेत्राधिकार के झगड़े कैन्टनों के विधानों की स्वीकृति इत्यादि ये सब लोक-निर्णय के लिये नहीं रखे जाते।"* तीस हजार नागरिक लिखित प्रार्थनापत्र के द्वारा लोक-निर्णय की मांग कर सकते हैं। आठ कैन्टन भी मिलकर लोक-निर्णय की मांग कर सकते हैं किन्तु कैन्टनों ने ऐसी मांग कभी भी नहीं की है। निर्बन्ध पास होने के ९० दिन के भीतर ही यह मांग होनी चाहिये। असल में फैडरल असैम्बली से पास हुए निर्बन्धों में से ७ प्रतिशत लोक-निर्णय से रद्द किये जा चुके हैं, जिससे स्पष्ट है कि जनता वास्तव में इनमें रुचि रखती है।

कैन्टनों में लोक-निर्णय—कैन्टनों के शासन-विधानों का संशोधन लोक निर्णय से ही पास हो सकता है। आठ कैन्टनों में सब निर्बन्धों व प्रस्तावों के पास होने के लिये लोक-निर्णय से लोक सम्मति प्राप्त करना आवश्यक है। सात कैन्टनों में वैकल्पिक लोक-निर्णय प्रचलित है जिसकी मांग नागरिकों की निश्चित संख्या कर सकती है। यह संख्या भिन्न भिन्न है। तीन कैन्टनों में अपरिहार्य लोक-निर्णय का रूप वैकल्पिक निर्णय से भिन्न है। केवल एक कैन्टन में ही सामान्य निर्बन्धों के लिये लोक-निर्णय की आवश्यकता बिलकुल नहीं है।

लोक निर्णय की गुण-दोष परीक्षा—यद्यपि लोक-निर्णय की प्रथा से कुछ लाभ हुआ है किन्तु निम्नलिखित हानियां भी इससे हुई बताई जाती हैं।

---

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० १५३

१—पहिली बात तो यह है कि योजना के विरोधी ही अधिक संख्या में मत देने जाते हैं, समर्थक प्रायः प्रयत्नशील न होने के कारण घर पर ही बैठे रहते हैं। अतएव मतधारकों की बहुत थोड़ी संख्या ही इसमें भाग लेती हैं यह लोक-निर्णय का दोष है। इसमें भाग लेने वालों की संख्या योजना के महत्व पर निर्भर रहती है। प्रायः धार्मिक योजनाओं में सब से अधिक संख्या भाग लेती है उसके बाद क्रम से रेल, स्कूल, आर्थिक योजनाओं आदि के सम्बन्ध में जो योजनायें होती हैं उनको महत्व दिया जाता है।

(२) **मतदाताओं की अयोग्यता**—निर्बन्ध-योजनाओं विशेष कर पेचीदा योजनाओं के बारे में साधारण मतदाता ठीक निश्चय करने में अयोग्य रहता है। मतधारकों को योजना की छपी हुई प्रतियां मिलती हैं जिसमें बड़ा व्यय होता है।

(३) लोक-निर्णय की प्रथा से प्रतिनिधियों के उत्तरदायित्व की भावना निर्बल हो जाती है। दलबन्दी के प्रभाव के कारण धारा सभा में वे प्रायः किसी योजना के पक्ष में अपना मत दे देते हैं यद्यपि वे यह समझते हैं कि योजना हानिकारक है और यह आशा करते रहते हैं कि लोक-निर्णय में जनता स्वयं ही उसे अस्वीकार कर देगी।

(४) यद्यपि कुछ लोग इसको बहुत ही उत्तम साधन बतलाते हैं, एम डोज़ का कहना है कि इसके द्वारा व्यवसायी राजनीतिक नेताओं के बढ़ने का अवसर मिलता है जो निरर्थक असंतोष बढ़ा कर और निषेधात्मक नीति क अनुसरण कर अपने नेतृत्व की रक्षा किया करते हैं।

लोक-निर्णय से लाभ—यद्यपि लोक-निर्णय अन्य मानव संस्थाओं के समान अपूर्ण है तब भी वर्तमान स्थिति में इसने एक भारी कमी को पूरा किया है और दलबन्दी की भावना को दबा कर बड़ा लाभ पहुंचाया है। इसके ही कारण बहुत अधिक मात्रा में स्विट्ज़रलैंड अत्यन्त सुव्यवस्थित और शांति पूर्ण राष्ट्र बनने में सफल हुआ है। जैसा किसी ने कहा है "लोकनिर्णय ने, जिन हितों को हम साधना चाहते थे उनमें बहुत कम रुकावटें डाली हैं किन्तु इसके अस्तित्व भर से ही बहुत से अहित होने से बच गये.....प्रतिकूल प्रगति की सम्भावना होते हुये भी इसने लोकतंत्र में रोड़ा नहीं अटकाया प्रत्युत इसने प्रगति को भी व्यवस्थित रूप दिया है।"*

संघ में निर्बन्ध-उपक्रम—निर्बन्ध-उपक्रम वह साधन है जिससे नागरिकों की कुछ संख्या किसी निर्बन्ध का प्रस्ताव कर सकती है और यह

---

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैंड, पृ० १६१

मांग कर सकती है कि उसपर लोकमत लिया जाय चाहे धारा सभा उस निर्बन्ध का विरोध ही क्यों न करे। जैसा पहिले कहा जा चुका है संघ में यह निर्बन्ध-उपक्रम का साधन शासन-विधान में परिवर्तन करने के लिये काम में लाया जा सकता है। इसके द्वारा जो १० संशोधनों की मांग की गई उनमें से तीन ही पास हो सके। इसके विपरीत धारा सभा के बीस प्रस्तावों में से १७ संशोधन पास हुये। इससे यह स्पष्ट है कि "धारासभा के संशोधनों के प्रस्तावों की अपेक्षा उपक्रम किये हुये संशोधनों की नश्वरता अधिक है"। "तिस पर भी वैधानिक उपक्रम एक स्थायी वस्तु बनी रहेगी, यह निश्चय है। यही नहीं किन्तु इसके समर्थन में इतना ज़ोर है कि साधारण निर्बन्धों के लिये भी इसका प्रयोग बढ़ाने का प्रयत्न हो रहा है"। किन्तु अभी तक "इस मांग को स्वीकार नहीं किया गया है क्योंकि जनता को निर्बन्ध-उपक्रम करने का अधिकार देने से व्यवस्था के संघात्मक रूप के स्थान पर एकात्मक रूप हो जायगा।"*

कैन्टनों में निर्बन्ध-उपक्रम—कैन्टनों में नागरिकों की निश्चित संख्या (जो भिन्न भिन्न कैन्टनों में भिन्न भिन्न है) सारे विधान के परिवर्तन की या कुछ संशोधनों की मांग कर सकती है। पहिली अवस्था में कैन्टनों के अधिकारी या तो उस मांग के अनुसार मसविदा तैयार कर लोक निर्णय के लिये प्रस्तुत करते हैं या यह प्रश्न ही लोक निर्णय के लिये रख दिया जाता है कि संशोधन हो या न हो। सामान्य निर्बन्धों के लिये भी बहुत से कैन्टनों में साधारण नागरिक स्वयं प्रस्ताव कर सकते हैं।

जनतंत्र के सम्बन्ध में स्विस-दृष्टि कोण—स्विट्ज़रलैंड के रहने वालों का कहना है कि जब तक नागरिकों को स्वयं निर्बन्ध बनाने का अधिकार न हो, जनतंत्र अधूरा है। इस कमी को पूरा करने का साधन निर्बन्ध-उपक्रम की प्रणाली है। प्रार्थना और उपक्रम में भेद है क्योंकि उपक्रम धारा सभा के ऊपर अनिवार्य बन्धन स्वरूप हो जाता है। प्रार्थना (Petition) के सम्बन्ध में यह बात ठीक नहीं है। यद्यपि निर्बन्ध-उपक्रम लोक-निर्णय की कमी को पूरा करता है किन्तु ये दोनों साथ साथ ही उत्पन्न नहीं हुये हैं। पहिले पहल इसका प्रयोग जनमत की उपेक्षा करने वाले निर्बन्धों को रोकने में नहीं किया गया था।

---

* फाइनरः थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट के पृष्ठ ६२८ पर दी हुई पाद टीका से

निर्बन्ध उपक्रम के दोष—निर्बन्ध-उपक्रम की कई श्रेष्ठ राजनीतिज्ञों ने बुराई की है। इनमें एम ब्रोज़ और हरमन फाइनर का नाम उल्लेखनीय है। पहिले राजनीतिज्ञ का कहना है कि जनतंत्र की नींव पक्की करने की बजाय इस निर्बन्ध-उपक्रम की प्रणाली से राज्य-संगठन के आधारभूत विधान को बात बात में भय उत्पन्न हो जाता है। उसका कहना है कि इसके द्वारा नेता युग का प्रारम्भ होता है जिसमें स्वनिर्मित समितियों का उतना ही महत्व हो जाता है जितना व्यवस्थित सरकार का। अतएव देश की समृद्धि व शान्ति को इससे हमेशा भय बना रहेगा। इसका अन्तिम परिणाम यही होगा कि बनी-बनाई व्यवस्था विशृंखलित होकर नष्ट हो जाएगी। इस कथन में अत्युक्ति है किन्तु यह भी ठीक नहीं कि दो या तीन ऐसी सफलीभूत मांगों में जनमत का परिचय प्राप्त हो सकता है। निर्बन्ध-उपक्रम के कारण व्यवस्थापकों के उत्तरदायित्व की भावना में कमी आ जाती है। साधारण जनता बहुत सी निर्बन्ध योजनाओं पर ठीक ठीक मत निश्चय करने में अयोग्य रहती है। लोक-मत दान का परिणाम जनता की इच्छा का सच्चा व दोषरहित प्रदर्शन नहीं कहा जा सकता क्योंकि लोकबुद्धि असंगत बातों के चक्कर में पड़ भ्रमित हो जाती है या विधेयक के अनेक प्रावधानों से घबरा कर किसी एक प्रावधान से असंतुष्ट होने के कारण ही सारे विधेयक को भी रद्द कर देती है चाहे सारे विधेयक के सार से वह सहमत ही क्यों न हो। निर्बन्ध-उपक्रम की मांग में संशोधन भी सम्भव नहीं होता। इससे मतधारक पर उत्तरदायित्व का अत्यन्त भारी बोझ पड़ जाता है जिसे वह भली प्रकार संभाल सकने में असमर्थ होता है।

निर्बन्ध-उपक्रम के समर्थकों की विचार धारा—उपर्युक्त दोषों के रहते हुये भी इस प्रणाली के समर्थक इससे बड़ी आशा रखते हैं उनका विचार है कि इसके द्वारा जनता की अधिसत्ता (Sovereignity) की रक्षा होती है। इसके द्वारा जनता अपने प्रतिनिधियों के प्रति अपना असंतोष प्रकट करने में समर्थ होती है, यदि वे अपना कर्तव्य अच्छी तरह नहीं निबाहते। इससे देशभक्ति जाग्रत होती है और उत्तरदायित्व की भावना की वृद्धि होती है क्योंकि स्वनिर्मित निर्बन्ध के अनुसार आचरण करने के लिये मतधारक का झुकाव अधिक होता है। इससे सर्वसाधारण को राजनीति की शिक्षा मिलती है, दलबन्दी का ज़ोर कम हो जाता है, जहां कार्यकारिणी को निर्बन्धकारी सत्ता पर नियंत्रण रखने की शक्ति नहीं होती वहां इसके द्वारा जनता का नियंत्रण रखा जा सकता है और अन्त में, उस जनमत की शक्ति

का इससे प्रकाशन होता है जो ऐसा निर्णय करने में समर्थ है जिसके विरुद्ध कहीं अपील नहीं हो सकती।

प्रत्यक्ष जनतंत्र के संचालन के सम्बन्ध में ब्रुक्स का यह कथन है कि "इसमें संदेह नहीं कि स्विट्ज़रलैंड में लोक निर्णय और निर्बन्ध-उपक्रम से राज्यसंगठन तितर-बितर नहीं हुआ है। इनसे अल्पसंख्यक दलों का प्रभाव अवश्य बढ़ गया है। स्विस राज्यसंगठन की यह प्रणाली एक आवश्यक अङ्ग बन गई है जिससे इसके प्रति अब विरोध होना भी बहुत समय से समाप्त हो गया है।

पाठ्य पुस्तकें

Brooks.—Government and Politics of Switzerland.

Bryce, Viscount.—Modern Democracies Vol. I chs. XXVII–XXXII.

Finer, Herman.—Theory & Practice of Modern Government, Vol. II, ch. XXI.

Lowell, A. L.—Governments & Parties in Continental Europe, Vol. II ch. XI.

Munro, M. W.—Governments of Europe, chs. on Switzerland.

Ogg, F. A.—The Governments of Europe chs. XXI–XXIII.

Sharma, B. M.—Federal Polity ch. II C (i) chs III, IV and Appendix B.

Wilson, Woodrow.—The State (Edition 1200) pp. 631–728.

Select Constitutions of the World pp. 425–458

Statesman Year Book (Latest issue).

Vincent, F. M.— Government in Switzerland.

अध्याय १६

सेवियट रूस की सरकार

"पूंजीवादी देशों में जहाँ विरोधी वर्ग हों प्रजातंत्र का अर्थ यही होता है कि वहाँ अल्पसंख्यक पूंजी वर्ग का तंत्र या शक्तिवान का तंत्र है। इसके विपरीत सोवियट रूस में प्रजातंत्र का अर्थ श्रमिकों का तंत्र अथवा सब लोगों का तंत्र है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रजातंत्र की नींव पर आघात करने वाला रूस का नया विधान नहीं है किन्तु दूसरे पूँजीवादी शासन विधान हैं। इसीलिये मैं समझता हूँ कि सोवियट रूस का शासन-विधान पूर्ण रूप से जनतंत्रात्मक विधान है" (जोसेफ स्टैलिन)

समाजवादी सोवियट प्रजातंत्रों के संघ (Union of the Socialist Soviet Republics) का क्षेत्रफल ८,०९५,७२४ वर्ग मील है और जनसंख्या १६४,८४७,१००* है। यहां पिछले ३० वर्षों में एक नवीन राज्य शासन प्रणाली का वृहत्-प्रयोग किया जा रहा है जिसके प्रशंसकों और आलोचकों ने विभिन्न रूपों में इसकी व्याख्या की है। कुछ लोगों ने सोवियट रूस के शासन-विधान को वास्तविक रूप में प्रजातंत्रात्मक कह कर प्रशंसा की है, दूसरे लोगों ने लाखों मूक-व्यक्तियों पर अत्याचार करने वाला कठोर शासन कह कर इसकी प्रतारणा की है।

शासन-विधान का इतिहास

रूस की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वह, संस्कृति, हितों और संस्थाओं की दृष्टि से अर्ध-यूरोपियन और अर्ध-एशियाई समझा जाता है। सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के पूर्व रूस संसार के सबसे कठोर शासित देशों में गिना जाता था। ज़ार राज्य का ऐकैवाधिकारी स्वामी माना जाता था, उसकी शक्ति असीमित और उसका वचन ही कानून था। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ज़ार अलैज़ैण्डर प्रथम (Zar Alexandar I) ने शासन प्रणाली में कुछ सुधार करने का प्रयत्न किया किन्तु इस कार्य में सन् १८१२ में किये हुये नैपोलियन के आक्रमण ने बाधा डाल दी। उसका उत्तराधिकारी

---

* यह आंकड़े सितम्बर सन् १९३९ के पहिले के हैं

ज़ार अलैग्ज़ैण्डर द्वितीय उदार विचारों का व्यक्ति था। अपने पड़ौसी राज्य आस्ट्रिया के उदाहरण से (जहां सन् १७८१ में कृषि-श्रमजीवियों की स्थिति में सुधार हो चुका था) प्रेरित होकर उसने यह इच्छा प्रकट की कि सामन्त लोगों को इन कृषि श्रम जीवियों को स्वतंत्र करने का काम अपने हाथ में लेना चाहिये। तीन मार्च सन् १८६१ में एक राजाज्ञा से वैयक्तिक भूसम्पत्तियों के श्रमजीवी दासों को स्वतंत्र कर दिया गया। उनके साथ साथ गृह कार्य करने वाले दासों को भी स्वतंत्रता दे दी गई। कृषकों की भूमि उनकी सम्पत्ति बना दी गई और उनसे अपने जमींदारों को एक उचित नियत लगान देने के लिये कह दिया गया। तीन वर्ष बाद उसने पोलैण्ड (Poland) के दासों को भी स्वतंत्र कर दिया। "न्याय, प्रकाश और स्वतंत्रता" यही उसका निर्देशक सिद्धान्त था, तब भी शून्यवादी रूसी क्रांतिकारियों (Nihilits) ने उसका विरोध किया। इन लोगों ने गुप्त संस्थायें खोलना आरम्भ किया, हिंसा का प्रचार किया और अन्त में ज़ार पर बम्ब फेंका (१३ मार्च सन १८८१) जिससे उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े हो गये।

ड्यूमा को बुलाने का प्रथम प्रयत्न—इस घटना के बाद सन् १६०५ के रूसी-जापानी युद्ध तक शासन को जनतंत्रात्मक बनाने का कोई दूसरा प्रयत्न नहीं किया गया। इस युद्ध में रूस की पराजय हुई और उससे ज़ार के ऐश्वर्य का भवन खण्डहर हो गया। उसकी उच्चता की चमक-दमक फीकी पड़ गई और उसके पैतृक अधिकार में अविश्वास होने लगा। ज़ार ने एक लोक निर्वाचित असैम्बली (जिसे ड्यूमा कहा गया) का संगठन कर लोकमत जानने का प्रयत्न किया। इसी समय जनता ने विद्रोह खड़ा कर दिया। मताधिकार को बढ़ाकर जनता को प्रसन्न करने के सब प्रयत्न विफल हुये और उसे बाध्य होकर एक मैनीफैस्टो (अर्थात् घोषणापत्र) निकालना पड़ा जिससे "व्यक्ति के शरीर की, आत्मा की, वाणी की, समुदाय व मुक्तव्यवहार की वास्तविक अलंघ्यता के आधार" पर जनता को नागरिक स्वतंत्रता प्रदान करनी पड़ी। यह अपरिवर्तनशील नियम भी स्थिर करना पड़ा कि ड्यूमा (Duma) की सम्मति के बिना कोई कानून लागू न होगा, और जनता के प्रतिनिधियों को यह अधिकार दिया गया कि राज्याधिकारियों के कार्यों को वैध-अवैध ठहरा सकें। सन् १६०६ में जो प्रथम ड्यूमा एकत्रित हुई उसमें प्रत्यक्ष प्रौढ़ मताधिकार, पार्लियामेंटरी (संसदात्मक) शासन-प्रणाली, जमींदारी उन्मूलन आदि की मांग की गई। इस ड्यूमा का जुलाई में विलयन हो गया। द्वितीय ड्यूमा मार्च १६०७ में एकत्रित हुई और वह भी विफल-काय सिद्ध हुई।

ज़ार की सत्ता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ—मई सन् १९०६ के मौलिक-निर्बन्धों के चौथे अनुच्छेद से यह घोषणा कर दी गई थी कि "रूस के सम्राट की शक्ति सर्वोच्च निरंकुश शक्ति है। उसके प्रभुत्व को शिरोधार्य करना चाहिये, केवल भय से ही नहीं किंतु आत्मा की रक्षा के लिये भी, यही परमेश्वर की आज्ञा है"। ऐसे वातावरण में सन् १९०७ के नवम्बर मास में बुलाई गई ड्यूमा भी कोई कार्य न कर सकी। ज़ार की इच्छा से ही अन्तिमतः सब व्यवस्था होती थी। यदि ड्यूमा सरकार के आर्थिक प्रस्तावों को अस्वीकार कर देती थी तो ज़ार के मंत्री पूर्व वर्ष के बजट के अनुसार शासन चलाते रहते थे। कार्यकारिणी पूर्णतया ज़ार को उत्तरदायी थी न कि ड्यूमा (Duma) को।

इसलिये प्रथम महायुद्ध के समय रूस की जनता उस युद्ध से उत्पन्न कष्टों से घबरा कर विद्रोह कर उठी और निकोलस को राजत्याग करने पर बाध्य कर दिया (मार्च १२ सन् १९१७)।

सन् १९१७ की क्रांति—प्रथम महायुद्ध में रूस योरप की केन्द्रीय शासन सत्ताओं के विरुद्ध मित्र-राष्ट्रों का साथी था। किन्तु वह अपने यहां के निरंकुश शासन के कारण अधिक समय तक युद्ध न कर सका। शासन को प्रजातंत्रात्मक बनाने की मांगों को ज़ार लगातार कुचलता रहा जिससे प्रगतिशील व्यक्तियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। ज़ार ने समझदारी से काम न लेकर अनुचित आज्ञायें दीं कि ड्यूमा के सदस्य घर वापिस चले जायं, पिट्रोग्राड के श्रमिकों को हड़ताल बन्द करने की आज्ञा दी और काम आरम्भ करने को कहा, जिससे विद्रोह सजीव हो उठा। इस विद्रोह के दूरवर्ती कारणों में, रूस के किसानों की भूख से मृतप्राय अवस्था, योरप में प्रजातंत्र का जोर, रूसी-जापानी युद्ध से उत्पन्न कष्ट और रूसी युवकों की अधीरता, ये सब कारण थे। ड्यूमा ने राजाज्ञा का विरोध किया। एक सप्ताह के भीतर ज़ार ने राजसिंहासन छोड़ दिया और उसको कुटुम्ब सहित बन्दी बना दिया गया। ड्यूमा ने जो अस्थाई सरकार स्थापित की उसने आज्ञा देकर समाचार-पत्रों पर लगाये हुये बन्धनों को हटा दिया, राजनीतिक व धार्मिक बन्दियों को छोड़ दिया, श्रमिकों के संगठन बनाने और हड़ताल करने के अधिकार को मान्य कर दिया और स्थल व जल सेना के अनुशासन को अधिक मानुषिक रूप दिया। यह सरकार थोड़े ही समय तक कायम रह सकी क्योंकि पीट्रोग्रेड की सोविएट ने स्थल सेना व जलपोतों के बेड़े को यह आदेश दे दिया कि इस अस्थायी सरकार की उन आज्ञाओं का पालन न

किया जाय जो सोवियट के आदेशों के विरुद्ध हों। इसका परिणाम यह हुआ कि सैनिकों ने व नाविकों ने स्थानीय क्रांतिकारी समितियां स्थापित कीं। इस समय भी कुछ व्यक्ति पूर्व शासकों के पक्ष में थे और दूसरे लोगों ने युद्ध करने से बिलकुल मना कर दिया।

सन् १९१७ के अक्टूबर मास में बौल्शैविकों ने अपने दल की बैठक में बलपूर्वक राज्यशक्ति को अपने हाथ में करने का निर्णय किया। नवम्बर मास की ६ तारीख को उन्होंने पीट्रोग्रेड नगर पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया और सरकार के मंत्रियों को बन्दी कर लिया। सोवियटों की अखिल रूसी कांग्रेस ने ७ नवम्बर को एक कार्यकारिणी समिति बनाई और एक प्रशासन बोर्ड स्थापित किया जिसके लैनिन सभापति, ट्रौटस्की परराष्ट्र मंत्री और स्टैलिन विभिन्न जातियों का मंत्री (Commissar of Nationalities) बनाये गये। सन् १९१७ के नवम्बर मास की क्रांति की प्रमुख प्रेरक शक्ति लैनिन और उसके अत्यन्त योग्य सहकारी ट्रौटस्की की थी। मंत्रिमण्डल ने एक कार्यक्रम तैयार किया जिसमें निम्नलिखित बातें थीं।

(i) केन्द्रीय सत्ताओं (Central Powers) से तुरन्त संधि करना।

(ii) स्थानीय विद्रोह का दमन करना और पृथकीकरण की भावनाओं को मिटाना।

(iii) पूर्ण कम्यूनिष्ट सरकार की स्थापना के लिये श्रमिकों की अधिनायक सत्ता स्थापित करना और इस अधिनायक सत्ता की स्थापना के लिये सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संगठन को पूरी तरह से बदल देना, और

(iv) सारे संसार में श्रमजीवियों के विद्रोह को फैलाना।

सोवियटों की कांग्रेस ने जिसका संचालन बौलशैविक समाजवादी दल करता था, जल्दी जल्दी अपने कई अधिवेशन किये। सन् १९१८ की १० मार्च को जो पांचवा अधिवेशन हुआ उसमें रूस के समाजवादी संघात्मक सोवियट गणराज्य (Russian Socialist Federal Soviet Republic) के लिये एक शासन विधान तैयार किया। इस गणराज्य या प्रजातंत्र में ज़ार के नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य के उत्तरी व सुदूरपूर्वी अधिकतर भाग शामिल थे। सन् १९१८ से १९२३ तक इस विधान में कई महत्वपूर्ण संशोधन किये गये। विशेष कर ये संशोधन नये प्रदेशों को संघ में शामिल करने के बारे में थे। सन् १९२३ से इस संघ का नाम समाजवादी सोवियट प्रजातंत्रों का संघ

(U. S. S. R. or Union of Socialist Soviet Republics) रखा गया।

यह विधान बहुत ही अद्वितीय था और इसमें संसार के अन्य शासन-विधानों से बिलकुल भिन्न शासन-प्रणाली अपनाई गई थी। इसकी उत्पत्ति सन् १९१७ की जनक्रांति से हुई थी इसलिये यह जार की अत्याचारी सत्ता की प्रतिक्रिया-स्वरूप निर्मित हुआ था। इसके द्वारा प्रसिद्ध दार्शनिक कार्ल मार्क्स के समाजवादी सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दिया गया जिसके अनुसार प्रत्येक समस्या राजनीतिक समस्या है और प्रत्येक श्रमिक राज्य का नौकर है। इसका उद्देश्य पूंजीवाद को पूर्णतया कुचल देना था इसलिये इस शासन विधान में रूस को "सोवियट श्रमिकों, सैनिकों और कृषकों के प्रतिनिधियों का प्रजातंत्र "कहकर पुकारा गया था। बाह्यरूप में यह संगठन अत्यन्त दृढ़ संघ (Close Federation) के रूप में था अर्थात संघ शक्ति या केन्द्रीय शक्ति को विस्तृत अधिकार दिये गये और जनता के राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले प्रमुख मामलों को संघ सरकार के हाथ में कर दिया था। संघ के सात घटक प्रजातंत्र राज्यों को स्थानीय व सांस्कृतिक स्वाधीनता मिली हुई थी। इसका अन्तिम उद्देश्य सारे संसार का एक सोवियट संघ बनाना था इसलिये इस संघ को एक राष्ट्रीय इकाई न कहा जाता था। इसको समान समाजवादी सिद्धान्तों पर स्थित समान समाजवादी संस्थाओं वाला संघ समझा जाता था। कम से कम कागज़ पर इसमें घटक राज्यों को संघ से पृथक होने का अधिकार दिया गया था जो संघ के सर्वमान्य सिद्धान्तों के बिलकुल प्रतिकूल बात थी।

श्रमिकों का शासन—विधान ने श्रमिकों के शासन की स्थापना की थी इसलिये मताधिकार सबके लिये समान था चाहे वे स्त्री हों या पुरुष। जो लोग लाभकारी उद्योगों में मजदूरों से मजदूरी देकर काम कराते थे, या अनुपार्जित आय से जीविका चलाते थे, पादरी, सन्यासी, मूढ़ व्यक्ति और जार के पूर्व कर्मचारी, ये लोग मताधिकार से वञ्चित कर दिये गये थे। विधान की एक नवीनता यह थी कि इसमें जिले की सोवियट, सरकार की सोवियट और केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति, इन सबको अप्रत्यक्ष निर्वाचन-प्रणाली द्वारा संगठित करने की योजना थी। प्रत्यक्ष-निर्वाचन द्वारा गांव या फैक्टरी की सोवियट (परिषद) ही बनाई जाती थी जिसका अधिकार क्षेत्र बहुत सीमित था। "इस प्रकार का संगठन किसी राजनीतिक दल के लिये तो नई वस्तु न थी किन्तु राज्य-संगठन में इसका होना एक अद्वितीय बात थी।" *

* कोल-ए गाइड टू मौडर्न पौलिटिक्स, पृ० २३

स्थानीय व प्रान्तीय-सरकार—रूस के शासन का रूप पिरैमिड जैसा था जिसके आधार में फैक्टरी और ग्राम सोवियटों की बड़ी संख्या थी और चोटी पर केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति (Central Executive Committee) और प्रैसीडियम (Presidium) थीं। अपनी सीमा के भीतर ग्राम-सोवियट को विधान ने शासन सत्ता का सर्वोच्च अङ्ग माना था।

सोवियट राजनीतिक सिद्धांतों के अनुसार मताधिकार वास्तव में कोई अधिकार नहीं है केवल एक सामाजिक कर्तव्य है और इससे मज़दूरों के अधिकारों की रक्षा होती है। रूस में रहने वाले विदेशी मज़दूरों को भी मताधिकार मिला हुआ था। सन् १९३१ में १६०,००९,००० लोगों में से ८४,०००,००० लोगों को मताधिकार मिला हुआ था। सूचीबद्ध मतधारकों में से ७१-८ प्रति सैंकड़ा ने मतदान किया था। सोवियट शासन में मतदान करना मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा का साधन समझा जाता था। और मतधारकों को बराबर इस कर्तव्य में चूक न करने का आदेश दिया जाता था।

निर्वाचन और प्रतिनिधित्व का आधार—शासन की जिस इकाई का निर्वाचन होना होता था उसकी कार्यकारिणी द्वारा नियुक्त कमीशन निर्वाचन की सब बातें, जैसे निर्वाचन-स्थान, समय ढंग आदि निश्चय करता था। निर्वाचन क्षेत्र प्रादेशिक न थे किन्तु व्यावसायिक थे, प्रत्येक फैक्टरी या सामूहिक कृषि फार्म स्वयं एक निर्वाचन-क्षेत्र होता था। गुप्त शलाका की प्रथा न थी, मतधारक निर्वाचन-पदाधिकारी के सम्मुख उपस्थित होकर अपना मत बता देता था। ग्राम व फैक्टरी सोवियटों में हाथ उठाकर मत लिये जाते थे। जो उम्मेदवार मतों की अधिक संख्या पाते थे वे निर्वाचित हो जाते थे। यद्यपि सोवियट शासन-विधान श्रमिकों की अधिसत्ता पर आधारित था किन्तु नगरों, कारखानों और गांव के रहने वालों के नागरिक अधिकारों में बहुत विभिन्नता थी (यदि वोट इस नागरिकता के मूल्य का माप हो)। नगरों में या कारखानों में काम करने वाले २५,००० व्यक्तियों को एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार था किन्तु गांव में कृषि करने वाले १२५,००० व्यक्ति एक प्रतिनिधि चुन सकते थे। इस भेद का कारण यह बतलाया जाता था कि पूंजीवाद से समष्टिवाद के परिवर्तन काल में राजनीति में शिक्षित व वर्ग भेद को समझने वाले मज़दूरों के हाथ में नेतृत्व होना चाहिये। यह कहा जाता था कि जब कृषक लोग भी जाग्रत हो जायेंगे तब यह भेद मिटा दिया जायेगा।

ग्राम्य और फैक्टरी सोवियट—शासन की प्राथमिक इकाई ग्राम या फैक्टरी थी और प्रत्येक की अपनी निजी सोवियट (परिषद् समिति) होती थी जिसको सब स्थानीय मामलों के प्रबन्ध का काम सौंपा गया था। तीन सौ निवासियों वाले ग्राम या तो अपना शासन स्वयं करते थे या दूसरे गांवों के साथ मिलकर संयुक्त शासन-प्रबन्ध करते थे। इसी प्रकार छोटे कारखाने जिनमें १०० से कम मजदूर काम करते थे वे दूसरों से मिलकर अपनी एक सोवियट स्थापित कर लेते थे। फैक्टरी समिति काम करने वालों के सामाजिक जीवन, पाकशाला क्लब निवास स्थान (यदि इसका आयोजन कारखाने के पास ही होता था) और काम करने वालों की शिक्षा की देख भाल करती थी।*

डिस्ट्रिक्ट सोवियट—ग्राम व फैक्टरी सोवियट से ऊपर जिले की सोवियट होती थी जिसमें जिले की ग्राम व फैक्टरी सोवियटों के प्रतिनिधि होते थे। इन प्रतिनिधियों को ग्राम के किसान या फैक्टरी के काम करने वाले न चुनते थे किन्तु ग्राम व फैक्टरी सोवियट चुना करती थी। यहीं से अप्रत्यक्ष निर्वाचन (Indirect Election) जो रूस की शासन प्रणाली की विशेषता है आरम्भ होता था। डिस्ट्रिक्ट सोवियट जिले के भीतर स्थानीय हित की बातों का प्रबन्ध करती थी और साथ साथ ऊपर से मिले आदेशों का भी पालन करती थी।

प्रादेशिक सोवियट (Regional Soviet)—अगली ऊँची प्रशासन-इकाई प्रादेशिक सोवियट थी जिसके आधीन अनेक डिस्ट्रिक्ट सोवियट होती थीं। प्रादेशिक सोवियट जिसको कांग्रेस भी कहते थे, में प्रतिनिधियों को कुछ संख्या में डिस्ट्रिक्ट सोवियट चुनती थीं और कुछ प्रतिनिधि फैक्टरी सोवियटों द्वारा चुने जाते थे जिससे ग्राम सोवियटों की अपेक्षा फैक्टरी सोवियटों का अधिक महत्व था क्योंकि ग्राम सोवियटें प्रादेशिक कांग्रेस में प्रत्यक्ष रूप से अपना प्रतिनिधि चुन कर न भेजती थी। इन प्रादेशिक कांग्रेसों के कर्तव्य जिले की सोवियटों की अपेक्षा उच्च श्रेणी के होते थे। रूसी संघ के सात प्रजातंत्र इकाई-राज्यों में से प्रत्येक में कई प्रदेश (regions) होते थे जो स्थानीय शासन की इकाई होते थे। प्रत्येक प्रादेशिक कांग्रेस उपराज्य की कांग्रेस में अपना प्रतिनिधि चुन कर भेजती थी। इसलिये प्रादेशिक कांग्रेस के ऊपर उपराज्य की कांग्रेस होती थी।

---

* ए गाइड टू मौर्डन पौलिटिक्स, पृ० २२६

स्वाधीन उपराज्य—रूसी सोवियट संघ में स्वयं अपना शासन करने वाले सात उपराज्य थे। इनमें से बहुत से उपराज्य स्वयं छोटे स्वतन्त्र गण-राज्यों के संघ थे जिनका सोवियट ढंग पर शासन प्रबन्ध होता था। उपराज्यों को शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, समाचार पत्रों आदि में पूर्ण स्वतंत्रता थी। प्रत्येक इकाई राज्य की अपनी कांग्रेस थी जिसमें प्रादेशिक (Regional) कांग्रेसों के प्रतिनिधि सदस्य होते थे। सदस्यों की संख्या बहुत होती थी। इसकी साल में दो बैठकें होती थीं। यह अपने सदस्यों में से कुछ व्यक्तियों को चुनकर केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति बनाती थी जिसको सामान्यतया कुछ निर्बन्ध सम्बन्धी व प्रशासन सम्बन्धी अधिकार मिले होते थे। इस समिति में भी सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होती थी। इसकी माह में तीन बैठकें होती थीं यह अपनी एक छोटी समिति चुनती थी जो इसकी ओर से कार्य करती थी जब केन्द्रीय समिति की बैठकें न होती थीं। इस छोटी समिति को प्रैसीडियम (Predium) कहा जाता था। प्रैसीडियम के अतिरिक्त एक लोक-प्रबन्धक-परिषद् (Council of Peoples Commissaries) भी संगठित की जाती थी जिसमें उपराज्य के शासनविभागाध्यक्ष (Heads of Departments) होते थे। यह परिषद मंत्रिपरिषद् के समान थी किन्तु इसे प्रेसीडियम के आदेशों को कार्यान्वित करना पड़ता था।

सातों उपराज्यों में एकसा ही प्रशासन होता था क्योंकि इन की कांग्रेसों में अधिकतर सदस्य कम्यूनिष्ट दल के ही लोग होते थे जिनकी नीति सारे दल के लिये निश्चित की हुई नीति होती थी। हर एक उपराज्य में रूस के सर्वोच्च न्यायालय की एक शाखा होती थी जिसके नीचे अन्य छोटे न्याया-लय थे। इन सब से मिल कर उपराज्य का न्यायमण्डल बनता था।

रूस की केन्द्रीय सरकार—सोवियट सरकार संगठन के पिरैमिड की चोटी पर सोवियट रूस की संघ या केन्द्रीय सरकार थी। केन्द्रीय प्रशासन की सब से बड़ी संस्था सोशलिष्ट उपराज्यों के संघ की सोवियट-कांग्रेस थी। इसमें नगर या फैक्टरी सोवियटों के चुने हुये प्रतिनिधि सदस्य थे जो २५००० मतधारकों के लिये एक प्रतिनिधि के हिसाब से चुने जाते थे। इनके अतिरिक्त प्रादेशिक सोवियटें (Regional Soviets) भी प्रति १,२५,००० मतधारकों के लिये एक प्रतिनिधि चुनकर इस कांग्रेस में भेजती थीं। यह कांग्रेस रूसी संघ में सर्वोच्च सत्ताधारी संस्था थी। इसमें लगभग ४००० सदस्य बैठते थे। इसकी बैठक साल में एक बार हुआ करती थी। यह संघ की कौंसिल के

सदस्यों का निर्वाचन कर उसका संगठन करती जिससे यह कौंसिल धारा सभा का कार्य करती थी। इस कौंसिल में ४७२ सदस्य सातों उपराज्यों से अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर चुने हुये होते थे। कांग्रेस एक कौंसिल आफ नेशनेलिटीज़ (Council of Nationalities) या उपराष्ट्र परिषद् भी चुनकर संगठित करती थी। इस कौंसिल के सदस्यों की संख्या १३८ थी जो इस हिसाब से निर्वाचित होते थे कि प्रत्येक स्वतंत्र उपराज्य के लिये ५ सदस्य और प्रत्येक स्वाधीन प्रदेश (Region) के लिये १ सदस्य हो। ये दोनों कौंसिलें मिलकर संघ की सैन्ट्रल एक्ज़ीक्यूटिव कमैटी (Central Executive Committee) अर्थात् केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति कहलाती थी। जब कांग्रेस की बैठक नहीं होती थी तब सोवियट रूस की यह ही सर्वाधिकारी निर्बन्धकारी, कार्यकारी और न्यायकारी सत्ताधारी संस्था थी। इसकी बैठकें तीन मास में एक बार होती थीं। बैठक न होने के समय प्रैसीडियम (Presidium) इसके कार्यों का संचालन करती थी। प्रैसीडियम में २१ सदस्य थे। जिन शक्तियों को केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति प्रयोग कर सकती थी वे सब प्रैसिडियम को भी मिली हुई थीं। केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति एक लोक प्रबन्धक-परिषद् का संगठन भी करती थी जिसमें शासन विभागों के १७ अध्यक्ष होते थे। यह लोक-प्रबन्धक-परिषद् (Council of People's Commissaries) ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् जैसी संस्था थी। इसमें जो शासनाध्यक्ष होते थे उनको दो सहायक और मिले होते थे। परराष्ट्र विभाग, युद्ध, ग्रह, विदेशी व्यापार, कृषि, स्थल-यातायात, जल-यातायात डाक व तार, मजदूरों व कृषकों का निरीक्षण, काष्ठ-उद्योग, सरकारी फार्म, अर्थ-विभाग इन सब के अध्यक्ष इस परिषद् में सदस्य होते थे। राजकीय योजना कमीशन (State Planning Commission) का प्रैसीडेंट भी इसका सदस्य था। परिषद् में एक प्रैसीडेंट और एक उप-प्रैसीडेंट था। स्टैलिन इसी परिषद् का सदस्य था।

अतएव अप्रत्यक्ष चुनाव के टेढ़े मेढे ढँग से चुनी हुई प्रैसीडियम व प्रबन्धक परिषद् (People's Commissaries) ये दो संस्थायें थी जो रूस के प्रशासन का संचालन करती थी। सँघ सरकार के कर्तव्यों में विदेशी व्यापार, परराष्ट्र सम्बन्ध, सुरक्षा, राष्ट्रीय आर्थिक नीति का निश्चय करना, घरेलू व्यापार, कर लगाना, मजदूर और उनके सम्बन्ध में कानून और सरकार की सामान्य देखभाल ये सब शामिल थे *।

---

* ए गाइट टू मौडर्न पौलिटिक्स, पृ० २२८

सोवियट न्यायमण्डल

सोवियट रूस के सातों उपराज्यों में न्यायमण्डल की एकरूपता थी। इसके संगठन का उद्देश्य इसको लोक बुद्धि-गम्य और ऐसा बनाना था जिससे सब उस तक पहुँच कर उसका उपयोग कर सकें। हर उपराज्य (Republic) में उपराज्य की कांग्रेस के द्वारा किये हुये कुछ परिवर्तनों के साथ एक सा ही न्यायसंगठन था। इस संगठन में एक सर्वोच्च न्यायालय और अनेक प्रादेशिक (Regional Courts) और लोक-न्यायालय (Peoples' Court) होते थे।

छोटे न्यायालय—न्यायमण्डल की सब से प्राथमिक इकाई लोक-न्यायालय (Peoples' Courts) थी इसमें एक न्यायाधीश और उसके दो सहायक होते थे। इन सब को समान अधिकार मिले हुये थे। सहायक न्यायाधीश का चुनाव ग्राम और फैक्टरी सोवियट द्वारा चुने हुये व्यक्तियों की सूची में से प्रदेश (Region) की कार्यकारिणी समिति करती थी। वह किसी वर्ष में लगातार छः दिन से अधिक न कार्य करता था। न्यायाधीश की नियुक्ति प्रादेशिक कार्यकारिणी समिति एक वर्ष के लिये करती थी।

प्रादेशिक न्यायालय—हर प्रादेशिक न्यायालय में प्रादेशिक कार्यकारिणी समिति से नियुक्त कई न्यायाधीश होते थे। यह प्रादेशिक न्यायालय लोक-न्यायालयों के काम की देखभाल करता था और उन निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता था। बड़े मुकदमों में इसे प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त था।

सर्वोच्च न्यायालय—प्रादेशिक न्यायालय के ऊपर उपराज्य का सर्वोच्च न्यायालय था जिसके न्यायाधीश उपराज्य (Republic) की कार्यकारिणी समिति द्वारा नियुक्त होते थे। उपराज्य में (Republic) सर्वोच्च न्यायालय ही उपराज्य का अन्तिम न्यायालय था। यह उन मुकदमों को सुन कर निबटाता था जो प्रादेशिक न्यायालय इसके पास भेजते थे। जिन मुकदमों को उपराज्य की कार्यकारिणी समिति, या उपराज्य का अभियोक्ता (Prosecutor) विशेष महत्वपूर्ण होने के कारण इस न्यायालय में भेजता था उनमें इस न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार था। (Republican) सरकार के सदस्यों के अपराधों वाले मुकदमे भी इसी सर्वोच्च न्यायालय में प्रारम्भ होते थे।

सोवियट कानून में केवल सामान्य आदेश होते हैं जिनके अनुसार न्याय का निर्णय करना पड़ता है। कानून के प्रत्येक शब्द का पालन नहीं

करना पड़ता। सोवियट सरकार के विरुद्ध किये गये अपराधों का दण्ड बड़ा कठिन दिया जाता था। काम से बचने या आर्थिक कानूनों को तोड़ने के साधारण अपराधों के लिये दल का दण्ड दिया जाता था। ऐसे अपराधों के लिये एक से दस वर्ष तक तक के कारावास का दण्ड दिया जाता था। राज-विद्रोह के लिये मृत्यु सब से ऊंचा दण्ड था। "सोवियट न्याय प्रणाली का उद्देश्य अपराधी को सुधारना और अपराध करने से रोकना है न कि निरुद्देश्य सताना।"

संघ का सर्वोच्च न्यायालय—केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति से लगा हुआ केन्द्रीय सर्वोच्च न्यायालय था। यह अन्य संघ-शासनों के समान स्वतंत्र न्यायालय न होता था। इसमें एक सभापति, एक उपसभापति और ३० न्यायाधीश होते थे जो सब प्रैसीडियम द्वारा नियुक्त होते थे। यह न्यायालय तीन विभागों में विभक्त था। दीवानी विभाग (Civil) अपराध-विभाग (Criminal) और सैना विभाग (Military) संघ-सरकार के सदस्यों के अपराधों की यह न्यायालय परीक्षा करता था। घटक उपराज्यों के बीच झगड़ों की परीक्षा कर संघ की कार्यकारिणी समिति से उनके विरुद्ध यह प्रार्थना कर सकता था कि वे उपराज्य संघ के सामान्य-निर्बन्धों के विरुद्ध आचरण करते हैं या दूसरे उपराज्य को हानि पहुँचाते हैं। संघ और उपराज्यों की सरकारों के आदेशों के वैध-अवैध होने के सम्बन्ध में पूछे जाने पर यह न्यायालय केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति को अपनी राय भी देता था। इन न्यायालयों के अतिरिक्त विशेष प्रश्नों के लिये अन्य न्यायालय भी सोवियट संघ में बने हुए थे।

सोवियट शासन विधान का पुनर्निर्माण

मार्क्स के सिद्धांतों के इस व्यावहारिक प्रयोग से यह मालूम होगया कि इस समाजवाद की आदर्श-विचारधारा को व्यावहारिकता में लाना बड़ा कठिन है। अतएव शासन विधान में कई संशोधन किये गये जिनमें से मुख्य ये हैं :—

सुदूर पूर्वीय प्रदेशों को जो बड़े निर्धन थे कर से मुक्त कर दिया गया। (१९३३)

मज़दूरी उत्पादन के परिमाण व गुण, दोनों के आधार पर निश्चित की जाने लगी। (१९३४)

बालकों को नागरिक शिक्षा व उनके राजनीतिक शिक्षण के सम्बन्ध में जो नियम थे उनमें संशोधन कर दिया गया। (१९३४)

राशन प्रणाली तोड़ दी गई (१९३४)

सामूहिक कृषि का कानून बदल दिया गया और वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार विस्तृत कर दिया गया (१९३४)

शिक्षा प्रणाली का पुनर्संगठन करने और शिक्षालयों में अनुशासन की मात्रा बढ़ाने के लिये कानून बनाये गये।

एक नये शासन-विधान के विकास का प्रयत्न—उपर्युक्त परिवर्तनों से जिस प्रवृत्ति का परिचय मिलता है उसकी प्रेरणा से सन् १९३५ में एक समिति बनाई गई जिसका स्टैलिन सभापति था। अन्य प्रमुख सदस्यों में लिट्वीनौव, रैडक, वाइसिंसकी, वौरोशिलौव, मौलोटौव, बुरवारिन, अकौजौव आदि थे। इस समिति को शासन-विधान बनाने का काम सौंपा गया। एक वर्ष के परिश्रम के पश्चात् एक मसविदा तैयार हुआ जो केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति से स्वीकृत होकर जनमत के जानने के लिये १२ जून सन् १९३६ को प्रकाशित किया गया। अखिल सोवियट कांग्रेस ने फिर इस पर विचार किया और ५ दिसम्बर सन् १९३६ को इसे पास किया। यह शासन-विधान सन् १९३७ में लागू किया गया।

कांग्रेस के विचारार्थ इस विधान के मसविदे को उपस्थित करते हुये स्टैलिन ने कहा कि इसकी उत्पत्ति पूंजी पद्धति की समाप्ति और सोवियट रूस में समाजवादी पद्धति की विजय के फलस्वरूप हुई है। नये विधान का प्रमुख आधार समाजवाद के सिद्धान्त हैं जिसके प्रधान-अवलम्बों को प्राप्त किया जा चुका है, जैसे—भूमि, बन, कारखानों, मशीनों व अन्य उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व, प्रपीड़कों और उत्पीड़कों का विनाश, बहुसंख्यकों की निर्धनता व अल्पसंख्यकों की विलासिता का निवारण, बेकारी का दूर करना, प्रत्येक स्वस्थ शरीर वाले के लिये काम को एक कर्तव्य व सम्मान का स्थान देना"। स्टैलिन ने कहा कि उस मसविदे में जो मार्ग चला जा चुका है और जो सफलता प्राप्त की जा चुकी है उसका कुल योग व सारांश इसमें दिया हुआ है। अर्थात् जो व्यवहार में सत्य है उसे निर्बन्ध का रूप दिया जा रहा है।

सन १९३६ का नया शासन-विधान

शासन-विधान के प्रारम्भ में समाज का संगठन दिया हुआ है

और कहा गया है कि सोवियट रूस किसानों और मजदूरों का समाज वादी राज्य है जिसका राजनीतिक आधार श्रमिकों के प्रतिनिधियों की सोवियटें (समितियाँ) हैं। "सोवियट रूस में सारी शक्ति नगरों और ग्रामों के श्रमिकों की है..."। सामाजिक स्वामित्व की व्याख्या में कहा गया है कि यह दो प्रकार का है या तो राज्य का स्वामित्व या सामूहिक फार्मों का स्वामित्व। सारी भूमि, खनिज पदार्थ, बन, कारखाने, खानें, रेलें, स्थल और जल यातापात के साधन व इनके अतिरिक्त सब उद्योग व संस्थायें राज्य की सम्पत्ति घोषित कर दिये गये। राज्य की सम्पत्ति का अर्थ सारे राष्ट्र की सम्पत्ति से है।

कुछ वैयक्तिक सम्पत्ति मान्य की गई—सामूहिक कृषि-भूमि उनकी संस्थाओं के लिये बिना कुछ मूल्य दिये हुये दे दी गई। सामूहिक-कृषि संस्था (Collective Farm) के प्रत्येक गृहस्थी को अपने प्रयोग के लिये घर से लगी हुई जमीन का टुकड़ा और अन्य आवश्यक वस्तुयें जैसे रहने का मकान, पशु, मुर्गियाँ, व अन्य खेती करने का सामान दे दिया गया। उन किसानों व कारीगरों की आय व वैयक्तिक सम्पत्ति उनके लिये कानून से सुरक्षित कर दी गयी जो केवल अपने परिश्रम से कमाई गई हो और दूसरों की मेहनत से प्राप्त न की गई हो। नागरिकों की आय, उनकी बचत, रहने का मकान व अन्य वस्तुयें, घर की चीजें दिन प्रतिदिन के जीवन यापन की आवश्यक वस्तुयें आदि को अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति मानकर रखने का अधिकार कानून से दे दिया गया है। इस वैयक्तिक सम्पत्ति को पिता से प्राप्त करने का अधिकार भी कानून से मान्य कर दिया गया है।

नागरिकों के मौलिक अधिकार—नये शासन-विधान की एक विशेषता यह है कि इसके दसवें अध्याय में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की घोषणा कर दी गई। मौलिक अधिकार ये हैं:—(१) काम पाने का अधिकार जिसका आवश्यक प्रबन्ध राष्ट्र को समाजवादी आर्थिक व्यवस्था, सोवियट समाज के बढ़ते हुये उत्पादन, आर्थिक संकटों के अभाव और बेकारी के निवारण द्वारा किया गया है; (२) विश्राम का अधिकार जिसके लिये अधिकतर काम करने वालों के काम के घंटे घटा कर सात घंटे कर दिये गये हैं। कर्मचारियों व मजदूरों को सवेतन वार्षिक छुट्टी दी जाती है, और स्वास्थ्य गृहों, विश्राम गृहों और चिकित्सालयों का प्रबन्ध है; (३) वृद्धावस्था, रोगावस्था या काम करने की सामर्थहीनता की अवस्था में जीवन यापन की उचित व्यवस्था। इसके लिये श्रमिकों का राज्य की ओर से बीमा

की व्यवस्था है जिसका व्यय सरकार अपने ऊपर लेती है, निःशुल्क चिकित्सा की जाती है और अनेक स्वास्थ्य सुधारने के स्थानों का प्रबन्ध है; (४) शिक्षा का अधिकार। इसके लिये निःशुल्क सार्वजनिक प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा, राज्य की ओर से माध्यमिक शिक्षालयों के बहु-संख्यक विद्यार्थियों के लिये छात्रवृत्तियाँ, निःशुल्क उच्च शिक्षा, शिक्षालयों में मातृभाषा में शिक्षण, निःशुल्क व्यवसायी शिक्षा और फेक्टरियों, फार्मों, ट्रैक्टर स्टेशनों पर काम करने वालों को कृषि सम्बन्धी शिक्षा, इन सबका प्रबन्ध किया जाता है।

अधिकारों के उपभोग में स्त्री और पुरुषों में भेद नहीं किया जाता। पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी काम करने, विश्राम, शिक्षा, आदि का अधिकार है। माँ व बच्चे की आवश्यक देख भाल, गर्भावस्था में सवेतन छुट्टी का अनेक जच्चा घरों का प्रबन्ध व छोटे बालकों के लिये रहने, खेलने व पढ़ने का आयोजन, ये सब होता है।

जातीयता या राष्ट्रीयता के आधार पर आर्थिक, राजकीय, सांस्कृतिक, व सामाजिक क्षेत्र में व नागरिक अधिकारों के उपभोग मे अन्तर नहीं किया जाता है।

आत्मिक स्वतंत्रता सुरक्षित कर दी गई है। अतएव रूस में धर्ममठ (Church) राज्य से पृथक है और शिक्षालय भी धर्ममठ से पृथक हैं।

नागरिकों को वक्तृता देने, एकत्र होने, संस्था बनाने, सड़कों पर जलूस निकालने और प्रदर्शन करने की स्वतंत्रता दी जाती है। इसके साथ साथ समाचार छपवाकर प्रकाशित करने की भी स्वतंत्रता है। इन सब के लिये मज़दूरों और उनकी संस्थाओं को छापने की मशीनें, कागज, मकान, सड़कें, बातचीत करने के साधन और अन्य सुविधायें उपलब्ध कराई जाती हैं।

किसी भी व्यक्ति के शरीर को व्यर्थ ही कष्ट नहीं पहुँचाया जा सकता। अभियोक्ता की आज्ञा से या किसी न्यायालय के निर्णयानुसार ही कोई भी व्यक्ति पकड़ कर बन्दी बनाया जा सकता हैं अन्यथा नहीं। कानून से व्यक्तियों के रहने का स्थान सुरक्षित स्थान माना गया है जहां हर कोई बिना मकान के स्वामी की इच्छा के नहीं जा सकता। व्यक्तियों का पत्र व्यवहार भी इसी प्रकार सुरक्षित रहता है। पत्रों को खोलकर उनका भेद खोलना अवैध है।

सोवियट नागरिक को (१) विधान के अनुसार कार्य करना पड़ता है। निर्बन्धों का पालन, काम करने के सम्बन्ध में अनुशासन मानना अपने सामाजिक कर्तव्यों को सच्चे मन से पूरा करना और समाजवादी जनसंगठन के नियमों का पालन करना, ये सब नागरिक को करने पड़ते हैं। (२) उसे

सार्वजनिक धन सम्पत्ति की रक्षा समाजवादी प्रणाली का पुनीत अलंघ्य आधार मान कर और श्रमिकों के पूर्ण सांस्कृतिक जीवन का स्रोत समझ कर करनी पड़ती है।

सैनिक शिक्षा सबके लिये अनिवार्य है क्योंकि देश की सुरक्षा प्रत्येक नागरिक का पुनीत कर्तव्य है। देश के प्रति विद्रोह, शपथ का उल्लंघन, बैरी से जाकर मिल जाना, राज्य की सैन्य शक्ति को हानि पहुंचाना, विदेशी राज्य के लिये भेदिये गुप्त चर का कार्य करना, इन सब के लिये कड़े से कड़े दण्ड का विधान है।

संघ का संगठन

विधान के दूसरे अध्याय में राज्य का संगठन (organisation of the state) दिया हुआ है।

केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ—ग्यारह सोवियट समाजवादी प्रजातंत्र राज्यों के मिलने से संघ का निर्माण हुआ है। इन सब राज्यों को एक समान अधिकार प्राप्त हैं। राज्यचिन्ह में हँसिया और हथौड़े का चित्र है। राष्ट्र की राजधानी मौस्को है। विधान के १४ वें अनुच्छेद के अनुसार निम्नलिखित शक्तियां संघ को दी गई हैं:—

(क) अन्तःराष्ट्रीय मामलों में संघ का प्रतिनिधित्व करना, पर राष्ट्रों से संधि करना और उनको पूरा करना और संघ, उपराज्यों व विदेशी राज्यों के बीच सम्बन्धों के बारे में सामान्य प्रणाली निश्चित करना;

(ख) युद्ध और शान्ति सम्बन्धी प्रश्न;

(ग) सोवियट रूस में नये प्रजातंत्रात्मक उपराज्यों को शामिल करना;

(घ) संघ के शासन-विधान के पालन की देखभाल जिससे उसके अनुसार ही सब कार्य हो।

(ङ) उपराज्यों की सीमाओं को परिवर्तन करने की स्वीकृति देना।

(च) उपराज्यों में नये स्वाधीन प्रदेशों, प्रान्तों या प्रजातंत्रों (Republics) के बनने की स्वीकृति देना।

(छ) सोवियट रूस की सुरक्षा का प्रबन्ध, उसकी सैन्य शक्ति का संचालन और उपराज्यों में सैन्य शक्ति संगठित करने के लिये निर्देशक सिद्धान्तों का स्थिर करना।

(ज) राज्य के एकाधिकार के आधार पर वैदेशिक व्यापार।

(झ) राज्य की सुरक्षा का बचाव।

(ञ) सोवियट रूस की आर्थिक योजनाओं को कार्यान्वित करना।

(ट) सारे संघ का एक बजट (आय-व्यय का लेख) बनाकर स्वीकार करना। उपराज्यों व स्थानीय संगठनों के बजट में करों व आय के साधनों की स्वीकृति देना।

(ठ) उद्योगों, कृषि-सम्बन्धी संस्थाओं, बैंकों और सारे सोवियट रूस के लिये महत्वपूर्ण व्यापार-योजनाओं का प्रबन्ध।

(ड) यातायात के साधन, डाक व तार आदि का प्रबन्ध।

(ढ) मुद्रा व उधार-प्रणाली का संचालन।

(ण) राजकीय बीमा का प्रबन्ध।

(त) ऋण लेना या देना।

(थ) भूमि, जंगल, खान, जल आदि के प्रयोग के सम्बन्ध में मूल सिद्धान्तों को स्थिर करना।

(द) शिक्षा के सम्बन्ध में व सार्वजनिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मूल सिद्धान्तों को स्थिर करना।

(ध) देश के लिये हिसाब किताब रखने की एक ही प्रणाली का आयोजन करना।

(न) श्रम के सम्बन्ध में कानून के आधारभूत सिद्धान्तों को निश्चित करना।

(प) न्याय-संगठन व न्याय-प्रणाली के सम्बन्ध में कानून बनाना।

(फ) जनपदत्व और विदेशियों के सम्बन्ध में कानून बनाना।

(ब) सारे संघ के बन्दियों को मुक्त करने का आदेश देना।

१४वें अनुच्छेद में वर्णित शक्तियों को छोड़कर शेष शक्तियां संघ के उपराज्यों की है। संघ उनमें उपराज्यों की सत्ता की रक्षा करता है। प्रत्येक उपराज्य का शासन विधान पृथक पृथक है क्योंकि वह अपनी निजी विशेष आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया गया है किन्तु उसका रूप संघ शासन विधान के रूप के समान ही है। सिद्धान्ततः प्रत्येक उपराज्य को संघ से पृथक होने का अधिकार है। किसी भी उपराज्य के प्रदेश में उसकी सम्मति के बिना परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

संघ के सारे निवासी संघ के नागरिक हैं। संघ के निर्बन्ध सब उपराज्यों में लागू रहते हैं और संघ-निर्बन्ध में टक्कर होने पर संघ-निर्बन्ध ही मान्य होता है।

संघ सरकार की बनावट

सुप्रीम कौंसिल—सोवियट रूस में राज्य शक्ति की सब से बड़ी संस्था सुप्रीम कौंसिल (Supreme Council) है जो ६४वें अनुच्छेद में दी हुई सारी शक्तियों के सम्बन्ध में निर्बन्ध बना सकती है किंतु ऐसा करने में वह प्रैसीडियम (Presidium) कौंसिल आफ पीपिल्स कमीसार्स (Council of People's Commissars) या लोक प्रबन्धक परिषद् और पीपिल्स कमीसरियट्स (People's Commissariats) अर्थात् शासन विभागों की शक्तियों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। यह सुप्रीम कौंसिल द्विआगारिक है, एक आगार का नाम संघ सोवियट या कौंसिल है और दूसरे आगार का नाम मेशनलिटीज़-सोवियट है।

व्यवस्थापक मण्डल

निचला आगार या लोकसभा—संघ-सोवियट या संघ-कौंसिल निचला आगार है जिसमें प्रजा द्वारा प्रत्यक्ष प्रणाली से चुने हुये व्यक्ति सदस्य होते हैं। इन प्रतिनिधियों को नागरिक स्वयं चुनते हैं। प्रति ३००,००० जनसंख्या के लिये एक प्रतिनिधि चुना जाता है। चुनाव के लिये सारा देश निर्वाचन-क्षेत्रों में बंटा हुआ है।

सोवियट रूस के सब नागरिक जिनकी आयु १८ वर्ष की हो प्रतिनिधियों के निर्वाचन में भाग ले सकते हैं और स्वयं प्रतिनिधि निर्वाचित होने के लिये खड़े हो सकते हैं। मताधिकार के लिये किसी विशेष जाति, धर्म या राष्ट्र-निष्ठा, शिक्षा का स्तर, सम्पत्ति-स्वामित्व आदि का ध्यान नहीं रखा जाता सब को मत देने का अधिकार रहता है चाहे कोई विदेशी ही क्यों न हो। केवल उन्माद रोग से पीड़ित व्यक्ति या वे जिनको किसी न्यायालय ने मताधिकार से वञ्चित कर दिया है, मत नहीं दे सकते। स्त्रियों को भी मत देने का अधिकार है, वे प्रतिनिधि भी चुनी जा सकती हैं। प्रत्येक व्यक्ति को एक मत देने का अधिकार होता है। सैनिक भी मत दे सकते हैं और प्रतिनिधि बन सकते हैं। गुप्त शलाका द्वारा मत लिया जाता है। निर्वाचन-क्षेत्रों में उम्मेदवारों को श्रमिकों की संस्थायें, कम्यूनिस्ट पार्टी के संगठन, व्यवसायी-संघ, सहकारी-समितियां, युवक-संघ और सांस्कृतिक संस्थायें मनोनीत करती हैं। कौंसिल चार वर्ष के लिये चुनी जाती है। चुने हुये प्रतिनिधि को अपने काम के बारे में अपने निर्वाचकों को संतुष्ट करना पड़ता है। निर्बन्ध के अनुसार

स्थिर किये हुये तरीके पर निर्वाचकों के बहुमत से किसी भी प्रतिनिधि को वापिस बुलाया जा सकता है। नये विधान के अन्तर्गत कौंसिल का निर्वाचन १२ दिसम्बर सन् १९३७ को हुआ। उस समय ९१,११३,१५३ व्यक्तियों ने मतदान में भाग लिया। चुने हुये प्रतिनिधियों में सोवियट संघ के प्रत्येक प्रदेश के कुछ निवासी अवश्य थे। एक ओर उत्तरी प्रदेश के एस्कीमों थे तो दूसरी ओर दक्षिण के कौकेशिया निवासी भी थे। ये प्रतिनिधि लगभग १०० भाषाओं के बोलने वाले और रहन सहन, संस्कृति आदि में एक दूसरे से बहुत भिन्न थे। इस भिन्नता का कारण सोवियट रूस के विशाल देश की विभिन्न भौगोलिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां ही हैं।

ऊपरी आगार—ऊपरी आगार नेशनलीटोज़ सोवियट (या कौंसिल) अर्थात् उपराष्ट्र-परिषद् कहलाता है। इसके सदस्य भी सीधे नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं। प्रत्येक संघ-प्रजातंत्र (Union Republic) अर्थात् उपराज्य, को २५, स्वाधीन प्रदेश को ११, स्वाधीन जिले को ५ और राष्ट्रीय जिले को १ प्रतिनिधि चुन कर भेजने का अधिकार है। संघ-सोवियट के साथ साथ ही यह उपराष्ट्र-परिषद् भी चार वर्ष के लिये चुनी जाती है। निर्वाचन पद्धति भी निचले आगार की निर्वाचन पद्धति के समान है। यहां यह बतलाना आवश्यक है कि सोवियट रूस के कई उपराज्यों में अनेक स्वाधीन प्रजातंत्र, प्रांत, और प्रदेश (autonomous republics, provinces and regions) होते हैं। केवल चार उपराज्यों में ऐसी स्वाधीन इकाइयां नहीं हैं।

व्यवस्थापक मण्डल की कार्यवाही—दोनों आगारों में से प्रत्येक अपनी कार्यपद्धति निश्चित कर उसके अनुसार अपना कार्य करता है। आगार में एक सभापति और दो उपसभापति होते हैं। प्रत्येक आगार अपने सदस्यों के प्रतिनिधि बनने के अधिकार की परीक्षा भी करता है। दोनों आगारों को निर्बन्ध बनाने का समान अधिकार है। किसी भी आगार में नई योजना पर विचार आरम्भ हो सकता है। जब दोनों आगार साधारण बहुमत से किसी विधेयक को स्वीकार कर लेते हैं तो वह स्वीकृत समझा जाता है। इस प्रकार स्वीकृत हो जाने के पश्चात् वह निर्बन्ध सुप्रीम कौंसिल (Supreme Council) की प्रैसीडियम के अध्यक्ष व सैक्रेटरी के हस्ताक्षर सहित संघ की विभिन्न भाषाओं में छाप कर प्रकाशित कर दिया जाता है।

दोनों आगारों के मतभेद को सुलझाना—यदि दोनों आगारों में मतभेद होने से कोई विधेयक दोनों में स्वीकार नहीं हो पाता तो वह एक

समझौता-कमीशन के सुपुर्द कर दिया जाता है । यह कमीशन दल प्रणाली के अनुसार ही संगठित होता है, अर्थात् प्रत्येक राजनीतिक दल के प्रतिनिधि अपनी अपनी संख्या के अनुपात से इसके सदस्य बनाये जाते हैं। यदि कमीशन (Commission) किसी समझौते पर पहुँचने में असफल रहे या यदि इसका निर्णय किसी आगार को अमान्य हो तो आगारों को पुनर्विचार करने के लिये एक बार फिर अवसर दिया जाता है। यदि फिर भी वे सहमत नहीं होते तो सुप्रीम कौंसिल का अर्थात् दोनों आगारों का विलयन कर दिया जाता है और नया निर्वाचन किया जाता है ।

सुप्रीम कौंसिल की प्रैसीडियम और कौंसिल आफ पीपिल्स कमिसार्स (लोक प्रबन्धक परिषद्) को चुनने के लिये दोनों आगारों की संयुक्त बैठक होती है। वर्ष में दो बार आगारों की साधारण बैठकें होती हैं किन्तु प्रैसीडियम स्वयं या संघ-उपराज्यों की प्रार्थना पर सुप्रीम कौंसिल का विशेष अधिवेशन बुला सकती है। चार वर्ष की अवधि समाप्त होने पर या विलयन होने पर दो मास के भीतर ही नये निर्वाचन का होना आवश्यक है और निर्वाचन होने से एक मास के भीतर ही नये आगारों की प्रथम बैठक होनी चाहिये।

कार्य-कारिणी

प्रैसीडियम—सुप्रीम कौंसिल की प्रैसीडियम में २८ सदस्य हैं। प्रैसीडियम अपने सब कार्यों के लिये सुप्रीम कौंसिल को उत्तरदायी है। शासन-विधान के ४६ वें अनुच्छेद के अनुसार प्रैसीडियम निम्नलिखित काम करती है:—(क) सोवियट रूस के सुप्रीम कौंसिल की बैठकें बुलाना; (ख) सोवियट रूस के निर्बन्धों की व्याख्या करना और आदेश देना, (ग) किसी उपराज्य की मांग पर या स्वेच्छा से लोकनिर्णय (Referendum) का प्रबन्ध करना (घ) जब संघ की या उपराज्यों की कौंसिल आफ पीपिल्स कमीसार्स के निर्णय या आज्ञायें निर्बन्ध-विरुद्ध हों तो उनको रद्द करना, (ङ) सुप्रीम कौंसिल के दो सत्रों के बीच समय में कौंसिल का कार्य करना, (च) पीपिल्स कमीसार्स (Peoples' Commissars) के सभापति के सुझाव पर संघ के किसी पीपिल्स कमीसार को अर्थात् लोक प्रबन्ध को नियुक्त करना जिसकी अन्तिम स्वीकृति सुप्रीम कौंसिल देती है, (छ) सम्मानसूचक नाम या पुरस्कार देना, (ज) क्षमादान देना, (झ) सैना के उच्चपदाधिकारियों को नियुक्त करना या पदच्युक्त करना, (ञ) जब सुप्रीम कौंसिल की बैठक न हो रही हो उस समय यदि संघ पर बाहरी आक्रमण हो या किसी दूसरे पर आक्रमण पर पारस्परिक रक्षा के हेतु की गई किसी अंतःराष्ट्रीय संधि के अन्तर्गत कोई

कार्यवाही करनी हो तो युद्ध की स्थिति की घोषणा करना, (ट) सैना में भर्ती के लिये घोषणा करना, (ठ) अन्तःराष्ट्रीय संधियों का उपोद्बलन करना, (ड) दूसरे देशों में रूस के राजदूतों की निमुक्ति करना या उन्हें वापिस बुलाना, और (ढ) विदेशी राजदूतों का स्वागत करना व उनको आवश्यकता पड़ने पर वापिस भेजने का प्रबन्ध करना।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रैसीडियम की शक्तियां वे हैं जो दूसरे राज्यों में कुछ राज्याध्यक्ष को और कुछ मंत्रिपरिषद् को मिली होती हैं।

कौंसिल आफ कमीसार्स अर्थात् लोक प्रबन्धक परिषद्—सोवियट रूस की सर्वोच्च प्रशासन-शक्ति कौंसिल (सोवियट) आफ पीपिल्स कमीसार्स अर्थात् लोक-प्रबन्धक-परिषद् को मिली हुई है। यह परिषद संघ की सुप्रीम कौंसिल के सामने अपनी कार्यवाही का ब्यौरा रखती है। जब कौंसिल की बैठक नहीं होती है उस समय यह प्रैसीडियम के आधीन रहती है। निर्बन्धों के आधार पर व उनके प्रावधानों के अनुसार यह परिषद् अपने आदेश निकालती है जो सारे संघ में लागू होते हैं। इन आदेशों के पालन करने का भी प्रबन्ध यह परिषद् करती है। शासन-विधान के ६४ वें अनुच्छेद के अनुसार इस परिषद के निम्नलिखित कर्तव्य हैं:—(१) सोवियट रूस के उपराज्यों के शासन विभागों (Peoples' Commissariats) अन्य आर्थिक या सांस्कृतिक संस्थाओं के कार्यों का संचालन करना व उनमें सामंजस्य लाना। (२) राष्ट्र की आर्थिक योजनाओं व आय-व्यय के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक प्रबन्ध करना और मुद्रा-व्यवस्था को शक्तिपूर्ण बनाना, (३) लोक-व्यवस्था को ठीक रखना, राज्य के हितों की रक्षा करना और नागरिकों के स्वत्वों को बचाना, (४) सोवियट रूस के परराष्ट्रीय सम्बन्धों को निश्चित कर उनको व्यवहार रूप देना (५) संघ-सैन्य बल के सामान्य-संगठन की देखभाल व नागरिकों की सैन्यसेवा का वार्षिक परिमाण निश्चित करना और (६) आवश्यक होने पर, आर्थिक, सांस्कृतिक या सुरक्षा सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने के लिये विशेष समितियां बनाना।

यह परिषद् उपराज्यों की प्रबन्धक परिषदों के निर्णयों व आदेशों को स्थगित कर सकती हैं और उनके आर्डीनेंसों (अध्यादेशों) को रद्द कर सकती है, यदि वे प्रशासन व आर्थिक प्रबन्ध के उन विभागों से सम्बन्धित हों जो संघ के अधिकार-क्षेत्र में आते हों।

इसकी बनावट—सुप्रीम कौंसिल इसका संगठन करती है। इसमें परिषद का एक सभापति, व एक उप सभापति होता है। इनके अतिरिक्त

सोवियट रूस के प्लानिंग (योजना) कमीशन का सभापति, सोवियट कन्ट्रोल कमीशन का सभापति, सोवियट रूस के शासन प्रबन्धक (Commissars), भण्डारों की समिति का सभापति, कला-समिति का सभापति और उच्च शिक्षा-समिति का प्रधान, ये सब सदस्य होते हैं। इन सबकी कुल संख्या १६ जनवरी सन् १६३८ को २८ थी।

परिषद् कैसे कार्य करती है—सोवियट रूस की सरकार से दोनों आगारों में प्रश्न पूछे जा सकते हैं और इन प्रश्नों का ततसम्बन्धी कमीसार उत्तर देता है। यह उत्तर लिखित हो या मौखिक और प्रश्न करने से तीन दिन के समय के भीतर मिलना चाहिए। कमीसार अर्थात् लोक प्रबंधकर्त्ता अपने आधीन शासन विभाग का संचालन करते हैं। वे इन विभागों से सम्बन्धित आदेश निकालते और इन आदेशों को कार्यान्वित करने का आयोजन करते हैं। उनके ऊपर केवल राष्ट्र के निर्बन्धों और लोक-प्रबन्धक परिषद् की आज्ञाओं का ही प्रतिबन्ध रहता है।

सोवियट रूस में आगे वर्णित आठ संघ-शासन विभाग हैं। (All Union Peoples' Commissariats) हैं: सुरक्षा, वैदेशिक मामले, वैदेशिक व्यापार, रेल, जल मार्ग, तार आदि भारी उद्योग और सुरक्षा-उद्योग।

सोवियट रूस में न्यायमण्डल

न्याय व्यवस्था सारे सोवियट रूस में एक सी है। सर्वोच्च न्यायालय सोवियट रूस की सुप्रीम कोर्ट है। इसके आधीन उपराज्यों की सुप्रीम कोर्ट, प्रान्तीय और प्रादेशिक न्यायालय स्वाधीन प्रजातंत्रों व स्वाधीन प्रदेशों के न्यायालय, जिला अदालतें, विशेष अदालतें, (जिनको सोवियट रूस की सुप्रीम कौंसिल स्थापित करती है) और लोक-न्यायालय (Peoples Courts) है।

सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) सुप्रीम कोर्ट या सर्वोच्च न्यायालय संघ व उपराज्यों के सारे न्याय मण्डल के कार्य की देखभाल करता है इसके व विशेष न्यायालयों के न्यायाधीशों को सुप्रीम कौंसिल चार वर्ष के लिये चुनती है। इसी प्रकार उपराज्यों की सुप्रीम कौंसिल वहां के सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के न्यायाधीशों को पाँच वर्ष के लिये चुनती है। स्वाधीन प्रजातंत्र (Autonomous Republic)* इकाइयों में भी एक

* यह Union Republic से भिन्न होती है

अपना सर्वोच्च न्यायालय होता है जिसके न्यायाधीश वहां की सुप्रीम कौंसिल द्वारा पांच वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं।

प्रांतीय और प्रादेशिक सोवियट या स्वाधीन प्रादेशिक श्रमिक प्रतिनिधियों की सोवियट प्रांतीय या प्रादेशिक न्यायालयों, स्वाधीन प्रदेशों के व जिले के न्यायालयों का निर्वाचन करती हैं। लोक-न्यायालय के न्यायाधीशों को रेअ्रोन (Rayon) के निवासी स्वयं तीन वर्ष के लिये चुनते हैं। निर्वाचकों में सब को समान अधिकार होते हैं और मतदान गुप्त रीति से होता है।

न्यायालयों की कार्यवाही उस प्रदेश की भाषा में होती है जिसमें वह न्यायालय स्थित है। यदि कोई व्यक्ति उस भाषा से परिचित नहीं होता तो उसे एक अनुवादक की सहायता दी जाती है। वह स्वयं अपनी भाषा में ही न्यायालय से अपनी राय कह सकता है। सब न्यायालयों की कार्यवाही खुले ढंग पर होती है। अपराध लगाये हुये व्यक्ति को अपना बचाव करने का पूर्ण अधिकार रहता है। कानून से निश्चित कुछ मामलों में छोड़ कर सब मुकद्दमों में पंचों की सहायता ली जाती है। न्यायाधीश निर्ग्रन्थों के आधीन रहते हुये सब प्रकार से तंत्र रहित हैं।

प्रत्येक (उपराज्य, संघ, प्रदेश आदि की) सुप्रीम कौंसिल एक प्राभिकर्ता (Attorney) नियुक्त करती है जिसका प्रमुख कर्त्तव्य यह होता है कि शासन विभागों द्वारा कानूनों के कार्यान्वित किये जाने की देख भाल करे। सब प्राभिकर्ता सोवियट रूस के महाप्राभिकर्ता (Attorney General) के नियंत्रण में अवश्य है किन्तु अन्यथा वे स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करते हैं।

इकाई-राज्यों की सरकारें

सोवियट रूस के ११ इकाई या घटक-राज्यों के नाम, उनकी राजधानियाँ, क्षेत्रफल और जनसंख्या नीचे दी हुई सारिणी में मिलेगा:

घटक राज्य का नाम व उसकी राजधानी		वर्ग मीलों में क्षेत्रफल ज. १,१६३६	जनसंख्या जनवरी १ १६३३
रूस का सोवियट संघात्मक समाजवादी प्रजा तंत्र (U. S. S. R.)	,, (मॉस्को)	६,३६८,७६८	१०५,६५०,६००
यूक्रेन, एस. एस. आर	(कीव)	१७०,६६८	३१,६६१,४००
बाईलोरन्शियन	,, (मिस्क)	४२०,२२	५,४८६,४००

एज़रबिजान	,,	(बाकू)	३२,६५६	२,८६१,०००
जार्जियन	,,	(टिफलिस)	२६८२५	३,११०,६००
आर्मिनियन	,,	(इरीवन)	११५८०	१,१०६,२००
तुर्कमन	,,	(अश्खाबाद)	१७१,३८४	१२६८,६००
उज़बैक	,,	(ताशकन्द)	६६,३६२	५,०४४,३००
तदज़ैक	,,	(स्टैलिनाबाद)	५५,०४०	१,३३२,७००
कज़ख	,,	(अल्मा-आटा)	१,०४७,७६७	७,७६६,६००
किरघिज़	,,	(फ्रुन्ज़)	७५,६२६	१,३०२,१००
एसटोनियन	,,		१८६	१,२००,०००
लैटवियन	,,		२५,०००	२,०००,०००
लिथुनियन	,,		२१,५००	२,५००,०००
करैलोफ़्यूनिश	,,		१८०००	४६६,०००
कुल सोवियट रूस का योग			८,१७६,२२८,	१७२,०१६,१०६

सन् १६३६ क शासन-विधान में संघ के संगठन, शक्तियों व कर्तव्यों का वर्णन है। साथ साथ उसमें उपराज्यों (Union Republics) व स्वाधीन प्रजातंत्रों (Autonomous Republics) की शक्तियां भी वर्णित हैं। सात संघ प्रजातंत्र (Union Republics) जिनको हमने उपराज्य भी कहा है संघ के घटक राज्य या उपराज्य हैं। किन्तु उनमें से बहुतों में कई स्वाधीन प्रजातंत्र हैं और इसलिये वे स्वयं संघ-राज्य के भीतर संघ-राज्य है। इन सब इकाइयों की सरकारों का संगठन उन्हीं सिद्धांतों पर किया गया है जिनके आधार पर सोवियट रूस की संघ-सरकार का संगठन हुआ है।

इकाई राज्यों या उपराज्यों के व्यवस्थापक मण्डल—प्रत्येक उपराज्य में एक निजि सुप्रीम कौंसिल (सोवियट) है जो चार वर्ष के लिये नागरिकों द्वारा निर्वाचित होती है। यह अकेली ही उपराज्य की व्यवस्थापिका सभा है। यह उपराज्य के शासन विधान को स्वीकार करती और उसमें सोवियट रूस के शासन-विधान की १६ वीं धारा के अनुसार संशोधन कर सकती है। यह स्वाधीन प्रजातंत्रों के शासन-विधानों में अपनी सम्मति देती है और उन प्रजातंत्रों के क्षेत्राधिकार की सीमा निर्धारित करती हैं। यह आर्थिक योजना को स्वीकार करती और उपराज्य के बजट को पास करती है। यह उन अपराधियों को क्षमादान देती है जो उस उपराज्य के न्यायालयों से दंडित हों।

उपराज्यों की कार्यकारिणी सरकारें—उपराज्य की सर्वोच्च प्रशासन-शक्ति रखने वाली संस्था लोक-प्रबन्धक परिषद् (Council of People's Commissars) होती है। इसके आधीन ११ शासन विभाग (Commissariats) होते हैं जो इस प्रकार हैं:- खाद्य उद्योग, छोटी वस्तुओं के उद्योग, काष्ठ उद्योग, कृषि, अन्न और पशु, सरकारी फार्म, आय-व्यय, घरेलू व्यापार, घरेलू मामले, न्याय, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सैनिक संगठन, और वैदेशिक मामले। यह परिषद् उपराज्य की सुप्रीम कौंसिल को उत्तरदायी रहती है। कौंसिल के अवकाश काल में उसका सब कार्य यह परिषद् स्वयं करती है और उसके प्रैसीडियम को उत्तरदायी रहती है।

इस परिषद् में एक सभापति, उपसभापति, राष्ट्रीय योजना कमीशन का सभापति, १५ शासन विभागों के प्रबन्धक, भण्डारों (Reserves) की समिति का एक प्रतिनिधि कला-प्रशासन का अध्यक्ष और संघ के शासन विभागों का एक प्रतिनिधि, इतने सदस्य होते हैं।

लोक-प्रबन्धक अपने आधीन प्रशासन-विभागों के कार्य का संचालन करते हैं। सोवियट संघ और उपराज्यों के निर्बन्धों के आधार पर उन्हीं को कार्यान्वित करने के लिये वे आवश्यक आदेश जारी करते हैं। इसके अतिरिक्त वे संघ-लोक प्रबन्धक-परिषद् (People's Commissar of the U.S.S.R.) और उपराज्य-लोक-प्रबन्धक परिषद् के आदेशों का पालन करते हैं।

उपराज्य की लोक-प्रबन्धक-परिषद् स्वाधीन प्रजातंत्रों के प्रबन्धकों व प्रांतों और प्रदेशों की कार्यकारिणी समितियों के निर्णयों को स्थगित और रद्द भी कर सकती है।

१ फरवरी सन् १९४४ को विधान में एक संशोधन कर संघ की सुप्रीम सोवियट ने उपराज्यों को यह शक्ति दे दी है कि वे अपनी सुरक्षा के लिये निजी सेना रख सकते हैं और दूसरे राष्ट्रों से स्वयं सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं किन्तु इन विषयों में उन्हें संघ की सुप्रीम सोवियट द्वारा निर्णीत सिद्धांतों के अनुसार ही चलना पड़ता है।

स्वाधीन सोवियट प्रजातंत्र उपराज्यों की छोटी इकाइयां हैं। इनमें एक सुप्रीम कौंसिल होती है जो इन प्रजातंत्रों (Autonomous Soviet Socialist Republics) की प्रजा द्वारा चार वर्ष के लिये निर्वाचित होती है। प्रत्येक स्वाधीन प्रजातंत्र का निजी शासन-विधान है जो सोवियट रूस के शासन विधान के ढंग पर उस प्रदेश की विशेष परिस्थितियों के

अनुकूल निर्मित हुआ होता है। प्रजातंत्र की सुप्रीम कौंसिल चुन कर एक प्रैसीडियम और एक लोक-प्रबन्धक-परिषद् का संगठन करती है।

उपसंघों में प्रांत, प्रदेश, स्वाधीन प्रदेश (Autonomous Regions) स्वाधीन प्रजातंत्र (A. S. S. R.) जिले, रेओन, नगर, ग्राम-क्षेत्र आदि शासन की इकाइयां होती हैं जिनमें निजी सोवियट शासन प्रबन्ध करती हैं। इन सोवियटों का चुनाव दो वर्ष के लिये होता है। इनका काम यह है कि ये सुव्यवस्था रखने का प्रबन्ध करती हैं। निर्बन्धों के पालन का आयोजन और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की देखभाल करती हैं। ये स्थानीय बजट तैयार करती हैं। वे अपने निर्वाचक श्रमिकों को ही नहीं वरन् अपने ऊपर वाली सोवियट को भी उत्तरदायी रहती हैं।

कम्यूनिस्ट पार्टी

पीछे सोवियट शासन-प्रणाली का जो वर्णन किया गया है उसका संचालन कम्यूनिस्ट पार्टी के हाथ में था फिर भी सरकार और कम्यूनिस्ट पार्टी एक नहीं हैं वे एक दूसरे से भिन्न और पृथक हैं।

कम्यूनिस्ट पार्टी का कोई भी व्यक्ति सदस्य हो सकता है क्योंकि कम्यूनिज्म के सिद्धांतों में राष्ट्रीय, जाति आदि की संकीर्णता को कोई स्थान नहीं दिया गया है। उसका उद्देश्य सारे संसार में श्रमिकों का शासन स्थापित करना है। यह अपनी मूल विचार धारा में राज्यसीमाओं का आदर नहीं करती। उसका तो प्रयत्न ही यही है कि विश्व मजदूरों को संगठित किया जाय। इतनी व्यापक दृष्टि के होते हुये भी कम्यूनिस्ट पार्टी का सदस्य होना बड़ा कठिन काम है। उम्मेदवार को निश्चित समय तक पार्टी की शिक्षा लेनी पड़ती है। इस शिक्षण के पूरे होने पर भी जानकार व प्रभावशील सदस्यों की सिफारिश से ही वह व्यक्ति सदस्य बनाया जा सकता है। इसके विपरीत पार्टी का छोड़ना बड़ा सरल है केवल अपनी इच्छा प्रकट करना ही पर्याप्त होता है। समय समय पर पार्टी में से उन व्यक्तियों को निकाल दिया जाता है जो निरुत्साही प्रतीत होते हैं क्योंकि या तो कम्यूनिज़्म के सिद्धांतों व व्यवहार में उनका विश्वास नहीं रह गया या वे पार्टी के प्रति निष्ठा-रहित हो गये होते हैं।

सन् १९३८ के आरम्भ में पार्टी के कुल सदस्यों की संख्या ३० लाख थी। सदस्यों की भर्ती कौमसौनोल (Comsomol) से होती है जिसमें १६ और २३ वर्ष की आयु वाले युवा स्त्री पुरुष होते हैं। दस के सोलह वर्ष की आयु के भीतर वाले बालक पायनियर्स (Pioneers) कहलाते हैं। दस वर्ष

की आयु से छोटे आठ वर्ष की आयु तक के ऑक्ट्रीहारिस्ट्स (Octriharists) कहलाते हैं। इस प्रकार पार्टी की ये तीन श्रेणियां मिलकर स्काउट सगठन के समान प्रतीत होती हैं जिसमें एक के बाद एक श्रेणी को पार करना पूर्ण सदस्यता के लिये आवश्यक होता है। कम्यूनिस्ट पार्टी और उसकी उपसभाओं की कुल संख्या १२० लाख से ऊपर है।

पार्टी का अनुशासन— पार्टी का अनुशासन बड़ा कठोर है और उसका पालन करना बड़ा कठिन है। प्रत्येक सदस्य या उम्मेदवार को पार्टी के हित के लिये अपने वैयक्तिक भावों का बलिदान करना पड़ता है। प्रत्येक सदस्य अपने से उच्च व्यक्ति की इच्छा पर अपने आप को छोड़ देता है और उसकी आज्ञा का बिना हिचकिचाहट के पालन करता है। सदस्य को जहां भेजा जाय वहां जाना पड़ता है। अपना बचा हुआ समय वह कम्यूनिज्म के सिद्धांतों के प्रचार करने में लगाता है और यदि उनकी रक्षा करने में प्राण की भी बलि देनी पड़े तो उसे उसके लिये तैयार रहना पड़ता है। लगभग सदस्यों में १४ प्रतिशत स्त्रियां या बालिकायें हैं।

कम्यूनिज्म के उद्देश्य—कम्यूनिज़्म मार्क्स के दार्शनिक सिद्धांतों को व्यवहार में लाना चाहती है। वर्गभेद का मिटाना, व्यक्ति के परिश्रम के आधार पर राजनीतिक व सामाजिक अधिकारों को निश्चित करना, पूंजीवाद को मिटा कर उत्पादन व वितरण के सब साधनों पर राज्य का स्वामित्व स्थापित करना, यह कम्यूनिज़्म के उद्देश्य हैं। कम्यूनिस्ट पार्टी का जो सदस्य मदिरा आदि मादक द्रव्यों का प्रयोग करता हुआ पाया जाता है या अपने से उच्च अधिकारी व्यक्ति की आज्ञा की अवहेलना करता है, या जो गिरजाघर में जाता है या जो पार्टी के सिद्धांतों का प्रचार करने में उत्साह नहीं दिखाता या पूंजीवर्ग को सहायता पहुंचाता है वह पार्टी से निकाल दिया जाता है। दूसरी ओर जो सदस्य पार्टी की सेवा में अपने आपको विख्यात बना लेते हैं उनको विशेष पुरस्कार दिया जाता है। पार्टी के अफसरों को आने जाने का भत्ता, रहने का मकान और सवारी के लिये मोटर मिलती है। कम से कम सिद्धांततः व्यवहार की समानता पर अधिक जोर दिया जाता है किन्तु सच तो यह है कि जो कारखानों और फार्मों के अफसर होते हैं उनको अतिरिक्त लाभ का भाग बांट कर अधिक सुविधायें दी जाती हैं। सोवियट रूस की कम्यूनिज़्म के व्यावहारिक रूप के बारे में जो विविध मत हैं वे एक दूसरे के बहुत विरोधी हैं क्योंकि वहां पर जाकर देखने वालों व लेखकों की दृष्टि पक्षपात रहित नहीं होती। मानव स्वभाव ही ऐसा

है कि उससे यह आशा रखना कि वह आदर्श का व्यवहार में सच्चा अनुकरण करेगा व्यर्थ है। फिर भी यह लाभ अवश्य है है कि पार्टी के दृढ़ संगठन से शासन प्रबन्ध सुव्यवस्थित है।

पार्टी का संगठन—पार्टी की सब से छोटी इकाई "सैल" (Ce[1] अर्थात् कोष्ठक होती है जिसमें तीन सदस्य होते हैं। यह किसी गांव कारखाने में बनाई जा सकती है। यह सैल पार्टी की नीति का प्रचार व उसे कार्यान्वित करती है। "सन् १६२८ में सैलों की कुल संख्या ३६,३२१ थी जिसमें से २५·४ प्रतिशत कारखानों में, ५२·७ प्रतिशत गांवों में, १८·१ प्रतिशत अफसरों और उद्योगों में और १·८ प्रतिशत शिक्षालयों में थी. पार्टी की जो प्रादेशिक संस्था होती है उसके प्रतिनिधियों को ये सैल चुनती हैं। प्रांतीय व प्रादेशिक संस्थायें अखिल संघ की पार्टी कांग्रेस के लिये अपने प्रतिनिधि चुनती हैं। कांग्रेस साल में दो बार एकत्र होती है। बीच में कांग्रेस से चुनी हुई एक सैन्ट्रल एक्ज़ीक्यूटिव काम चलाती है। सैन्ट्रल कमेटी का सब से प्रभावशाली व्यक्ति सैक्रेटरी-जनरल होता है (आजकल इस पद पर स्टैलिन है)। सन् १६३६ तक यह सैक्रेटरी-जनरल पार्टी पर ही नहीं किन्तु सरकार पर भी अपना नियंत्रण रखता था। यद्यपि पार्टी और सरकार पृथक हैं फिर भी पार्टी सरकार को पूरी तरह से अपने हाथ में किये हुये थी। सन १६३४ की कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया कि पार्टी और सरकार का भेद मिटा दिया जाय।

यद्यपि पार्टी के भीतर वाद-विवाद करने व विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता है पर जब एक बार कोई निश्चय हो जाता है तो सब सदस्यों पर वह लागू हो जाता है। जो कोई भी पार्टी के आदेशों की अवहेलना करता है उसे पार्टी से निकाल दिया जाता है या अन्य दण्ड दिया जाता है। सारे देश में फैली हुई पार्टी की शाखायें सोवियटों के कार्यों पर दृष्टि रखती हैं जिससे केन्द्र से निकले हुये आदेशों का पालन कराने में सहायता होती हैं। सन १६३६ तक सरकार की प्रमुख संस्थायें पिरेमिड के ऊंचे स्तरों पर थीं इसलिये कम्यूनिस्ट अपने दल के अधिक व्यक्तियों को उन सस्थाओं में ही रखने को अधिक उत्सुक रहते थे। गांव और नगरों की सोवियटों में वे ऐसे ही व्यक्तियों से ही संतोष कर लेते थे जो पार्टी के सदस्य न हों परन्तु उसके कृपा पात्र हों।

सरकार की वास्तविक नीति ऊपर से ही निश्चित होती थी और वहां कम्यूनिस्टों का पूर्ण आधिपत्य था जिससे कम्यूनिस्टों का सरकार पर पूरा

Paineare, R.—How France is Governed.
Wilson, W.—The State (Chapter on France).
Select Constitutions of the World pp. 385-424.
Statesman's Yearbook (Latsest Issue).

अध्याय २१

जापान की सरकार

"जीमूटैनो के सिंहासनारूढ़ होने वाले समय से अब तक जब कि अधिक से अधिक स्पष्ट वक्ता समाजवादी भी राजा के विरुद्ध धीमी सी भी आवाज़ निकालने का साहस नहीं करते, सम्राट के प्रति निष्ठा जो आराधना का रूप धारण किये हुए हैं, जापान के शासन-विधान का ही सिद्धान्त नहीं है। किन्तु जापानियों के राष्ट्रीय धर्म का भी यही सिद्धान्त है।" (जे० एच० लौंगफोर्ड)

"असल बात तो यह है कि ऐतिहासिक युग के आरम्भ होने से अब तक जितनी अभद्रता से जापानियों ने अपने राजा के साथ व्यवहार किया है वैसा किसी और राष्ट्र या जाति ने अपने राजा के साथ नहीं किया है। जापान में सम्राटों को सिंहासन से हटाया गया, उनकी हत्या की गई। कई शताब्दियों तक हर बार जब राज-तिलक हुआ, झगड़े फिसाद भी हुए। सम्राटों को बनोवास भी दिया गया। कुछ की बनोवास करते समय हत्या की गई।"

(जे० चैम्बरलेन)

"पश्चिमी रंग में रंगी हुई बुद्धि को—विशेषकर ब्रिटिश और फ्रांसीसी व्यक्तियों को—जिस निश्चयता से जापान के नेता जापानी नागरिकों से राज्य के लिये पूर्ण आत्म समर्पण करने का विश्वास रखते हैं, वह बड़ी भयानक प्रतीत होती है। ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे एक जापानी करने को तैयार न हो, यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि राज्य उससे इस कार्य की आशा रखता है।"

(जी० डी० एच० कोल)

देश का परिचय—चार बड़े द्वीपों व ४०० से अधिक छोटे द्वीपों को मिलाकर हम जापान के नाम से पुकारते हैं। चार द्वीपों में होंडो या होंशू नाम का एक द्वीप है जिसका क्षेत्रफल २७,३७२ वर्ग मील है। जापान का यह सब से बड़ा द्वीप है और इसमें बसने वालों की संख्या जापान के अन्य सब द्वीपों की जन संख्या से अधिक है। इस द्वीप में पूर्व पुरुषों से प्राप्त

सारी न्यायनिष्ठा, उदारता, सत्यता, शुद्धता पाई जाती है। इसके निवासियों का देवाचार अन्य सब देशों के धर्म्माचरण से इतनी ऊँची श्रेणी का है कि उन्हें न किसी धर्मसंहिता की आवश्यकता पड़ती है न सिद्धान्त की और न चक्कर में डालने वाली नैतिकता की। यदि जापान के राजनीतिज्ञों को बड़े लम्बे पृथकत्व के पश्चात् अपने देश को सारे संसार में आदरणीय बनाने की अभिलाषा हुई तो उसका श्रेय इसी धर्म को है जिससे वे प्रभावित थे। इसी अभिलाषा के वशीभूत हो कर उन्होंने जापान को एशिया में ही सर्व शक्तिमान् बनाने का प्रयत्न नहीं किया किन्तु वे उसे सैन्यबल, कारोबार, व्यापार की दृष्टि से संसार का सबसे महान् देश बनाना चाहते थे। किन्तु यह अभिलाषा पूरी न हुई।

शासन-विधान का इतिहास

प्राचीन काल—जापानी अपनी उत्पत्ति जीमो टैनो (ईसा से ६६० वर्ष पूर्व) बतलाते हैं जो सूर्य देवता की सन्तान था। सन् ५५२ ई० में वहाँ बुद्ध धर्म का प्रचार हुआ। सन् ६४५ ई० में चीनी प्रशासन पद्धति कुछ हेर फेर के साथ जापान में चालू की गई। जब से लिखित इतिहास का पता चलता है जापान में एक ही राज वंश ने राज्य किया है। प्राचीनता में संसार का कोई राजवंश जापान से मुकाबिला नहीं कर सकता। लगभग १२०० वर्ष तक जापान में द्वयात्मक (dual) शासन प्रणाली चालू रही।

पहिले दरबार के प्रभावशाली एक दो सामन्त ही शासन-सत्ता को अपने अधिकार में किये रहते थे। फिर फूजीवारा वंश ने शासन सत्ता को अपने हाथ में कर लिया। उनके बाद क्षत्रिय वर्ग (Military class) ने उसे हस्तगत किया और ये ही अर्वाचीन काल तक उसका भोग कर रहे हैं। इस लम्बे समय में एक बार ही दो वर्ष के लिये सम्राट ने अपनी नाम मात्र की शक्ति को सबल व सक्रिय करने का प्रयत्न किया। यद्यपि समय समय पर सम्राटों के साथ बुरा बर्ताव हुआ, प्रायः उनको सिंहासन से उतारा गया और निर्वासित किया गया, फिर भी किसी सामन्त का यह साहस न हुआ कि वह टैनो (Tenno) की उपाधि ग्रहण करता। टैनो का अर्थ सम्राट है। इस प्रकार की द्वयात्मक सरकार जो नैपाल में अभी तक प्रचलित है, पहिले किसी विदेशी की समझ में नहीं आई। वैदेशिक मामलों में शोगुन (Shogun) के नाम से कार्यवाही की जाती है। सन् १८५४-५८ की पहली आधुनिक संधि शोगुन की ओर से की गई थी। विदेशियों की समझ में यह द्वयात्मक शासन बहुत दिनों बाद में आया।

टोकूगावा-शोगून काल—टोकूगावा शोगून काल बड़ा शान्तिपूर्ण रहा। इस काल का आरम्भ सन् १६४१ से हुआ जब विदेशियों को जापान से बाहर निकाल दिया गया था। इस समय से दो शताब्दी तक जापान विश्व के अन्य देशों से बिलकुल पृथक रहा और जब चीन, भारतवर्ष, यूरोप व अमरीका में हलचल मच रही थी, जापान में उस समय शान्ति का राज्य था। उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी राज्यों ने जापान से सम्बन्ध जोड़कर उसे एकान्तवास से निकालने का प्रयत्न किया। उस समय आने जाने के साधनों में उन्नति होने से नये समुद्री मार्ग खुल रहे थे और जापान बरबश अन्तर्राष्ट्रीय आदान प्रदान के क्षेत्र में खिंचा जा रहा था। अंगरेज़ों व चीन के बीच प्रथम युद्ध के समाप्त होने पर जापान के बन्द द्वार पर विदेशियों की खटखटाहट अधिक दृढ़ता के साथ होने लगी। सन् १८४४-४६ तक सात असफल प्रयत्न किये गये। सन् १८५० में अमरीका ने कैलीफोर्निया (California) पर अपना अधिपत्य कर लिया और प्रशान्त महासागर से उसका सम्बन्ध होगया। सन् १८५३ में एक अमरीकन बेड़ा कमोडोर पैरी की अध्यक्षता में जापान की येदो खाड़ी में जा पहुंचा। इसी समय जापानियों ने पहिली बार भाप से चलने वाला समुद्री पोत देखा था। कमौडोर पैरी ने जापान से शोगून के अफसरों को प्रैसीडेंट फिलमोर का एक पत्र दिया। डेम्योस (Daimyos) का विरोध होते हुये भी येदो (Yedo) के अधिकारियों ने एक संधिपत्र पर हस्ताक्षर किये जिससे शिमोडा और होकेडोर बन्दरगाह अमरीकन जहाज़ों के आने के लिये खोल दिये गये। इसी संधि से अमरीकन सरकार को इन दोनों में से एक में अमरीकी व्यापारी राजदूत रखने का अधिकार मिला, पैरी के बाद तुरन्त ही अंगरेज, रूसी और डच लोग जापान में आये। सब ने जापान से वैसी ही संधियाँ की जैसी अमरीका और शोगुन के बीच हुई थीं। दो सौ वर्ष के एकान्तवास के पश्चात जापान का फिर विश्व से संसर्ग स्थापित हुआ। इन पश्चिमी राज्यों को जल्दी ही पता लग गया कि शोगून जापान की वास्तविक राजसत्ता नहीं है। इसलिये उन्होंने आर्थिक सुविधायें प्राप्त करने के लिये सीधे क्योटो (Kyoto) के राजदरबार से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसी बीच में सम्राट कोमी का जो विदेशी विरोधी दल का नेता था देहावसान हो गया। उसका १४ वर्षीय पुत्र मुत्सुहितो क्योटो के राजसिंहासन पर बैठा। तब सत्सुमा, चोशू, हिजेन और टोसा नाम के शक्तिशाली सामन्त घरानों के प्रमुख व्यक्तियों ने शोगून से पदत्याग करने को कहा। इस मांग को शोगून ने ३ नवम्बर सन १८६७ को स्वीकार कर पदत्याग कर दिया। नौ दिन बाद सम्राट की एक विज्ञप्ति

निकली जिसमें यह कहा गया कि सम्राट ने टोकूगावा केकी की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है कि प्रशासनाधिकार सम्राट की राजसभा को वापिस कर दिया जाय। जिस शक्ति को टोकूगावा शोगून ने सन् १६०३ में हस्तगत किया उसे २६४ वर्ष के पश्चात् हस्तान्तरित कर दिया। यही नहीं किन्तु लग भग ७०० वर्ष के पश्चात् शोगून के जिस पद को योरीतोमो सम्राट ने ११९२ में बनाया वह समाप्त हो गया।

मीजी युग (The Meiji Era)—सम्राट मुत्सुहितो के राज्यकाल में, जिसे मीजी युग कहा जाता है, प्राचीनता का पुनर्स्थापन और पूर्ण सुधार दोनों बातें साथ साथ चलती रहीं। सन् १८६७ में शोगून संस्था के अन्त होने के पश्चात् सन् १८७१ में डेम्योस जागीरदारों को भी समाप्त कर दिया गया। जिन जागीरदारों की जागीर छीनी गई उन्हें क्षति पूर्ति के लिये पेंशन दे दी गई। बहुत से ऐसे जागीरदारों को नये कुलीन वर्गों में भी शामिल कर लिया गया। किन्तु सुधारक लोग इस बात पर तुले हुए थे कि जागीरदारों के हाथ की विकेन्द्रित शक्ति बिलकुल समाप्त कर देनी चाहिये। जागीरदारी के आधार पर देश का जो विभाजन चला आ रहा था और जिन पर डैम्योस शासन करते थे वह समाप्त कर देश को प्रान्तों व जिलों में बाँट दिया गया और प्रत्येक का शासन करने के लिये केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रशासन करने वाले अफसर नियुक्त कर दिये गये। इस प्रकार सम्राट की जिस शक्ति को शोगून ने अपने हाथ में कर लिया था वह फिर सम्राट को समर्पित कर दी गई। किन्तु यह बात यहीं समाप्त नहीं हुई। मीजी राजनीतिज्ञों ने कुछ नवीन बातों को भी प्रवर्तन करना आरम्भ किया। सन् १८६८ में क्योटो से राजसभा हटाकर यदो नामक नगर में स्थापित की गई। इसी नगर का नाम पीछे जाकर टोकियो पड़ा। इस प्रकार सम्राट को पुरानी राजधानी के परिवर्तन-विरोधी प्रभाव से हटा लिया गया। इसके बाद नये राजनीतिक विचार और पद्धतियों को अपनाना आरम्भ हुआ। दूसरे ही वर्ष नये सम्राट ने एक राष्ट्रीय असैम्बली बुलाने का वचन दिया। सन् १८७३ में ईसाई धर्म के विरुद्ध निषेध हटा लिया गया। सन् १८७५ में प्रथम असैम्बली (जैनरोइन या सीनेट) स्थापित की गई जिसमें व्यवस्था सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार हो सके। क्योंकि यह असैम्बली मनोनीत की गई थी, निर्वाचित न थी। उदार दल वालों ने निर्वाचित प्रतिनिधियों की संस्था बनाने के लिये आन्दोलन आरम्भ किया। सन् १८८९ में सम्राट ने नया शासन-विधान स्वीकृत कर उपहार के रूप में प्रजा को दिया। इस नये विधान में दो आगारों की एक संसद या डाइट

(Diet) का आयोजन था। निचले आगार के सदस्यों को लोकनिर्वाचन से लिये जाने का इरादा था। सिद्धान्ततः और निर्बन्धरूपेण सम्राट ज्यों का त्यों साम्राज्य का निरंकुश शासक बना रहा किन्तु डाइट सरकार का एक महत्वपूर्ण अङ्ग बन गई। प्रतिनिधियों द्वारा प्रकट किया हुआ जनमत अब मंत्रियों के निर्णयों पर अधिक प्रभाव डालने लगा। मीजी सुधारों ने जापान के शासन को जनतंत्रात्मक नहीं बनाया किन्तु उसमें जनतंत्र का पुट आवश्य ला दिया जिसका इन से पूर्व कोई अस्तित्व न था।

जापान में पश्चिमी विचारों का प्रवेश—जापान की राज्य-संस्थाओं के इस परिवर्तन से अधिक महत्वपूर्ण, विधि-निर्बन्ध, शिक्षा, उद्योग और व्यापार के सम्बन्ध में वे पश्चिमी विचार थे जो जापान में प्रवेश करने लगे। ज्यों ही जापान की सरकार ने यूरोपियन देशों से बिना किसी प्रतिबन्ध के संसर्ग स्थापित करने की नीति अपनाने का निर्णय किया। सन् १८७१ में पश्चिमी शिक्षालय पद्धति पर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली स्थापित की जिससे आधुनिक जगत में जापान सब से अधिक साक्षर देश हुआ। रेल, तार, सरकारी डाकखाने और राष्ट्रीय बैंकें खोली गईं। कारखाने खुलने लगे। पुराने उद्योग-धंधों के स्थान पर आधुनिक ढंग के बड़े बड़े कारखाने स्थापित हुए, जिनसे जापान कुछ ही दिनों में संसार के बड़े उद्योगी राष्ट्रों में गिना जाने लगा। जागीरदारों की सेना के स्थान पर पश्चिमी ढंग से शिक्षित नये ढंग की सेना संगठित की गई। आधुनिक ढंग की नौसेना बनाने का काम भी आरम्भ हुआ। इस सब का यह फल हुआ कि जापान संसार में एक अत्यन्त शक्तिशाली सैनिक राष्ट्र बन गया। इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी और अमरीका से विशेषज्ञ इन सुधारों में सहायता करने के लिये बुलाये गये। पश्चिमी विज्ञान को सीखने के लिये जापानी विद्यार्थी पश्चिमी देशों में भेजे गये। पचास वर्षों में ही जापान ने अपने आपको जागीरदारों के देश से बदल कर एक आधुनिक शक्तिशाली व प्रगतिशील राष्ट्र बना लिया।

पश्चिमी विचारों का प्रभाव—एशिया में जापान ही एक ऐसा देश है जिसने पश्चिमी ढंग का लिखित शासन विधान सबसे पहिले अपनाया था। यह शासन विधान सन १८९० में बना और सन् १९४६ तक चालू रहा। प्रारम्भ में जैसे अङ्गरेजी सरकार निरंकुश और अत्याचारी थी, जिसका उदाहरण नार्मन व ट्यूडरवंशीय राजाओं की निरंकुशता में मिलता है, उसी प्रकार जापान में भी निरंकुश राजसत्ता थी। उन्नीसवीं शताब्दी में जब जापानियों ने विज्ञान, सेना संगठन, शिक्षा आदि क्षेत्रों में

पश्चिमी विचारों को अपनाया तो साथ साथ राजनीतिक विचार भी पश्चिम से आकर धीरे धीरे जापान पर अपना प्रभाव डालने लगे। पहिले तो प्राचीन परम्परा का सहारा लेकर द्वयात्मक शासन संगठन के स्थान पर एक केन्द्रीय शासन स्थापित किया गया। इसके पश्चात् धीरे २ पश्चिमी विचारों ने अपना सिक्का जमाया और जापानियों का राजनीतिक जीवन पूरी तरह से पश्चिमी सांचे में ढल गया।

सम्राट की शपथ का महत्व—सन् १८६८ में सम्राट ने जो शपथ ली उसे जापान का मैग्ना कार्टा (Magna Charta) कहा जाता है। इसी शपथ से जापान में वैधानिक विचार फूट निकले। इस शपथ के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया था कि "एक विचारक असैम्बली बनाई जायगी और सब योजनायें लोकमत से निश्चित होंगी। शपथ के इस वाक्य को जब राजनीतिक संस्थाओं के रूप में परिणत किया गया तो शपथ के अभिप्राय से जापानी राजनीतिज्ञ बहुत आगे बढ़ गये। सन् १८८१ के अक्टूबर मास में सम्राट ने एक विज्ञप्ति निकाली जिसमें सन् १८९० में एक राष्ट्रीय असैम्बली बुलाने का वचन दिया। इस प्रकार संसदात्मक सरकार स्थापित करने के लिये तत्कालीन शासन संगठन को उसके अनुकूल बनाने के लिये ९ वर्ष का समय मिला। राजनीतिक दलों का भी संगठन इसी समय में करना था जिससे वे पार्लियामेंट के निर्वाचित आगार में प्रवेश कर सकें। मार्च सन् १८८२ में सम्राट ने राजकुमार आइटो (Ito) को एक शासन-विधान का मसविदा तैयार कर सम्राट की स्वीकृति के लिये उपस्थित करने का आदेश दिया। इस पर आइटों (Ito) और उसके सेक्रेटरी यूरोप गये जहां लगभग डेढ़ वर्ष तक उन्होंने यूरोप के प्रमुख राजतंत्रों (Monarchies) के व्यावहारिक रूप का अध्ययन किया। वैधानिक राजतंत्र स्थापित करने के लिये फ्रांस और अमरीका के शास्य-विधान से कोई शिक्षा न मिल सकती थी। लौटने पर आइटो और उसके सेक्रेटरियों ने विदेशी परामर्शदाताओं की सहायता से वैधानिक प्रस्ताव तैयार कर सम्राट की स्वीकृति के लिये भेजे। इसी समय जर्मनी की राजनीतिक प्रणाली का प्रभाव जापान पर पड़ने लगा था, आइटो का विश्वास था कि प्रशिया, बवेरिया और सैक्सनी आदि जर्मन रियासतों में जापान जैसी परिस्थितियां वर्तमान थीं। इंगलैंड में वे न पाई जाती थीं क्यों कि वहां की राजनीतिक संस्थायें बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थीं। और उनका विकास बड़े लम्बे समय के बाद धीरे धीरे हुआ था।

जापानी संस्थाओं पर जर्मनी का प्रभाव—सन् १८८०-१८९० में जापानी सेना का सगठन जर्मनी का सेना के ढंग पर किया गया। शासन-विधान, नये व्यावहारिक व व्यापारिक निर्बन्ध संहितायें बनाने, विश्व विद्यालय की शिक्षा देने, विद्यार्थियों को सरकार द्वारा विदेश भेजने और अन्य योजनाओं में जर्मन प्रभाव प्रकट रूप से दिखाई पड़ता था। जिस पार्लियामेंट के बनाने का वचन दिया गया था उसकी तैयारी में सब से प्रथम जो राजनीतिक परिवर्तन किया गया वह नये पीयरों (Peers) का बनाना था।

पीयरों का बनना—नये पीयर सन् १८८४ में बनाये गये और इनके बनने के पीछे यही उद्देश्य था कि ऊपरी आगार के संगठन के लिये कोई आधार तैयार हो जाये। सब से प्रथम निर्बन्ध के अनुसार ५०० पीयर बनाये गये जिनकी उपाधियां पश्चिमी उपाधियों के समान हो, प्रिंस, मारक्विस, काउन्ट, वाईकाउन्ट और बैरन थीं। नये पीयर प्राचीन कुज (Kuge) और डेमियों (Damiyo) जागीरदार वर्गों में से ही बनाये गये किन्तु जिन समुराईयों (Samurai) ने नई सरकार में ख्याति प्राप्त कर ली थी उनको भी पीयर बनाया गया। समुराई जागीरदारों के वेतन भोगी सैनिक हुआ करते थे।

मंत्रिपरिषद् का संगठन—सन् १८८५ में एक नई मंत्रिपरिषद् का संगठन हुआ जिसमें एक प्रधानमंत्री और नौ शासन विभागों के अध्यक्ष मंत्री हुये। आइटो (Ito) प्रथम प्रधान मंत्री नियुक्त हुआ। इसके आधिपत्य में शासन-विभागों की क्षमता में बड़ी वृद्धि हुई। अन्ततः, सन् १८८८ में प्रिवी कौंसिल बनाई गई जिससे सम्राट परामर्श कर सके। इस कौंसिल में थोड़े से अनुभवी व्यक्ति थे—अधिकतर अवकाश प्राप्त अफसर—जिनका यह काम था कि वे व्यवस्थापन सम्बन्धी व वैदेशिक संधियों के बारे में सम्राट को अपने विचार बतावें और सम्राट से पूछे जाने पर अन्य विषयों में अपनी राय दें। यह केवल संभव ही न था किन्तु कई बार ऐसा हुआ भी कि इनकी राय और मंत्रिमण्डल की राय में अन्तर रहा। ऐसी परिस्थिति में सम्राट विधान के बाहर नियुक्त किये गये कुछ उच्च व्यक्तियों की सलाह से स्वयं अपना निर्णय दिया करता था। ये उच्च व्यक्ति जैनरो (Genro) अर्थात् वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ (Elder Statesman) कहलाते थे। सात वर्ष की परीक्षा और तैयारी के पश्चात् आइटो और उसके साथियों का कार्य पूरा हुआ। आइटो ने स्वयं आस्ट्रिया और जर्मन शासन प्रणालियों का अध्ययन किया था क्योंकि उसे यह विश्वास था कि इंगलैंड की शासन प्रणाली इतनी अधिक प्रजातंत्रात्मक थी कि वह जापान के लिये अनुपयुक्त थी। इसलिये जापान के शासन-विधान

पर आस्ट्रिया और जर्मन प्रणालियों की छाप अधिक पड़ी। ११ फरवरी सन् १८८९ को सम्राट ने अन्तिमतः शासन-विधान स्वीकार कर लिया जिसके अन्तर्गत पहिला निर्वाचन जुलाई सन् १८९० में हुआ और नई पार्लियामेंट का पहिला अधिवेशन उसी वर्ष नवम्बर मास में बुलाया गया।

प्राचीन राजतंत्र की परम्परा और नई वैधानिक पद्धति के मेल से ही सन् १८८९ का शासन-विधान तैयार हुआ था। सम्राट की शक्ति अधिक होने के कारण डाइट (Diet) की शक्ति संसार के अन्य व्यवस्थापक मण्डलों की अपेक्षा बहुत कम थी। किन्तु दूसरी बातों में शासन-विधान में अर्वाचीन वैधानिक सिद्धांतों में से बहुतों को अपना लिया गया था।

सन् १८८९ के शासन विधान की विशेषतायें

लिखित प्रकार—जापान का सन् १८८९ का शासन-विधान लिखित प्रकार का था। लिखित प्रकार का शासन-विधान सब से प्रथम संयुक्त राज्य अमरीका में अपनाया गया था। अब प्रायः सब नवीन शासन विधान लिखित ही होते हैं। विधानों के लिखे जाने की प्रथा इस मांग के परिणामस्वरूप प्रचलित हुई कि शासन निर्बन्ध (Law) का हो न कि व्यक्तियों का।

कठोरता (Rigidity)—विधान में संशोधन करने की शक्ति अनन्यरूप से सम्राट के पास सुरक्षित की गई थी। सम्राट ही किसी संशोधन को कर सकता था। डाइट (Diet) स्वयं शासन-विधान का कोई प्रस्ताव न कर सकती थी न जनता ही उसके लिये प्रार्थना कर सकती थी। साधारण निर्बन्ध बनाने की क्रिया की अपेक्षा शासन-विधान में संशोधन करने की पद्धति अधिक पेचीदा थी। संकट काल में विधान में कोई संशोधन न किया जा सकता था चाहे उसकी कितनी ही अधिक आवश्यकता क्यों न होती। सन् १८८९ से लेकर सन् १९४६ तक जब नया शासन विधान बना, पुराने विधान में कोई संशोधन हुआ ही नहीं। इसका पहिला कारण तो यह था कि संशोधन के सूत्रपात करने की शक्ति सम्राट को ही दी हुई थी, दूसरे विधान ने शासन सम्बन्धी सामान्य सिद्धांत ही निश्चित कर दिये थे, ब्यौरे की बातें निर्बन्ध और अध्यादेशों द्वारा निश्चित किये जाने के लिये छोड़ दी गई थीं। किन्तु एक बात अवश्य थी, वह यह कि न्यायालयों को अवैधानिक निर्बन्धों को रद्द करने का अधिकार न था, अतएव, शासन-विधान में सामान्य निर्बन्ध से भी संशोधन हो सकता था यद्यपि विधान-निर्माताओं का कदापि यह अभिप्राय न था कि डाइट (Diet) विधान संशोधन के इस

प्रतिबन्ध से बच कर ऐसा निर्बन्ध बनावे जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विधान के सिद्धांतों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले।

प्रचलित प्रथा का प्रभाव—वैधानिक विकास पर प्रचलित प्रथाओं का प्रभाव भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। जापान में भी कुछ रीति-रिवाज पहिले से चले आ रहे थे जो यद्यपि वैध न थे और न्यायालय जिन्हें मान्य न समझते थे किन्तु राज्यकार्य में उनका बड़ा प्रभाव पड़ता था। इन रीति-रिवाजों में जैनरो (Genro) के सब परामर्श सम्बन्धी कार्य गिने जा सकते हैं जैसे प्रधानमंत्री के नाम की सिफारिश करना, मंत्रियों के पारस्परिक उत्तरदायित्व कीप्रथा और मंत्रिपरिषद् का डाइटके राजनीतिक दलों के साथ मिल कर कार्य करना। इन्हीं वैधानिक प्रथाओं से शासन-विधान के शुष्क ढांचे में प्राण का संचार हो सकता था। पार्लियामेंट के प्रति मंत्रिपरिषद् के उत्तरदायित्व की प्रथा बाद में पक्की हो गई थी।

सबल राजतंत्र—जापान की सरकार एकतंत्रात्मक ढंग की थी जिसमें सम्राट की शक्ति बहुत अधिक थी किन्तु वह शक्ति विधान से मान्य थी। कुछ कुछ शक्ति-प्रथकीकरण का सिद्धांत भी जापान में मान लिया गया था किन्तु अमरीका जैसा पृथकीकरण न माना गया था। कार्यकारिणी और व्यवस्थापक-मण्डल बिलकुल एक दूसरे से पृथक न किये गये थे।

केन्द्रित पद्धति—जापान की शासन-पद्धति कार्य की दृष्टि से व भौगोलिक दृष्टि से बहुत ही केन्द्रित थी। शासन-विधान के शब्दों के अनुसार सरकार की सारी शक्ति सम्राट के हाथ में थी, विधान में स्थानीय शासन का कोई उल्लेख न था। स्थानीय शासन अध्यादेशों व निर्बन्धों से ही होता था। तत्कालीन पार्लियामेंटरी स्थिति को देखते हुये कुछ लोग इस शासन विधान को बहुत प्रगतिशील और उदार बतलाते थे। दूसरे इसे प्रतिक्रियात्मक कह कर कड़ी आलोचना करते थे। इस कड़ी आलोचना का एक आधार यह था कि जहां सम्राट के विशेष अधिकारों व स्वत्वों का स्पष्ट उल्लेख किया गया था वहां प्रजा के मूलाधिकारों का कोई वर्णन न था। इसके अतिरिक्त सम्राट की पूर्वस्वीकृति के बिना विधान के संशोधन पर विचार न किया जा सकता था और मंत्रिमण्डल को निचले आगार के बहुमत के नियंत्रण में स्पष्टरूप से न रखा गया था। यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि सन् १८८९ के बाद बिना विधान में संशोधन किये ही राज्य प्रणाली में बहुत कुछ व्यावहारिक प्रगतिशीलता आ गई थी। जैसे जैसे संसदात्मक प्रणाली का अनुभव बढ़ता गया जनता को निर्बन्ध द्वारा अधिकाधिक अधिकार दिये गये, यहां

तक कि सन् १९२६ में प्रौढ़ मताधिकार भी प्रजा को मिल गया यद्यपि विधान में मंत्रिमण्डल के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में कोई प्रावधान न था किन्तु आवश्यकता पड़ने पर इस उत्तरदायित्व को अस्वीकार न किया गया और निचला आगार मंत्रिमण्डल के कार्यों पर नियंत्रण रखता रहा।

जिस दिन शासन-विधान की घोषणा हुई उसी दिन चार बड़े बड़े निर्बन्ध भी प्रकाशित हुये जिनमें वे ब्योरे की बातें दी गई थीं जिनका वर्णन विधान में न किया गया था। इनमें से एक हाउस आफ पीयर्स (House of Peers) से सम्बन्धित सम्राट का अध्यादेश था, दूसरा दोनों आगारों के संगठन के बारे में निर्बन्ध था, तीसरा निर्वाचन से सम्बन्ध रखता था और चौथा अर्थ सम्बन्धी निर्बन्ध था। सन् १८९० में पहिला निर्वाचन हुआ। जो वयस्क नागरिक २५ वर्ष की आयु के हों और १५ यैन (Yen) राष्ट्रीय टैक्स देते हों वे मत देने के अधिकारी थे। चार करोड़ २० लाख की जन-संख्या में केवल ४६०,००० ही मतधारक थे अर्थात् केवल १ प्रति सैंकड़ा से कुछ अधिक। सम्राट ने स्वयं डाइट के प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन किया। तीन सौ सदस्य चार दलों में बंटे हुये थे। प्रथम असैम्बली में मंत्रिमण्डल के विरुद्ध १७० सदस्य थे जिनमें १३० उदार व अनुदार दल के (Conservatives & Liberals) और ४० प्रगतिशील दल (Progressives) के सदस्य थे। अधिक से अधिक सरकार १३० सदस्यों का ही समर्थन प्राप्त कर सकती थी। काउन्ट यमागाता जो एक योग्य सेनानायक था प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्त हुआ। आइटो (Ito) हाउस आफ पीयर्स (House of Peers) का अध्यक्ष बना। विरोधी दल ने सरकार द्वारा प्रस्तुत किये हुये बजट की कड़ी आलोचना की और ८० लाख यैन (Yen) की कटौती का प्रस्ताव किया। मंत्रिमण्डल ने विधान के ६७ वें अनुच्छेद को पढ़ कर सुनाया जिसके अनुसार सम्राट की वैधानिक शक्तियों के आधार पर निश्चित व्यय या वह सरकारी व्यय जो किसी निर्बन्ध के अन्तर्गत या वैधिक बन्धन (Legal Obligation) के कारण अनिवार्य हो उसे डाइट बिना सरकार की सम्मति के न अस्वीकार कर सकती है न उसमें कमी कर सकती है। प्रतिनिधि आगार (House of Representatives) तिस पर भी अपने कटौती के प्रस्ताव पर अड़ा रहा। अन्त में समझौता हुआ जिससे सरकार ने ६,३१०,००० यैन की कटौती स्वीकार कर ली। एक लम्बी वैधानिक लड़ाई का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ। यह लड़ाई तभी स्थगित हो जाया करती थी जब कोई राष्ट्रीय संकट आन पड़ता था और किसी युद्ध या संधि के

कारण विरोधी दल सरकार की आलोचना करना उचित न समझता था। धीरे धीरे दलबन्दी के आधार पर सरकार का संगठन करने की प्रथा प्रचलित हो गई और सरकार अपने दल के सदस्यों के समर्थन के सहारे काम करने लगी।

पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं का अपनाना—जापान की नई पार्लियामेंटरी प्रणाली और उसकी संस्थायें, जैसे असैम्बली, राजनीतिक दल, प्रतिनिधिक संस्थायें, प्रिवी कौंसिल, शासन-विधान, स्थानीय शासन का तानाबाना और न्यायालय आदि, या तो पश्चिमी राज्यों से ज्यों की त्यों लेकर अपनाली गई थी या इनके निर्माण करने में पश्चिमी रीतियों और विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। फिर भी नये विचारों ने पुराने विचारों को बिलकुल ही न उखाड़ फैंका था। सारे राजनीतिक संगठन व शासन प्रणाली को चलाने में परम्परा से चले आने वाले रीति-रिवाज़ों ने बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया था। यह भी न समझना चाहिये कि जापानियों ने आंख मींच कर पश्चिमी संस्थाओं की नकल की थी। उन्होंने उन सस्थाओं को अपनी विशेष परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुकूल ही बना कर स्थापित किया। आधुनिक ब्रिटिश पार्लियामेंट से जापान की डाइट (Diet) की तुलना करके उसे तुच्छ ठहराना बिलकुल ही बेमतलब की बात होगी। आश्चर्य और प्रशंसा की बात तो यह है कि जागीरदारी की प्रथा के टूटने के ३० वर्ष के भीतर ही डाइट का निर्माण हो गया जिससे जनता के प्रतिनिधि राज्य के मंत्रियों से अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कराने में समर्थ थे।

जेनरो—जापानियों ने पश्चिमी संस्थाओं को किस प्रकार अपनी संस्कृति और परम्परा के रंग में रंगा, इसके उदाहरण में "जैनरो" (या वृद्ध-राजनीतिज्ञ) का नाम उल्लेखनीय है। इसके स्थापित होने में हमें जापान की एक प्राचीन प्रथा की झलक देखने को मिलती है। जिस प्रकार गृहस्वामी घर के वृद्ध व्यक्तियों से बड़ी बड़ी बातों में परामर्श लेता है उसी प्रकार सम्राट भी जो राज्य का अध्यक्ष था, कुछ ऐसे योग्य व्यक्तियों की राय लिया करता था जिनकी राजनिष्ठा और बुद्धिमानी में संदेह न होता था। यूरोपियन देशों में यह मान लिया गया था कि वैधानिक सम्राट अपने मंत्रियों की राय के अनुसार ही कार्य करेगा। किन्तु जापान में यह सम्भावना थी कि जैनरो की राय मंत्रियों की राय के प्रतिकूल हो। ऐसा होने पर जैनरो की राय ही मानी जाती थी। इस प्रकार एक ऐसी परामर्श देने वाली संस्था बन गई जिसका प्रभाव मंत्रिपरिषद् से भी अधिक हो गया। इन वृद्ध राजनीतिज्ञों में आइटो,

जिसने विधान को जन्म दिया, यमागाता, इनौनी, औयामा मत्सुकाता और सैगो जैसे विख्यात व्यक्ति थे। इन वृद्ध राजनीतिज्ञों की सलाह से ही प्रधान मंत्री को पसन्द किया जाता था। इसके अतिरिक्त राज्य के जितने बड़े प्रश्न होते थे उन पर ये लोग ही पहिले विचार किया करते थे। ऊपर जिन वृद्ध राजनीतिज्ञों का नाम दिया गया है उनमें यमागाता और आइटो एक जाति के होते हुये भी प्रायः एक दूसरे का विरोध किया करते थे। विधान का निर्माता आइटो उदार विचारों का व्यक्ति था। यमागाता जिसने जापानी सेना का संगठन किया था सैनिक-वर्ग का मुखिया था। सन् १६०६ में आइटो की हत्या के पश्चात् यमागाता ही जैनरो में सब से प्रभावशाली व्यक्ति रह गया।

सन् १८८६ के शासन-विधान की उपक्रमा

जापान के शासन-विधान का रूप बहुत संक्षिप्त था। उसमें सरकार-संगठन की मोटी मोटी बातें ही दी हुई थीं, अधिक विस्तार की बातें सामान्य निर्बन्धों द्वारा पूरी किये जाने के लिये छोड़ दी गई थीं। सामान्य शब्दावली के कारण शासन-विधान में व्याख्या के लिये पर्याप्त सामिग्री थी।

जो विस्तार की बातें अर्वाचीन शासन-विधानों में पाई जाती हैं उनको आइटो ने अपने शासन-विधान में शामिल न कर सामान्य निर्बन्धों के लिये छोड़ दिया जिससे अवसर पड़ने पर सामान्य रीति से ही उनमें परिवर्तन हो सके और शासन विधान में संशोधन की पेचीदा कार्यवाही करने की आवश्यकता न रहे। विधान के सातों अध्यायों में क्रम से सम्राट, प्रजा के कर्तव्य, डाइट, मंत्री और प्रिवी कौंसिल न्यायमण्डल, आय-व्यय और पूर्ति करने वाले नियमों का वर्णन था।

शासन-विधान सम्राट का उपहार—शासन-विधान के पहिले अध्याय में सम्राट का वर्णन है। दूसरे अनुच्छेद के अनुसार सम्राट पवित्र और अलंघ्य है। सम्राट ने अपनी प्रजा को शासन-विधान की भेंट स्वेच्छा से ही की थी न कि परवश होकर। नीटोबे (Nitobe) ने इसलिये कहा है कि "जापान का शासन-विधान इस अर्थ में एक अध्यादेश (Ordenance) है कि यह राजा-प्रजा का विभेद स्वरूप न होकर एक-पाक्षिक है और शासितों की इच्छा या सम्मति के बिना ही इसकी रचना हुई है।"* इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जापान के सम्राट को विधान में इतना अधिक

* जापानः मौडर्न वर्ल्ड सीरीज़।

व ऊंचा स्थान दिया गया। मंत्री सम्राट को न कि डाइट को उत्तरदायी रखे गये थे। सम्राट की जिन शक्तियों का वर्णन किया गया है वे सब ऐसी हैं जो अन्य राज्यों में राज्याध्यक्ष को सामान्यतः दी जाती हैं। इन शक्तियों में डाइट के अधिवेशन न होते रहने के समय अत्यावश्यकता होने पर अध्यादेश निकालने की शक्ति भी शामिल थी। किन्तु ऐसे अध्यादेश डाइट की अगली बैठक के सामने रखने पड़ते थे और यदि अस्वीकृत हो जाते तो वे रद्द समझे जाते थे।

सरकार की अध्यादेश निकालने की शक्ति—यह शक्ति बड़ी विस्तृत थी। इसके अन्तर्गत सरकार (१) किसी निर्बन्ध को कार्यान्वित करने के लिये (२) शान्ति, सुव्यवस्था रखने और जनता का सुख बढ़ाने के लिये, (३) अपनी कार्यकारी शक्ति को कार्यरूप देने के लिये अर्थात् शासन के विभिन्न विभागों के संगठन, सेना की व्यवस्था हाउस आफ पीयर्स की रचना आदि के लिये अध्यादेश निकाल सकती थी। किन्तु इन अध्यादेशों से किसी पूर्व-स्थित निर्बन्ध को बदला न जा सकता था केवल उसकी कमी को पूरा किया जा सकता था। यही नहीं, किन्तु यह भी प्रतिबन्ध था कि जो बातें निर्बन्ध द्वारा ही नियमित की जा सकती थीं वे अध्यादेश से व्यवस्थित न हो सकती थीं।

राजा की कार्यकारी शक्तियां—राजा स्वयं भी अनेक आज्ञायें निकाल कर कार्यसम्पादन किया करता था। यह ही शासन के विभिन्न विभागों का संगठन निश्चित करता था और शासन के सेना के कर्मचारियों की नियुक्ति कर उनका वेतन निश्चित करता था। राजा ही इन कर्मचारियों को उनके पद से हटा सकता था। राजा ही युद्ध की घोषणा करता, युद्ध समाप्त करने की आज्ञा देता और संधियां करता था। इन कामों के करने में उसे डाइट से सलाह लेने की भी आवश्यकता नहीं थी। इस भांति द्वयात्मक शासन (Dual Government) की प्रथा चालू थी।

राजा की न्याय सम्बन्धी शक्तियां—विधान में लिखा था कि न्यायकारी शक्ति को न्यायालय सम्राट के नाम से निर्बन्ध के अनुसार कार्यान्वित करेंगे। सम्राट न्याय शक्ति का स्वामी भी था क्योंकि वही न्याय का निर्झर समझा जाता था। किन्तु इस शक्ति का उपयोग न्यायालयों के लिये ही छोड़ दिया गया था जिनका संगठन निर्बन्धानुसार होता था।

राजा को कार्य करने की शक्तियां अवश्य दे दी गई थीं किन्तु उन पर यह प्रतिबन्ध अवश्य था कि उनके प्रयोग करने में यदि धन की आवश्य-

कता हो ो वह डाइट की सम्मति से ही दिया जा सकता था। इसका एक उदाहरण यह है कि बार बार यह सिफारिश किये जाने पर भी कि स्थल व नौ सेना बढ़ाई जाय डाइट ने कई बार इस सिफारिश को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक पर्यादान (Appropriation) स्वीकार नहीं किया। डाइट की बिना सम्मति के युद्ध करने और संधि करने की शक्ति वैदेशिक संम्बन्धों में भारी महत्व रखने वाली बात थी।

प्रजा के अधिकार और कर्तव्य—विधान के दूसरे अध्याय में प्रजा के कर्तव्य और अधिकारों का वर्णन है। इनमें उन सब अधिकारों का उल्लेख था जो यूरोपियन बिल्स आफ राइट्स (Bills of Rights) में या अमरीकन शासन-विधान के प्रथम संशोधन में मिलते हैं। किन्तु यहां यह बतलाना आवश्यक है कि जापान में प्रतिबन्धहीन अधिकार न माने गये थे। कार्यकारी सत्ता थोड़े समय के लिये सुव्यवस्था सम्बन्धी नियमों या अध्यादेशों से इन सुविधाओं को छीन सकती थी। इन नियमों या अध्यादेशों के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को वक्तृता देने, समाचार पत्रों में लिखने या सामाजिक अधिकारों के भोगने से रोका जा सकता था।

मंत्रिपरिषद्—राजनीतिज्ञ वाल्टर बैजहौट (Walter Bagehot) कहा है कि आधुनिक सरकारों के दो अंग होते हैं, एक शोभनार्थ दूसरा कार्यार्थ। शोभनार्थ अंग प्रजा को प्रभावित करने के लिये होता है। कार्यार्थ अंग ही वास्तव में शासन करता है। जापान में शोभनार्थ अंग सम्राट था और कार्यार्थ अंग मंत्रिपरिषद् थी। सम्राट के पुनः प्रतिष्ठत होने के थोड़े समय बाद ही साम्राज्य के चांसलर का एक नया पद बनाया गया। जर्मन चांसलर के समान इसका काम सम्राट को सलाह देना और शासन का सारा प्रबन्ध करना था। सन् १८८५ में यह प्रणाली तोड़ दी गई और मंत्रिपरिषद् प्रणाली जारी की गई। मंत्रिपरिषद् सम्राट और डाइट को जोड़ने वाली कड़ी थी। परिषद् के कर्तव्य तीन श्रेणियों में विभक्त थे, परामर्श सम्बन्धी, पार्लियामेंटरी और शासन सम्बन्धी। शासन-विभाग के अध्यक्ष होने के नाते मंत्री अपने अपने विभाग के कार्य का प्रबन्ध करते थे। शासन-विधान में यह अवश्य कहा गया था कि मंत्री उत्तरदायी होंगे, पर किसको—यह स्पष्ट न किया गया था। किन्तु व्यवहार में डाइट के प्रति मंत्रिपरिषद् का उत्तरदायित्व पक्का हो चुका था। यहाँ डाइट से मतलब निचले आगार से ही था हालांकि वैधिक रूप से दोनों ही आगारों को समान अधिकार थे। शासन-विधान में मंत्रियों की वैयक्तिक जिम्मेदारी का ही उल्लेख था किन्तु दलों के आधार पर परिषद

के बनने से परिषद् की सामुदायिक जिम्मेदारी प्रचलित हो चुकी थी। यह जिम्मेदारी केवल राजनीतिक ढंग की थी। शासन विधान में मंत्रियों का वैधिक (Legal) उत्तरदायित्व न माना गया था। मंत्रियों पर राजनीतिक अपराधों के अभियोग लगाने और दण्ड देने की प्रथा जापान ने न अपनाई थी यद्यपि अन्य सब सभ्य देशों में इसे पक्की तरह से मान लिया गया था।

डाइट—डाइट व्यवस्थापन कार्य में और शासन कार्य में केवल देख भाल करने वाली संस्था भर थी क्योंकि जापान के राजनीतिक दलों का कोई पृथक पृथक कार्यक्रम न था। वे मंत्रिपरिषद् की किसी भी नीति को बिना किसी शर्त के मान लेते थे यदि वे उस मंत्रिपरिषद् के समर्थक होते थे। किन्तु जापान में मंत्रिपरिषद् पर अंकुश रखने वाली, प्रिवी कौंसिल जैनरो जैसी अन्य संस्थायें थीं। और सब के ऊपर सेना का प्रभाव रहता था।

प्रिवी कौंसिल—जापान की प्रिवी कौंसिल ब्रिटिश प्रिवी कौंसिल से भिन्न थी। ब्रिटेन में प्रिवी कौंसिल पुरानी संस्था थी जिसका रूप बदल कर मंत्रिपरिषद् हो गया है। जापान में प्रिवी कौंसिल और मंत्रिपरिषद् प्रथक संस्थायें हैं जो एक दूसरे के आधीन नहीं हैं। उनका निजी वैधिक स्वत्व है। मंत्री अपने पद के कारण प्रिवी कौंसिल के सदस्य अवश्य रहते हैं। कुल सदस्यों की संख्या २४ थी। इनके अतिरिक्त एक सभापति और एक उप-सभापति भी रहता था। मंत्रियों की संख्या १२ थी। सम्राट ही सब सदस्यों को मनोनीत करता था। वह प्रधान मंत्री की सलाह से ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत करता था जो अच्छे शासक, कूटनीतिज्ञ, न्यायाधीश, शिक्षक, या सेनापति रहे हों। इस संस्था में राजनीतिक दलों के व्यक्ति न रखे जाते थे। प्रिवी कौंसिल की शक्तियों के बारे में शासन-विधान में यह कहा गया था कि "प्रिवी कौंसिल के सदस्य राज्य के महत्व पूर्ण प्रश्नों पर विचार करेंगे जब सम्राट इन प्रश्नों पर उनकी सलाह लेना चाहेगा"। इस कौंसिल का काम केवल सलाह देना था, वह भी सम्राट के पूछे जाने पर। स्वयं कौंसिल किसी प्रश्न पर सलाह न दे सकती थी। किन्तु सम्राट के अल्पवयस्क होने पर यह कौंसिल स्वयं ही राजा के स्थान पर कार्य करने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में अपनी राय दे सकती थी। इसकी रचना करने वाले सम्राट के अध्यादेश के अनुसार जिन प्रश्नों को प्रिवी कौंसिल की राय के लिये भेजना आवश्यक था वे ये थे:—

(१) सम्राट के घर से सम्बन्ध रखने वाले कुछ प्रश्न,

(२) शासन-विधान या उससे आनुषांगिक निर्बन्धों के सम्बन्ध में संदिग्ध प्रश्न। विधान के आनुषांगिक निर्बन्धों में प्रतिनिधि आगारों के

निर्वाचन व अर्थ सम्बन्धी निर्बन्ध और हाउस आफ पीयर्स से सम्बन्धित सम्राट के अध्यादेशों की गिनती होती थी ।

(३) घेरा पड़ने की स्थिति की घोषणा, शासन विधान के आठवें अनुच्छेद के अन्तर्गत अध्यादेश और अन्य सम्राट के अध्यादेश जिनमें दण्ड की व्यवस्था की गई हो ।

(४) अन्तः राष्ट्रीय संधियां और समझौते, और

(५) प्रिवी कौंसिल के संगठन व कर्तव्यों से संबन्ध रखने वाले सम्राट के अध्यादेश में संशोधन करने के बारे में प्रश्न ।

लार्ड प्रिवीसील—(Lord Privy-Seal) लार्ड प्रिवीसील यद्यपि सम्राट के गृह-प्रबन्ध से संबन्ध रखने वाला व्यक्ति होता था किन्तु राज्यों के मामलों में भी वह सम्राट को सलाह दिया करता था । इस पद पर वृद्ध राजनीतिज्ञों में से सब से चतुर व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते थे । इस कर्मचारी का मुख्य काम नये मंत्रिमण्डल के बनाने में सम्राट को सलाह देना था । व्यवहार में केवल प्रधान मंत्री के संबन्ध में ही यह कर्मचारी सम्राट को सलाह दिया करता था । विधान के अन्तर्गत सम्राट निचले आगार में विभिन्न राजनीतिक दलों की शक्ति का ध्यान न रखते हुये भी अपने मंत्रियों को चुन कर नियुक्त कर सकता था । मंत्रियों की जिम्मेदारी का सिद्धांत पक्की तरह मान्य न हुआ था किन्तु प्रत्येक राजनीतिक नेता यह जानता था कि निचले आगार के बहुमत को अपने पक्ष में किये बिना सरकार को कभी २ बड़े निराशा-जनक विरोध का सामना करना पड़ेगा । उदार विचार वाले नेताओं ने प्रिवी कौंसिल की कड़ी आलोचना की क्योंकि किसी भी राजनीतिक नियंत्रण से प्रतिबन्धित न होने से यह कभी कभी सम्राट को मंत्रिपरिषद के प्रस्तावों को अस्वीकार करने की सलाह दे सकती थी ।

व्यवस्थापक मण्डल

द्विआगारिक प्रणाली—डाइट में दो आगार थे—एक प्रतिनिधि आगार और दूसरा हाउस आफ पीयर्स । इस प्रकार जापान ने भी द्विआगारिक प्रणाली ही अपनाई थी । जहाँ तक बनावट और संगठन का सम्बन्ध है हाउस आफ पीयर्स अधिक वैज्ञानिक ढंग पर सुदृढ़ रूप से संगठित था और समाज के विभिन्न वर्गों का भली भांति प्रतिनिधित्व करता था । असल में लगभग आधे सदस्य पीयर्स न थे । कुछ लेखक जापान की शासन प्रणाली में हाउस आफ पीयर्स (House of Peers) को ही सब से अधिक सफलीभूत अङ्ग कहने में नहीं हिचकते ।

हाउस आफ पीयर्स में निम्नलिखित ६ श्रेणियों के सदस्य होते थे : (१) राजघराने के वे पुरुष जो वयस्क हो गये हैं । (२) वे प्रिंस और मारक्विस जिनकी आयु ३० वर्ष से ऊपर हो। (३) काउन्टों या वाइकाउन्टों और बैरनों द्वारा सात वर्ष के लिये चुने हुए प्रतिनिधि काउन्ट, वाइकाउन्ट और बैरन । (४) तीन वर्गों से सम्राट से मनोनीत प्रतिनिधि, पहिले वे लोग जो राज्य की सेवा या विद्वत्ता के कारण चुने गये हों, दूसरे सब से अधिक कर देने वालों के प्रतिनिधि और तीसरे इम्पीरियल ऐकैडेमी के प्रतिनिधि।

सन् १६२५ से पूर्व यह प्रतिबन्ध था कि चौथी श्रेणी में सम्राट के मनोनीत व्यक्तियों की संख्या तीन बची हुई श्रेणियों के सदस्यों से अधिक न होनी चाहिये। सन् १६२५ में निर्बन्ध द्वारा यह प्रतिबन्ध हटा दिया गया और इम्पीरियल ऐकैडेमी प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ा दी गई । ऊपरले आगार के सदस्यों की संख्या आरम्भ में २०६ थी किन्तु यह संख्या ४०० तक पहुँच चुकी थी ।

प्रतिनिधि आगार में ४६६ निर्वाचित सदस्य थे अर्थात् १३३,३०६ व्यक्तियों का एक प्रतिनिधि होता था। आगार का कार्यकाल चार वर्ष था प्रत्येक सदस्य को ३००० येन (Yen) वार्षिक वेतन और सरकारी रेलों में बिना टिकट चलने की सुविधा प्राप्त थी। आगार स्वयं स्पीकर और सेक्रेटरी को चुनता था। इस आगार की यह विशेषता थी कि सामान्यतः श्रद्धा के कारण और अनुभवी होने से लोग वृद्ध पुरुषों को ही आगार का सदस्य चुनते थे। सन् १६३० में १६६ सदस्य प्रथम बार चुने गये थे २८६ ऐसे थे जो पहिले भी डाइट के सदस्य थे ५६ और पूर्व की डाइटों में भी सदस्य रह चुके थे। कृषिजीवी से जब देश अधिकाधिक उद्योगजीवी हुआ तो आगार के सदस्य भी भिन्न प्रकार के होने लगे। वकील सदस्यों की संख्या दूनी होगई थी। सन् १६३० में विश्वविद्यालय के स्नातकों की संख्या अन्य सदस्यों से कहीं अधिक थी।

व्यवस्थापक मण्डल की शक्ति—प्रिंस आइटो का कहना था कि "डाइट का काम यह है कि वह राज्य के अध्यक्ष को अपना कर्तव्य पालन करने के योग्य बनावे और राज्य की इच्छाशक्ति को सुदृढ़, अनुशासित और स्वस्थ रखे ····डाइट का यह कर्तव्य है कि वह सलाह दे और सम्मति दे।" सम्राट निर्बन्धकारी सत्ता का उपभोग डाइट (Diet) की सम्मति से करता था। दोनों आगारों में सरकार से प्रस्तुत किये विधेयकों पर विचार हो सकता था। दोनों आगारों को समान अधिकार दिया गया था, केवल ऊपरी आगार

की वार्षिक बजट पर विचार करने के लिये कम समय मिला हुआ था, किन्तु हाउस आफ पीयर्स को यह अधिकार था कि प्रतिनिधि आगार से अस्वीकृत पर्यादान को पुनः प्रतिष्ठित कर दे। सिद्धान्ततः सब निर्बन्ध डाइट की सम्मति से बनते थे, संधियां और अध्यादेश ही इस नियम में अपवाद थे। डाइट शासन-विधान में संशोधन का प्रस्ताव न कर सकती थी। सरकारी विधेयकों पर अन्य विधेयकों की अपेक्षा पहिले विचार किया जाता था।

सरकार की अध्यादेश जारी करने की शक्ति इतनी विस्तृत थी कि उससे पार्लियामेंट की निर्बन्धकारी शक्ति पंगु बनी रहती थी। हालांकि विधान में यह प्रावधान था कि अध्यादेशों से किसी निर्बन्धों को नहीं बदला जा सकता फिर भी संकटकालीन अध्यादेशों से निर्बन्ध बदला जा सकता था और अपनी इच्छापूर्ति करनेवाली शक्तिशाली कार्यकारिणी की चालों के सामने डाइट निस्सहाय की तरह मुंह देखती रह जाती थी। डाइट को यह भी विश्वास न रहता था कि उसका बहुमत कार्यकारिणी की अनुचित कार्यवाही का विरोध करेगा या नहीं और आगार के विलयन किये जाने का भी भय डाइट को अधिक दृढ़ बनने से रोके रहता था।

आय-व्यय पर नियंत्रण—राज्य की आय और उसका व्यय डाइट के आधीन था। वार्षिक बजट के द्वारा आय-व्यय के लिये डाइट की सम्मति ली जाती थी। डाइट स्वयं किसी आय बढ़ाने वाले विधेयक का प्रस्ताव कर सकती थी। राज्य की आय निर्बन्धानुसार ही एकत्र की जा सकती थी। बजट में आय के दिखाने और बजट के पास हो जाने का यह मतलब न होता था कि सरकार कर लगा कर आय वसूल कर सकती है। ऐसा करने के लिये पृथक निर्बन्ध द्वारा सरकार शक्ति ले सकती थी। क्षतिपूर्ति के बतौर जो आय होती थी, जैसे प्रशासन सम्बन्धी फीस इत्यादि, उसके लिये डाइट की सम्मति की आवश्यकता न थी। डाइट बजट प्रस्तुत न कर सकती थी। उसकी शक्ति केवल यहीं तक सीमित थी कि वह सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट में कुछ संशोधन कर दे या उसे अस्वीकृत कर दे। संशोधन करने में भी डाइट व्यय को बढ़ा न सकती थी। स्वयं शासन-विधान में कुछ ऐसे व्यय की सूची निश्चित कर दी गई थी जिसे डाइट सरकार की सम्मति के बिना न बदल सकती थी न रद्द कर सकती थी। उस सूची में निम्नलिखित मदें थी (१) सम्राट की कार्यकारी शक्ति के कार्यान्वित करने में जो व्यय हो, जैसे संधियों व सम्राट के अध्यादेशों द्वारा बढ़ा हुआ व्यय। पर इसमें प्रतिबन्ध यह था कि पूर्ववर्ष के बजट में ये मदें रखी गई हों और उस प्रकार डाइट से ये स्वीकृत हो चुकी हों। सेना, नौसेना व शासन-सम्बन्धी व्यय भी इसी श्रेणी में आते थे, (२) ऐसा व्यय जो

किसी निर्बन्ध के पास हो जाने से अनिवार्य हो गया हो, जैसे पेंशन। यह सिद्धान्त मान लिया गया था कि एक बार जब कोई निर्बन्ध सम्राट ने डाइट की सम्मति से पास कर दिया हो तो डाइट उस निर्बन्ध से प्रतिबन्धित है और इसलिये उसको कार्यान्वित करने में डाइट आवश्यक अनुदान अस्वीकृत करके अड़ंगा नहीं लगा सकती, (३) वह व्यय जो के सरकार के वैधिक (Legal) ऋण या दातव्य (liability) के कारण हुआ हो, जैसे राष्ट्रीय ऋणों पर ब्याज, क्षति पूर्तियां इत्यादि।

राजनीतिक दल

जापान में राजनीतिक दलबन्दी सन् १८६० से पूर्व भी प्रचलित थी। किन्तु १८६८ में दो बड़े बड़े राजनीतिक दलों के मिल कर एक हो जाने से एक वैधानिक सरकारी दल (जियूतू) (Constitutional Government Party) का जन्म हुआ। इस दल के बनाने का उद्देश्य तत्कालीन सरकार को शक्ति प्रदान करना था और इसके बन जाने से पहिली बार दल के आधार पर मंत्रिपरिषद का संगठन हुआ जिसका प्रधान मंत्री काउन्ट ओकूवा बना जो इस नये दल का नेता था। तब से लेकर सन् १६२३ तक मंत्रि-परिषदों के रूप और उसके राजनीतिक दलों की स्थिति कुछ अधिक अच्छी नहीं रही। किन्तु उसके बाद मंत्रिपरिषद राजनीतिक दलों के ही आधार पर बनने लगी। प्रतिनिधि आगार में कई दल थे, उन में से कुछ इतने निर्बल थे कि उनको मिलाकर एक शक्तिशाली दल बन सकता था। अप्रैल ३० सन् १६३७ को जो निर्वाचन हुआ उससे निर्वाचित डाइट के सदस्यों की संख्या इस प्रकार थी :—

मिनसिटो	१७६
सीयू-काइ	१७५
श्रमिक दल	३६
स्वतंत्र	२६
शोआ-काइ	१८
कोकूमिंगडम	११
दूसरे	१८
कुल	४६६

हाउस आफ पीयर्स में कोई दलबन्दी न थी किन्तु फिर भी इसके सदस्य ६ श्रेणियों में बांटे जा सकते थे, क्यू-क्यू-काइ, कोसी-काइ, कोयू कल्ब, चावा-काइ, दोसी-काइ और मुशोज़ोकू-दल।

न्यायमण्डल

राजनीतिज्ञ ब्राइस का कथन है कि "किसी सरकार की परख जितनी उसकी न्याय प्रणाली से हो सकती है उतनी किसी अन्य बात से नहीं, क्योंकि साधारण नागरिक का यह विश्वास कि उसके साथ निश्चय ही और शीघ्रातिशीघ्रम् न्याय किया जायगा, उसकी सुरक्षा और हित में सब से अधिक प्रभावशाली कारण होता है। जापान में न्याय-निर्णय ऐसे न्यायालय करते थे जो निर्बन्ध द्वारा स्थापित किये जाते थे और जो सम्राट के नाम से निर्बन्ध के अनुसार न्याय करते थे। शासन के न्यायकारी अङ्ग की स्वतंत्रता विधान ने पक्की कर दी थी किन्तु व्यवहार में यह कार्यकारिणी की आधीनता में ही रहकर कार्य करता था। विधान में यह कहा गया था कि कोई भी न्यायाधीश सिवाय अपराध का दण्ड देने के लिये या अनुशासन हीनता का दण्ड देने के लिये अन्य किसी प्रकार अपने पद से न हटाया जायगा। कार्यकारिणी इन दोनों बातों में कुछ न कर सकती थी। किन्तु न्याय कर्मचारियों को तरक्की देने की शक्ति इसके हाथ में थी और इस शक्ति का प्रयोग वह अपना प्रभाव जमाये रखने में किया करती थी। अपराध सम्बन्धी (फौजदारी) मामलों में कार्यकारिणी के निर्देश से लोक अभियोक्ता (Public Prosecutor) यह स्थिर किया करते थे कि किसी अपराध के लिए मुकदमा चलाया जाय या न चलाया जाय जिससे राज्य की दण्डनीति में एक रूपता रहे। न्यायमण्डल को यह अधिकार था कि वह अवैध अध्यादेशों को काम में न लावे किन्तु वे संघ न्यायालय के समान डाइट के पास किये हुए किसी निर्बन्ध के वैध-अवैध होने का प्रश्न न उठा सकते थे। इसके अतिरिक्त राजा क्षमादान देने का अधिकारी था और दण्ड की कठोरता भी कम कर सकता था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जापान में निर्बन्धकारी सत्ता सर्वोच्च थी, कार्यकारी व न्यायकारी सत्तायें निर्बन्धकारी सत्ता के आधीन रहती थीं। अमरीकी ढंग का जापान में शक्ति-विभाजन न था। शासन विधान सर्वोच्च निर्बन्ध न माना गया था।

न्यायालय के प्रकार—यूरोपियन प्रणाली के अनुसार ही जापान में न्यायालयों को दो श्रेणियों में बाँटा गया था, एक सामान्य न्यायालय और दूसरे प्रशासन न्यायालय। कुल ३४० सामान्य न्यायालयों में २८१ स्थानीय न्यायालय, ५१ जिले के न्यायालय, ७ पुनर्विचारक न्यायालय थे और इन सब

के ऊपर एक सर्वोच्च न्यायालय था। न्यायाधीश विश्वविद्यालय की शिक्षा पाये हुए व्यक्ति होते थे। वे सिविल सर्विस के नियमों के अन्तर्गत परीक्षा द्वारा छांट कर नियुक्त किये जाते थे। ये ६७ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकते थे। सर्वोच्च न्यायालय का अध्यक्ष ६५ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकता था। सब सामान्य न्यायालयों में मुख्तार भी नियुक्त किये जाते थे। जिनका न्याय-शासन से बड़ा निकट सम्बन्ध रहता था। ये मुकदमों में प्रारम्भिक छान बीन करते और सार्वजनिक मामलों में जनता के हित का प्रतिनिधित्व करते थे।

पञ्च-प्रणाली—जापान में पंच-प्रणाली भी प्रचलित थी किन्तु इसका कार्यक्षेत्र अन्य देशों की अपेक्षा बड़ा संकीर्ण था। सन् १९२३ के निर्बन्ध की प्रथम धारा इस प्रकार थी "अपराध सम्बन्धी (फौजदारी) मुकदमों में इस निर्बन्ध के अनुसार कोई न्यायालय पंचों की राय लेकर वास्तविकता के आधार पर अपना निर्णय दे सकता है"। तीस या उससे अधिक आयु वाले १२ पुरुष पंच बनाये जाते थे। प्रिफैक्ट के न्यायालयों में केवल अपराध सम्बन्धी (Criminal) मुकदमों में ही उनकी राय ली जाती थी।

सैनिक न्यायालय—सामान्य न्यायालयों के अतिरिक्त सैनिक-न्यायालय, पुलिस-न्यायालय और दूसरे विशेष न्यायालय भी थे। सैनिक न्यायालयों में सामान्य न्यायाधीश और सेना के अफसर न्याय करते हैं। सेना के लोगों के विरुद्ध अपराधों की ही ये न्यायालय जांच करते थे। पुलिस न्यायालयों में पुलिस के अफसर न्याय करते थे। ये लोग साधारण रक्षा सम्बंधी मुकदमे मामूली पूंछ-तांछ करके तय किया करते थे। इन मुकदमों में २० दिन से अधिक कारावास या २० यैन से अधिक जुर्माने का दण्ड न दिया जा सकता था। उनके निर्णय के विरुद्ध सामान्य-न्यायालयों में अपील की जा सकती थी। विशेष न्यायालयों में तरुण अपराधियों के न्यायालय (juvenile courts), सामरिक न्यायालय (martial courts) आदि होते थे।

स्थानीय शासन

"जापान में लोकतंत्र स्वयंजात होकर नीचे से विकसित न हुआ था किन्तु इसका भरण-पोषण दूर-दर्शी नेताओं ने चोटी पर ही किया था।" जापान में स्वायत्त शासन का सिद्धान्त किसी बड़ी राष्ट्रीय जाग्रति के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्वायत्त शासन प्रणाली

सन् १८८८ के निर्बन्ध पर आधारित थी । टोकियो, क्योटो और ओसाका नगरों का स्थानीय शासन सन् १८९८ के निर्बन्ध के अनुसार होता था। फ्रांस की तरह यहां स्थानीय शासन केन्द्रित और श्रेणी बद्ध था। यहां दो प्रकार की स्थानीय शासन संस्थायें थीं, एक प्रिफैक्चर्स और बड़े नगरों की और दूसरी छोटे नगरों और गांवों की।

प्रिफैक्चर—शासन की दृष्टि से जापान ४६ प्रिफैक्चरों अर्थात् प्रान्तों में बंटा हुआ था प्रिफैक्चर में कार्यकारी-अध्यक्ष गवर्नर या प्रिफैक्ट कहलाता था। फ्रांस के प्रिफैक्ट के समान वह दो अवस्थाओं में कार्य करता था। केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि होने के नाते स्थानीय शासन पर उसे पूरा अधिकार था। यह स्थानीय शासन अनन्यरूप से न मंत्री के आधीन था न स्थानीय शासन-संस्था के। निर्वाचन, शिक्षा, निर्धनों की सहायता, पुलिस, सार्वजनिक स्वास्थ्य, उद्योगों की रक्षा सेना में भर्ती, कर्मचारियों की देखभाल आदि सब मामले प्रिफैक्ट के अधिकार-क्षेत्र में पड़ते थे। प्रान्त का प्रमुख कार्याध्यक्ष होने के कारण वह उन सब बातों का प्रबन्ध करता था जो धारा सभा की सम्मति से स्थानीय प्रबन्ध के लिये छोड़ दिये जाते थे। वह गृहमंत्री को उत्तरदायी रहता था। टोकियो के प्रिफैक्चर में पुलिस का शासन दूसरे प्रिफैक्चरों में पुलिस का शासन से भिन्न व निराले ढंग का था। वहां मैट्रोपोलिटन पुलिस बोर्ड की आधीनता में पुलिस काम करती थी। प्रिफैक्ट में एक असैम्बली और एक कौंसिल निर्बन्ध बनाती थी।

बड़े नगर—जापान के ४६ प्रान्त या प्रिफैक्चर (Prefectures) १० बड़े नगरों, १९८५ छोटे नगरों और १०४४ गांवों में विभाजित हैं। ये सब सन् १९२४ तक रहने वाली ६३६ काउन्टियों में से बनाये गये थे। प्रिफैक्चर की तरह इन छोटी इकाइयों की भी निर्बन्ध बनाने वाली व कार्यकारिणी संस्थायें थीं। बड़े नगरों में एक असैम्बली और एक कौंसिल होती थी। असैम्बली चार वर्ष के लिये लोकमत से निर्वाचित हुआ करती थी। इसके सदस्यों की संख्या नगर की जनसंख्या के अनुसार विभिन्न नगरों में विभिन्न थी। मेयर (Mayor) इसकी बैठकों को बुलाता था और समाप्त करता था। असैम्बली की कुछ सैलेक्ट समितियां (Select Committees) थीं किंतु स्थायी समितियां (Standing Committees) न होती थी। बड़े नगरों की असैम्बलियों की शक्तियां प्रांतीय असैम्बलियों की शक्तियों से अधिक होती थी।

ग्राम और छोटे नगर—छोटे नगरों और ग्रामों की शासन प्रणाली

में केवल नाम का ही अंतर था। ग्राम या छोटे नगर की असैम्बली कर्मचारियों को स्वयं चुनती थीं। इन कर्मचारियों की नियुक्ति प्रिफैक्ट अर्थात् प्रांत के गवर्नर की पूर्व स्वीकृति से ही हो सकती थीं। नगर-असैम्बली के ढांचे पर ही इन ग्राम-असैम्बलियों का संगठन हुआ करता था। कुछ ग्रामों में गवर्नर की पूर्व सम्मति से विशेष परिस्थितियों में सब मतधारकों की, न कि उनके प्रतिनिधियों की असैम्बली बनाई जा सकती थी। यह असैम्बली स्विट्जरलैंड के छोटे कैन्टनों की "लैसजैमेंडे" (Landsgemeinde) के समान थी या न्यू इंगलैण्ड (New England) की नगर शासन प्रणाली से मिलती जुलती थी। कभी कभी गवर्नर की पूर्व-सम्मति से सड़क, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सिंचाई के साधन, पुल, शिक्षा आदि सर्व हितकारी कामों के लिये नगरों और ग्रामों की सिंडीकेट (Syndicate) बन जाती थी।

केन्द्रीय नियंत्रण—केन्द्रीय सरकार का स्थानीय इकाइयों पर बड़ा नियंत्रण रहता था, विशेषकर इसलिये क्योंकि प्रांत का गवर्नर सरकार का कर्मचारी होता था। सरकार का नियंत्रण गृह-विभाग के द्वारा रखा जाता था। इसी विभाग को उन बातों में अन्तिम अधिकार रहता था जो केन्द्रीय सरकार के किसी अन्य अधिकारी को न सौंपी हुई होती थी। यह बात निस्संदेह है कि गृह-विभाग (Home Ministry) का ऐसा नियंत्रण रहने से स्थानीय शासन में एक रूपता, सुव्यवस्था, शांति और एकता रहती थी किंतु प्रान्तीय गवर्नर का पद राजनीतिक ढंग का होने से कार्य की क्षमता न रह पाती थी। जो बात आचार्य मुनरो ने फ्रांस के स्थानीय शासन के बारे में कही थी वह जापान के लिये भी सत्य थी। आचार्य मुनरो ने कहा है कि "केन्द्रीकरण ही इसकी मूल प्रकृति है।..... सारी शक्ति भीतर और ऊपर की ओर संसृत होती है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसका मान-चित्र एक पिरैमिड के रूप का होगा।" किंतु बाद में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति भी दिखाई देने लगी थी।

सन् १९४६ का शासन-विधान

टोकियो खाड़ी में संयुक्त-राज्य के मिस्सूरी नामक जलपोत के ऊपर २ सितम्बर सन् १९४५ को जापानियों ने द्वितीय महायुद्ध में पूर्णतया पराजित होकर विधिपूर्वक आत्म-समर्पण कर दिया। पोट्सडम घोषणा के अनुसार जापान के प्रधान भूभाग पर मित्रराष्ट्रों के सेनानायक जनरल मैकार्थर ने अधिकार कर लिया। संयुक्त राज्य की सरकार ने जनरल मैकार्थर को दो

उद्देश्यों को प्राप्त करने का आदेश दिया, पहिला यह कि "जापान फिर संयुक्त-राज्य अमरीका के लिये और विश्व की शांति और सुरक्षा के लिये विपत्तिदायक न होने पावे" और दूसरा यह कि " अन्तिमतः ऐसी शांतिप्रिय और उत्तरदायी सरकार स्थापित हो जो दूसरे राज्यों के स्वत्वों का उचित आदर करे और संयुक्त-राज्य के उन आदर्शों और सिद्धांतों का समर्थन करे, जो संयुक्त-राष्ट्र (Uinted Nations) के चार्टर में दिये हुए हैं।" नई सरकार प्रजातंत्रात्मक सिद्धांतों के अनुकूल बने और स्वतंत्र जनमत के ऊपर स्थित रहे। अतएव जितने सैनिक नियंत्रण जापान की शासन-व्यवस्था में लगे हुए थे, वे मिटा दिये गये, शिंटो-राज्य को अप्रतिष्ठित कर दिया गया, शिक्षालयों में सेना की शिक्षा समाप्त कर दी गई, राजनीतिक बन्दी छोड़ दिये गये, और जनमत के प्रकट होने के लिए उचित आयोजन कर दिया गया।

नया विधान कैसे बना—जापान के मंत्रिमण्डल ने जिस का प्रधान मंत्री शिडेहरा था, जनरल मैकार्थर से सलाह करके ६ मार्च सन् १९४६ को शासन-विधान का एक मसविदा तैयार किया। इसको कुछ परिवर्तनों के बाद डाइट ने स्वीकार कर लिया और अन्त में सम्राट ने उसकी ३ नवम्बर सन् १९४६ को घोषणा कर दी। यह शासन-विधान सन् १८८९ के विधान से बिलकुल भिन्न है। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि "हम जापानी लोग राष्ट्रीय डाइट में विधिपूर्वक चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा कार्य करते हुए यह दृढ़ संकल्प करके कि हम अपने लिये और अपनी संतान के लिये सब राष्ट्रों से मेल रखने से प्राप्त हुए फल को ग्रहण करेंगे और यह दृढ़ प्रतिज्ञा करते हुए कि सरकार के कार्यों से हम फिर कभी युद्ध की भीषणता का सामना न करेंगे, यह घोषणा करते हैं, कि सर्वोच्च सत्ता प्रजा के हाथ में है और इस शासन-विधान को स्थापित करते हैं। सरकार जनता का पवित्र संगठन है जिसका अधिकार जनता से ही प्राप्त है, जिसकी शक्ति जनता के प्रतिनिधियों द्वारा कार्यरूप होती है और जिसका सुख जनता ही भोगती है। यही मानव जाति का सार्वभौमिक सिद्धांत है जिस की नींव पर यह विधान खड़ा किया गया है। हम उन सब विधानों, निर्बन्धों, अध्यादेशों और विज्ञप्तियों को रद्द करते हैं जो इस सिद्धांत के प्रतिकूल हों।"

विधान में जनता के अधिकार—शासन-विधान के तीसरे अध्याय में जनता के अधिकारों और कर्तव्यों का उल्लेख है। इनका उल्लेख ३० अनुच्छेदों में विस्तार पूर्वक किया गया है। जिन मूलाधिकारों का वर्णन

विधान में किया गया है उनको अलंघ्य माना गया है। इस विधान से पूर्व नागरिकों के मूल अधिकार निर्बन्धों की सीमा के भीतर ही भोगे जा सकते थे। यह प्रतिबन्ध अब नये विधान से हटा दिया गया है। संक्षेप में मूलाधिकार ये हैं :—सब लोगों के व्यक्तित्व का आदर किया जायगा। निर्बन्ध बनाने में और अन्य शासन सम्बन्धी कार्यों में उनके जीवन सुख व उनकी स्वतंत्रता की रक्षा ही सर्वोच्च उद्देश्य रहेगा, यदि ऐसा करने से सार्वजनिक हित में बाधा न पड़े। निर्बन्ध के अन्तर्गत सब व्यक्ति समान हैं और जाति, सम्प्रदाय, लिङ्ग, सामाजिक मान या वंश के आधार पर उनके राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों में भेद भाव न रखा जायगा। पीयरों और उनकी उपाधियों का कोई मान न होगा। जनता को अपने शासन कर्मचारियों के चुनने व उन्हें पद से हटाने का पूर्ण अधिकार है जिसको किसी प्रकार भी उनसे छीना नहीं जा सकता। प्रौढ़मताधिकार सुरक्षित रहेगा। निर्वाचनों में गुप्तशलाका का ही सर्वदा प्रयोग होगा। निर्वाचक मत देने में अपनी पसंद के लिये किसी प्रकार भी उत्तरदायी न होगा। प्रत्येक व्यक्ति को शांतिपूर्वक अपनी क्षतिपूर्ति कराने, शासन कर्मचारियों को हटाने और निर्बन्धों, या अध्यादेशों को रद्द कराने या उनमें संशोधन कराने की प्रार्थना करने का अधिकार होगा। किसी राज्य-कर्मचारी के द्वारा यदि किसी व्यक्ति की हानि हुई हो तो वह निर्बन्धानुसार उस राज्य कर्मचारी पर या राज्य पर मुकदमा चला सकता है। सिवाय दण्ड के रूप में किसी व्यक्ति को बन्धन में न रखा जायगा। विचारों की व आत्मा की स्वतंत्रता पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न होगा। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी धर्म को मान सकता है। राज्य किसी धर्म विशेष को सुविधा न देगा। समुदाय बनाने, वक्तृता देने और समाचार पत्र निकालने की स्वतंत्रता सुरक्षित रहेगी। चिट्ठी-पत्रियों को खोल कर न पढ़ा जायेगा जब तक लोकहित में बाधा न पड़े। प्रत्येक व्यक्ति को अपना निवास स्थान और व्यवसाय पसंद करने और बदलने की स्वतंत्रता रहेगी। प्रत्येक व्यक्ति विदेशों में जासकता है और अपनी नागरिकता बदल सकता है, कोई व्यक्ति किसी प्रकार की विद्या या शिक्षा प्राप्त कर सकता है। विवाह बंधन में सम्पत्ति के ऊपर स्त्री पुरुष का समान अधिकार होगा। वसीयत करने, नागरिकता अपनाने, विवाहोच्छेद आदि के सम्बंध में जो निर्बन्ध बनाये जायेंगे वे स्त्री पुरुष की वैयक्तिक प्रतिष्ठा और उनकी समानता के दृष्टिकोण को सामने रखकर ही बनाये जायेंगे। प्रत्येक व्यक्ति निर्बन्धानुसार अपनी योग्यता के अनुकूल शिक्षा पाने का

अधिकारी होगा। वह एक निश्चित परिमाण में सुखमय व सांस्कृतिक जीवन बिताने का अधिकारी होगा, तदर्थ राज्य जीवन के सब क्षेत्रों में स्वास्थ्य व जीवन निर्वाह की उचित व्यवस्था करेगा। प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क होगी। सब व्यक्तियों का यह कर्तव्य और अधिकार होगा कि वे काम करें। निर्बन्ध से मज़दूरी, काम करने के घंटे, विश्राम आदि के बारे में व्यवस्था की जायेगी। बच्चों से मज़दूरी न कराई जायेगी। मज़दूरों को संगठन बनाने और सामुदायिक रूप से मज़दूरी तय करने का अधिकार होगा। वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार सुरक्षित रहेगा। सम्पत्ति के अधिकार की व्याख्या लोकहित को ध्यान में रख कर निर्बन्ध से होगी, वैयक्तिक सम्पत्ति क्षतिपूर्ति देकर राज्य द्वारा सार्वजनिक कार्य के लिये ली जा सकती है। किसी भी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता या उसके जीवन से वञ्चित न किया जायेगा न उसे अपराध के लिये दण्ड दिया जायेगा जब तक इस सम्बन्ध में निर्बन्धानुसार आवश्यक कार्यवाही न हो जाय। बिना वारंट के न तलाशी ली जायेगी न कोई व्यक्ति बिना वारंट के पकड़ा जायेगा। सब फौजदारी (अपराधी) अभियोगों में जल्दी से जल्दी एक पक्षपातरहित न्यायालय से जांच करायी जायेगी।

व्यवस्थापक मण्डल

विधान ने डाइट (Diet) को राज्यशक्ति की प्रमुख संस्था माना है और निर्बन्ध बनाने का अधिकार केवल इसी संस्था को दिया है।

द्विआगारिक मण्डल—व्यवस्थापक मण्डल में दो आगार हैं, एक का नाम प्रतिनिधि आगार और दूसरे का कौंसिलर्स आगार है। दोनों आगारों में निर्वाचित व्यक्ति ही सदस्य बनते हैं। सदस्यों की संख्या निर्बन्ध से निश्चित की जाती है। प्रतिनिधि-आगार के सदस्य चार वर्ष के लिये चुने जाते हैं। कौंसिलर्स ६ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। उनमें से आधे प्रति तीन वर्ष बाद हट जाते हैं और उनके स्थान पर नये सदस्य चुन लिये जाते हैं। निर्वाचन क्षेत्र, मतदान प्रणाली आदि मामले निर्बन्ध द्वारा निश्चित होते हैं। एक व्यक्ति दोनों आगारों का एक ही समय सदस्य नहीं रह सकता। दोनों आगारों के सदस्यों से निर्बन्धानुसार परिश्रमिक दिया जाता है। यदि निर्बन्ध ने प्रतिकूल नियम न बनाया हो तो प्रत्येक सदस्य को यह सुविधा रहेगी कि जब डाइट की बैठक हो रही हो उसे किसी अपराध के लिये पकड़ा नहीं जा सकता। यदि बैठक होने से पूर्व किसी सदस्य को पकड़ लिया गया हो तो आगार के कहने पर बैठक के समय भर के लिये उसे स्वतंत्र कर दिया

जायगा। आगारों के भीतर भाषणों में जो जो बातें कहीं जायं या जिस प्रकार प्रस्तावों पर मत-दान किया जाय उसके लिये किसी सदस्य को कानून-बद्ध नहीं किया जाता।

डाइट का अधिवेशन—वर्ष में डाइट का एक अधिवेशन अवश्य किया जाना चाहिये। मंत्रिपरिषद् विशेष अधिवेशन भी बुला सकती है। जब एक-चौथाई या अधिक सदस्य विशेष अधिवेशन करने की मांग उपस्थित करें तो मंत्रिपरिषद् को विशेष अधिवेशन बुलाना पड़ता है। प्रतिनिधि आगार के सदस्यों की संख्या ४६६ है, जो ४ वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं। कौंसिलर्स के आगार के सदस्यों की संख्या २५० है, जिनमें से १०० सारे राज्य से और १५० प्रिफैक्टी ज़िलों से निर्वाचित होते हैं।

प्रतिनिधि आगार का विलयन—मंत्रिपरिषद् की सम्मति से जब सम्राट प्रतिनिधि आगार का विलयन कर दे तब विलयन होने के चालीस दिन के भीतर नये सदस्यों का निर्वाचन होना चाहिये और निर्वाचन होने वाले दिन से १० दिन के भीतर डाइट का अधिवेशन होना चाहिये। जब प्रतिनिधि आगार का विलयन हो जाता है तो साथ २ ऊपरी आगार अर्थात् हाउस आफ कौंसिलर्स बन्द हो जाता है। किन्तु संकटकाल में मंत्रिपरिषद् ऊपरी आगार का अधिवेशन इस विलयन काल में भी कर सकती है। इस अधिवेशन में जो योजनायें तैयार हों वे अस्थायी रहती हैं और यदि अगले अधिवेशन में डाइट इन योजनाओं को दस दिन के भीतर स्वीकार नहीं करती तो ये योजनायें रद्द समझी जाती हैं।

कार्य पद्धति—प्रत्येक आगार अपने सदस्यों की योग्यता सम्बन्धी प्रश्नों को स्वयं तय करता है। कोई सदस्य अपने स्थान से तब तक नहीं हटाया जा सकता जब तक कि उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई मत से इस विषय का प्रस्ताव पास न हो जाय। एक तिहाई या अधिक सदस्यों की उपस्थिति होने पर ही आगार का कार्य हो सकता है सिवाय जहां विधान के अनुसार अधिक बहुमत की आवश्यकता हो आगारों के निर्णय सामान्य बहुमत से होते हैं। जब दोनों पक्ष में मत बराबर हों तो आगार का प्रधान प्रश्न का निर्णय करता है। प्रत्येक आगार अपने प्रधान व अन्य कर्मचारियों को चुनता है। आगारों की बैठकें सब के लिये खुली होती हैं। किन्तु यदि उपस्थित सदस्यों की दो-तिहाई संख्या इस विषय का प्रस्ताव पास करे तो गुप्त बैठकें भी हो सकती हैं। आगारों की कार्यवाही का लेख रखा जाता है और प्रकाशित किया जाता है। यदि गुप्त बैठक की कार्यवाही को गुप्त

समझा जाता है तो उसे प्रकाशित नहीं किया जाता। कार्यपद्धति के अन्य नियम प्रत्येक आगार स्वयं निश्चित करता है।

निर्बन्ध कैसे बनते हैं—जब कोई विधेयक (Bill) दोनों आगारों में पास हो जाता है तो वह निर्बन्ध (Law) बन जाता है। यदि कोई विधेयक प्रतिनिधि आगार से पास होने पर ऊपरी आगार में जाये और वहां वह स्वीकृत न हो तो वह विधेयक तभी निर्बन्ध बन सकता है जब वहां से लौटने पर प्रतिनिधि आगार फिर दो-तिहाई या अधिक मत से उसे पास कर दे। यदि ऊपरी आगार किसी विधेयक के पाने पर ६० दिन के भीतर कोई निर्णय न करे तो वह विधेयक उस आगार से अस्वीकृत समझा जाता है। यदि प्रतिनिधि आगार चाहे तो ऐसा मतभेद होने पर दोनों आगारों की संयुक्त बैठक बुला सकता है जिसमें इस मतभेद पर विचार हो सके यदि ऐसी संयुक्त बैठक का आयोजन निर्बन्ध द्वारा कर दिया जाये।

बजट प्रतिनिधि आगार में ही प्रस्तुत किया जाता है। विचार करने के पश्चात् यदि ऊपरी आगार ऐसा निर्णय करे जो प्रतिनिधि आगार के निर्णय से भिन्न हो या जब संयुक्त-बैठक में भी कोई एकमत न हो सके या जब बजट के पाने से ३० दिन के भीतर ऊपरी आगार कोई अन्तिम निर्णय न कर पावे, तो प्रतिनिधि आगार का बजट के सम्बन्ध में निर्णय डाइट का निर्णय समझा जाता है। यही क्रम संधियों पर विचार करने में भी अपनाया जाता है।

प्रत्येक आगार सरकार के सम्बन्ध में जांच कर सकता है और इस जांच में उल्लेख पत्रों को मंगा सकता है और गवाहों को बुला सकता है। प्रधान मंत्री व अन्य मंत्री दोनों आगारों में से किसी में भी उपस्थित रह सकते हैं और भाषण दे सकते हैं चाहे वे आगार के सदस्य हों या न हों। यदि आगार में किसी प्रश्न का उत्तर देने या सफाई देने के लिये उन्हें बुलाया जाये तो आवश्यक है कि वे उपस्थित हों।

डाइट दोनों आगारों के सदस्यों में से न्यायाधीशों पर लगाये गये अभियोगों की जांच के लिये एक विशिष्ट न्यायालय स्थापित कर सकती है।

विधान संशोधन—पूर्व विधान में विधान का संशोधन सम्राट ही कर सकता था। नये विधान में यह आयोजन है कि विधान संशोधन का प्रस्ताव डाइट में रखा जाय और दोनों आगारों में जब यह प्रस्ताव कुल सदस्यों के दो-तिहाई मत से स्वीकार हो जाये तब लोक निर्णय के लिये

प्रस्तुत किया जाये। लोक निर्णय में जितने मत पड़ें उन में से बहुसंख्यक मत पक्ष में होने से संशोधन स्वीकृत समझा जाता है। इस प्रकार स्वीकृत होने पर तुरन्त ही सम्राट जनता की ओर से उसे घोषित कर देता है। इस प्रकार सर्वोच्च निर्बन्ध के संशोधन में जनता की सर्वोच्च सत्ता और सम्राट की प्रतिष्ठा दोनों का समुचित आदर हो जाता है।

कार्यकारिणी

सम्राट—जापान का शासन-विधान कायकारिणी के शोभनार्थ और कार्यार्थ अंगों में स्पष्ट रूप से भेद करता है। सम्राट राज्य और प्रजा की एकता का प्रतीक माना गया है जिसको सर्वोच्च सत्ता की स्वामिनी प्रजा ने अपनी इच्छा से ऊंची पदवी प्रदान की है। डाइट से पास किये हुये राज-घराने के निर्बन्ध के अनुसार राजा के उत्तराधिकारी निश्चित होते हैं। सम्राट केवल वैधानिक रूप से राज्य का अध्यक्ष है क्योंकि राज्य के प्रत्येक कार्य में मंत्रिपरिषद् की स्वीकृति होना आवश्यक है जो उसके लिये जिम्मेवार रहती है। शासन क्षेत्र में सम्राट को कोई शक्ति नहीं दी गई है। उसके सारे अधिकार राज्य की अध्यक्षता से ही सम्बन्ध रखते हैं। सम्राट डाइट से मनोनीत व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। इसी प्रकार वह मंत्रीमण्डल से मनोनीत व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश नियुक्त करता है। मंत्रि-परिषद् की सलाह और सम्मति से सम्राट निम्नलिखित राज-कार्य करता है: विधान-संशोधनों, निर्बन्धों, मंत्रिपरिषद् के आदेशों और संधियों को घोषित करना जिससे उन पर कार्य हो सके, डाइट का अधिवेशन बुलाना, प्रतिनिधि आगार का विलयन करना, डाइट के सदस्यों का सामान्य निर्वाचन करने का आदेश देना, मंत्रि व अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति या पदच्युति का निर्बन्धा-नुसार साक्षी होना, मंत्रियों व राजदूतों के अधिकारपत्रों पर साक्षी होना, सामान्य या विशेष क्षमादान पत्र पर या दण्ड का रूप बदलने वाली आज्ञा पर साक्षी रूप से हस्ताक्षर करना, उपाधियां प्रदान करना, विदेशी राजदूतों का स्वागत करना और उत्सवों पर अध्यक्षरूप से उपस्थित होना।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि नये विधान से जापान का सम्राट ब्रिटिश सम्राट के समान ही बन गया है। दोनों में से किसी को शासन करने का अधिकार नहीं है किन्तु प्रत्येक राष्ट्र का चिन्हरूप से अध्यक्ष है। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि कि ब्रिटिश सम्राट अपने विशेषाधिकार १७ वीं

शताब्दी में ही खो चुका था। तभी से अनेकों झगड़ों तथा रक्तपात के बाद प्रजा के प्रतिनिधियों की वर्तमान प्रतिष्ठा और उनके अधिकार प्राप्त हो पाये हैं। जापान में सम्राट की शक्ति को नये विधान में लेखनी के एक झटके से समाप्त अवश्य कर दिया है किन्तु मानव संस्कार इतनी जल्दी नहीं मिटते, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि जापान का सम्राट अपनी नई स्थिति से संतुष्ट रह सकेगा और प्रजा कहां तक अपनी नई प्राप्त की हुई शक्ति की रक्षा करने में समर्थ हो सकेगी। जापान में सम्राट की शक्ति यहां तक सीमित कर दी है कि विधान के आठवें अनुच्छेद के अनुसार जापान के राजघराने को डाइट की अनुमति के बिना किसी सम्पत्ति को बेचने या पुरस्कार स्वरूप देने का अधिकार भी नहीं है।

मंत्रि परिषद्—राज्य की कार्यकारिणी शक्ति मंत्रिपरिषद में विहित की गई है जिसमें प्रधान मंत्री अध्यक्ष होता है और निर्बन्धानुसार नियुक्त किये गये मंत्री सदस्य बनते हैं। जापान के पूर्व इतिहास को ध्यान में रख कर ही शायद यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रधान मंत्री और अन्य मंत्री सब असैनिक नागरिक होंगे। जापान में सम्राट के ऊपर यह नहीं छोड़ा गया है कि वह लोकसभा के बहुसंख्यक दल के नेता को बुलाकर मंत्रिपरिषद् बनाने का आदेश दे। यहां डाइट ही अपने सदस्यों में से प्रस्ताव द्वारा किसी का नाम नियुक्त करती है, जिसे सम्राट घोषित कर देता है। यदि इस नाम के विषय में दोनों आगार एकमत न हों और संयुक्त बैठक करने के पश्चात् भी उनमें समझौता न हो या ऊपरी आगार प्रतिनिधि आगार के प्रस्ताव को १० दिन के भीतर स्वीकार न करे तो प्रतिनिधि आगार का निर्णय ही डाइट का निर्णय समझ लिया जाता है। मंत्रिपरिषद् सामुदायिक रूप से शासन सम्बन्धी विषयों में डाइट को उत्तरदायी है। प्रधानमंत्री अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। अधिकतर मंत्री निचले आगार में से ही चुने जाते हैं। प्रधान मंत्री किसी भी मंत्री को हटा सकता है, यदि डाइट अविश्वास का प्रस्ताव पास करदे या विश्वास के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे तो मंत्रिपरिषद् को या तो पद त्याग करना पड़ता है या दस दिन के भीतर प्रतिनिधि आगार का विलयन कराना पड़ता है। नये प्रधानमंत्री के नियुक्त होने तक दोनों अवस्थाओं में पुराने मंत्री कार्य चलाते रहते हैं।

प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद् की ओर से डाइट के सामने सब विधेयकों और घरेलू तथा परराष्ट्र सम्बन्धी रिपोर्टों को प्रस्तुत करता है और शासन

के विभिन्न विभागों पर नियंत्रण रखता है और उनके काम की देख-भाल रखता है। सामान्य प्रशासन के अतिरिक्त मंत्रिपरिषद् निम्नलिखित कार्य करती है।

निर्बन्धों को कार्यान्वित करना—राज्य के सब प्रबन्ध को चलाना, परराष्ट्र सम्बन्धी मामलों का प्रबन्ध करना, संधि करना, (इस कार्य में उसे पहिले ही या बाद में डाइट की स्वीकृति लेनी पड़ती है, निर्बन्ध से निर्धारित आदर्शों के अनुसार सिवल सर्विस का प्रबन्ध करना, बजट तैयार करके डाइट के सामने रखना, विधान व अन्य निर्बन्धों के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिये परिषद् के आदेश निकालना, सब बन्दियों को छोड़ने का, दण्ड के रूप को बदलने का और किसी शक्ति के अधिकारों को उसे वापिस देने का निश्चय करना। मंत्रिपरिषद् के सब आदेशों और सब निर्बन्धों पर संबन्धित मंत्री के हस्ताक्षर होते हैं और प्रधानमंत्री के समर्थनसूचक हस्ताक्षर होते हैं। प्रधानमंत्री की सम्मति के बिना किसी मंत्री के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती, किंतु इससे यह न समझना चाहिये कि उनके विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार ही नहीं है।

न्यायमंडल

न्यायकारी सत्ता एक सर्वोच्च न्यायालय और अन्य निम्न श्रेणी के न्यायालयों में विहित की गई हैं। ये न्यायालय निर्बन्ध द्वारा स्थापित किये जाते हैं। असामान्य न्यायालय स्थापित नहीं किये जा सकते न कार्यकारिणी या उसके किसी प्रतिनिधि को अन्तिमतः न्याय करने की शक्ति दी जासकती है। सब न्यायाधीश अपने काम करने में स्वतंत्र रहते हैं, उन पर केवल विधान का और अनेक निर्बन्धों का ही प्रतिबन्ध रहता है। न्याय पद्धति के नियमों को सर्वोच्च न्यायालय निर्धारित करता है। सर्वोच्च न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश और निर्बन्ध से निश्चित संख्या में अन्य न्यायाधीश होते हैं। प्रधान न्यायाधीश को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों को मंत्रिपरिषद् नियुक्त करती है। छोटे न्यायालयों के न्यायाधीश सर्वोच्च-न्यायालय द्वारा तैयार की हुई सूची में से मंत्रिपरिषद् द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। ये सब १० वर्ष तक के लिये नियुक्त किये जाते हैं किन्तु उनकी पुनर्नियुक्ति हो सकती है। सब न्यायाधीशों को पर्याप्त वेतन दिया जाता है। जो उनके कार्यकाल में घटाया नहीं जा सकता।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के बाद जो प्रतिनिधि आगार के लिये प्रथम निर्वाचन होता है उस में उनके कार्य का निरीक्षण किया जाता है और ऐसा करने के प्रति दस वर्ष बाद सामान्य निर्वाचन में फिर निरीक्षण होता है। यदि इस निरीक्षण में बहुसंख्यक मतदाता किसी न्यायाधीश को पदच्युत करने के पक्ष में होते हैं तो वह न्यायाधीश अपने पद से हटा दिया जाता है।

सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति—सर्वोच्च न्यायालय न्याय करनेवाली अन्तिम संस्था है। सर्वोच्च न्यायालय को विधान से यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी निर्बन्ध, आदेश, नियम या सरकारी कार्य के वैध-अवैध होने का निश्चय कर सके। विधान में यह स्पष्ट कह दिया गया है कि विधान राष्ट्र का सर्वोच्च निर्बन्ध है और कोई भी निर्बन्ध, सम्राट की विज्ञप्ति या अन्य सरकारी कार्य जो विधान के प्रावधानों के विरुद्ध होगा वह अवैध समझा जायेगा। इसी विधान की कसौटी पर निर्बन्धों के जांचने का काम सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है। जापान का सर्वोच्च न्यायालय इस प्रकार संयुक्त-राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के समान ही शक्तिशाली है।

स्थानीय शासन

नये विधान में स्थानीय संस्थाओं के कार्यकारी अफसरों का निर्वाचन आवश्यक कर दिया गया है। स्थानीय संस्थाओं को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे अपनी जायदाद का स्वयं प्रबन्ध करें और अपने मामलों का प्रबन्ध स्वयं नियम बना कर करें

आर्थिक प्रावधान

विधान के सातवें अध्याय में आर्थिक विषयों के बारे में कुछ प्रावधान दिये हुये हैं। उनके अनुसार डाइट को ही राष्ट्रीय आय-व्यय का प्रबन्ध करने का अधिकार दिया गया है। डाइट की सम्मति के बिना किसी प्रकार का खर्चा नहीं किया जा सकता। डाइट मंत्रिपरिषद के आधीन एक सुरक्षित कोष रख सकती है जिसमें से मंत्रि परिषद पहिले से न जाने हुये खर्चे कर सकती है। इस खर्चे की स्वीकृति बाद में डाइट से लेनी पड़ती है। इसी अध्याय में कहा है कि राजघराने की सारी सम्पत्ति राज्य की सम्पत्ति हैं। राजघराने का खर्चा डाइट बजट के साथ मंजूर करती है। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि सार्वजनिक मुद्रा या अन्य सम्पत्ति किसी ऐसी धार्मिक संस्था को न

दी जायगी या किसी शिक्षा या दान के ऐसे काम में न लगाई जायगी जो सरकार के आधिपत्य में न हो। वर्ष में कई बार या कम से कम एक बार मंत्रिपरिषद् डाइट और जनता के सामने राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति के बारे में रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। पूर्व-विधान के प्रतिकूल अर्थ सम्बन्धी मामलों में डाइट की शक्ति बहुत बढ़ गई है। जापान के इस नये विधान ने सेना की शक्ति को कम कर दिया और सम्राट की निरंकुशता समाप्त कर दी है। नये विधान से स्वतंत्र परामर्श देने वाली संस्थायें, जैसी प्रिवीकौंसिल, राजघराने का मंत्री, वृद्ध राजनीतिज्ञ (जैनरो) आदि समाप्त हो गईं और सेना पर सम्राट का सर्वोच्च आधिपत्य भी न रह गया। इससे अब एक वास्तविक प्रजातंत्र शासन की स्थापना हो गई। इस शासन का रूप संसदात्मक है। इसमें कार्यकारिणी पार्लियामेंट को उत्तरदायी है और अन्तिम शक्ति जनता के हाथ में है।

पाठ्य पुस्तकें

Allen, G.C.—Modern Japan and its Problems (George Allen & Unwin).

Bigelow, P. —Japan and Her Colonies (Arnold).

Buchan, J. (Editor)—Japan (Nations of Today series).

Buck, P. W. and Masland, J. W.—Governments of Foreign Powers (1947), Chapters 23–26.

Cole, G. D. H. and M. I.—Modern Politics (Gollancy) pp.248–265.

Gubbins, J. H.—Making of Modern Japan (London 1922).

McGovern, W. M.—Modern Japan (London 1920)

Naokitchi Kitazawa—The Government of Japan (Princeton Universety Press).

Nitobe.—Japan (Modern World Series).

Quigly, H. S.—Japanese Government & Politics (The Century Co.)

Statesman Year Book (Latest Edition).

Treat, P. J.—The Far East (Harper Bros).

Uyehara G. E.—The Political Development of Japan (London 1910). ৭.

Wilson, Woodrow—The State (New Edition) pp. 526–533